आचार्यकल्प पं० टोडरमल विरचित—

मोक्षमार्ग-प्रकाशक
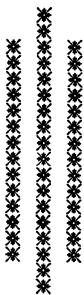
प्रकाशक :

मुसद्दीलाल जैन चेरीटेबल ट्रस्ट

२/४, दरियागंज, नई दिल्ली-२

मोक्षमार्ग-प्रकाशक

प्रकाशक :
मुसद्दीलाल जैन चेरीटेबल ट्रस्ट
२/४, अंसारी रोड दरियागंज, नई दिल्ली-२

प्रथम बार ११००

मूल्य : स्वाध्याय

मुद्रक :
गीता प्रिंटिंग एजेंसी
डी-१०५, न्यू सीलमपुर,
दिल्ली-५३

प्रकाशकीय

"दुर्लभ है संसार में, एक जथारथ ज्ञान"

—संसार में हर पदार्थ यथाकथंचित् प्राप्त किया जा सकना संभव हो, पर सद्ज्ञान की प्राप्ति बड़ी कठिनता से होती है। हमने बहुत से ज्ञान-विज्ञान वेत्ताओं को कई बार देखा और सुना है पर सम्यग्ज्ञानी विरले ही हैं। जिन जीवों ने सम्यग्ज्ञानाराधना कर मोक्ष-मार्ग को जाना वे जीव वास्तविक सम्यग्ज्ञानी हैं और ऐसे सम्यग्ज्ञा-नियों में पं० प्रवर टोडरमलजी का प्रमुख स्थान है। उन्होंने 'मोक्षमार्ग प्रकाशक' ग्रन्थ लिखकर भव्यजीवों का जो उपकार किया है वह आज के युग में अत्यन्त उपयोगी हो रहा है।

गत वर्षों में जब ट्रस्ट से 'प्रमेयकमलमार्तण्ड' का प्रकाशन हुआ, तब से मेरी भावना 'मोक्षमार्ग प्रकाशक' के प्रकाशन की रही, पर वह भावना अब पूरी हुई। मैं अपने को कृतार्थ समझूंगा, जब भव्यजीव इसके स्वाध्याय का लाभ उठावेंगे।

इस प्रकाशन में मुझे वीर सेवा मन्दिर के सौजन्य से श्री पद्मचन्द्र शास्त्री से पूरा सहयोग मिला है—उन्होंने प्रूफ-संशोधन और छपाई आदि में पूरी सावधानी रखी है। वे जैन-आगम के ज्ञाता, स्पष्ट और निःस्पृही विद्वान हैं और ज्ञानोपयोग के लिए समर्पित जैसे। ट्रस्ट उनका अत्यन्त आभारी है। श्री मुन्नालाल जो तत्त्वज्ञ हैं उन्होंने 'आद्य-मिताक्षर' लिखा हम उनके भी आभारी हैं। गीता प्रिंटिंग एजेंसी ने छपाई आदि का कार्य सुव्यवस्थित ढंग से किया उसे भी धन्यवाद !

शान्तिलाल जैन, अध्यक्ष
मुसद्दीलाल जैन चैरीटेबल ट्रस्ट
२/४ अंसारी रोड दरियागंज, नई दिल्ली-२

आद्य-मिताक्षर

पं० प्रवर श्री टोडरमल जी कृत मोक्षमार्ग-प्रकाशक ग्रंथ सन् १८९७ में बाबू ज्ञानचन्द्र जैन लाहौर द्वारा प्रकाशित हुआ। तदनंतर सन् १९११ में श्री पं० नाथूराम प्रेमी ने जैन ग्रंथ रत्नाकर से प्रकाशित किया। सन् १९३९ में जिनवाणी प्रचारक कार्यालय ने और १९५० में सस्ती ग्रंथमाला वीर सेवा मन्दिर ने प्रकाशित कराया। १९६५ में नया मन्दिर दिल्ली से सस्ती ग्रंथमाला कमेटी से प्रकाशित हुआ। इसके अतिरिक्त अन्य कई स्थानों से अन्य संस्करण भी निकले होंगे। सन् १९७० में इसका उर्दू तर्जुमा भी मुंशी सुमेरचन्द जी ने दाताराम चैरिटेबल ट्रस्ट से प्रकाशित कराया। इस प्रकार इसकी लोकप्रियता प्रसिद्ध है। प्रस्तुत प्रकाशन उक्त शृंखला की एक नई कड़ी है। जो श्री शान्तिलाल जी कागजी के सौजन्य का फल है।

श्री शान्तिलाल जैन कागजी ने अपने पिता स्व० श्री मुसद्दीलाल जैन के नाम से एक चैरिटेबल ट्रस्ट चला रखा है—जिसका उद्देश्य उपयोगी ग्रन्थों का प्रकाशन करना, छात्रवृत्ति देना और असहायों की सहायता करना है। ट्रस्ट इससे पूर्व प्रमेयकमल मार्तण्ड, मुक्ति मन्दिर, भक्तामर स्तोत्र (कविता बद्ध) का प्रकाशन करा चुका है। लालाजी स्वाध्याय प्रेमी, धर्मात्मा प्रकृति के हैं और जिनवाणी-प्रचार में जागरूक। दरियागंज में अहिंसा प्रचारिणी शास्त्रसभा स्थापित है आप उसके प्रधान हैं। लगभग २० वर्ष पहिले सभा ने पं० टोडरमल दिवस मनाया था उसमें अनेकों विद्वानों ने भाग लिया। आज भी पर्यूषण पर्व में शास्त्र प्रवचन की व्यवस्था, आश्रम कमेटी के अन्तर्गत उक्त सभा द्वारा ही होती है। लालाजी का जन्मस्थान ग्राम फुगाना, जिला मुजफ्फरनगर है और आजकल दरियागंज दिल्ली में

रहते हैं। दिल्ली के प्रमुख कागज व्यवसायियों में इनकी गणना है और धर्मकार्यों में सदा आगे रहते हैं।

जैन-साहित्य में हिन्दी के अनेक ग्रन्थ उपलब्ध हैं परन्तु 'मोक्ष-मार्ग-प्रकाशक' की शैली का अनुसरण करने वाले ग्रन्थ दुर्लभ हैं। इधर ला० शान्ति लाल जी की इस ग्रन्थ और इसके कर्त्ता के प्रति विशेष निष्ठा है। फलतः उन्होंने इस ग्रन्थ के प्रकाशन का संकल्प कर इसे प्रकाशित कराया है। वास्तव में यह ग्रन्थ मोक्षमार्ग अर्थात् संसार से छूटने का मार्ग दिखाता है। इस ग्रन्थ के रचयिता स्व० आचार्य-कल्प पं० टोडरमल जी हैं। उनकी विद्वत्ता का क्या कहना ? उन्होंने केवल २८ वर्ष की अवस्था में अनेकों टीकाएं कीं और मोक्षमार्ग-प्रकाशक जैसा स्वतंत्र ग्रंथ लिखा। पंडित जी प्रशम आदि गुणों से युक्त शुद्ध सम्यग्दृष्टी थे। वे सहृदय, स्वाभिमानी और निर्भीक वृत्ति के विद्वान थे। उन्होंने इस ग्रंथ में निश्चय और व्यवहार के स्वरूप का जो विवेचन किया है वह भटके हुओं को वस्तुस्वरूप जानने के स्पष्ट मार्ग का दिग्दर्शन कराता है। एक स्थान पर पंडित जी लिखते हैं—

"केई जीव निश्चय को न जानते निश्चयाभास के श्रद्धानी होइ, आपकों मोक्षमार्गी मानै हैं। अपने आत्माकों सिद्ध समान अनुभवैं हैं। सो आप प्रत्यक्ष संसारी हैं। भ्रमकरि आपकों सिद्ध मानें सोई मिथ्या॰ दृष्टी हैं। शास्त्रनिविषैं जो सिद्ध समान आत्माकों कह्या है सो द्रव्य-दृष्टी करि कह्या है, पर्याय अपेक्षा समान नाहीं हैं। जैसे राजा अर रंक मनुष्यपने की अपेक्षा समान हैं, राजापना रंकपना की अपेक्षा तो समान नाहीं। तैसें सिद्ध अर संसारी जीवत्वपना की अपेक्षा समान हैं, सिद्धपना संसारीपना की अपेक्षा तो समान नाही"—

मो० मा० प्र० पृ० २३४

जो लोग आत्मा को निश्चय (द्रव्यदृष्टि) से शुद्धमात्र मानने और पर्यायदृष्टि से अशुद्धमात्र मानने के भ्रम में हों, उनका उक्त

कथन से भलीभांति निराकरण हो जाता है। यदि द्रव्य को शुद्ध और पर्याय को अशुद्ध माना जायगा तो द्रव्य और पर्याय में भिन्नत्व-पना आ जायगा जिससे अशुद्ध पर्याय (संसारी अवस्था) में द्रव्य का लोप हो जायगा जबकि द्रव्य पर्याय से भिन्न कभी होता नहीं और द्रव्य के 'गुणपर्ययवद्द्रव्यम्' लक्षण के लोप हो जाने से द्रव्य की स्थिति हो सिद्ध न होगी; आदि। ऐसे ही पंडितजी ने बहुत से दुरूह प्रसंगों को सुगम और स्पष्ट रीति से खोला है। ये ग्रंथ पाठकों को पग-पग पर दिशाबोध देता है। उक्त प्रकाशन के प्रारम्भ में प्रकाशित पंडित जी की 'रहस्यपूर्ण चिट्ठो', 'परमाथ वचनिका' और उपादान निमित्त की चिट्ठी से पंडित जी की तत्व-पकड़ की गहराई का सहज ही पता चलता है। पाठक इनसे सहज ही में ग्रंथ की ग्राह्यता और उपयोगिता को समझ सकते हैं। ऐसे उपयोगी ग्रंथ के प्रकाशन हेतु ट्रस्ट-संचालकों को जितना साधुवाद दिया जाय, थोड़ा है। शुभमस्तु !

दिनांक — मुन्नालाल जैन 'प्रभाकर'

भाद्रपद शु० ५, नि० सं० २५११ — ३/३८ दरियागंज, नई दिल्ली

श्रीमान् पं० प्रवर टोडरमलजी

ॐ

पंडित प्रवर टोडरमलजी की रहस्यपूर्ण चिट्ठी

॥ श्री ॥

सिद्धि श्री मुलतान नगर महा शुभ स्थान विषें साधर्मी भाई अनेक उपमा योग्य अध्यात्म रस रोचक भाई श्री खानचन्दजी, गंगाधरजी, श्रीपालजी, सिद्धारथदासजी, अन्य सर्व साधर्मी योग्य लिखितं टोडरमल के श्री प्रमुख विनय शब्द अवधारना। यहां यथा संभव आनन्द है, तुम्हारे चिदानन्द घन के अनुभव से सहजानन्दकी वृद्धि चाहिए।

अपरंच तुम्हारो एक पत्र भाई जी श्री रामसिंह जी भुवानीदासजी को आया था। तिसके समाचार जहानाबादतें और साधर्मियों ने लिखे थे। सो भाई जी ऐसे प्रश्न तुम सारिषे ही लिखें। अबार वर्तमान काल में अध्यात्म के रसिक बहुत थोड़े हैं। धन्य हैं जे स्वात्मानुभव की वार्ता भी करै हैं, सो ही कहा है—

श्लोक—तत्प्रति प्रीत चित्तेन, येन वार्तापि हि श्रुता।
निश्चितं सः भवेद्भव्यो भावि निर्वाण भाजनम्॥
पद्मनन्दि पंच विंशतिका। (एकत्व शीतिः २३)

अर्थ—जिहि जीव प्रसन्न चित्त करि इस चेतन स्वरूप आत्मा की बात ही सुनी है, तो निश्चय कर भव्य है। अल्पकालविषें मोक्ष का पात्र है। सो भाई जी तुम प्रश्न लिखे तिसके उत्तर अपनी बुद्धि अनुसार कुछ लिखिए है सो जानना और अध्यात्म आगम की चर्चा गर्भित पत्र ता शीघ्र देवो करो, मिलाप कभी होगा तब होगा। अर निरन्तर स्वरूपानुभव में रहना, श्रीरस्तु।

अथ स्वानुभव दशाविषें प्रत्यक्ष परोक्षादिक प्रश्ननिके उत्तर बुद्धि अनुसार लिखिये हैं।

तहां प्रथम ही स्वानुभव का स्वरूप जानने निमित्त लिखै हैं।

जीव पदार्थ अनादितें मिथ्यादृष्टी है। सो आपापरके यथार्थ

रूपसे विपरीत श्रद्धान का नाम मिथ्यात्व है। बहुरि जिस काल किसी जीव के दर्शन मोह के उपशम, क्षयोपशम या क्षयतें आपापर का यथार्थ श्रद्धान रूप तत्वार्थ श्रद्धान होय, तब जीव सम्यक्ती होय है। यातें आपापरका श्रद्धानविषै शुद्धात्म श्रद्धान रूप निश्चय सम्यक्त गर्भित है। बहुरि जो आपापरका यथार्थ श्रद्धान नाहीं है अर जिनमत-विषैं कहे जे देव, गुरु, धर्म तिन ही कूं मानें है, अन्य मत विषैं कहे देवादि वा तत्वादि तिनको नाहीं मानैं है, तो ऐसे केवल व्यवहार सम्यक्त करि सम्यक्ती नाम पावै नाहीं। तातैं स्वपर भेद विज्ञान को लिए जो तत्वार्थ श्रद्धान होय सो सम्यक्त जानना।

बहुरि ऐसा सम्यक्ती होते सन्ते जो ज्ञान पंचेन्द्री व छटा मन के द्वारा क्षयोपशम रूप मिथ्यात्व दशा में कुमति कुश्रुतिरूप होय रहा था सोई ज्ञान अब मतिश्रुति रूप सम्यग्ज्ञान भया! सम्यक्ती जेता कछु जानै सो जानना सर्व सम्यग्ज्ञान रूप है।

जो कदाचित् घट पटादिक पदार्थनिकूं अयथार्थ भी जानैं तो वह आवरण जनित उदय को अज्ञान भाव है। जो क्षयोपशम रूप प्रगट ज्ञान है सो तो सर्व सम्यग्ज्ञान ही है, जातैं जाननेविषैं विपरीत रूप पदार्थनिकों न साधै है। सो यह सम्यग्ज्ञान केवलज्ञानका अंश है। जैसे थोड़ा सा मेघ पटलविलय भये कुछ प्रकाश प्रगटै है सो सर्व प्रकाश का अंश है।

जो ज्ञान मतिश्रुत रूप प्रवर्त्ते है सो ही ज्ञान बधता बधता केवलज्ञान रूप होय है। तातैं सम्यग्ज्ञान की अपेक्षा तो जाति एक है। बहुरि इस सम्यक्ती के परिणामविषैं सविकल्प तथा निर्विकल्परूप होय दो प्रकार प्रवर्त्ते। तहाँ जो विषय कषायादिरूप वा पूजा, दान, शास्त्राभ्यासादिक रूप प्रवर्त्तै सो विकल्प जानना।

यहां प्रश्न—जो शुभाशुभ रूप परिणमते हुए सम्यक्तका अस्तित्व कैसैं पाइए?

ताका समाधान—जैसे कोई गुमास्ता साहू के कार्यविषैं प्रवर्त्ते है, उस कार्य को अपना भी कहै है, हर्ष विषाद को भी पावै है, तिस-कार्य विषैं प्रवर्त्तते अपनो और साहू की जुदाई कों नाहीं विचारै है परन्तु अन्तरंग श्रद्धान ऐसा है कि यह मेरा कारज नाहीं। ऐसा कार्य-कर्ता गुमास्ता साहूकार है परन्तु वह साहू के धन कूँ चुराय अपना

मानै तो गुमास्ता चोर ही कहिए। तैसे कर्मोदय जनित शुभाशुभ रूप कार्यको करता हुआ तद्रूप परिणमै, तथापि अन्तरंग ऐसा श्रद्धान है कि यह कार्य मेरा नाहीं। जो शरीराश्रित व्रत संयम को भी अपना मानै तो मिथ्यादृष्टि होय। सो ऐसे सविकल्प परिणाम होय हैं। अब सविकल्प ही के द्वारकरि निर्विकल्प परिणाम होने का विधान कहिए है :—

वह सम्यक्ती कदाचित् स्वरूप ध्यान करने को उद्यमी होय है तहाँ प्रथम स्वपर स्वरू भेद विज्ञान करै; नो कर्म, द्रव्यकर्म, भावकर्म रहित चैतन्य चित्त चमत्कार मात्र अपना स्वरूप जानै; पीछें परका भी विचार छूट जाय, केवल स्वात्म विचार ही रहै है; तहां अनेक प्रकार निजस्वरूपविषैं अहंबुद्धि धारै है। मैं चिदानन्द हूं, शुद्ध हूं, सिद्ध हूं, इत्यादिक विचार होते संते सहज ही आनन्द तरंग उठे है, रोमांच होय है, ता पीछे ऐसा विचार तो छूट जाय, केवल चिन्मात्र स्वरूप भासने लागै; तहां सर्व परिणाम उस रूपविषै एकाग्र होय प्रवर्त्ते। दर्शन ज्ञानादिक का वा नय प्रमाणादिकका भी विचार विलय जाय।

चैतन्य स्वरूप जो सविकल्प ताकरि निश्चय किया था, तिस ही विषै व्यापक रूप होय ऐसे प्रवर्त्ते जहाँ ध्याता ध्यानपनो दूर भयो। सो ऐसी दशा का नाम निर्विकल्प अनुभव। सो बड़े नय चक्र ग्रन्थविषै ऐसे ही कहा है—

गाथा—तच्चाणे सण काले समयं बुज्झेहि जुत्ति मग्गेण।
णो आराहण समये पच्चक्खो अणहवो जह्मा ॥२६६॥

अर्थ—तत्व का अवलोकन का जो काल ता विषैं समय जो है शुद्धात्मा ताको जुत्ता जो नय प्रमाण ताकरि पहिले जानै। पीछें आराधन समय जो अनुभव काल, तिहि विषैं नय प्रमाण नहीं है, जातैं प्रत्यक्ष अनुभव है। जैसे रत्न की खरीद विषैं अनेक विकल्प करैं हैं, प्रत्यक्ष वाको पहरिये तब विकल्प नाहीं, पहरने का सुख हो है। ऐसे सविकल्प के द्वारै निर्विकल्प अनुभव होय है।

बहुरि जो ज्ञान पंच इन्द्री व छठा मन के द्वारै प्रवर्त्तै था सो ज्ञान सब तरफ सों सिमट कर निर्विकल्प अनुभव विषैं केवल स्वरूप

सन्मुख भया। जातैं वह ज्ञान क्षयोपशमरूप है सो एक काल विषैं एक ज्ञेय ही को जानै, सो ज्ञान स्वरूप जानने को प्रवर्त्या तब अन्य का जानना सहज ही रह गया। तहाँ ऐसी दशा भई जो बाह्य विकार होंय तो भी स्वरूप ध्यानो को कुछ खबर नाहीं, ऐसे मतिज्ञान भी स्वरूप सन्मुख भया। बहुरि नयादिक के विचार मिटते श्रुतज्ञान भी स्वरूप सन्मुख भया। ऐसा वर्णन समयसार की टीका आत्मख्याति-विषैं किया है तथा आत्मअवलोकनादिविषै है। इस ही वास्ते निर्विकल्प अनुभवकों अतेन्द्रिय कहिए है जातें इन्द्रीनका धर्म तो यह है जो स्पर्श, रस, गंध और वर्ण कों जानै सो यहां नाहीं अर मन का धर्म यह है जो अनेक विकल्प करै सो भी यहाँ नाहीं। तातें जब जो ज्ञान इन्द्री मन के द्वारे प्रवर्त्ते था सो ही ज्ञान अब अनुभवविषैं प्रवर्त्ते हैं तथापि इस ज्ञान को अतेन्द्रिय कहिए है। बहुरि इस स्वानुभवकों मन द्वारे भी भया कहिए जातें इस अनुभवविषै मतिज्ञान श्रुतज्ञान ही हैं, और कोई ज्ञान नाहीं।

मतिश्रुतज्ञान इन्द्री मनके अवलम्बन बिना होय नाहीं, सो इन्द्री मन का तो अभाव ही है जातें इन्द्रियका विषय मूर्त्तीक पदार्थ ही है। बहुरि यहाँ मतिज्ञान है जातें मन का विषय मूर्तिक अमूर्तीक पदार्थ है, सो यहाँ मन सम्बन्धी परिणाम स्वरूपविषैं एकाग्र होय अन्य चिन्ता का निरोध करै हैं तातें याको मन द्वारै कहिये है।

"एकाग्र चिन्ता निरोधो ध्यानम्" ऐसा ध्यानका भी लक्षण है, ऐसा अनुभव दशाविषैं संभवै है। तथा नाटकके कवित्तविषै कहा है—

दोहा—वस्तु विचारत भाव सें, मन पावै विश्राम।
रस स्वादित सुख ऊपजै, अनुभव याकौ नाम॥

ऐसे मन बिना जुदा परिणाम स्वरूपविषैं प्रवर्त्ता नाहीं तातें स्वानुभवकों मन जनित भी कहिए है, सो अतेन्द्रिय कहने में अरु मन जनित कहने में कुछ विरोध नाहीं; विवक्षा भेद है।

बहुरि तुम लिखा—"जो आत्मा अतेन्द्रिय है सो अतेन्द्रिय ही करि ग्रहा जाय" सो भाई जी, मन अमूर्तीकका भी ग्रहण करै है जातें मतिश्रुतज्ञानका विषय सर्व द्रव्य कहे हैं। उक्तं च तत्त्वार्थ सूत्रे—

"मति श्रुतयोर्निबन्धो द्रव्येऽष्व सर्व पर्यायेषु।" (१-२६)

बहुरि तुमने "प्रत्यक्ष परोक्ष संबंधी प्रश्न लिखे" सो भाईजी प्रत्यक्ष परोक्षके तो भेद हैं नाहीं। चौथे गुणस्थानमें सिद्ध समान क्षायक सम्यक्त हो जाय है, तातें सम्यक्त तो केवल यथार्थ श्रद्धानरूप ही है। वह जीव शुभाशुभ कार्य करता भी रहै, तातें तुमने जो लिख्या था कि "निश्चय सम्यक्त प्रत्यक्ष है और व्यवहार सम्यक्त परोक्ष है" सो ऐसा नाहीं है। सम्यक्त के तोन भेद हैं तहाँ उपशम सम्यक्त अरु क्षायक सम्यक्त तो निर्मल हैं, जातें वे मिथ्यात्व के उदय करि रहित हैं अर क्षयोपशम सम्यक्त समल है। बहुरि इस सम्यक्तविषें प्रत्यक्ष परोक्ष भेद तो नाहीं हैं।

क्षायक सम्यक्तीकै शुभाशुभरूप प्रवर्त्तता वा स्वानुभवरूप प्रवर्त्तता सम्यक्त गुण तो सामान्य ही है तातें सम्यक्तके तो प्रत्यक्ष परोक्ष भेद न मानना। बहुरि प्रमाणके प्रत्यक्ष परोक्ष भेद हैं सो प्रमाण सम्यग्ज्ञान है; तातें मतिज्ञान श्रुतज्ञान तो परोक्ष प्रमाण हैं और अवधि मन.पयय केवलज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

यथा:—"आद्ये परोक्षं। प्रत्यक्षमन्यत्।" (तत्त्वार्थ सूत्र १-११, १२)

ऐसा सूत्र कहा है तथा तर्क शास्त्रविषें प्रत्यक्ष परोक्ष का ऐसा लक्षण कहा है—

"स्पष्टप्रतिभासात्मकं प्रत्यक्षमस्पष्टं परोक्षं।"

जो ज्ञान अपने विषयकों निर्मलतारूप नीके जानै सो प्रत्यक्ष अर स्पष्ट नीके न जानै सो परोक्ष; सो मतिज्ञान श्रुतज्ञान का विषय तो घना परन्तु एक हो ज्ञेयकों सम्पूर्ण न जान सकै तातें परोक्ष है और अवधि मनःपर्यय ज्ञान के विषय थोरे हैं तथापि अपने विषयकों स्पष्ट नीके जाने तातें एक देश प्रत्यक्ष है अर केवलज्ञान सर्व ज्ञेयकों आप स्पष्ट जानै तातें सर्व प्रत्यक्ष है।

बहुरि प्रत्यक्षके दोय भेद हैं। एक परमार्थ प्रत्यक्ष दूसरा व्यवहार प्रत्यक्ष। अवधि मनःपर्यय और केवलज्ञान तो स्पष्ट प्रतिभासरूप हैं ही, तातें पारमार्थिक प्रत्यक्ष हैं। बहुरि नेत्र आदिकतें वरणादिककों जानिए है, तातें इनकों सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहिए, जातें जो एक वस्तु में मिश्र अनेक वर्ण हैं ते नेत्रकर नीके ग्रहे जाय हैं।

बहुरि परोक्ष प्रमाण के पांच भेद हैं—१ स्मृति, २ प्रत्यभिज्ञान, ३ तर्क, ४ अनुमान, ५ आगम।

तहाँ जो पूर्व वस्तु जानीको याद करि जानना सो स्मृति कहिए।
दृष्टांत कर वस्तु निश्चय कीजिए सो प्रत्यभिज्ञान कहिए।
हेतु के विचारतें लिया जो ज्ञान सो तर्क कहिए।
हेतुतें साध्य वस्तुका जो ज्ञान सो अनुमान कहिए।
आगमतें जो ज्ञान होय सो आगम कहिए।

ऐसे प्रत्यक्ष परोक्ष प्रमाण के भेद किए हैं, सोई स्वानुभव दशा में जो आत्मा को जानिए सो श्रुतज्ञान कर जानिए है। श्रुतज्ञान है सो मतिज्ञान पूर्वक ही है सो मतिज्ञान श्रुतज्ञान परोक्ष कहे तातें यहाँ आत्मा का जानना प्रत्यक्ष नाहीं। बहुरि अवधि मनःपर्यय का विषय रूपी पदार्थ ही है, केवलज्ञान छद्मस्थके है नाहीं, तातें अनुभवविषें अवधि मनःपर्यय केवल करि आत्मा का जानना नाहीं। बहुरि यहाँ आत्माकूं स्पष्ट नीके जानै है, तातें पारमार्थिक प्रत्यक्षपना तो सम्भवै नाहीं। बहुरि जैसे नेत्रादिकसे जानिए है तैसे एक देश निर्मलता लिए भी आत्मा के असंख्यात प्रदेशादिक न जानिए है तातें सांव्यवहारिक प्रत्यक्षपणों भी संभवै नाहीं।

यहां पर तो आगम अनुमानादिक परोक्ष ज्ञान करि आत्मा का अनुभव होय है। जैनागमविषें जैसा आत्मा का स्वरूप कहा है ताकूं तैसा जान उस विषें परिणामोंको मग्न करै है तातें आगम परोक्ष प्रमाण कहिए। अथवा मैं आत्मा ही हूं तातें मुझविषें ज्ञान है; जहाँ जहाँ ज्ञान है तहाँ तहाँ आत्मा है जैसे सिद्धादिक हैं। बहुरि जहां आत्मा नाहीं तहाँ ज्ञान भी नाहीं जैसे मृतक कलेवरादिक हैं। ऐसे अनुमान करि वस्तुका निश्चय कर उस विषै परिणाम मग्न करै है, तातें अनुमान परोक्ष प्रमाण कहिए। अथवा आगम अनुमानादिक कर जो वस्तु जानने में आया तिसहीकों याद रखके उस विषै परिणाम मग्न करै है तातें स्मृति कहिए, ऐसे इत्यादिक प्रकार से स्वानुभवविषै परोक्ष प्रमाण कर ही आत्मा का जानना होय है। पीछे जो स्वरूप जाना तिस ही विषै परिणाम मग्न हो है, ताका कछु विशेष जानपना होता नाहीं।

बहुरि यहाँ प्रश्न—जो सविकल्प निर्विकल्पविषैं जानने का विशेष नाहीं तो अधिक आनन्द कैसे होय है ?

ताका समाधान—सविकल्प दशाविषैं जो ज्ञान अनेक ज्ञेयकों जाननेरूप प्रवर्ते था, वह निर्विकल्प दशाविषैं केवल आत्माको ही जानने में प्रवर्त्या, एक तो यह विशेषता है। दूसरी यह विशेषता है जो परिणाम नाना विकल्पविषैं परिणमै था सो केवल स्वरूप ही सों तादात्मरूप होय प्रवर्त्या। तीजी यह विशेषता है कि इन दोनों विशेषताओं से कोई वचनातीत अपूर्व आनन्द होय है जो विषय सेवनविषैं उसके अंश की भी जात नाहीं तातैं उस आनन्द को अतेन्द्रिय कहिये।

बहुरि यहाँ प्रश्न—जो अनुभवविषैं भी आत्मा तो परोक्ष ही हैं तो ग्रंथनविषैं अनुभवकूं प्रत्यक्ष कैसे कहिये ? कारण कि ऊपरकी गाथा विषैं ही "**पच्चक्खो अणुहवो जम्हा**" ऐसा कहा है।

ताका समाधान—अनुभव विषै आत्मा तो परोक्षही है, कछु आत्मा के प्रदेश आकार तो भासते नाहीं। परन्तु जो स्वरूपविषैं परिणाम मग्न होते स्वानुभव भया, यो वह स्वानुभव प्रत्यक्ष है। स्वानुभवका स्वाद कछु आगम अनुमानादिक परोक्ष प्रमाणादिक कर न जानै है। आपही अनुभवके रस स्वादकों वेदै है। जैसे कोई आंधा पुरुष मिश्री कों आस्वादै है, तहाँ मिश्रीके आकारादिक तो परोक्ष हैं और जिह्वा करि जो स्वाद लिया है वह स्वाद प्रत्यक्ष है, ऐसा जानना।

अथवा जो प्रत्यक्ष की सी नाई होय तिसकों भी प्रत्यक्ष कहिए। जैसें लोकविषैं कहिए है "हमने स्वप्नविषैं वा ध्यान विषैं फलाने पुरुष को प्रत्यक्ष देखा" सो प्रत्यक्ष देखा नाहीं परन्तु प्रत्यक्षकी सो नाई प्रत्यक्षवत् यथार्थ देखा तातैं तिसको प्रत्यक्ष कहिए; तैसें अनुभवविषैं आत्मा प्रत्यक्षकी नाई यथार्थ प्रतिभासै है, तातैं इस न्यायकरि आत्मा का भी प्रत्यक्ष जानना होय है, ऐसे कहिये तो दोष नाहीं। कथन तो अनेक प्रकार होय परन्तु वह सर्व आगम अध्यात्म शास्त्रनसों विरोध न होय तैसे विवक्षा भेदकरि जानना।

यहां प्रश्न—जो ऐसे अनुभव कौन गुणस्थान में कहे हैं ?

ताका समाधान—चौथे ही से होय हैं परन्तु चौथे तो बहुत काल के अन्तराल में होय हैं और ऊपरके गुणठाने शीघ्र शीघ्र होय हैं।

बहुरि प्रश्न—जो अनुभव तो निर्विकल्प है, तहां ऊपर के और नीचे के गुणस्थाननि में भेद कहा ?

ताका उत्तर—परिणामन की मग्नता विषें विशेष है। जैसे दोय पुरुष नाम ले हैं अर दो ही का परिणाम नाम विषै है, तहां एक कै तो मग्नता विशेष है अर एक कै स्तोक है तैसे जानना।

बहुरि प्रश्न—जो निर्विकल्प अनुभवविषें कोई विकल्प नाहीं तो शुक्लध्यान का प्रथम भेद पृथक्त्ववितर्कवीचार कहा, तहाँ पृथक्त्व-वितर्कवीचार—नाना प्रकारका श्रुत अर वीचार—अर्थ, व्यंजन, योग, सक्रमन रूप ऐसे क्यों कहा ?

तिसका उत्तर—कथन दोय प्रकार है। एक स्थूल रूप है, एक सूक्ष्म रूप है। जैसे स्थूलता करि तो छठे ही गुणस्थाने सम्पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रत कहा अर सूक्ष्मता कर नवमें गुणस्थान ताईं मैथुन संज्ञा कही तैसे यहां स्वानुभवविषें निर्विकल्पता स्थूल रूप कहिए है। बहुरि सूक्ष्मता-करि पृथक्त्ववितर्क वीचारादिक भेद वा कषायादि दशमा गुणस्थान ताईं कहे हैं। सो अब आपके जानने में वा अन्य के जानने में आवै ऐसा भाव का कथन स्थूल जानना अर जो आप भी न जानें अर केवली भगवान् ही जानै सो ऐसे भाव का कथन सूक्ष्म जानना। चरणानुयोगदिकविषें स्थूल कथन की मुख्यता है अर करणानुयोगा-दिक विषें सूक्ष्म कथन की मुख्यता है, ऐसा भेद और भी ठिकाने जानना। ऐसे निर्विकल्प अनुभव का स्वरूप जानना।

बहुरि भाई जी, तुम तीन दृष्टांत लिखे वा दृष्टांत विषें प्रश्न लिखा सो दृष्टांत सर्वाङ्ग मिलता नाहीं। दृष्टांत है सो एक प्रयोजन-कों दिखावै है सो यहां द्वितीया का विधु (चन्द्रमा), वलविन्दु, अग्नि-कण ए तो एक देश हैं अर पूर्णमाशी का चन्द्र, महासागर तथा अग्नि-कुण्ड ये सर्वदेश हैं। तैसे ही चौथे गुणस्थानवर्ती आत्माके ज्ञानादि गुण एक देश प्रगट भये हैं तिनकी अर तेरहवें गुणस्थानवर्ती आत्मा के ज्ञानादिक गुण सर्व प्रगट होय हैं तिनकी जाति है।

तहाँ प्रश्न—जो एक जाति है तो जैसे केवली सर्व ज्ञेयकों प्रत्यक्ष जानै हैं तैसे चौथे गुणस्थान वाला भी आत्माकों प्रत्यक्ष जानता होगा ?

ताका उत्तर—सो भाई, प्रत्यक्षता की अपेक्षा एक जाति नाहीं, सम्यग्ज्ञानकी अपेक्षा एक जाति है। चौथे गुणस्थान वाले के मतिश्रुत रूप सम्यग्ज्ञान है और तेरहवें गुणस्थान वाले के केवलरूप सम्यग्ज्ञान है। बहुरि एक देश सर्व देश का तो अन्तर इतना ही है जो मतिश्रुत-ज्ञान वाला अमूर्तिक वस्तु को अप्रत्यक्ष और मूर्तिक वस्तु को भी प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष किंचित् अनुक्रमसों जानै है अर केवलज्ञानी सर्व वस्तु को सर्वथा युगपत् जानै है। वह परोक्ष जानै यह प्रत्यक्ष जानै, इतना ही विशेष है अर सर्व प्रकार एकही जाति कहिए तो जैसे केवली युगपत् प्रत्यक्ष अप्रयोजन रूप ज्ञेयकों निर्विकल्परूप जानै तैसे ए भी जानैं सो तो है नाहीं, तातैं प्रत्यक्ष परोक्ष में विशेष जानना कह्या है।

श्लोक—स्याद्वाद केवल ज्ञाने सर्व तत्व प्रकाशने।
भेद साक्षादसाक्षाच्च ह्यवस्त्वन्यतम् भवेत् ॥
अष्टसहस्री दशमः परिच्छेदः ॥१०५॥

याका अर्थ—स्याद्वाद जो श्रुतज्ञान अर केवलज्ञान—ये दोय सर्व तत्वों के प्रकाशन हारे हैं। विशेष इतना—केवलज्ञान प्रत्यक्ष है, श्रुत ज्ञान परोक्ष है। वस्तुरूप से यह दोनों एक दूसरे से भिन्न नाहीं हैं।

बहुरि तुम निश्चय अर व्यवहार सम्यक्त्व का स्वरूप लिखा है सो सत्य है परन्तु इतना जानना, सम्यक्तीकं व्यवहार सम्यक्तविषै निश्चय सम्यक्त गर्भित है, सदैव गमन (परिणमन) रूप है।

बहुरि तुम लिख्या—कोई साधर्मी कहै है "आत्माको प्रत्यक्ष जानैं तो कर्मवर्गणाको प्रत्यक्ष क्यों न जानें ?"

सो कहिए है—आत्माको प्रत्यक्ष तो केवली ही जानैं, कर्म-वर्गणा को अवधिज्ञानी भी जानै है।

बहुरि तुम लिख्या—द्वितीयाके चन्द्रमाकी ज्यों आत्माके प्रदेश थोरे कहो ?

ताका उत्तर—यह दृष्टांत प्रदेशन की अपेक्षा नाहीं, यह दृष्टांत गुण की अपेक्षा है। जो सम्यक्त्व, स्वानुभव और प्रत्यक्षादिक संबंधी प्रश्न तुमने लिखे थे, तिनका उत्तर अपनी बुद्धि अनुसार लिखा है। तुमहू जिनवाणीतें तथा अपनी परिणति से मिलाय लेना। विशेष कहाँ ताई लिखिये, जो बात जानिए सो लिखने में आवै नाहीं। मिले कछु कहिए भी सो मिलना कर्माधीन, तातें भला यह है कि चैतन्य स्वरूप की प्राप्तिके उद्यममें रहना व अनुभव में वर्तना। वर्तमान-कालविषें अध्यात्म तत्व तो आत्मा ही है।

तिस समयसार ग्रन्थकी अमृतचन्द्र आचार्यकृत टीका संस्कृत-विषें है अर आगमकी चर्चा गोम्मटसारविषें है और भी अन्यग्रंथविषें है। जो जानी है सो सर्व लिखनेमें आवै नाहीं। तातें तुम अध्यात्म तथा आगम ग्रन्थका अभ्यास रखना अर अपने स्वरूपविषें मग्न रहना। अर तुम कोई विशेष ग्रन्थ जानें हों तो मुझको लिख भेजना। साधर्मी कै तो परस्पर चर्चा ही चाहिए अर मेरी तो इतनी बुद्धि है नाहीं परन्तु तुम सारिखे भाइनसों परस्पर विचार है सो अब कहाँ तक लिखिए ? जेते मिलना नाहीं तेतें पत्र तो शीघ्र ही लिखा करो।

मिती फाल्गुन बदी ५ सं० १८११

—टोडरमल

अथ परमार्थवचनिका लिख्यते ।

एक जीवद्रव्य, ताके अनन्त गुण, अनन्त पर्याय, एक एक गुणके असंख्यात प्रदेश, एक एक प्रदेशविषैं अनन्त कर्मवर्गणा एक एक कर्म-वर्गणाविषैं अनन्त अनन्त पुद्गल परमाणु, एक एक पुद्गल परमाणु अनन्त गुण अनन्त पर्याय सहित विराजमान है। या प्रमाण यह एक संसारावस्थित जीव पिंडकी अवस्था है । याही भांति अनन्त जीवद्रव्य सपिंडरूप जानने। एक जीवद्रव्य अनन्त अनन्त पुद्गलद्रव्यकरि संयोगित (संयुक्त) मानने । ताको व्योरा—

अन्य अन्यरूप जीवद्रव्यकी परणति, अन्य अन्यरूप पुद्गलद्रव्य की परणति ताको व्योरो—

एक जीवद्रव्य जा भाँतिकी अवस्थालिये नाना आकाररूप परिणमैं सो भांति अन्य जीवसों मिलै नाहीं । वाका यासैं ओर भांति-रूप परिणमण होय । याहीभांति अनन्तानन्त स्वरूप जीव द्रव्य अनंता-नन्त स्वरूप अवस्थालिये वर्ते रह्या है परंतु काहु जीवद्रव्यके परिणाम काहु औरजीवद्रव्य स्यों मिलै नाहीं । याही भांति एक पुद्गल परमाणु एक समय मांहि जा भांतिकी अवस्था धरै, सो अवस्था अन्य पुद्गल परमाणु द्रव्यसों मिलै नाहीं । तातें पुद्गल (परमाणु) द्रव्यकी भी अन्य अन्यता जाननी ।

अथ जीवद्रव्य पुद्गलद्रन्य एक क्षेत्रावगाही अनादिकालके, तामें विशेष इतनो जु जीवद्रव्य एक; पुद्गल परमाणु द्रव्य अनतानंत, चलाचलरूप, आगमनमनरूप, अनन्ताकार परिणमनरूप बन्धमुक्ति-शक्ति लिये वर्ते है ।

अथ जीवद्रव्यकी अनन्ती अवस्था तामें तीन अवस्था मुख्य थापी । एक अशुद्ध अवस्था, एक शुद्धाशुद्धरूप मिश्र अवस्था, एक शुद्ध अवस्था, ए तीन अवस्था संसारी जीवद्रव्यकी जानना। संसारातीत सिद्ध अनवस्थितरूप कहिये ।

अब तीनहूं अवस्थाकों विचार—एक अशुद्ध निश्चयात्मक द्रव्य एक शुद्धनिश्चयात्मक द्रव्य, एक मिश्रनिश्चयात्मक द्रव्य। अशुद्ध-निश्चय द्रव्यकों सहकारी अशुद्ध व्यवहार, मिश्रद्रव्यकों सहकारी मिश्र व्यवहार, शुद्ध द्रव्यकों सहकारी शुद्ध व्यवहार।

अब निश्चय व्यवहार विवरण लिख्यते :—

निश्चय तो अभेदरूप द्रव्य, व्यवहार द्रव्यके यथास्थित भाव। परन्तु विशेष इतनो जु यावत्काल संसारावस्था तावत्काल व्यवहार कहिए, सिद्ध व्यवहारातीत कहिये, यातें जु संसार व्यवहार एक रूप दिखायो। संसारी व्यवहारी, व्यवहारी सो संसारी।

अब तीनहूं अवस्था को विवरण लिख्यते :—

यावत्काल मिथ्यात्व अवस्था, तावत्काल अशुद्ध निश्चयात्मक द्रव्य अशुद्धव्यवहारी। सम्यग्दृष्टी होत मात्र चतुर्थ गुणस्थानकस्यों द्वादशगुणस्थानकपर्यन्त मिश्रनिश्चयात्मक द्रव्य मिश्रव्यवहारी। केवलज्ञानी शुद्धव्यवहारी।

अब निश्चय तो द्रव्यको स्वरूप, व्यवहार संसारावस्थित भाव, ताको विवरण कहै हैं :—

मिथ्यादृष्टी जीव अपनो स्वरूप नाहीं जानतो तातें परस्वरूप-विषै मगन होय करि कार्य मानतु है, ता कार्य करतो छतो अशुद्ध-व्यवहारी कहिए। सम्यग्दृष्टी अपनो स्वरूप परोक्ष प्रमाणकरि अनुभवतु है। परसत्ता परस्वरूपसो अपनों कार्य नाहीं मानतो संतो योगद्वारकरि अपने स्वरूपको ध्यान विचाररूप किया करतु है, ता कार्य करतो मिश्र व्यवहारी कहिए, केवलज्ञानी यथाख्यातचारित्रके बलकरि शुद्धात्मस्वरूपको रमणशील है तातें शुद्धव्यवहारी कहिए, योगारूढ अवस्था विद्यमान है तातें व्यवहारी नाम कहिए। शुद्धव्यव-हारकी सरहद्द त्रयादशम गुनस्थाकसों लेइकरि चतुर्दशम गुनस्थानक-पर्यन्त जाननी। असिद्धत्वपरिणमनत्वात् व्यहारः।

अथ तीनहूं व्यवहारको स्वरूप कहै हैं :—

अशुद्ध व्यवहार शुभाशुभाचाररूप, शुद्धाशुद्धव्यवहार शुभोप-योगमिश्रित स्वरूपाचरणरूप, शुद्धव्यवहार शुद्धस्वरूपाचरणरूप। परन्तु विशेष इनका इतनो जु कोऊ कहै कि—शुद्धस्वरूपाचरणात्म तो

सिद्धहूविषै छतो है, वहाँ भी व्यवहार कहिए—सो यों नाहीं—जातें संसारी अवस्थापर्यन्त व्यवहार कहिए। संसारावस्था के मिटतें व्यवहार भी मिटी कहिए। इहां यह थापना कीनी है, तातें सिद्ध-व्यवहारातीत कहिए। इति व्यहारविचार समाप्तः।

अथ आगम अध्यात्मको स्वरूप कथ्यते :—

आगम-वस्तुको जु स्वभाव सो आगम कहिए। आत्माको जु अधिकार सो अध्यात्म कहिए। आगम तथा अध्यात्म स्वरूप भाव आत्मद्रव्यके जानने। ते दोऊभाव संसार अवस्थाविषें त्रिकालवर्ती मानने। ताको व्यौरो—आगमरूप कर्मपद्धति, अध्यात्मरूप शुद्धचेतना-पद्धति। ताको व्यौरो कर्मपद्धति पौदग्लीकद्रव्यरूप अथवा भावरूप, अव्यरूप पुदगलपरिणाम भावरूप पुदगलाकारआत्मा की अशुद्धपरि-णतिरूप परिणाम—ते दोऊपरिणाम आगमरूप थापे। अब शुद्धचेतनाथ पद्धति शुद्धात्मपरिणाम सो भी द्रव्यरूप अथवा भावरूप। द्रव्यरूप तो जोवत्वपरिणाम, ते भावरूप ज्ञानदर्शन सुखवीर्य आदि अनंतगुण-परिणाम ते दोऊ परिणाम अध्यात्मरूप जानने। आगम अध्यात्म दुहुं पद्धतिविषै अनन्तता माननी।

अनन्तता कहा ताको विचार :—

अनन्तताको स्वरूप दृष्टान्तकरि दिखाइयतु है जैसें—

वटवृक्षको बीज एक हाथविषै लीजे ताको विचार दीर्घ दृष्टिसों कीजे तो वा वटके बीजविषै एक वटको वृक्ष जैसो कछु भाविकाल होनहार है तैसो विस्तारलिये विद्यमान वार्मैं वास्तवरूप छतो है, अनेक शाखा प्रशाखा पत्र पुष्पफलसंयुक्त है, फल फलविषै अनेक बीज होंहि। या भाँतिकी अवस्था एक वटके बीजविषै विचारिए। और सूक्ष्मदृष्टि दीजे तो जे जे वा वट वृक्षविषै बीज हैं ते ते अन्तर्गभित वटवृक्षसंयुक्त होंहि। याही भाँति एकवटविषै अनेक अनेक बीज, एक एक विषै एक एक वट, ताको विचार कोजे तो भाविनयप्रवानकरि न वटवृक्षनिकी मर्यादा पाइए न बीजनिकी मर्यादा पाइए। याही भाँति अनन्तताको स्वरूप जाननो। ता अनन्तताके स्वरूपको केवलज्ञानी पुरुष भी अनन्ताही देखें जाणे कहै-अनन्तको ओर अन्त है ही नाहीं जो ज्ञानविषै भाषै। तातें अनन्तता अनन्तहोरूप प्रसिभासै, या भांति आगम अध्यात्मकी अनन्तता जाननी। तामें विशेष इतनो जु अध्यातमको

स्वरूप अनन्त, आगमको स्वरूप अनन्तानन्तरूप, यथापना प्रवानकरि अध्यात्म एक द्रव्याश्रित, आगम अनन्तानन्त पुद्गलद्रव्याश्रित। इन दुहूंको स्वरूप सर्वथा प्रकार तो केवलज्ञानगोचर, अंशमात्र मति श्रुतज्ञानग्राह्य तातैं सर्वथा प्रकार आगमी अध्यात्मी तो केवली, अंशमात्र मतिश्रुतज्ञानी, ज्ञातादेशमात्र अवधिज्ञानी मनःपर्यय ज्ञानी, ए तीनों यथावस्थित ज्ञानप्रमाण न्यूनाधिकरूप जानने। मिथ्यादृष्टी जीव न आगमी न अध्यात्मी है। काहेते यातैं जु कथन मात्र तो ग्रन्थ-पाठके बलकरि आगम अध्यात्मको स्वरूप उपदेशमात्र कहै परन्तु आगम अध्यात्मको स्वरूप सम्यक् प्रकार जानैं नहीं। तातैं मूढ जीव न आगमी न अध्यात्मी, निर्वेदकत्वात्।

अब मूढ तथा ज्ञानी जीवको विशेषपणो और भी सुनो :—

ज्ञाता तो मोक्षमार्ग साधि जानै, मूढ मोक्षमार्ग न साधि जानै, काहे—यातैं सुनो - मूढ जीव आगमपद्धतिको व्यवहार कहै, अध्यात्म-पद्धतिको निश्चय कहै तातैं आगम अंग को एकान्तपनो साधिकैं मोक्ष-मार्ग दिखावै, अध्यात्म अंगको व्यवहारे न जानै—यह मूढदृष्टीको स्वभाव, वाहि याही भाँति सूझ, काहेतें ?—यातैं—जू आगम अंग बाह्यक्रिया रूप प्रत्यछ प्रमाण है ताको स्वरूप साधिवो सुगम। ता बाह्यक्रिया करतो सन्तो आपकूं मूढ जीव मोक्षको अधिकारी मानै, अन्तरगर्भित को अध्यात्मरूप क्रिया सो अन्तरदृष्टी ग्राह्य है सो क्रिया मूढजीव न जानै। अन्तरदृष्टि के अभवासों अन्तर क्रिया दृष्टिगोचर आवै नाहीं, तातैं मिथ्यादृष्टि जीव मोक्षमार्ग साधिवेको असमर्थ।

अथ सम्यक्दृष्टीको विचार सुनो :

सम्यग्दृष्टी कहा सो सुनो—संशय विमोह विभ्रम ए तीन भाव जामैं नाहीं सो सम्यग्दृष्टी। संशय विमोह विभ्रम कहा ताको स्वरूप दृष्टान्तरकरि दिखायतु हैं सो सुनो—जैसें च्यार पुरुष काहू एक स्थानक विषै ठाढे। तिन्ह चारिहूं के आगे एक सीपको खण्ड किनहो और पुरुषने आनि दिखायो। प्रत्येक प्रत्येकतें प्रश्न कीनो कि यह कहा है—सीप है कि रूपो है। प्रथमही एक पुरुष संशैवालो बोल्यो-कछु सुध नाहीं न परत, किधो सीप है किधो रूपो है, मोरी दृष्टिविषै याको निरधार होत नांहिनै। दूजो पुरुष भी विमोहवालो बोल्यो कि-कछु मोहि यह सुधि नाहीं कि तुम सीप कौनसों कहतु है, रूपो कोनसों

कहतु है, मेरी दृष्टिविषै कछु आवतु नाहीं, तातैं हम नांहिनै जानत कि तू कहा कहतु है अथवा चुप ह्वै रहै बोलै नाहीं गहलरूपसों। तीसरो पुरुष भी विभ्रमवालो बोल्यो कि—यह तो प्रत्यक्षप्रमाणरूपो है, याको सीप कौन कहै, मेरी दृष्टिविषै तो रूपो सूझतु है तातैं सर्वथाप्रकार यह रूपो है सो तीनों पुरुष तो वा सीपको स्वरूप जान्यो नाहीं। तातैं तीनों मिथ्यावादी। अब चौथो पुरुष बोल्यो कि यह तो प्रत्यक्ष प्रमाण सीपको खण्ड है, यामें कहा धोखो, सीप सीप, निरधार सीप, याको जु कोई कोई और वस्तु कहै सो प्रत्यक्षप्रमाण भ्रामक अथवा अन्ध, तैसैं सम्यग्दृष्टीको स्वपरस्वरूपविषैं न संसै न विमोह न विभ्रम, यथार्थदृष्टी है तातैं सम्यग्दृष्टी जीव अन्तरदृष्टि करि मोक्षपद्धति साधि जानै। बाह्यभाव बाह्यनिमित्तरूप मानै, सो निमित्त नानारूप, एक रूप नाहीं, अन्तरदृष्टिके प्रमाण मोक्षमार्ग साधै, सम्यग्ज्ञान स्वरूपाचरणकी कनिका जागे मोक्षमार्ग सांचो। मोक्षमार्गको साधिवो है व्यवहार, शुद्धद्रव्य अक्रियारूप सो निश्चै। ऐसैं निश्चय व्यवहारको स्वरूप सम्यग्दृष्टी जानै, मूढजीव न जानै न मानै। मूढ जीव बन्धपद्धतिको साधिकरि मोक्ष कहै, सो बात ज्ञाता मानै नाहीं। काहेतें ? यातें जु बन्धके साधते बन्ध सधै, मोक्ष सधै नाहीं। ज्ञाता जब कदाचित् बन्धपद्धति विचारै तब जानै कि या पद्धतिसों मेरो द्रव्य अनादिको बन्धरूप चल्यो आयो है—अब या पद्धतिसों मोह तोरि वहै तो या पद्धतिको राग पूर्वकी ज्यों हे नर काहे करो ? छिन मात्र भी बन्धपद्धतिविषै मगन होय नाहीं सो ज्ञाता आपनो स्वरूप विचारै अनुभवै ध्यावै गावै श्रवन करै नवधाभक्त तप क्रिया अपने शुद्धस्वरूप के सन्मुख होइकरि करै। यह ज्ञाताको आचार, याहीको नाम मिश्रव्यवहार।

अब हेयज्ञेयउपादेयरूप ज्ञाताकी चाल ताको विचारलिख्यते :—

हेय—त्यागरूप तो अपने द्रव्यकी अशुद्धता, ज्ञेय—विचाररूप अन्यषट्द्रव्यको स्वरूप, उपादेय—आचरण रूप अपने द्रव्यकी अशुद्धता ताको ब्यौरो—गुणस्थानक प्रमाण हेयज्ञेयउपादेयरूप शक्ति ज्ञाताकी होइ। ज्यों ज्यों ज्ञाताकी हेय ज्ञेयउपादेयरूप शक्ति वर्द्धमान होय त्यों त्यों गुणस्थानककी बढवारी कही है, गुणस्थानकप्रवान ज्ञान गुणस्थानक प्रमाण क्रिया। तामें विशेष इतनो ज एक गुणस्थानकवर्ती

अनेक जीव होंहि तो अनेक रूपको ज्ञान कहिए, अनेक रूपकी क्रिया कहिए। भिन्न भिन्नसत्ताके प्रवानकरि एकता मिलै नाहीं। एक एक जीव द्रव्यविषै अन्य अन्य रूप उदीक भाव होंहि, तिन उदीकभावानुसारि ज्ञानकी अन्य अन्यता जाननी। परन्तु विशेष इतनो जु कोऊ जातिको ज्ञान ऐसो न होइ जु परसत्तावलम्बनशीली होइकरि मोक्षमार्ग साक्षात् कहै, काहेतें ? अवस्थाप्रवान परसत्तावलंबक है। ज्ञानको परसत्तावलंबी परमार्थता न कहै। जो ज्ञान होय सो स्वसत्तावलंबनशीली होइ ताको नाउ ज्ञान। ता ज्ञानकी सहकारभूत निमित्तरूप नाना प्रकार के उदीकभाव होहि। तिन्ह उदीकभावनको ज्ञाता तमासगीर। न कर्त्ता न भोक्ता न अवलंबी तातैं कोऊ यों कहै कि या भांतिके उदीक भाव होंहि, सर्वथा तो फलानो गुणस्थानक कहिये सो झूठो। तिनि द्रव्यको स्वरूप सर्वथा प्रकार जान्यों नाहीं। काहूतें ? यातें जु और गुणस्थानकनिकी कोन बात चलावे, केवलीके भी उदीकभावनिकी नानात्वता जाननी। केवलीके भी उदीकभाव एकसे होंय नाहीं। काहू केवलीकों दण्ड कपाटरूप क्रिया उदै होय, काहू केवलीकों नाहीं। तो केवलीविषै भी उदैकी नानात्वता है तो और गुणस्थानककी कौन बात चलावै। तातें उदीक भावनिके भरोसे ज्ञान नाहीं, ज्ञान स्वशक्तिप्रवान है। स्वपरप्रकाशक ज्ञानकी शक्ति, ज्ञायक प्रमाण ज्ञान, स्वरूपाचरणरूप चारित्र यथा अनुभव प्रमाण – यह ज्ञाताको सामर्थ्यपनो। इन बातनको ब्यौरो कहांतांई लिखिये, कहांतांई कहिए। वचनातीत इन्द्रियातीत ज्ञानातीत, तातें यह विचार बहुत कहा लिखहिं। जो ज्ञाता होयगो सो थोरो ही लिख्यो बहुतकरि समुझेगो, होयगो सो यह चिट्ठी सुनेगो सही परन्तु समुझेगो नहीं। यह वचनिका यथा का यथा सुमतिप्रवान केवलिवचनानुसारी है। जो याहि सुनेगो, समुझेगो, सरदहेगो, ताहि कल्याणकारी है भाग्यप्रमाण।

इति परमार्थ वचनिका समाप्त।

अथ उपादान निमित्तकी चिट्ठी लिख्यते

प्रथम हि कोई पूछत है कि निमित्त कहा उपादान कहा ताको ब्यौरो—निमित्त तो संयोगरूप कारण, उपादान वस्तुकी सहज शक्ति। ताको ब्यौरो—एक द्रव्यार्थिक निमित्त उपादान, एक पर्यायार्थिक निमित्तउपादान, ताको ब्यौरो—द्रव्यार्थिक निमित्त उपादान गुण-भेदकल्पना। पर्यायार्थिक निमित्त उपादान परजोगकल्पना, ताकी चौभंगी। प्रथम ही गुणभेद कल्पनाको चौभंगीको विस्तार कहूं सो कैसें? - ऐसें—सुनो—जीवद्रव्य ताके अनन्त गुण, सब गुण असहाय स्वाधीन सदाकाल। तामैं दोय गुण प्रधान मुख्य थापे, तापर चौभंगी को विचार एक तो जीवको ज्ञानगुण दूसरो जीवको चारित्रगुण।

ये दोनों गुण शुद्धरूप भाव जानने, अशुद्धरूप भी जानने, यथा योग्य स्थानक मानने ताको ब्यौरो—इन दुहूंको गति न्यारी-न्यारी शक्ति न्यारी-न्यारी, जाति न्यारी-न्यारी, सत्ता न्यारी-न्यारी ताको ब्यौरो—ज्ञानगुणकी तो ज्ञान अज्ञानरूप गति, स्वपरप्रकाशक शक्ति, ज्ञानरूप तथा मिथ्यात्वरूप जाति, द्रव्यप्रमाण सत्ता परन्तु एक विशेष इतनो जु ज्ञानरूप जातिको नाश नाहीं, मिथ्यात्वरूप जातिको नाश, सम्यग्दर्शन उत्पत्ति पर्यंत, यह तो ज्ञान गुणको निर्णय भयो। अब चारित्र गुणको ब्यौरो कहै हैं,--संक्लेश विशुद्धरूप गति, थिरता अथिरता शक्ति, मन्दी तीव्ररूप जाति, द्रव्यप्रमाण सत्ता। परन्तु एक विशेष जु मन्दताकी स्थिति चतुर्दशम गुणस्थानकपर्यन्त। तीव्रताकी स्थिति पंचम गुणस्थानक पर्यन्त। यह तो दुहूको गुण भेद न्यारो न्यारो कियो। अब इनकी व्यवस्था न ज्ञान चारित्र के आधीन न चारित्र ज्ञानके आधीन। दोऊ असहाय रूप यह तो मर्यादा बन्ध।

अथ चौभंगीको विचार—ज्ञानगुण निमित्त
चारित्रगुण उपादान रूप ताको ब्यौरो—

एक तो अशुद्ध निमित्त अशुद्ध उपादान दूसरो अशुद्ध निमित्त शुद्ध उपादान। तीसरो शुद्ध निमित्त अशुद्ध उपादान, चौथो शुद्ध निमित्त शुद्ध उपादान, ताको ब्यौरो—सूक्ष्मदृष्टि देहकरि एक समय

की अवस्था द्रव्यको लेनी, समुच्चयरूप मिथ्यात्वकी बात नाहीं चलावनी। काहू समै जीवकी अवस्था या भांति होतु है जु जानरूप ज्ञान विशुद्ध चारित्र, काहू समै अजानरूप ज्ञान विशुद्ध चारित्र, काहू समै जानरूप ज्ञान संक्लेश रूप चारित्र, काहू समै अजानरूप ज्ञान संक्लेश चारित्र, जा समै अजानरूप गति ज्ञानकी, संक्लेषरूप गति चारित्रकी तासमें निमित्त उपादान दोऊ अशुद्ध। काहूसमै अजान रूप ज्ञान विशुद्ध रूप चारित्र तासमें अशुद्ध निमित्त शुद्ध उपादान। काहू समै जानरूप ज्ञान संकलेशरूप चारित्र तासमें शुद्ध निमित्त अशुद्ध उपादान। काहू समै जानरूप ज्ञान विशुद्ध रूप चारित्र तासमें शुद्ध निमित्त शुद्ध उपादान, या भांति अन्य २ दशा जीवकी सदाकाल अनादिरूप, ताको ब्यौरो—जान रूप ज्ञानकी शुद्धता कहिए विशुद्धरूप चारित्र की शुद्धता कहिए। अज्ञान रूप ज्ञानकी अशुद्धता कहिए संक्लेश रूप चारित्रकी अशुद्धता कहिए। अब ताको विचार सुनो—मिथ्यात्व अवस्था विषें काहू समै जीवको ज्ञान गुण जाण रूप है तब कहा जानतु है? ऐसो जानतु है—कि लक्ष्मी पुत्र कलत्र इत्यादिक मोसों न्यारे हैं प्रत्यक्ष प्रमाण मैं मरूंगा ए यहां ही रहेंगे सो जानतु है। अथवा ए जाएंगे मैं रहूंगा, कोई काल इनस्यों मोहि एक दिन वियोग है ऐसो जानपनों मिथ्यादृष्टीको होतु है सो तो शुद्धता कहिए परन्तु सम्यक् शुद्धता नाहीं गर्भितशुद्धता, जब वस्तुको स्वरूप जानै तब सम्यक् शुद्धता सो ग्रन्थिभेद बिना होई नाहीं परन्तु गर्भित शुद्धता सो भी अकाम निर्जरा है, वाही जीवको काहू समै ज्ञान गुण अजान रूप है गहलरूप, ताकरि केवल बन्ध है, याही भांति मिथ्यात्व अवस्था विषै काहू समै चारित्र गुण विशुद्धरूप है तातै चारित्रावर्ण कर्म मन्द है। ता मंदताकरि निर्जरा है। काहूसमै चारित्रगुण संक्लेशरूप है तातैं केवल तीव्रबन्ध है। या भांति करि मिथ्या अवस्थाविषै जा समै जानरूप ज्ञान है और विशुद्धतारूप चारित्र है ता समै निर्जरा है। जा समै अजानरूप ज्ञान है संक्लेश रूप चारित्र है ता समै बन्ध है, तामें विशेष इतनो जु अल्प निर्जरा बहु बन्ध, तातैं मिथ्या अवस्थाविषैकेवल बन्ध कह्यो। अल्पकी अपेक्षा जैसें—काहू पुरुषकों नफो थोड़ो टोटो बहुत सो पुरुष टोटाउ ही कहिए। परन्तु बन्ध निर्जरा बिना जीव काहू अवस्थाविषै नाहीं। दृष्टान्त ऐसो—जु विशुद्धताकरि

निर्जरा न होती तो एकेन्द्री जीव निगोद अवस्थास्यों व्यवहारराशि कौनके बल आवतो ? वहां तो ज्ञान गुण अजानरूप गहलरूप है अबुद्धरूप है तातैं ज्ञानगुणकों तो बल नाहीं। विशुद्ध चारित्र के बलकरि जीव व्यवहार राशि चढ़तु है, जीवद्रव्यादिविषै कषायकी मन्दता होतु है ताकरि निर्जरा होतु है। वाही मन्दता प्रमाण शुद्धता जाननी। अब और भी विस्तार सुनो :—

जानपनो ज्ञानको अरु विशुद्धता चारित्रको दोऊ मोक्षमार्गानुसारी हैं तातैं दोऊविषैं विशुद्धता माननी परन्तु विशेष इतनों जु गर्भित शुद्धता प्रगट शुद्धता नाहीं। इन दुहू गुण को गर्भित शुद्धता जब तांई ग्रंथिभेद होय नाहीं तब तांई मोक्षमार्ग न सधै। परन्तु ऊरधताकों करहि अवश्य करि ही। ए दोऊ गुणकी गर्भित शुद्धता जब ग्रन्थिभेद होइ तब इन दुहूंको शिखा फूटै तब दोऊ गुण धाराप्रवाहरूप मोक्षमार्गकों चलहि; ज्ञानगुणकी शुद्धताकरि ज्ञानगुण निर्मल होहि, चरित्र गुणकी शुद्धता करि चारित्र गुण निर्मल होइ। वह केवलज्ञानको अंकूर, वह यथाख्यातचारित्रको अंकूर।

इहां कोऊ उटंकना करतु है—कि तुम कह्यो जु ज्ञानको जाणपनो अरु चारित्रकी विशुद्धता दुहूंस्यों निर्जरा है सु ज्ञानके जाणपनो सो निर्जरा यह हम मानो। चारित्रकी विशुद्धतासों निर्जरा कैसें ? यह हम नाहीं समुझी—ताको समाधान :—

सुनि भैया ! विशुद्धता थिरतारूप परिणामसों कहिए सो थिरता यथाख्यातको अंश है तातै विशुद्धता में शुद्धता आई। वह उटंकनावारो बोल्यो—तुम विशुद्तासों निर्जरा कही, हम कहतु हैं कि विशुद्धतासों निर्जरा नाहीं, शुभबन्ध है। ताको समाधान—कि सुन भैया यह तो तू सांचो विशुद्धतासों शुभबन्ध, संक्लेशतासों अशुभबन्ध, यह तो हम भी मानी परन्तु और भेद यामें है सो सुनि— अशुभपद्धति अधोगतिको परणमन है, शुभपद्धति उर्द्धगतिको परणमण है तातैं अधोरूपसंसार उर्द्ध रूप मोक्षस्थान पकरि, शुद्धता वामैं आई मानि मानि, यामें धोखो नाहीं है, विशुद्धता सदा काल मोक्षको मार्ग है परन्तु ग्रन्थभेद विना शुद्धता को जोर चलत नाहींने ? जैसें कोऊ पुरुष नदी में डुबकी मारै फिर जब उछलै तब दैवयोगसों ऊपर ता पुरुषकै नौका आय जाय तो यद्यपि ताअ पुरुष है तथापि कौन भांति निकलै ? वाको जोर चलै नाहिं, बहुतेरा कलबल करै पै कछु

अशुद्ध नाहीं, तैसें विशुद्धताकी भी ऊर्द्ध ता जाननी। ता वास्तै गर्भित शुद्धता कही। वह गर्भित शुद्धता ग्रंथिभेद भए मोक्षमार्गको चली। अपने स्वभाव करि वर्द्धमानरूप भई तब पूर्ण यथाख्यात प्रगट कहायो। विशुद्धताका जु ऊर्द्ध ता वहै वाकी शुद्धता।

और सुनि जहां मोक्षमार्ग साध्यो तहां कह्यो कि "सम्यग्दर्शन ज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः" और यों भी कह्यो कि "ज्ञानक्रियाभ्यां मोक्षः" ताको विचार—चतुर्थ गुणस्थानकस्यूं लेकरि चतुर्दशमगुणस्थानक पर्यन्त मोक्षमार्ग कह्यो ताको ब्यौरो, सम्यक्‌रूप ज्ञानधारा विशुद्धरूप चारित्रधारा—दोऊधारा मोक्षमार्गको चली सु ज्ञानसों ज्ञानकी शुद्धता क्रियासों क्रियाकी शुद्धता। जो विशुद्धता में शुद्धता है तो यथाख्यात रूप होत है। जो विशुद्धता में शुद्धता का अंश न होता तो ज्ञान गुण शुद्ध होतो, क्रिया अशुद्ध रहतो केवली विषै; सो यों तो नहीं, वामैं शुद्धता हती ताकरि विशुद्धता भई। इहां कोई कहेगो कि ज्ञानकी शुद्धता करि क्रिया शुद्ध भई सो यों नाहीं। कोऊ गुण काहू गुणके सारै नहीं, सब असहाय रूप हैं। और भी सुनि जो क्रियापद्धति सर्वथा अशुद्ध होती तो अशुद्धताकी एती शक्ति नाहो जु मोक्षमार्गको चलै तातैं विशुद्धता में यथाख्यात को अंश है तातैं वह अंश क्रम क्रम पूरण भयो। ए भइया उटकनावारे—तैं विशुद्धतामें शुद्धता मानी कि नाहीं। तैं जो तो तैं मानी तो कछु और कहिबेको कार्य नाहीं। जो तैं नाहीं मानी तो तेरो द्रव्य याही भाँति को परणयो है हम कहा करि हैं जो मानो तो स्याबासि। यह तो द्रव्यादिककी चौभंगी पूरण भई।

निमित्त उपादान का शुद्ध अशुद्धरूप विचार:—

अब पर्यायार्थिककी चौभंगी सुनो—एक तो वक्ता अज्ञानी श्रोता भी अज्ञानी सो तो निमित्त भी अशुद्ध उपादान भी अशुद्ध। दूसरो वक्ता अज्ञानी श्रोता ज्ञानी सो निमित्त अशुद्ध और उपादान शुद्ध। तीसरो वक्ता ज्ञानी श्रोता अज्ञानी सो निमित्त शुद्ध उपादान अशुद्ध। चौथो वक्ता ज्ञानी श्रोता भी ज्ञानी सो तो निमित्त भी शुद्ध उपादान भी शुद्ध। यह पर्यायार्थिककी चौभगी साधी।

इति निमित्त उपादान शुद्धाशुद्धरूप विचार वचनिका

पं० टोडरमलजी के स्वहस्त लिखित मोक्षमार्ग-प्रकाशक ग्रन्थ का आदि पत्र

पं० टोडरमलजी के स्वहस्त लिखित मोक्षमार्ग-प्रकाशक ग्रन्थका अन्तिम पत्र

विषय-सूची

प्रथम अधिकार

दूसरा अधिकार

तीसरा अधिकार

चौथा अधिकार

पाँचवाँ अधिकार

छठा अधिकार

सातवां अधिकार

क्रम	विषय		पृष्ठ

आठवाँ अधिकार

नवमा अधिकार

॥ श्री सर्वज्ञवीतरागाय नमः ॥

शास्त्र-स्वाध्यायका प्रारम्भिक मंगलाचरण

ॐ नमः सिद्धेभ्यः, ॐ जय जय जय,

नमोस्तु ! नमोस्तु ! ! नमोस्तु ! ! !

ओंकारं बिन्दुसंयुक्तं, नित्यं ध्यायन्ति योगिनः ।
कामदं मोक्षदं चैव, ओंकाराय नमोनमः ॥१॥

अविरलशब्दघनौघप्रक्षालितसकलभूतलमलकलंका ।
मुनिभिरुपासिततीर्था सरस्वती हरतु नो दुरितान् ॥२॥

अज्ञानतिमिरान्धानां ज्ञानाञ्जनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः ॥३॥

श्री परमगुरुवे नमः, परम्पराचार्यगुरुवेनमः ।

सकल कलुषविध्वंसकं श्रेयसां परिवर्धकं, धर्मसम्बन्धकं भव्यजीवमनः प्रतिबोधकारकमिदं शास्त्रं श्री मोक्षमार्ग-प्रकाशक नामधेयं, तस्य मूलग्रंथ कर्तारः श्रीसर्वज्ञदेवास्तद्-त्तरग्रंथकर्तारः श्री गणधरदेवाः प्रतिगणधरदेवास्तेषां वचोनुसारमासाद्य श्री पंडित टोडरमलजी विरचितं । श्रोतारः सावधानतया शृण्वन्तु ।

मंगलं भगवान् वीरो, मंगलं गौतमो गणी ।
मंगलं कुन्दकुन्दाद्यो, जैनधर्मोस्तु मङ्गलम् ॥

ॐ नमः सिद्धेभ्यः।

मोक्षमार्ग-प्रकाशक

(आचार्यकल्प पं० टोडरमलजी कृत)

पहला अधिकार

—: ० :—

मंगलाचरण

दोहा

मंगलमय मंगलकरण वीतराग विज्ञान।
नमौं ताहि जातैं भये, अरहंतादि महान्॥१॥
करि मंगल करिहौं महा, ग्रंथकरन को काज।
जातैं मिलै समाज सब, पावै निजपदराज॥२॥

अथ मोक्षमार्गप्रकाशक नाम शास्त्रका उदय हो है। तहां मंगल करिये है—

णमो अरहंताणं। णमो सिद्धाणं। णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं। णमो लोए सव्वसाहूणं॥

यहु प्राकृतभाषामय नमस्कारमन्त्र है, सो महामंगलस्वरूप है। बहुरि याका संस्कृत ऐसा हो है।

नमोऽर्हद्भ्यः। नमः सिद्धेभ्यः। नमः आचार्येभ्यः।
नमः उपाध्यायेभ्यः। नमो लोके सर्वसाधुभ्यः॥

बहुरि याका अर्थ ऐसा है—नमस्कार अरहंतनिके अर्थि, नमस्कार सिद्धनिके अर्थि, नमस्कार आचार्यनिके अर्थि, नमस्कार उपाध्यायनिके

अर्थि, नमस्कार लोकविषैं सर्वसाधुनिके अर्थि, ऐसें या विषैं नमस्कार किया, तातैं याका नाम नमस्कारमन्त्र है। अब इहाँ जिनकूं नमस्कार किया तिनिका स्वरूप चिंतवन कीजिये है। (जातैं स्वरूप जानैं बिना यहु जान्या नाहीं जाय जो मैं किनकों नमस्कार करूँ। तब उत्तमफल की प्राप्ति कैसें होय।*)

अरहंतोंका स्वरूप

तहाँ प्रथम अरहंतनिका स्वरूप विचारिये हैं—जे गृहस्थपनों त्यागि मुनिधर्म अंगीकार करि निजस्वभावसाधनतैं च्यारि घातिया कर्मनिकों खिपाय अनंत चतुष्टय विराजमान भये। तहाँ अनंतज्ञानकरि तौ अपने-अपने अनंत गुणपर्याय सहित समस्त जीवादि द्रव्यनिकों युगपत् विशेषपने करि प्रत्यक्ष जानैं हैं। अनंतदर्शनकरि तिनकों सामान्यपने अवलोकैं है। अनंतबीर्यकरि ऐसी (उपर्युक्त) सामर्थ्यकों धारैं हैं। अनंतसुखकरि निराकुल परमानंदकों अनुभवैं हैं। बहुरि जे सर्वथा सर्व रागद्वेषादि विकारभावनिकरि रहित होय शांतरसरूप परिणए हैं। बहुरि क्षुधा-तृष्णादि समस्तदोषनितैं मुक्त होय देवाधिदेवपनाकों प्राप्त भये हैं। बहुरि आयुध अंबरादिक वा अंगविकारादिक जे काम-क्रोधादिक निंद्यभावनिके चिह्न तिनकरि रहित जिनका परम औदारिक शरीर भया है। बहुरि जिनके वचननितैं लोक विषैं धर्मतीर्थ प्रवर्तै है, ताकरि जीवनिका कल्याण हो है। बहुरि जिनके लौकिक जीवनिकूं प्रभुत्व माननेके कारण अनेक अतिशय अर नाना प्रकार विभव तिनका संयुक्तपना पाइये है। बहुरि जिनकों अपना हितके अर्थि गणधर इन्द्रादिक उत्तम जीव सेवैं है। ऐसें सर्वप्रकार पूजने योग्य श्रीअरहंतदेव हैं, तिनकों हमारा नमस्कार होहु।

सिद्धों का स्वरूप

अब सिद्धनिका स्वरूप ध्याइये हैं—ज गृहस्थ अवस्था त्यागि मुनि धर्मसाधनतैं च्यारि घातिकर्मनिका नाश भये अनन्तचतुष्टय भाव

* यह पंक्ति खरडा प्रति में नहीं है, संशोधित लिखित प्रतियों में है, इसी से उसे मूल में दिया गया है।

प्रगट करि केतेक काल पीछे च्यारि अघातिकर्मनिका भी भस्म होतें परम औदारिक शरीरकों भी छोरि ऊर्ध्वगमन स्वभावतें लोकका अग्रभागविषें जाय विराजमान भये। तहाँ जिनकै समस्तपरद्रव्यनिका सम्बन्ध छूटनेतें मुक्त अवस्थाकी सिद्धि भई, बहुरिजिनकै चरमशरीरतें किंचित् ऊन पुरुषाकारवत् आत्मप्रदेशनिका आकार अवस्थित भया, बहुरि जिनकै प्रतिपक्षी कर्मनिका नाश भया तातें समस्त सम्यक्त्व-ज्ञान-दर्शनादिक आत्मीक गुण सम्पूर्ण अपने स्वभावकों प्राप्त भये हैं, बहुरि जिनकै नोकर्मका सम्बन्ध दूर भया तातें समस्त अमूर्त्तत्वादिक आत्मीकधर्म प्रकट भये हैं। बहुरि जिनकै भावकर्मका अभाव भया तातें निराकुल आनन्दमय शुद्धस्वभावरूप परिणमन हो है। बहुरि जिनके ध्यानकरि भव्यजीवनिकै स्वद्रव्य परद्रव्यका अर औपाधिकभाव व स्वभाव भावनिका विज्ञान हो है, ताकरि तिन सिद्धनिके समान आप होनेका साधन हो है। तातें साधनेयोग्य जो अपना शुद्धस्वरूप ताके दिखावने को प्रतिबिम्ब समान हैं। बहुरि जो कृतकृत्य भये हैं तातें ऐसैं ही अनंत कालपर्यंत रहैं हैं, ऐसे निष्पन्न भये सिद्ध भगवान् तिनको हमारा नमस्कार होहु।

अब आचार्य उपाध्याय साधूनिका स्वरूप अवलोकिये हैं—

जे विरागी होइ समस्त परिग्रहकों त्यागि शुद्धोपयोगकरि मुनि-धर्म अंगीकार करि अंतरंगविषें तौ तिस शुद्धोपयोग करि आपकों आप अनुभवै हैं, परद्रव्यविषै अहंबुद्धि नाहीं धारै हैं। बहुरि अपने ज्ञानादिक स्वभावनिहीकों अपने मानै हैं। परभावनिविषैं ममत्व न करै हैं। बहुरि जे परद्रव्य वा तिनके स्वभाव ज्ञानविषैं प्रतिभासैं हैं तिनकों जानै तो हैं परन्तु इष्ट अनिष्ट मानि तिनविषैं रागद्वेष नाहीं करैं हैं। शरीरकी अनेक अवस्था हो हैं, बाह्य नाना निमित्त बनै हैं परन्तु तहां किछू भी सुख-दुःख मानते नाहीं। बहुरि अपने योग्य बाह्यक्रिया जैसे बनै है तैसे बनैं हैं, खेंचकरि तिनकों करते नाहीं। बहुरि अपने उप-योगकों बहुत नाहीं भ्रमावैं हैं। उदासीन होय निश्चल वृत्ति को धारैं हैं। बहुरि कदाचित् मंदरागके उदयतैं शुभोपयोग भी हो है तिसकरि

जे शुद्धोपयोग के बाह्य साधन हैं तिनविषैं अनुराग करैं हैं परन्तु तिस रागभावकों हेय जानकरि दूरिकिया चाहैं हैं। बहुरि तीव्र कषाय के उदय के अभावतैं हिंसादिरूप अशुभोपयोग परिणतिका तो अस्तित्व ही रह्या नाहीं। बहुरि ऐसी अंतरंग अवस्था होतैं बाह्य दिगम्बर सौम्यमुद्राके धारी भये हैं। शरीरका संवारना आदि विक्रियानिकरि रहित भये हैं। वनखंडादिविषैं बसैं हैं। अठाईस मूलगुणनिकों अखंडित पालैं हैं। बाईस परीसहनिकों सहैं हैं। बारह प्रकार तपनिकों आदरैं हैं। कदाचित् ध्यानमुद्राधारि प्रतिमावत् निश्चल हो हैं। कदाचित् अध्ययनादि बाह्य धर्मक्रियानिविषैं प्रवर्तें हैं। कदाचित् मुनिधर्म का सहकारी शरीरकी स्थितिके अर्थि योग्य आहार विहारादिक्रियानिविषैं सावधान हो हैं। ऐसे जैन मुनि हैं तिन सबनिको ऐसी ही अवस्था ही है।

आचार्यका स्वरूप

तिनिविषैं जे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्रकी अधिकता करि प्रधानपदकों पाय संघविषैं नायक भये हैं। बहुरि जे मुख्यपने तो निर्विकल्प स्वरूपाचरण विषैं ही मग्न हैं अर जो कदाचित् धर्मके लोभी अन्य जीवादिक तिनिकों देखि रागअंशके उदयतैं करुणाबुद्धि होय तो तिनिकों धर्मोपदेश देते हैं। जे दीक्षाग्राहक हैं तिनकों दीक्षा देते हैं, जे अपने दोष प्रगट करैं हैं तिनको प्रायश्चित विधिकरि शुद्ध करैं हैं। ऐसे आचरन अचरावनवाले आचार्य तिनको हमारा नमस्कार होहु।

उपाध्यायका स्वरूप

बहुरि जे बहुत जैन शास्त्रनिके ज्ञाता होय संघविषैं पठन-पाठनके अधिकारी भये हैं, बहुरि जे समस्त शास्त्रनिका प्रयोजनभूत अर्थ जानि एकाग्र होय अपने स्वरूपकों ध्यावैं हैं। अर जो कदाचित् कषाय अंश उदयतै तहाँ उपयोग नाहीं थंभै है तो तिन शास्त्रानिकों आप पढ़ैं हैं वा अन्य धर्मबुद्धीनिकों पढ़ावैं हैं। ऐसैं समीपवर्ती भव्यनिको अध्ययन करावनहारे उपाध्याय तिनिकों हमारा नमस्कार होहु।

साधुका स्वरूप

बहुरि इन दोय पदवीधारक बिना अन्य समस्त जे मुनिपद के धारक हैं बहुरि जे आत्मस्वभावको साधै हैं। जैसें अपना उपयोग परद्रव्यनिविषें इष्ट अनिष्टपनो मानि फँसै नाहीं वा भागै नाहीं तैसें उपयोगको सधावै हैं। बहुरि बाह्यतपकी साधनभूत तपश्चरण आदि क्रियानिविषै प्रवर्तै हैं या कदाचित भक्ति वन्दनादि कार्यनिविषें प्रवर्तें हैं। ऐसें आत्मस्वभावके साधक साधु हैं तिनकों हमारा नमस्कार होहु।

पूज्यत्वका कारण

ऐसें इन अरहंतादिकनिका स्वरूप है सो वीतराग विज्ञानमय तिसही करि अरहंतादिक स्तुति योग्य महान् भये हैं; जातें जीवतत्व-करि तौ सर्व ही जीव समान हैं परन्तु रागादिकविकारनिकरि वा ज्ञानकी हीनताकरि तौ जीव निन्दा योग्य हो हैं। बहुरि रागादिककी हीनताकरि वा ज्ञानकी विशेषताकरि स्तुति योग्य हो हैं। सो अरहंत सिद्धनिकै तौ सम्पूर्ण रागादिककी हीनता अर ज्ञानकी विशेषता होने करि सम्पूर्ण वीतरागविज्ञान भाव संभवै है अर आचार्य उपाध्याय साधुनिकैं एकोदेश रागादिककी हीनता अर ज्ञानकी विशेषताकरि एकोदेश वीतरागविज्ञान भाव संभवै है। तातें ते अरहंतादिक स्तुति योग्य महान जानने।

बहुरि ए अरहंतादि पद हैं तिन विषैं ऐसा जानना जो मुख्यपने तौ तीर्थंकरका अर गौणपने सर्वकेवलीका ग्रहण है, यहु पदका प्राकृत भाषाविषें अरहंत अर संस्कृतविषें अर्हत् ऐसा नाम जानना। बहुरि चौदवां गुणस्थानके अनंतर समयतें लगाय सिद्धनाम जानना। बहुरि जिनकों आचार्यपद भया होय ते संघविषें रहो वा एकाकी आत्मध्यान करो वा एकाविहारी होहु वा आचार्यनिविषें भी प्रधानताको पाय गणधरपदवीके धारक होहु, तिन सबनिका नाम आचार्य कहिये है। बहुरि पठन-पाठन तो अन्यमुनि भी करै हैं परन्तु जिनकै आचार्यनिकरि दिया उपाध्याय पद भया होय ते आत्मध्यानादिक कार्य करतें भी

उपाध्याय ही नाम पावै हैं। बहुरि जे पदवीधारक नाहीं ते सर्वमुनि साधुसंज्ञाके धारक जानने। इहाँ ऐसा नियम नाहीं है जो पंचाचारनि करि आचार्य पद हो है, पठनपाठनकरि उपाध्यायपद हो है, मूलगुण साधनकरि साधुपद हो है। जातैं ए तो क्रिया सर्वमुनिनकै साधारण हैं परन्तु शब्द नयकरि तिनका अक्षरार्थ तैसे करिये है। समभिरूढनय करि पदवीकी अपेक्षा ही आचार्यादिक नाम जानने। जैसें शब्द नयकरि गमन करै सो गऊ कहिये सो गमन तौ मनुष्यादिक भी करै हैं परन्तु समभिरूढनयकरि पर्याय अपेक्षा नाम है, तैसें ही यहाँ समझना।

इहाँ सिद्धनिके पहिले अरहंतनिकों नमस्कार किया सो कौन कारण? ऐसा सन्देह उपजै है। ताका समाधान—

नमस्कार करिये है सो अपने प्रयोजन साधनेकी अपेक्षा करिये है, सो अरहंतनितैं उपदेशादिकका प्रयोजन विशेष सिद्ध हो है तातैं पहिले नमस्कार किया। या प्रकार अरहंतादिकनिका स्वरूप चिंतवन किया। जातैं स्वरूप चिंतवन किये विशेष कार्य सिद्ध हो है। बहुरि इन अरहंतादिकनिका पंचपरमेष्ठी कहिये है। जातैं जो सर्वोत्कृष्ट इष्ट होय ताका नाम परमेष्ठी है। पंच जे परमेष्ठी तिनिका समाहार समुदाय ताका नाम पंचपरमेष्ठी जानना। बहुरि रिषभ, अजित, संभव अभिनन्दन, सुमति, पद्मप्रभ, सुपार्श्व, चन्द्रप्रभ, पुष्पदन्त, शीतल, श्रेयांस, वासुपूज्य, विमल, अनन्त, धर्म, शांति, कुन्थु, अर, मल्लि, मुनिसुव्रत, नमि, नेमि, पार्श्व, वर्द्धमान, नामधारक चौबीस तीर्थंकर इस भरतक्षेत्रविषैं वर्त्तमान धर्मतीर्थके नायक भये, गर्भ जन्म तप ज्ञान निर्वाण कल्याणकनिविषै इन्द्रादिकनिकरि विशेष पूज्य होइ अब सिद्धालयविषैं विराजै हैं तिनको हमारा नमस्कार होहु। बहुरि सीमंधर, युगमंधर, बाहु, सुबाहु, संजातक, स्वयंप्रभ, वृषभानन, अनंतवीर्य, सूरप्रभ, विशालकीर्ति, वज्रधर, चन्द्रानन, चन्द्रबाहु, भुजंगम, ईश्वर, नेमिप्रभ, वीरसेन, महाभद्र, देवयश, अजितवीर्य नामधारक

बीसतीर्थंकर पंचमेरु सम्बन्धी विदेहक्षेत्रनिविषैं अबार केवलज्ञानसहित विराजमान हैं तिनकों हमारा नमस्कार होहु। यद्यपि परमेष्ठी पदविषैं इनका गर्भितपना है तथापि विद्यमान कालविषैं इनकों विशेष जानि जुदा नमस्कार किया है।

बहुरि त्रिलोकविषैं जे अकृत्रिम जिनबिम्ब विराजै हैं, मध्य-लोकविषैं बिधिपूर्वक कृत्रिम जिनबिम्ब विराजै हैं, जिनके दर्शनादिकतैं स्वपरभेद विज्ञान होय है, कषाय मन्द होय शान्तभाव हो है वा एक धर्मोपदेश बिना अन्य अपने हितकी सिद्धि जैसे तीर्थंकर केवलीके दर्शनोपदेशादिकतैं होय तैसे ही हो है, तिन जिनबिम्बनिकों हमारा नमस्कार होहु। बहुरि केवलीकी दिव्यध्वनिकरि दिया उपदेश ताके अनुसार गणधरकरि रचित अंगप्रकीर्णक तिनके अनुसारि अन्यआचार्यादिकनिकरि रचे ग्रन्थादिक हैं, ऐसें ये सर्व जिनवचन हैं, स्याद्वादचिह्न-करि पहचानने योग्य हैं, न्यायमार्गतैं अविरुद्ध हैं तातैं प्रमाणीक हैं, जीवनिकौं तत्वज्ञान के कारण हैं तातैं उपकारी हैं, तिनकों हमारा नमस्कार होहु।

बहुरि चैत्यालय, आर्यिका, उत्कृष्ट श्रावक आदि द्रव्य अर तीर्थक्षेत्रादि क्षेत्र अर कल्याणककाल आदि काल, रत्नत्रय आदि भाव, जे मुझकरि नमस्कार करने योग्य हैं तिनकों नमस्कार करूँ हूं अर जे किंचित् विनय करने योग्य हैं तिनका यथा योग्य विनय करूँ हूं। ऐसें अपने इष्टनिका सन्मानकरि मंगल किया है। अब ये अरहंतादिक इष्ट कैसें हैं सो विचार करिये हैं—

जाकरि सुख उपजै वा दुःखविनशै तिस कार्य का नाम प्रयोजन है। बहुरि तिस प्रयोजनकी जाकरि सिद्धि होय सो ही अपना इष्ट है। सो हमारै इस अवसरविषैं वीतरागविशेष ज्ञानका होना सो ही प्रयोजन है, जातैं याकरि निराकुल सांचे सुख की प्राप्ति हो है अर सर्व आकुलतारूप दुःखका नाश हो है। बहुरि इस प्रयोजनकी सिद्धि अरहंतादिकनिकरि हो है। कैसें सो विचारिए है—

अरहन्तादिकोंसे प्रयोजनसिद्धि

आत्माके परिणाम तीन प्रकारके हैं—संक्लेश, विशुद्ध, शुद्ध। तहाँ तीव्र कषायरूप संक्लेश हैं, मंदकषायरूप विशुद्ध हैं, कषाय रहित शुद्ध हैं। तहाँ वीतरागविशेष ज्ञानरूप अपने स्वभाव के घातक जो हैं, ज्ञानावरणादि घातियाकर्म, तिनिका संक्लेश परिणाम करि तौ तीव्र-बन्ध हो है अर विशुद्ध परिणामकरि मन्दबन्ध हो है वा विशुद्ध परिणाम प्रबल होय तो पूर्वे जो तीव्रबन्ध भया था ताको भी मन्द करै है अर शुद्ध परिणामकरि बन्ध न हो है, केवल तिनकी निर्जरा ही हो है। सो अरहंतादिविषैं स्तवनादि रूप भाव हो है सो कषायनिकी मन्दता लिए हो है तातैं विशुद्ध परिणाम है। बहुरि समस्त कषाय—मिटावनेका साधन है, तातैं शुद्ध परिणाम का कारण है सो ऐसे परिणाम करि अपना घातक घातिकर्मका हीनपनाके होनेतैं सहज ही वीतराग विशेषज्ञान प्रगट हो है जितने अंशनिकरि वह हीन होय तितने अंशनिकरि यह प्रगट होइ है। ऐसैं अरहंतादिक करि अपना प्रयोजन सिद्ध हो है। अथवा अरहंतादिकका आकार अवलोकना वा स्वरूप विचार करना वा वचन सुनना वा निकटवर्ती होना व तिनके अनुसार प्रवर्तना इत्यादि कार्य तत्काल ही निमित्तभूत होय रागादि-कनिकों हीन करै है। जीव अजीवादिकका विशेषज्ञानको उपजावै है तातैं ऐसे भी अरहंतादिक करि वीतराग विशेषज्ञानरूप प्रयोजनकी सिद्धि हो है।

इहाँ कोऊ कहै कि इनकरि ऐसे प्रयोजनकी तौ सिद्धी ऐसैं हो है परन्तु जाकरि इन्द्रियजनित सुख उपजै, दुःख विनशै ऐसे भी प्रयोजन की सिद्धि इनि करि हो है कि नाहीं। ताका समाधान—

जो अरहंतादि विषैं स्तवनादिरूप विशुद्ध परिणाम हो है ताकरि अघातिया कर्मनिकी साता आदि पुण्यप्रकृतिनिका बंध हो है। बहुरि जो वह परिणाम तीव्र होय तो पूर्वें असाताआदि पापप्रकृति बन्धी थीं तिनकों भी मन्द करै है अथवा नष्टकरि पुण्यप्रकृतिरूप परिणमावै है।

बहुरि तिस पुण्यका उदय होतैं स्वयमेव इन्द्रियसुखकों कारणभूत सामग्री मिलै है अर पापका उदय दूर होतैं स्वयमेव दुःखकों कारणभूत सामग्री दूर हो है। ऐसैं इस प्रयोजनकी भी सिद्धि तिनकरि हो है। अथवा जिनशासन के भक्त देवादिक हैं ते तिन भक्त पुरुषकै अनेक इन्द्रियसुखकों कारणभूत सामग्रीनिका संयोग करावै हैं दुःखकों कारणभूत सामग्रीनिकों दूरि करै हैं। ऐसैं भी इस प्रयोजनकी सिद्धि तिन अरहंतादिकनि करि हो है। परन्तु इस प्रयोजनतें किछू अपना भी हित नाहीं तातैं यहु आत्मा कषायभावनितैं बाह्य सामग्रीविषैं इष्ट-अनिष्टपनो मानि आप ही सुखदुःखकी कल्पना करै है। विना कषाय बाह्य सामग्री किछु सुखदुःखकी दाता नाहीं। बहुरि कषाय है सो सब आकुलतामय है तातैं इन्द्रियजनितसुखकी इच्छा करनी दुःखतैं डरना सो यह भ्रम है। बहुरि इस प्रयोजनके अर्थि अरहंतादिकको भक्ति किएं भी तीव्रकषाय होनेकरि पापबन्ध ही हो है तातैं ऐसे प्रयोजनका अर्थि होना योग्य नाहीं। जातैं अरहंतादिककी भक्ति करतैं ऐसे प्रयोंजन तौ स्वयमेव ही सधै हैं।

ऐसैं अरहंतादिक परम इष्ट मानने योग्य हैं। बहुरि ए अरहंतादिक ही परममंगल हैं। इन विषैं भक्तिभाव भये परममंगल हो है। जातैं 'मंग' कहिये सुख ताहि 'लाति' कहिये देवै अथवा 'म' कहिये पाप ताहि 'गालयति' कहिये गालै ताका नाम मंगल है सो तिनकरि पूर्वोक्त प्रकार दोऊ कार्यनिकी सिद्धी हो है। तातैं तिनके परममंगलपना सम्भवै है।

मंगलाचरण करने का कारण

इहां कोऊ पूछै कि प्रथम ग्रन्थकी आदि विषैं ही मंगल किया सो कौन कारण ? ताका उत्तर—

जो सुखस्यौं ग्रन्थकी समाप्ति होइ, पापकरि कोऊ विघ्न न होय, या कारणतैं यहां प्रथम मंगल किया है।

इहां तर्क—जो अन्यमती ऐसैं मंगल नाहीं करैं हैं तिनके भी

ग्रन्थकी समाप्तता अर विघ्नका नाश होता देखिये है तहाँ कहा हेतु है ? ताका समाधान—

जो अन्यमती ग्रन्थ करै हैं तिसविषैं मोहके तीव्र उदयकरि मिथ्यात्व कषाय भावनिको पोषते विपरीत अर्थनिकों धरैं हैं तातैं ताको निर्विघ्न समाप्तता तौ ऐसैं मंगल किये बिना होइ। जो ऐसे मंगल-निकरि मोह मन्द हो जाय तौ वैसा विपरीत कार्य कैसे बनै ? बहुरि हम यहु ग्रन्थ करैं हैं तिस विषैं मोहकी मंदता करि वीतराग तत्वज्ञानकों पोषते अर्थनिको धरेंगे ताकी निर्विघ्न समाप्तता ऐसैं मगल किये ही होय। जो ऐसैं मंगल न करै तौ मोहका तीव्रपना रहै तब ऐसा उत्तम काय कैसे बनै ? बहुरि वह कहै जा ऐसें तौ मानेंगे परन्तु कोऊ ऐसा मंगल न करै ताकै भी सुख देखिए है, पापका उदय न देखिये है अर कोऊ ऐसा मंगल करै है ताकै भी सुख न देखिये है, पापका उदय देखिये है तातैं पूर्वोक्त मंगलपना कैसें बनै ? ताकौं कहिये है—

जो जीवनिकै संक्लेश विशुद्ध परिणाम अनेक जातिके हैं तिनकरि अनेक कालनिविषैं पूर्वै बधे कर्म एक कालविषै उदय आवैं हैं। तातैं जाकै पूर्वें बहुत धनका सचय होय ताकै विना कुमाए भी धन देखिए है अर देणा न देखिए है। अर जाके पूर्वे ऋण बहुत होय ताकै धन कुमावतैं भो देणा देखिये अर धन न देखिए है। परन्तु विचार किए, तै कुमावना धन होने ही का कारण है, ऋणका कारण नाहीं। तैसैं ही जाकै पूर्वैं बहुत पुण्य बंध्या होइ ताकै इहाँ ऐसा मंगल बिना किए भी सुख देखिए है, पापका उदय न देखिए है। बहुरि जाकै पूर्वै बहुत पाप बंध्या होय ताकै इहां ऐसा मंगल किये भी सुख न देखिए है, पापका उदय देखिए है। परन्तु विचार किएतैं ऐसा मंगल तौ सुखका ही कारण है, पाप उदयका कारण नाहीं। ऐसैं पूर्वोक्त मंगलका मंगल-पना बनै है।

बहुरि वह कहै है कि यह भी मानी परन्तु जिनशासनके भक्त देवादिक हैं तिनिमें तिस मंगल करनेवालेकी सहायता न करी अर

मंगल न करनेवालेको दंड न दिया तो कौन कारण ? ताका समाधान—

जो जीवनकै सुख दुख होनेका प्रबल कारण अपना कर्मका उदय है ताहीके अनुसारि बाह्य निमित्त बनै हैं, तातैं जाकै पापका उदय होइ ताकै सहायताका निमित्त न बनै हैं अर जाकै पुण्यका उदय होइ ताकै दंडका निमित्त न बनै है। यह निमित्त कैसे न बनै है सो कहिये है—

जे देवादिक हैं ते क्षयोपशम ज्ञानतैं सर्वकों युगपत् जानि सकते नाहीं, तातैं मंगल करनेवाले वा न करनेवालेका जानपना किसो देवादिकके काहू कालविषैं ही है। तातैं जो तिनिका जानपना न होइ तो कैसें सहाय करैं वा दंड दे। अर जानपना होय तब आपके जो अति मंदकषाय होइ तो सहाय करनेके वा दंड देनेके परिणाम हो न होंइ। अर तीव्रकषाय होइ तो धर्मानुराग होइ सकै नाहीं। बहुरि मध्यम कषायरूप तिस कार्य करनेके परिणाम भये अर अपनी शक्ति नाहीं तो कहा करैं। ऐसैं सहाय करने वा दंड देनेका निमित्त नाहीं बनै है। जो अपनी शक्ति होय अर आपके धर्मानुरागरूप मध्यमकषायका उदयतैं तैसे ही परिणाम होइ अर तिस समय अन्य जीवका धर्म अधर्मरूप कर्तव्य जाने, तब कोई देवादिक किसी धर्मात्माको सहाय करैं वा किसी अधर्मीको दंड दे है। ऐसैं कार्य होनेका किछू नियम तो है नाहीं, ऐसैं समाधान किया। इहां इतना जानना कि सुख होनेकी, दुख न होनेकी, सहाय करानेकी, दुख आवनेकी जो इच्छा है सो कषायमय है, तत्काल विषैं वा आगामी काल विषैं दुखदायक है। तातैं ऐसी इच्छा कूं छोरि हम तौ एक वीतराग विशेष ज्ञान होनेके अर्थी होइ अरहंतादिककों नमस्कारादिरूप मंगल किया है। ऐसैं मंगलाचरण करि अब सार्थक मोक्षमार्ग प्रकाशकनाम ग्रंथका उद्योत करैं हैं। यहु ग्रन्थ प्रमाण है ऐसी प्रतीति आवनेके अर्थि पूर्व अनुसारका स्वरूप निरूपिए है—

ग्रन्थकी प्रामाणिकता और आगम परम्परा

अकारादि अक्षर हैं ते अनादिनिधन हैं, काहूके किए नाहीं, इनिका आकार लिखना तो अपनी इच्छाके अनुसार अनेक प्रकार है परन्तु बोलने में आवें हैं ते अक्षर तो सर्वत्र सर्वदा ऐसैंही प्रवर्तें हैं सोई कह्या है—'सिद्धो वर्णसमाम्नायः'। याका अर्थ यहु—जो अक्षरनिका सम्प्रदाय है सो स्वयंसिद्ध है। बहुरि तिन अक्षरनिकरि निपजे सत्यार्थ के प्रकाशक पद तिनके समूहका नाम श्रुत है सो भी अनादि निधन है। जैसें 'जीव' ऐसा अनादिनिधन पद है सो जीवका जनावनहारा है। ऐसें अपने अपने सत्य अर्थके प्रकाशक अनेक पद तिनका जो समुदाय सो श्रुत जानना। बहुरि जैसें मोती तो स्वयंसिद्ध है तिन विषें कोऊ थोरे मोतीनिकों, कोऊ घने मोतीनिकों, कोऊ किसी प्रकार कोऊ किसी प्रकार गूंथिकरि गहना बनावै हैं तैसें पद तो स्वयंसिद्ध हैं तिन विषें कोऊ थोरे पदनिकों, कोऊ घने पदनिकों, कोऊ किसी प्रकार कोऊ किसी प्रकार गूंथि ग्रन्थ बनावै हैं। यहाँ मैं भी तिन सत्यार्थ पद-निकों मेरी बुद्धि अनुसारि गूंथि* ग्रन्थ बनाऊँ हूं सो मेरी मति करि कल्पित झूठे अर्थके सूचक पद या विषें नाहीं गूंथूं हूं। तातें यह ग्रन्थ प्रमाण जानना।

इहाँ प्रश्न—जो तिन पदनिकी परम्परा इस ग्रन्थ पर्यन्त कैसें प्रवर्तें हैं? ताका समाधान—

अनादितें तीर्थंकर केवली होते आये हैं तिनिके सर्वका ज्ञान हो तातैं तिन पदनिका वा तिनके अर्थनिका भी ज्ञान हो है। बहुरि तिन तीर्थंकर केवलीनिका जाकरि अन्य जीवनिकै पदनिके अर्थनिका ज्ञान होय ऐसा दिव्यध्वनि करि उपदेश हो है। ताके अनुसारि गणधरदेव अंग प्रकीर्णकरूप ग्रन्थ गूथें हैं। बहुरि तिनके अनुसारि अन्य अन्य आचार्यादिक नाना प्रकार ग्रन्थादिक की रचना करें हैं। तिनिकों केई अभ्यासें हैं, केई कहै हैं, केई सुनें हैं, ऐसा परम्परातें मार्ग चल्या आवै है।

---

* जोड़करि या लिखकरि।

सो अब इस भरतक्षेत्र विषैं वर्तमान अवसर्पिणी काल है, तिस-विषैं चौबीस तीर्थंकर भए, तिनि विषैं श्रीवर्द्धमान नामा अन्तिम तीर्थ-कर देव भये। सो केवलज्ञान विराजमान होइ जीवनिकों दिव्यध्वनि करि उपदेश देते भये। ताके सुननेका निमित्त पाय गौतम नामा गण-धर अगम्य अर्थनिकों भी जानि धर्मानुरागके वशतैं अंगप्रकीर्णकनि की रचना करते भये। बहुरि वर्द्धमान स्वामी तौ मुक्त गए, तहां पीछैं इस पंचम कालविषैं तीन केवली भए, गौतम १, सुधर्माचार्य २, जम्बू-स्वामी ३, तहां पीछैं कालदोषतैं केवलज्ञानी होनेका तो अभाव भया। बहुरि केतेक काल ताईं द्वादशांग के पाठी श्रुतकेवली रहे, पीछैं तिनका भी अभाव भया। बहुरि केतेक कालताईं थोरे अंगनिके पाठी रहे (तिनने यह जानकर जो भविष्य कालमें हम सारिखे भी ज्ञानी न रहेंगे, तातैं ग्रन्थ रचना आरम्भ करी और द्वादशांगानुकूल प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोगके ग्रन्थ रचे।*) पीछैं तिनका भी अभाव भया। तब आचार्यादिकनिकरि तिनिके अनुसारि बनाए ग्रन्थ वा अनुसारी ग्रन्थनिके अनुसारि बनाए ग्रन्थ तिनहीकी प्रवृत्ति रही। तिनविषैं भी काल दोषतैं दुष्टनिकरि कितेक ग्रन्थनि की व्युच्छिति भई वा महान् ग्रन्थनिका अभ्यासादि न होनेतैं व्युच्छति भई। बहुरि केतेक महान् ग्रन्थ पाइए हैं तिनका बुद्धिकी मंदतातैं अभ्यास होता नाहीं। जैसैं दक्षिण में गोमट्टस्वामीके निकट मूड़बिद्री नगरविषैं धवल महाधवल जयधवल पाइए हैं परन्तु दर्शनमात्र ही हैं। बहुरि कितेक ग्रन्थ अपनी बुद्धिकरि अभ्यास करने योग्य पाइए हैं। तिन विषैं भी कितेक ग्रन्थनिका ही अभ्यास बनै है। ऐसैं इस निकृष्ट काल विषैं उत्कृष्ट जैनमतका घटना तो भया परन्तु इस परम्पराकरि अब भी जैन शास्त्रविषैं सत्य अर्थके प्रकाशनहारे पदनिका सद्भाव प्रवर्तै है।

---

* यह पंक्तियां खरडा प्रति में नहीं हैं, अन्य सब प्रतियों में हैं। इसीसे आवश्यक जानि दे दी गई हैं।

ग्रन्थकारका आगमाभ्यास और ग्रन्थ रचना

बहुरि हम इस काल विषें यहां अब मनुष्यपर्याय पाया सो इस विषें हमारे पूर्व संस्कारतें वा भला होनहारतें जैनशास्त्रनिविषैं अभ्यास करनेका उद्यम होता भया। तातैं व्याकरण, न्याय, गणित आदि उपयोगी ग्रन्थनिका किंचित् अभ्यास करि टीकासहित समयसार, पंचास्तिकाय, प्रवचनसार, नियमसार, गोमट्टसार, लब्धिसार, त्रिलोकसार, तत्त्वार्थसूत्र इत्यादि शास्त्र अर क्षपणासार, पुरुषार्थसिद्ध्युपाय, अष्टपाहुड, आत्मानुशासन आदि शास्त्र अर श्रावक मुनिका आचारके प्ररूपक अनेक शास्त्र अर सुष्ठुकथासहित पुराणादि शास्त्र इत्यादि अनेक शास्त्र हैं तिन विषैं हमारे बुद्धि अनुसार अभ्यास वर्ते है। तिस करि हमारै हू किंचित् सत्यार्थ पदनिका ज्ञान भया है। बहुरि इस निकृष्ट समय विषें हम सारिखे मंद बुद्धीनितैं भी हीन बुद्धिके धनी घने जन अवलोकिए हैं। तिनकौं तिन पदनिका अर्थज्ञान होनेके अर्थि धर्मानुरागके वशतै देशभाषामय ग्रन्थ करने को हमारै इच्छा भई। ताकरि हम यहु ग्रन्थ बनावें हैं सो इस विषै भी अर्थसहित तिनही पदनिका प्रकाशन ही है। इतना तो विशेष है जैसे प्राकृत संस्कृत शास्त्रनिविषै प्राकृत संस्कृत पद लिखिए हैं तैसे इहां अपभ्रंश लिये वा यथार्थपनाकों लिए देश भाषारूप पद लिखिए हैं परन्तु अर्थविषै व्यभिचार किछू नाहीं है। ऐसै इस ग्रन्थपर्यन्त तिन सत्यार्थपदनिकी परम्परा प्रवर्तै हैं।

इहां कोऊ पूछै कि परम्परा तो हम ऐसै जानी परन्तु इस परम्पराविषै सत्यार्थ पदनिहीकी रचना होती आई, असत्यार्थ पद न मिले ऐसी प्रतीति हमकों कैसै होय। ताका समाधान—

असत्यपद रचना का प्रतिषेध

असत्यार्थ पदनिकी रचना अति तीव्र कषाय भए बिना बनै नाहीं, जातै जिस असत्य रचनाकरि परम्परा अनेक जीवनिका महा बुरा होय, आपकों ऐसी महा हिंसाका फलकरि नर्क निगोदविषै गमन

करना होय सो ऐसा महाविपरीत कार्य तो क्रोध मान माया लोभ अत्यन्त तीव्र भए ही होय। सो जैनधर्मविषै तो ऐसा कषायवान् होता नाहीं। प्रथम मूल उपदेशदाता तो तीर्थंकर भये सो तो सर्वथा मोहके नाशतै सर्व कषायनि करि रहित ही हैं। बहुरि ग्रन्थकर्ता गणधर वा आचार्य ते मोहका मन्द उदयकरि सर्व बाह्य अभ्यन्तर परिग्रहकों त्यागि महा मन्दकषायी भए हैं, तिनिके तिस मंदकषायकरि किंचित् शुभोपयोगहीकी प्रवृत्ति पाइए है सो भी तीव्रकषायी नाहीं हैं, जो वाकै तीव्रकषाय होय तो सर्वकषायनिका जिस तिस प्रकार नाश करणहारा जो जिनधर्म तिस विषै रुचि कैसै होइ अथवा जो मोहके उदयतें अन्य कार्यनिकरि कषाय पोषै हैं तो पोषो परन्तु जिनआज्ञा भंगकरि अपनी कषाय पोषै तो जैनीपना रहता नाहीं, ऐसें जिनधर्म्मविषै ऐसा तीव्र-कषायी कोऊ होता नाहीं जो असत्य पदनिको रचनाकरि परका अर अपना पर्यायविषै बुरा करै।

इहां प्रश्न—जो कोऊ जैनाभास तीव्रकषायी होय असत्यार्थ पदनिको जंनशास्त्रनिविषै मिलावै, पीछै ताकी परम्परा चलि जाय तो कहा करिये ?

ताका समाधान—जैसैं कोऊ सांचे मोतिनके गहनेविषै झूठे मोती मिलावै परन्तु झलक मिले नाहीं तातै परीक्षाकरि पारखी ठिगावता भी नाहीं, कोई भोला होय सो ही मोती दामकरि ठिगावे है। बहुरि ताकी परम्परा भी चालै नाहीं, शीघ्र ही कोई झूंठे मोतिनिका निषेध करै है। तैसें कोऊ सत्यार्थ पदनिके समूहरूप जैनशास्त्रनिविषें असत्यार्थ पद मिलावै परन्तु जैनशास्त्रके पदनिविषै तो कषाय मिटावनेका वा लौकिक कार्य घटानेका प्रयोजन है अर उस पापीने जे असत्यार्थ पद मिलाये हैं तिन विषैं कषाय पोषनेका वा लौकिक कार्य साधनेका प्रयोजन है, ऐसें प्रयोजन मिलता नाहीं, तातें परीक्षाकरि ज्ञानी ठिगावते भी नाहीं, कोई मूर्ख होय सो ही जैनशास्त्र नामकरि ठिगावै हैं। बहुरि वाकी परम्परा भी चालै नाहीं, शीघ्र ही कोऊ तिन असत्यार्थ पदनि का निषेध करै है। बहुरि ऐसे तीव्रकषायी जैनाभास

इहाँ इस निकृष्ट कालविषें हो हैं, उत्कृष्ट क्षेत्रकाल बहुत हैं, तिस विषैं तो ऐसे होते नाहीं। तातैं जैन शास्त्रनि विषें असत्यार्थ पदनिकी परम्परा चालै नाहीं, ऐसा निश्चय करना।

बहुरि वह कहै कि कषायनिकरि तो असत्यार्थ पद न मिलावै परन्तु ग्रन्थ करनेवालेकै क्षयोपशमज्ञान है तातैं कोई अन्यथा अर्थ भासै ताकरि असत्यार्थ पद मिलावै ताकी तो परम्परा चलै ?

ताका समाधान –

मूल ग्रन्थकर्ता तौ गणधरदेव हैं ते आप च्यार ज्ञानके धारक हैं अर साक्षात् केवलीका दिव्यध्वनि उपदेश सुनै हैं ताका अतिशयकरि सत्यार्थ ही भासै है। अर ताहीके अनुसार ग्रन्थ बनावें हैं। सो उन ग्रन्थनिविषें तो असत्यार्थ पद कैसें गूंथे जांय अर अन्य आचार्यादि ग्रन्थ बनावै हैं ते भी यथायोग्य सम्यग्ज्ञानके धारक हैं। बहुरि ते तिन मूलग्रन्थनिकी परंपराकरि ग्रन्थ बनावै हैं। बहुरि जिन पदनिका आपकों ज्ञान न होइ तिनकी तो आप रचना करै नाहीं अर जिन पदनिका ज्ञान होइ तिनकों सम्यग्ज्ञान प्रमाणतैं ठीक करि गूंथै हैं सो प्रथम तो ऐसी सावधानी विषैं असत्यार्थ पद गूंथे जांय नाहीं अर कदाचित् आपको पूर्व ग्रन्थनिके पदनिका अर्थ अन्यथा ही भासै अर अपनी प्रमाणतामें भी तैसें ही आजाय तो याका किछू सारा* नाहीं परन्तु ऐसें कोईकों भासै सबहीको तौ न भासै। तातैं जिनको सत्यार्थ भास्या होय ते ताका निषेधकरि परम्परा चलने देते नाहीं। बहुरि इतना जानना-जिनकों अन्यथा जाने जीवका बुरा होय ऐसा देव गुरु धर्मादिक वा जीवादिक तत्वनिकों तो श्रद्धानी जैनी अन्यथा जानै ही नाही, इनिका तो जैनशास्त्रनिविषैं प्रसिद्ध कथन है अर जिनकों भ्रमकरि अन्यथा जाने भी जिन आज्ञा माननेतैं जीवका बुरा न होइ, ऐसें कोई सूक्ष्म अर्थ है तिन विषें किसीकों कोई अर्थ अन्यथा प्रमाणतामें ल्यावै तो भी ताका विशेष नाहीं सो-गोमट्टसारविषैं कह्या है—

* बस नाहीं।

सम्माइट्ठी जीवो उवइट्ठं पवयणं तु सद्दहदि ।
सद्दहदि असब्भावं अजाणमाणो गुरुणियोगा ॥१॥

याका अर्थ—सम्यग्दृष्टी जीव उपदेश्या सत्यवचनकों श्रद्धान करै है अर अजाणमाण गुरुके नियोग तैं असत्यकों भी श्रद्धान करै है, ऐसा कह्या है। बहुरि हमारै भी विशेष ज्ञान नाहीं है अर जिनआज्ञा भंग करनेका बहुत भय है परन्तु इस ही विचारके बलतें ग्रन्थ करनेका साहस करै हैं सो इस ग्रन्थ विषैं जैसें पूर्व ग्रन्थनिमें वर्णन है। तैसें ही वर्णन करेंगे। अथवा कहीं पूर्व ग्रन्थनिविषैं सामान्य गूढ़ वर्णन था ताका विशेष प्रगट करि इहाँ वर्णन करेंगे। सो ऐसें वर्णन करने-विषैं मैं तो बहुत सावधानी राखूंगा अर सावधानी करते भी कहीं सूक्ष्म अर्थका अन्यथा वर्णन होय जाय तो विशेष बुद्धिमान होइ सो संवारकरि शुद्ध करियो यह मेरी प्रार्थना है। ऐसें शास्त्र करनेका निश्चय किया है। अब इहाँ कैसे शास्त्र बांचने सुनने योग्य हैं अर तिन शास्त्रनिके वक्ता श्रोता कैसे चाहिएं सो वर्णन करिये है।

बांचने सुनने योग्य शास्त्र

जे शास्त्र मोक्षमार्गका प्रकाश करैं हैं तेई शास्त्र बांचने सुनने योग्य हैं जातैं जीव संसारविषैं नाना दुःखनिकरि पीड़ित हैं सो शास्त्ररूपी दीपककरि मोक्षमार्गको पावैं तो उस मार्गविषैं आप गमन-करि उन दुःखनितैं मुक्त होय। सो मोक्षमार्ग एक वीतराग भाव है, तातैं जिन शास्त्रनिविषैं काहूप्रकार राग-द्वेष-मोह भावनिका निषेध करि वीतराग भावका प्रयोजन प्रकट किया होय तिनही शास्त्रनिका बांचना सुनना उचित है। बहुरि जिनशास्त्रनिविषैं शृंगार भोग कोतूहलादिक पोषि रागभावका अर हिंसा-युद्धादिक पोषि द्वेषभावका अर अतत्व श्रद्धान पोषि मोहभावका प्रयोजन प्रगट किया होय ते शास्त्र नाहीं शस्त्र हैं। जातैं जिन राग-द्वेष-मोह भावनिकरि जीव अनादितैं दुःखी भया तिनकी वासना जीवके बिना सिखाई ही थी।

बहुरि इन शास्त्रनि करि तिनहीका पोषण किया, भले होनेको कहा शिक्षा दीनी ? जीवका स्वभाव घात ही किया तातैं ऐसे शास्त्रनिका वांचना सुनना उचित नाहीं है। इहाँ वांचना सुनना जैसें कह्या तैसें ही जोड़ना, सीखना, सिखावना लिखना, लिखावना आदि कार्य भी उपलक्षणकरि जान लेना। ऐसे साक्षात् वा परम्पराकरि वीतरागभावकों पोषैं ऐसे शास्त्रहीका अभ्यास करना योग्य है।

वक्ता का स्वरूप

अब इनके वक्ताका स्वरूप कहिये है। प्रथम तो वक्ता कैसा होना चाहिए, जो जैन श्रद्धानविषैं दृढ़ होय, जातैं जो आप अश्रद्धानी होय तो औरकों श्रद्धानी कैसें करै ? श्रोता तो आपहीतैं हीनबुद्धिके धारक हैं तिनकों कोऊ युक्तिकरि श्रद्धानी कैसें करै ? अर श्रद्धान ही सर्व धर्मका मूल है। बहुरि वक्ता कैसा चाहिए, जाकैं विद्याभ्यास करनेतैं शास्त्र वांचनेयोग्य बुद्धि प्रगट भई होय, जातैं ऐसी शक्ति विना वक्तापनेका अधिकारी कैसे होय। बहुरि वक्ता कैसा चाहिए, जो सम्यग्ज्ञानकरि सर्व प्रकारके व्यवहार निश्चयादिरूप व्याख्यानका अभिप्राय पहचानता होय, जातैं जो ऐसा न होय तो कहीं अन्य प्रयोजन लिए व्याख्यान होय ताका अन्य प्रयोजन प्रगटकरि विपरीत प्रवृत्ति करावै। बहुरि वक्ता कैसा चाहिए, जाकै जिनआज्ञा भंग करनेका बहुत भय होय, जातैं जो ऐसा न होय तो कोई अभिप्राय विचारि सूत्र-विरुद्ध उपदेश देय जीवनिका बुरा करै। सो ही कह्या है—

बहु गुण विज्जाणिलयो असुत्तभासी तहावि मुत्तव्वो।
जह वरमणिजुत्तो वि हु विग्घयरो विसहरो लोए ॥१॥

याका अर्थ—जो बहुत क्षमादिक गुण अर व्याकरण आदि विद्याका स्थान है तथापि उत्सूत्रभाषी है तो छोड़ने योग्य ही है। जैसें उत्कृष्टमणिसंयुक्त है तो भी सर्प है सो लोकविषैं विघ्नका ही करणहारा है। बहुरि वक्ता कैसा चाहिए, जाकै शास्त्र वांचि आजीविका आदि लौकिक कार्य साधनेको इच्छा न होय, जातैं जो आशावान्

होइ तो यथार्थ उपदेश देइ सकै नाहीं, वाकै तौ किछू श्रोतानिका अभिप्रायके अनुसार व्याख्यानकर अपने प्रयोजन साधनेका ही साधन रहै अर श्रोतानितैं वक्ता का पद ऊंचा है परन्तु यदि वक्ता लोभी होय तो वक्ता आप ही हीन हो जाय, श्रोता ऊँचा होय। बहुरि वक्ता कैसा चाहिए, जाकं तीव्र क्रोध मान न होय, जातें तीव्र क्रोधी मानी को निंदा होय, श्रोता तिसतें डरते रहैं, तिसतैं अपना हित कैसे करैं। बहुरि वक्ता कैसा चाहिए, जो आप ही नाना प्रश्न उठाय आप ही उत्तर करै अथवा अन्य जीव अनेक प्रकारकरि बहुत बार प्रश्न करैं तो मिष्टवचननिकरि जैसैं उनका सन्देह दूरि होय तैसैं समाधान करैं। जो आपके उत्तर देनेकी सामर्थ्य न होय तो या कहै, याका मोकों ज्ञान नाहीं. किसी विशेष ज्ञानीसे पूछकर तिहारे ताईं उत्तर दूंगा अथवा कोई समय पाय विशेष ज्ञानी तुमसों मिलै तो पूछकर अपना सन्देह दूर करना और मोकूं बताय देना। जातैं ऐसा न होय तो अभिमानके वशतैं अपनी पण्डिताई जनावनेकों प्रकरण विरुद्ध अर्थ उपदेशै, तातैं श्रोतानका विरुद्ध श्रद्धान करनेतैं बुरा होय, जैनधर्मकी निंदा होय। जातैं जो ऐसा न होइ तो श्रोताओंका सन्देह दूर न होइ तब कल्याण कैसैं होइ अर जिनमतकी प्रभावना होय सके नाहीं। बहुरि वक्ता कैसा चाहिए, जाकै अनीतिरूप लोकनिंद्य कार्यनिको प्रवृत्ति न होय, जातै लोकनिंद्य कार्यनिकरि हास्यका स्थान होय जाय तब ताका वचन कौन प्रमाण कर, जिनधर्मको लजावै। बहुरि वक्ता कैसा चाहिए, जाका कुल हीन न होय, अंगहीन न होय, स्वर भङ्ग न होय, मिष्टवचन होय, प्रभुत्व होय तातैं लोकविषैं मान्य होय जातैं जो ऐसा न होय तो ताकों वक्तापनाकी महतता शोभै नाहीं। ऐसा वक्ता होय। वक्ताविषैं ये गुण तो अवश्य चाहिए सो ही आत्मानुशासनविषैं कह्या है।

प्राज्ञः प्राप्तसमस्तशास्त्रहृदयः प्रव्यक्तलोकस्थितिः।
प्रास्ताशः प्रतिभापरः प्रशमवान् प्रागेव दृष्टोत्तरः॥

प्राय: प्रश्नसहः प्रभुः परमनोहारी परानिन्दया।
ब्रूयाद्धर्म्मकथां गणी गुणनिधिः प्रस्पष्टमिष्टाक्षरः ॥१॥

याका अर्थ—बुद्धिमान होइ, जानै समस्त शास्त्रनिका रहस्य पाया होय, लोकमर्यादा जाकै प्रगट भई होय, आशा जाकै अस्त भई होय, कांतिमान् होय, उपशमी होय, प्रश्न किये पहले ही जानै, उत्तर देख्या होय, बाहुल्यपने प्रश्ननिका सहनहारा होय, प्रभु होय, परकी वा परकरि आपकी निन्दा करि रहितपना होय, परके मनका हरन-हारा होय, गुणनिधान होय, स्पष्ट मिष्ट जाके वचन होंय, ऐसा सभा का नायक धर्मकथा कहै। बहुरि वक्ताका विशेष लक्षण ऐसा है जो याकै व्याकरण न्यायादिक वा बड़े-बड़े जैनशास्त्रनिका विशेष ज्ञान होय तो विशेषपने ताकों वक्तापनो शोभै। बहुरि ऐसा भी होय अर अध्यात्मरसकरि यथार्थ अपने अनुभव जाकै न भया होय सो जिन-धर्मका मर्म जानै नाहीं, पद्धतिही करि वक्ता होय है। अध्यात्मरसमय साँचा जिनधर्म का स्वरूप वाकरि कैसैं प्रगट किया जाय, तातै आत्म-ज्ञानी होइ तो साँचा वक्तापनों होई, जातैं प्रवचनसार विषै ऐसा कहा है। आगमज्ञान, तत्त्वार्थश्रद्धान, संयमभाव ये तीनों आत्मज्ञानकरि शून्य कार्यकारी नाहीं। बहुरि दोहापाहुडविषैं ऐसा कह्या है—

पंडिय पंडिय पंडिय कण छोडि वि तुस कंडिया।
पय-अत्थं तुट्ठोसि परमत्थ ण जाणइ मूढोसि ॥१॥

याका अर्थ—हे पांडे ! हे पांडे ! हे पांडे ! तू कण छोडि तुसही कूटै है, तू अर्थ अर शब्द विषैं सन्तुष्ट है, परमार्थ न जानै है, तातैं मूर्ख ही है—ऐसा कह्या है अर चौदह विद्यानिविषैं भी पहलैं आध्या-त्मविद्या प्रधान कही है। तातैं अध्यात्मरसका रसिया वक्ता है सो जिनधर्मके रहस्यका वक्ता जानना। बहुरि जे बुद्धिऋद्धि के धारक हैं व अवधि-मनःपर्यय केवलज्ञानके धनी वक्ता हैं ते महावक्ता जानने : ऐसें वक्तानिके विशेष गुण जानने। सो इन विशेष गुणनिका धारी

वक्ताका संयोग मिलै तौ बहुत भला है ही अर न मिलै तौ श्रद्धानादिक गुणनिके धारी वक्तानिहीके मुखतैं शास्त्र सुनना। या प्रकार गुणके धारी मुनि वा श्रावक तिनके मुखतैं तो शास्त्र सुनना योग्य हैं अर पद्धति बुद्धि करि वा शास्त्र सुननेके लाभकरि श्रद्धानादि गुण रहित पापी पुरुषनिके मुखतैं शास्त्र सुनना उचित नाहीं। उक्तं च—

तं जिरण आरणपरेरण य धम्मो सोयव्व सुगुरुपासम्मि।
अह उचिओ सद्धाओ तस्सुवएसस्सकहगाओ ॥१॥

याका अर्थ—जो जिन आज्ञा मानने विषै सावधान है ता करि निर्ग्रन्थ सुगुरु हीके निकटि धर्म सुनना योग्य है अथवा तिस सुगुरुहीके उपदेशका कहनहारा उचित श्रद्धानी श्रावकके मुखतैं धर्म सुनना योग्य है। ऐसा जो वक्ता धर्मबुद्धिकरि उपदेश दाता होय सो ही अपना अर अन्य जीवनिका भला करै है अर जो कषायबुद्धि करि उपदेश दे है सो अपना अर अन्य जीवनिका बुरा करै है ऐसा जानना। ऐसें वक्ताका स्वरूप कह्या, अब श्रोताका स्वरूप कहैं हैं—

श्रोताका स्वरूप

भला होनहार है तातैं जिस जीवकै ऐसा विचार आवै है कि मैं कौन हूं? मेरा कहा स्वरूप है? (अर कहांतें आकर यहां जन्म धार्‌या है और मरकर कहां जाऊंगा?*) यह चरित्र कैसें बनि रह्या है? ए मेरे भाव हो हैं तिनका कहा फल लागेगा, जीव दुःखी होय रह्या है सो दुःख दूरि होनेका उपाय है, मुझकों इतनी बातनिका ठीककरि किछू मेरा हित होय सो करना, ऐसा विचारतै उद्यमवंत भया है। बहुरि इस कार्यकी सिद्धि शास्त्र सुननतैं होती जानि अति प्रीतिकरि शास्त्र सुनै है, किछू पूछना होय सो पूछै है बहुरि गुरुनिकरि कह्या अर्थकों अपने अंतरंगविषं बारम्बार विचारै हैं बहुरि अपने विचारतैं

---

* यह पंक्तियां खरडा प्रति में नहीं हैं, अन्य सब प्रतियों में हैं। इसीसे आवश्यक जानि यहां दे दी गई हैं।

सत्य अर्थनिका निश्चयकरि जो कर्तव्य होय ताका उद्यमी होय है, ऐसा तो नवीन श्रोताका स्वरूप जानना। बहुरि जे जैनधर्मके गाढ़े श्रद्धानी हैं अर नाना शास्त्र सुननेकरि जिनकी बुद्धि निर्मल भई है। बहुरि व्यवहार निश्चयादिकका स्वरूप नीके जानि जिस अर्थकों सुनै है ताकों यथावत् निश्चय जानि अवधारै हैं। बहुरि जब प्रश्न उपजै है तब अति विनयवान होय प्रश्न करैं हैं अथवा परस्पर अनेक प्रश्नोत्तरकरि वस्तुका निर्णय करें हैं, शास्त्राभ्यास विषैं अति आसक्त हैं, धर्म्मबुद्धि-करि निद्य कार्यनिके त्यागी भए हैं ऐसे शास्त्रनिके श्रोता चाहिएं। बहुरि श्रोतानिके विशेष लक्षण ऐसे हैं। जाकैं किछू व्याकरण न्याया-दिकका वा बड़े जैनशास्त्रनिका ज्ञान होय तो श्रोतापनों विशेष शोभै है। बहुरि ऐसा भी श्रोता है अर वाकैं आत्मज्ञान न भया होय तो उपदेशका मरम समझि सकै नाहीं तातैं आत्मज्ञानकरि जो स्वरूपका आस्वादी भया है सो जिनधर्म्मके रहस्यका श्रोता है। बहुरि जो अतिशयवंत बुद्धिकरि वा अवधि मनःपर्ययकरि संयुक्त होय तो वह महान श्रोता जानना। ऐसैं श्रोतानिके विशेष गुण हैं। ऐसे जिन-शास्त्रनिके श्रोता चाहिएँ। बहुरि शास्त्र सुननेतैं हमारा भला होगा, ऐसी बुद्धिकरि जो शास्त्र सुनै है परन्तु ज्ञानकी मन्दताकरि विशेष समझैं नाहीं, तिनिके पुण्यबन्ध ही है, कार्य सिद्ध होता नाहीं। बहुरि जे कुलवृत्तिकरि वा सहज योग बनने करि शास्त्र सुनै हैं वा सुनै तो हैं परन्तु किछू अवधारण करते नाहीं, तिनकैं परिणाम अनुसार कदा-चित पुण्यबन्ध हो है कदाचित पापबंध हो है। बहुरि जे मद मत्सर भावकरि शास्त्र सुनै हैं वा तर्क करनेहीका जिनका अभिप्राय है बहुरि जे महंतताके अर्थि वा किसी लोभादिकका प्रयोजनके अर्थि शास्त्र सुनैं हैं, बहुरि जो शास्त्र तो सुनैं हैं परन्तु सुहावता नाहीं, ऐसा श्रोता-निके केवल पापबन्ध ही हो है। ऐसा श्रोतानिका स्वरूप जानना। ऐसैं ही यथासम्भव सीखना सिखावना आदि जिनके पाइए तिनका भी स्वरूप जानना। या प्रकार शास्त्रका अर वक्ता श्रोताका स्वरूप

कह्या सो उचित शास्त्रकों उचित वक्ता होय बांचना, उचित श्रोता होय सुनना योग्य है। अब यहु मोक्षमार्गप्रकाशक नाम शास्त्र रचिए है ताका सार्थकपना दिखाइए है —

मोक्षमार्गप्रकाशक ग्रंथकी सार्थकता

इस संसार अटवी विषें समस्त जीव हैं ते कर्मनिमित्त ते निपजे जे नाना प्रकार दुःख तिनकरि पीड़ित हो रहे हैं। बहुरि तहाँ मिथ्या अन्धकार व्याप्त होय रहा है। ताकरि तहाँतें मुक्त होनेका मार्ग पावते नाहीं, तड़फि तड़फि तहाँ ही दुःखको सहैं। बहुरि ऐसे जीवनिका भला होनेकों कारण तीर्थंकर केवली भगवान सो ही भए सूर्य, ताका भया उदय, ताकी दिव्यध्वनिरूपी किरणनिकरि तहाँतें मुक्त होनेका मार्ग प्रकाशित किया। जैसें सूर्यके ऐसी इच्छा नाहीं जो मैं मार्ग प्रकाशूं परन्तु सहज ही वाकी किरण फैलै हैं ताकरि मार्गका प्रकाशन हो है तैसें ही केवली वीतराग है तातें ताकै ऐसी इच्छा नाहीं जो हम मोक्षमार्ग प्रगट करैं परन्तु सहज ही अघातिकर्मनिका उदयकरि तिनका शरीररूप पुद्गल दिव्यध्वनिरूप परिणमै है ताकरि मोक्षमार्गका प्रकाशन हो है। बहुरि गणधरदेवनिकै यहु विचार आया कि जहाँ केवली सूर्यका अस्तपना होइ तहाँ जीव मोक्षमार्गको कैसें पावैं अर मोक्षमार्ग पाए बिना जीव दुःख सहेंगे, ऐसी करुणाबुद्धि करि अंग प्रकीर्णकादिकरूप ग्रन्थ तेई भए महान् दीपक तिनका उद्योत किया। बहुरि जैसें दीपक करि दीपक जोवनेतें दीपकनिकी परम्परा प्रवर्तै तैसे आचार्यादिकनिने तिन ग्रन्थनितें अन्य ग्रन्थ बनाए। बहुरि तिनहूतें किनहूने अन्य ग्रंथ बनाए। ऐसे ग्रंथनितें ग्रंथ होनेतें ग्रंथनिकी परम्परा वर्तै है। मैं भी पूर्वग्रन्थनितें इस ग्रन्थकों बनाऊं हूं। बहुरि जैसें सूर्य वा दीपक हैं ते मार्गकों एकरूपही प्रकाशैं हैं। तैसें दिव्यध्वनि वा सर्व ग्रन्थ हैं ते मोक्षमार्गकों एकरूपही प्रकाशैं हैं। सो यह भी ग्रन्थ मोक्षमार्गकों प्रकाशै है। बहुरि जैसें प्रकाशे भी नेत्ररहित वा नेत्र-विकार सहित पुरुष हैं तिनकूं मार्ग सूझता नाहीं तो दीपककै तो

मार्ग प्रकाशकपनेका अभाव भया नाहीं, तैसें प्रगट किये भी जे मनुष्य ज्ञान रहित हैं वा मिथ्यात्वादि विकार सहित हैं तिनकूं मोक्षमार्ग सूझता नाही तो ग्रन्थकै तो मोक्षमार्ग प्रकाशकपनेका अभाव भया नाहीं। ऐसें इस ग्रन्थका मोक्षमार्ग प्रकाशक ऐसा नाम सार्थक जानना।

इहां प्रश्न—जो मोक्षमार्ग के प्रकाशक पूर्व ग्रन्थ तो थे ही, तुम नवीन ग्रंथ काहे कों बनावो हो ?

ताका समाधान—जैसें बड़े दीपकनिका तो उद्योत बहुत तेलादिकका साधनतें रहै है, जिनकै बहुत तेलादिककी शक्ति न होइ तिनकों स्तोक दीपक जोइ दीजिये तो वे उसका साधन राखि ताके उद्योततें अपना कार्य करें तैसें बड़ ग्रन्थनिका तो प्रकाश बहुत ज्ञानादिकका साधनतें रहै है, जिनके बहुत ज्ञानादिककी शक्ति नाहीं तिनकूं स्तोक ग्रंथ बनाय दीजिये तो वे वाका साधन राखि ताके प्रकाशतें अपना कार्य करें। तातें यहु स्तोक सुगम ग्रन्थ बनाइए है। बहुरि इहां जो मैं यहु ग्रन्थ बनाऊँ हूं सो कषायनितें अपना मान बधावनेको वा लोभ साधनेकों वा यश होनेकों वा अपनी पद्धति राखनेकों नाहीं बनाऊँ हूँ। जिनकै व्याकरण न्यायादिकका वा नयप्रमाणादिका वा विशेष अर्थनिका ज्ञान नाहीं तातें तिनकै बड़ ग्रन्थनिका अभ्यास तौ बनि सकै नाहीं। बहुरि कोई छोटे ग्रन्थनिका अभ्यास बनै तो भी सर्वथा अर्थ भासै नाही। ऐसें इस समयविषें मंदज्ञानवान् जीव बहुत देखिये हैं तिनिका भला होनेके अर्थि धर्मबुद्धितें यहु भाषा मय ग्रन्थ बनाऊँ हूँ। बहुरि जैसे बड़े दरिद्रीकों अवलोकनमात्र चिन्तामणि की प्राप्ति होय अर वह न अवलोकै बहुरि जैसें काढीकूं अमृत पान करावै अर वह न करै तैसें संसारपीड़ित जीवकों सुगम मोक्षमार्गके उपदेश का निमित्त बनै अर वह अभ्यास न करै तो वाके अभाग्यकी महिमा का वर्णन हमतें तो होइ सकै नाहीं। वाका होनहारहीकों विचारे अपने समता आवै। उक्तं च—

साहीणे गुरुजोगे जे ण सुणंतीह धम्मवयणाइं ।
ते धिट्ठदुट्ठचित्ता अह सुहडा भव भयविहूणा ॥१॥

स्वाधीन उपदेशदाता गुरुका योग जुड़ें भी जे जीव धर्म्म वचननिकों नाहीं सुनें हैं ते धीठ हैं अर उनका दुष्टचित्त है अथवा जिस संसार भयतें तीर्थंकरादिक डरे तिस संसार भयकरि रहित हैं, ते बड़े सुभट हैं। बहुरि प्रवचनसारविषैंभी मोक्षमार्गका अधिकार किया है तहां प्रथम आगमज्ञान ही उपादेय कह्या, सो इस जीवका तो मुख्य कर्त्तव्य आगमज्ञान है, याकों होतें तत्वनिका श्रद्धान हो है, तत्वनिका श्रद्धान भए संयमभाव हो है अर तिस आगमते आत्मज्ञानकी भी प्राप्ति हो है तब सहज ही मोक्षकी प्राप्ति हो है। बहुरि धर्म्मके अनेक अंग हैं तिनिविषें एक ध्यान बिना यातै ऊँचा और धर्म्मका अंग नाहीं है तातें जिस तिस प्रकार आगम अभ्यास करना योग्य है। बहुरि इस ग्रंथका तो वांचना सुनना विचारना घना सुगम है, कोऊ व्याकरणादिकका भी साधन न चाहिए, तातें अवश्य याका अभ्यासविषें प्रवर्तो, तुम्हारा कल्याण होगा।

इति श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक नाम शास्त्रविषैं पीठबन्धप्ररूपक प्रथम अधिकार समाप्त भया ॥१॥

दूसरा अधिकार

संसार अवस्थाका स्वरूप

दोहा

मिथ्याभाव अभावतैं, जो प्रगटै निजभाव।
सो जयवंत रहो सदा, यह ही मोक्ष उपाय ॥१॥

अब इस शास्त्रविषैं मोक्षमार्गका प्रकाश करिए है। तहां बन्धनतैं छूटनेका नाम मोक्ष है। सो इस आत्माकै कर्म्मका बन्धन है बहुरि तिस बन्धनकरि आत्मा दुःखी होय रह्या है। बहुरि याकै दुःख दूरि करनेहीका निरन्तर उपाय भी रहै हैं परन्तु साचा उपाय पाए बिना दुःख दूरि होता नाहीं अर दुःख सह्या भी जाता नाहीं तातैं यहु जीव व्याकुल होय रह्या है। ऐसे जीवको समस्त दुःखका मूल कारण कर्म बन्धन है ताका अभावरूप मोक्ष है सोही परम हित है। बहुरि याका सांचा उपाय करना सोही कर्तव्य है तातैं इसहीका याकौं उपदेश दीजिए है। तहाँ जैसे वैद्यहै सो रोगसहित मनुष्यको प्रथम तो रोगका निदान बतावै, ऐसैं यहु रोग भया है बहुरि उस रोगके निमित्ततैं याकै जो जो अवस्था होती होय सो बतावै, ताकरि वाकै निश्चयहोय जो मेरे ऐसैं ही रोग है। बहुरि तिस रोगके दूरि करनेका उपाय अनेक प्रकार बतावै अर तिस उपायकी ताको प्रतीति जनावै, इतना तो वैद्य का बतावना है। बहुरि जो वह रोगी ताका साधन करै तो रोग तैं मुक्त होई अपना स्वभावरूप प्रवर्तै सो यहु रोगीका कर्तव्य है। तैसैं ही इहां कर्मबन्धन युक्त जीवको प्रथम तो कर्मबन्धनका निदान बताइए है, ऐसैं यहु कर्मबन्धन भया है बहुरि उस कर्मबन्धनके निमित्ततैं याकै जो जो अवस्था होती होय सो बतावै, ताकरि जीव कै निश्चय होय जो मेरे ऐसैं ही कर्मबन्धन है। बहुरि तिस कर्मबन्धनके दूरि होनेका

उपाय अनेक प्रकार बताइए है अर तिस उपायकी याको प्रतीति जनाइये है, इतना तौ शास्त्रका उपदेश है। बहुरि यहु जीव ताका साधन करै तौ कर्मबन्धनतैं मुक्त होय अपना स्वभावरूप प्रवर्तै सो यहु जीवका कर्तव्य है। सो इहां प्रथम ही कर्म बन्धनका निदान बताइये है।

कर्मबन्धनका निदान

बहुरि कर्म्मबन्धन होतैं नाना उपाधिक भावनिविषै परिभ्रमण-पनों पाइए है, एक रूप रहनो न हो है तातैं कर्मबन्धनसहित अवस्था का नाम संसार अवस्था है। सो इस संसार अवस्थाविषैं अनन्तानन्त जीव द्रव्य हैं ते अनादिहीतैं कर्मबन्धन सहित है। ऐसा नाहीं है जो पहलैं जीव न्यारा था अर कर्म न्यारा था, पीछैं इनिका संयोग भया। तो कैसें है—जैसें मेरुगिरि आदि अकृत्रिम स्कन्धनिविषैं अनंते पुद्गल-परमाणु अनादितैं एक बन्धनरूप है, पीछैं तिनमे केई परमाणु भिन्न हो हैं केई नए मिलें है। ऐसें मिलना बिछुरना हुवा करै है। तैसें इस संसार विषै एक जीव द्रव्य अर अनते कर्मरूप पुद्गल परमाणु तिनि-का अनादितैं एक बन्धनरूप है, पीछैं तिनमे केई कर्म परमाणु भिन्न हो हैं केई नये मिले है। ऐसें मिलना बिछुरना हुवा करै है।

बहुरि इहां प्रश्न—जो पुद्गलपरमाणु ता रागादिकके निमित्ततैं कर्मरूप हो हैं, अनादि कर्मरूप कैसे हैं?

ताका समाधान—निमित्त तो नवीन कार्य होय तिस विषैं ही सम्भवै है। अनादि अवस्थाविषैं निमित्तका किछू प्रयोजन नाहीं। जैसें नवीन पुद्गल-परमाणुनिका बंधान तो स्निग्ध रूक्ष गुणके अधान ही करि हो है अर मेरुगिरि आदि स्कन्धनि विषें अनादि पुद्गल-परमाणुनिका बन्धान है तहां निमित्तका कहा प्रयोजन है? तैसें नवीन परमाणुनिका कर्म्मरूप होना तो रागादिकनिही करि हो है अर अनादि पुद्गलपरमाणुनिकी कर्म्मरूप ही अवस्था है। तहां निमित्तका कहा प्रयोजन है? बहुरि जो अनादिविषैंभी निमित्त मानिए तो अनादिपना रहै नाहीं। तातें कर्मका बन्ध अनादि मानना। सो तत्वप्रदीपिका प्रव-

चनसार शास्त्रकी व्याख्या विषें जो सामान्यज्ञेयाधिकार है तहां कह्या है। रागादिकका कारण तो द्रव्यकर्म है अर द्रव्यकर्म्मका कारण रागादिक है। तब वहां तर्क करि जो ऐसें इतरेतराश्रयदोष लागै, वह वाके आश्रय, वह वाके आश्रय, कहीं थंभाव नाहीं है, तब उत्तर ऐसा दिया है—

नैवं अनादिप्रसिद्धद्रव्यकर्म्मसम्बन्धस्य तत्र, हेतुत्वेनोपादानात् ।*

याका अर्थ—ऐसै इतरेतराश्रय दोष नाहीं है। जातें अनादिका स्वयंसिद्ध द्रव्यकर्म्मका संबंध है ताका तहां कारणपनाकरि ग्रहण किया है। ऐसें आगममें कह्या है। बहुरि युक्तितें भी ऐसें ही संभवै है, जो कर्म्मनिमित्त बिना पहले जीवके रागादिक कहिए तो रागादिक जीवका निज स्वभाव हो जाय, जातें परनिमित्त विना होइ ताहीका नाम स्वभाव है। तातें कर्म्मका सम्बन्ध अनादि ही मानना।

बहुरि इहाँ प्रश्न—जो न्यारे न्यारे द्रव्य अर अनादितें तिनका सम्बन्ध, ऐसें कैसें सम्भवै ?

ताका समाधान—जैसेंठेठिहीसूं जल दूधका वा सोना किट्टिकका वा तुष कणका वा तेल तिलका सम्बन्ध देखिए है, नवीन इनका मिलाप भया नाहीं तैसें अनादिहीसों जीव कर्म्मका सम्बन्ध जानना, नवीन इनिका मिलाप नाहीं भया। बहुरि तुम कही कैसे संभवै ? अनादितें जैसें केई जुदे द्रव्य हैं तैसें केई मिले द्रव्य हैं, इस संभवनेविषै किछू विरोध तौ भासता नाहीं।

बहुरि प्रश्न—जो संबंध वा संयोग कहना तो तब सभवै जब पहले जुदे होइ पीछै मिलें। इहाँ अनादि मिले जीव कर्म्मनिका संबंध कैसें कह्या है।

---

* नहि अनादिप्रसिद्धद्रव्यकर्माभिसंबद्धस्यात्मनः प्राक्तनद्रव्यकर्मणस्तत्र हेतुत्वेनोपादानात्। प्रवचनसार टीका, २।२९

ताका समाधान—अनादितैं तो मिले थे परन्तु पीछें जुदे भए तब जान्या जुदे थे तौ जुदे भए। तातैं पहले भी भिन्न ही थे। ऐसें अनुमान करि वा केवलज्ञानकरि प्रत्यक्ष भिन्न भासैं हैं। तिसकरि तिनका बन्धान होतें भिन्नपना पाइए है। बहुरि तिस भिन्नताको अपेक्षा तिनका सम्बन्ध वा संयोग कह्या है, जातें नए मिलो वा मिले ही होहु, भिन्न द्रव्यनिका मिलापविषै ऐसें ही कहना संभवै है। ऐसें इन जीवनिका अर कर्म्मका अनादि सम्बन्ध है।

तहां जीवद्रव्य तो देखने जाननेरूप चैतन्यगुणका धारक है अर इन्द्रियगम्य न होने योग्य अमूर्त्तीक है, संकोचविस्तारशक्तिकों लिए असंख्यातप्रदेशी एकद्रव्य है। बहुरि कर्म्म है सो चेतनागुणरहित जड़ है अर मूर्त्तीक है, अनन्त पुद्गल परमाणुनिका पिंड है तातैं एक द्रव्य नाहीं है। ऐसें ए जीव अर कर्म्म है सो इनका अनादि सम्बन्ध है तौ भी जीवका कोई प्रदेश कर्म्मरूप न हो है अर कर्म्मका कोई परमाणु जीवरूप न हो है। अपने अपने लक्षणको धरे जुदे जुदेही रहै हैं। जैसें सोना रूपाका एक स्कन्ध होइ तथापि पीतादि गुणनिको धरे सोना जुदा रहै है, स्वेतादि गुणनिकों धरे रूपा जुदा रहै है तैसें जुदे जाननें।

इहां प्रश्न—जो मूर्तीक मूर्तीकका तो बन्धान होना बनै, अमूर्तीक मूर्तीकका बन्धान कैसें बनै ?

ताका समाधान—जैसे अव्यक्त इन्द्रियगम्य नाहीं ऐसे सूक्ष्म पुद्गल अर व्यक्त इन्द्रियगम्य हैं ऐसे स्थूल पुद्गल तिनका बन्धान होना मानिए हैं तैसे इन्द्रियगम्य होने योग्य नाहीं ऐसा अमूर्तीक आत्मा अर इन्द्रियगम्य होने योग्य मूर्तीककर्म्म इनका भी बन्धान होना मानना। बहुरि इस बन्धानविषैं कोऊ किसीकों करै तो है नाहीं। यावत् बन्धान रहै तावत् साथ रहै, विछुरै नाहीं अर कारणकार्यपना तिनकै बन्या रहै, इतना ही यहां बंधान जानना सो मूर्तीक अमूर्तीककै ऐसें बंधान होने विषै किछू विरोध है नाहीं। या प्रकार जैसें एक जीवकै अनादि कर्म्मसम्बन्ध कह्या तैसें ही जुदा जुदा अनंत जीवनिकै जानना।

बहुरि सो कर्म्म ज्ञानावरणादि भेदनिकरि आठ प्रकार है। तहां च्यारि घातियाकर्म्मनिके निमित्ततें तो जीवके स्वभावका घात ही है। तहां ज्ञानावरण दर्शनावर्णकरि तो जीवके स्वभाव ज्ञान दर्शन तिनकी व्यक्तता नाहीं हो है, तिन कर्म्मनिका क्षयोपशमके अनुसार किंचित् ज्ञानदर्शन की व्यक्तता रहै है। बहुरि मोहनीयकरिजीवके स्वभाव नाहीं ऐसे मिथ्याश्रद्धान वा क्रोध मान माया लोभादिक कषाय तिन की व्यक्तता हो है। बहुरि अंतरायकरि जीवका स्वभाव दीक्षा लेनेको समर्थतारूप वीर्य ताकी व्यक्तता न हो है, ताका क्षयोपशमके अनुसार किंचित् शक्ति हो है। ऐसे घातिकर्म्मनिके निमित्ततें जीवके स्वभावका घात अनादिहीतें भया है। ऐसे नाहीं जो पहलें तो स्व-भावरूप शुद्ध आत्मा था पीछें कर्म्मनिमित्ततें स्वभावघात होनेकरि अशुद्ध भया।

इहां तर्क—जो घात नाम तो अभावका है सो जाका पहले सद्भाव होय ताका अभाव कहना बनें। इहां स्वभाव का तो सद्भाव हैं हीं नाहीं, घात किसका किया ?

ताका समाधान—जीवविषें अनादिहीतें ऐसी शक्ति पाइए है; जो कर्म्मका निमित्त न होइ तो केवल ज्ञानादि अपने स्वभावरूप प्रवर्तें परन्तु अनादिहीतें कर्मका सम्बन्ध पाइए है। तातें तिस शक्तिका व्यक्तपना न भया सो शक्ति अपेक्षा स्वभाव है ताका व्यक्त न होने देनेकी अपेक्षा घात किया कहिए है।

बहुरि च्यार अघातिया कर्म्म हैं तिनके निमित्ततें इस आत्माकें बाह्यसामग्रीका सम्बन्ध बनैहै तहां वेदनीयकरि तो शरीरविषें वा शरीरतें बाह्य नानाप्रकार सुख दुःखको कारण परद्रव्यनिका संयोग जुरें हैं अर आयुकरि अपनी स्थितिपर्यन्त पाया शरीरका सम्बन्ध नाही छूट सकें हैं अर नामकरि गति जाति शरीरादिक निपजै हैं अर गोत्र-करि ऊंचा नीचा कुलकी प्राप्ति हो है, ऐसे अघातिकर्म्मनिकरि बाह्य सामग्री भेली होय है ताकरि मोहके उदयका सहकारण होतें जीव

सुखो दुःखी हो है। अर शरीरादिकनिके सम्बन्धतें जीवके अमूर्त्तत्वादि स्वभाव अपने स्वार्थको नाहीं करें हैं। जैसें कोऊ शरीर को पकरै तो आत्मा भी पकरचा जाय। बहुरि यावत् कर्मका उदय रहै तावत् बाह्य सामग्री तैसें ही बनी रहै अन्यथा न होय सकै, ऐसा इन अघातिकर्मनिका निमित्त जानना।

इहां कोऊ प्रश्न करै कि कर्म्म तो जड़ है, किछु बलवान नाही, तिनकरि जीवके स्वभावका घात होना वा बाह्य सामग्रीका मिलना कैसे सम्भवै ?

ताका समाधान—जो कर्म आप कर्त्ता होय उद्यमकरि जीवके स्वभावको घातै, बाह्य सामग्रीको मिलावै तब कर्म्मकै चेतनपनो भी चाहिए अर बलवानपनों भी चाहिए सो तो है नाहीं, सहजही निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध है। जब उन कर्मनिका उदयकाल होय तिस कालविषैं आपही आत्मा स्वभावरूप न परिणमें, विभावरूप परिणमै वा अन्य द्रव्य हैं ते तैसें ही सम्बन्धरूप होय परिणमें। जैसें काहू पुरुषके सिर परि मोहनधूलि परी है तिसकरि सो पुरुष बावला भया तहां उस मोहनधूलिके ज्ञान भी न था अर बावलापना भी न था अर बावलापना तिस मोहनधूलिही करि भया देखिए है। मोहनधूलिका तो निमित्त है अर पुरुष आपही बावला हुआ परिणमै है, ऐसा ही निमित्त नैमित्तिक बनि रह्या है। बहुरि जैसें सूर्यका उदयका कालविषें चकवा चकवीनिका संयोग होय तहां रात्रिविषें किसीने द्वेषबुद्धितें ल्यायकरि मिलाए नाहीं, सूर्य उदयका निमित्तपाय आपही मिलै हैं अर सूर्यास्तका निमित्त पाय आपही विछुरैं हैं। ऐसा ही निमित्त नैमित्तिक बनि रह्या है। तैसें ही कर्मका भी निमित्त नैमित्तिक भाव जानना। ऐसें कर्मका उदय करि अवस्था होय है बहुरि तहां नवीन बन्ध कैसें हो है सो कहिए है—

नूतन बंध विचार

जैसें सूर्यका प्रकाश है सो मेघपटलतें जितना व्यक्त नाहीं

तितनेका तो तिस कालविषें अभाव है बहुरि तिस मेघपटलका मन्द-पनातें जेता प्रकाश प्रगटै है सो तिस सूर्यके स्वभावका अंश है, मेघपटल जनित नाहीं है। तैसे जीवका ज्ञान दर्शन वीर्य स्वभाव है सो ज्ञानावरण दर्शनावरण अंतरायके निमित्ततें जितने व्यक्त नाहीं तितनेका तो तिस कालविषें अभाव है। बहुरि तिन कर्म्मनिका क्षयोपशमतें जेता ज्ञान दर्शन वीर्य प्रगटै है सो तिस जोवके स्वभावका अंश ही है, कर्म्मजनित उपाधिक भाव नाहीं है। सो ऐसा स्वभावके अंशका अनादितें लगाय कबहूं अभाव न हो है। याहीकरि जीवका जीवत्वपना निश्चय कीजिए है। जो यह देखनहार जाननहार शक्तिकों धरै वस्तु है सो ही आत्मा है। बहुरि इस स्वभावकरि नवीन कर्म्मका बंध नाहीं है जातें निज स्वभाव ही बन्धका कारण होय तो बन्धका छूटना कैसे होय। बहुरि तिन कर्म्मनिके उदयतें जेता ज्ञान दर्शन वीर्य अभावरूप है ताकरि भी बन्ध नाहीं है जातें आपही का अभाव होतें अन्यकों कारण कैसें होय। तातें ज्ञानावरण दर्शनावरण अन्तरायके निमित्ततें निपजे भाव नवीनकर्म्मबन्ध के कारण नाहीं।

बहुरि मोहनीय कर्म्मकरि जीवकै अयथार्थश्रद्धानरूप तो मिथ्यात्वभाव हो है वा क्रोध मान माया लोभादिक कषाय हो है। ते यद्यपि जीवके अस्तित्वमय है; जीवतें जुदे नाहीं, जीव ही इनका कर्ता है, जीव के परिणामस्वरूप ही ये कार्य हैं तथापि इनका होना मोह-कर्म्मके निमित्ततें ही है, कर्म्मनिमित्त दूरि भए इनका अभाव हो है तातें ए जीवके निजस्वभाव नाहीं, उपाधिकभाव हैं। बहुरि इन भाव-निकरि नवीनबन्ध हो है तातें मोहके उदयतें निपजेभाव बन्धके कारण हैं। बहुरि अघातिकर्म्मनिके उदयतें बाह्य सामग्री मिलै है, तिन विषें शरीरादिक तो जीवके प्रदेशनिसों एक क्षेत्रावगाही होय एक बन्धान-रूप हो हैं अर धन कुटुम्बादि आत्मातें भिन्नरूप हैं सो ए सर्व बन्धके कारण नाहीं हैं; जाते परद्रव्यबंधका कारण न होय। इनविषै आत्माके ममत्वादिरूप मिथ्यात्वादि भाव हो हैं सोई बन्धका कारण जानना।

योग और उससे होनेवाले प्रकृति बन्ध प्रदेश बन्ध

बहुरि इतना जानना जो नाम कर्म्मके उदयतैं शरीर वा वचन वा मन निपजै है तिनिकी चेष्टाके निमित्ततैं आत्माके प्रदेशनिका चंचलपना हो है। ताकरि आत्माके पुद्गलवर्गणासों एक बन्धान होने की शक्ति हो है ताका नाम योग है। ताके निमित्ततैं समय समय प्रति कर्म्मरूप होने योग्य अनंत परमाणुनिका ग्रहण हो है। तहां अल्पयोग होय तो थोड़े परमाणुनिका ग्रहण होय, बहुत योग होय तो घने परमाणुनिका ग्रहण होय। बहुरि एक समय विषैं जे पुद्गल परमाणू ग्रहे तिनि ज्ञानावरणादि मूलप्रकृति वा तिनकी उत्तर प्रकृतिनिका जैसै सिद्धांतविषैं कह्या है तैसें बटवारा हो हैं। तिस बटवारा माफिक परमाणु तिन प्रकृतिनिरूप आपही परिणमैं हैं। विशेष इतना कि योग दोय प्रकार है-शुभयोग;अशुभयोग। तहाँ धर्मके अंगनिविषैं मनवचनकायकी प्रवृत्ति भए तो शुभयोग हो है अर अधर्मके अंगनिविषैं तिनकी प्रवृत्ति भए अशुभयोग हो है। सो शुभ योग होहु वा अशुभयोग होहु सम्यक्त्व पाए बिना घातियाकर्मनिका तो सर्वप्रकृतिनिका निरंतर बंध हुआ ही करै है। कोई समय किसी भी प्रकृतिका बन्ध हुआ बिना रहता नाहीं। इतना विशेष है जो मोहनीयका हास्य शोक युगलविषैं, रति अरति युगलविषैं, तीनों वेदनिविषैं एकैं काल एक एक ही प्रकृतिनिका बन्ध हो है। बहुरि अघातियानिकी प्रकृतिनिविषैं शुभोपयोग होतैं साता वेदनीय आदि पुण्यप्रकृतिनिका बन्ध हो है। अशुभ योग होतैं असातावेदनीय आदि पापप्रकृतिनिका बन्ध हो है। मिश्रयोग होतैं केई पुण्यप्रकृतिनिका केई पापप्रकृतिनिका बन्ध हो है। ऐसा योगके निमित्ततैं कर्मका आगमन हो है। तातैं योग है सो आस्रव है। बहुरि याकरि ग्रहे कर्मपरमाणुनिका नाम प्रदेश है तिनिका बंध भया अर तिन विषै मूल उत्तरप्रकृतिनिका विभाग भया तातैं योगनिकरि प्रदेशबन्ध वा प्रकृतिबन्धका होना जानना।

कषाय से स्थिति और अनुभाग

बहुरि मोहके उदयतें मिथ्यात्व क्रोधादिक भाव हो हैं, तिन सबनिका नाम सामान्यपने कषाय हैं। ताकरि तिन कर्मप्रकृतिनिकी स्थिति बन्धै हैं सो जितनो स्थिति बंधै तिसविषैं आबाधाकाल छोड़ि तहाँ पीछैं यावत् बँधी स्थितिपूर्ण होय तावत् समय समय तिस प्रकृति का उदय आया ही करै। सो देव मनुष्य तिर्यंचायु बिना अन्य सर्व घातिया अघातिया प्रकृतिनिका अल्पकषाय होतैं थोरा स्थिति बन्ध होय, बहुत कषाय होते घना स्थितिबन्ध होय। इन तीन आयूनिका अल्पकषायतें बहुत अर बहुत कषायतें अल्प स्थितिबन्ध जानना। बहुरि तिस कषायहीकरि तिन कर्मप्रकृतिनिविषै अनुभागशक्ति का विशेष हो है सो जैसा अनुभाग बंधै गैसा ही उदयकालविषै तिन प्रकृतिनिका घना थारा फल निपजै है। तहाँ घातिकर्मनिको सब प्रकृतिनिविषै वा अघातिकर्मनिकी पाप प्रकृतिनिविषैं तो अल्पकषाय होतैं थोरा अनुभाग बंधै हैं, बहुत कषाय होतें घना अनुभाग बधै है। बहुरि पुण्य प्रकृतिनविषै अल्पकषाय होतें घना अनुभाग बंधै है, बहुत कषाय होतें थोरा अनुभाग बंधै है। ऐसे कषायनिकरि कर्मप्रकृतिनिके स्थिति अनुभागका विशेष भया तातैं कषायनिकरि स्थितिबंध अनुभागबंधका होना जानना। इहाँ जैसे बहुत भी मदिरा है अर ताविषै थोरे कालपर्यंत थोरी उन्मत्तता उपजावनेको शक्ति है तो वह मदिरा हीनपनाको प्राप्त है। बहुरि थोरी भी मदिरा है ताविषै बहुत कालपर्यन्त घनी उन्मत्तता उपजावने की शक्ति है तो वह मदिरा अधिकपनाकों प्राप्त है। तैसें घने भी कर्मप्रकृतिनिके परमाणु हैं अर तिनविषैं थोरे कालपर्यन्त थोरा फल देने की शक्ति है तो ते कर्मप्रकृति हीनता कों प्राप्त हैं। बहुरि थोरे भी कर्मप्रकृतिनिके परमाणु हैं अर तिनविषैं बहुत कालपर्यन्त बहुत फल देनेकी शक्ति है तो वे कर्मप्रकृति अधिकपनाकों प्राप्त है। तातैं योगनिकरि भया प्रकृतिबन्ध प्रदेशबंध बलवान नाहीं, कषायनिकरि किया स्थितिबंध अनुभागबंध ही बलवान है।

तातैं मुख्यपने कषाय ही बंधका कारण जानना। जिसको बंध न करना होय ते कषाय मति करो।

जड़ पुद्गल परमाणुओं का यथायोग्य प्रकृतिरूप परिणमन

बहुरि इहां कोऊ प्रश्न करै कि पुद्गल परमाणु तो जड़ हैं, उनके किछू ज्ञान नाहीं' कैसें यथायोग्य प्रकृतिरूप होय परिणमैं हैं ?

ताका समाधान—जैसे भूख होतैं मुखद्वारकरि ग्रह्याहुवा भोजनरूप पुद्गलपिंड सो मांस शुक्र शोणित आदि धातुरूप परिणमै है। बहुरि तिस भोजनके परमाणुनिविषै यथायोग्य कोई धातुरूप थोरे कोई धातुरूप घने परमाणु हो हैं। बहुरि तिनविषें केई परमाणुनिका सम्बन्ध घने काल रहै, केईनिका थोरे काल रहै, बहुरि तिन परमाणुनिविषें केई तो अपने कार्य निपजावनेकी बहुत शक्तिको धरें हैं, केई स्तोकशक्तिको धरें हैं। सो ऐसें होने विषै कोऊ भोजनरूप पुद्गलपिंड के ज्ञान तो नाहीं हैं जो मैं ऐसें परिणमूं अर और भो कोऊ परिणमावनहारा नाहीं है, ऐसा हो निमित्त नैमित्तिक भाव बनि रह्या है, ताकरि तैसें हो परिणमन पाइए है। तैसें हो कषाय होनें योग द्वारकरि ग्रह्या हुआ कर्मवर्गणारूप पुद्गलपिंड सो ज्ञानावरणादि प्रकृतिरूप परिणमै है। बहुरि तिन कर्मपरमाणुनिविषै यथायोग्य कोई प्रकृतिरूप थोरे कोई प्रकृतिरूप घने परमाणु ही हैं। बहुरि तिन विषें केई परमाणुनिका सम्बन्ध घने काल रहै, केईनिका थोरे काल रहै। बहुरि तिन परमाणुनिविषै कोऊ तो अपने कार्य निपजावनेकी बहुत शक्ति धरै है, कोऊ थोरी शक्ति धरै है सो ऐसें होनेविषै कोऊ कर्मवर्गणारूप पुद्गलपिंडकै ज्ञान तो नाहीं है जो मैं ऐसे परिणमूं अर और भी कोई परिणमावनहारा है नाहीं, ऐसा ही निमित्त नैमित्तिकभाव बनि रह्या है ताकरि तैसें ही परिणमन पाइये हैं। सो ऐसें तो लोकविषें निमित्त नैमित्तिक घने ही बनि रहे हैं। जैसें मन्त्रनिमित्तकरि जलादिकविषै रोगादिक दूरि करनेकी शक्ति हो है वा कांकरी आदिविषें सर्पादि रोकनेको शक्ति हो है तैसें ही जीव भावके निमित्तकरि पुद्गल पर-

माणुनिविषै ज्ञानावरणादिरूप शक्ति हो है। इहां विचारिकरि अपने उद्यमतै कार्य करै तो ज्ञान चाहिए अर तैसा निमित्त बने स्वयमेव तैसैं परिणमन होय तो तहाँ ज्ञानका किछू प्रयोजन नाहीं, या प्रकार नवीनबंध होनेका विधान जानना।

भावोंसे कर्मोंकी पूर्व बद्ध अवस्थाका परिवर्तन

अब जे परमाणु कर्मरूप परिणमैं तिनका यावत् उदयकाल न आवै तावत् जीवके प्रदेशनिसों एक क्षेत्रावगाहरूप बंधान रहै है। तहां जीवभावके निमित्तकरि केई प्रकृतिनिकी अवस्थाका पलटना भी होय जाय है। तहाँ केई अन्य प्रकृतिनिके परमाणु थे ते संक्रमणरूप होय अन्य प्रकृतिके परमाणु होय जांय। बहुरि केई प्रकृतिनिकी स्थिति वा अनुभाग बहुत था सो अपकर्षण होयकरि थोरा होय जाय। बहुरि केई प्रकृतिनिकी स्थिति वा अनुभाग थोरा था सो उत्कर्षण होयकरि बहुत हो जाय। सो ऐसैं पूर्वे बंधे परमाणुनिकी भी जीवभावनिका निमित्त पाय अवस्था पलटै है अर निमित्त न बनं तो न पलटै, जैसेके तैसे रहैं। ऐसैं सत्तारूप कर्म रहै हैं।

कर्मोंके फलदानमें निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध

बहुरि जब कर्मप्रकृतिनिका उदयकाल आवै तब स्वयमेव तिन प्रकृतिनिका अनुभागके अनुसार कार्य बनै। कर्म्म तिनके कार्यनिकौं निपजावता नाहीं। याका उदयकाल आए वह कार्य स्वयं बनै है। इतना ही निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध जानना। बहुरि जिस समयफल निपज्या तिसका अनन्तर समयविषैं तिन कर्मरूप पुद्गलनिकै अनुभाग शक्तिके अभाव होनेतैं कर्मत्वपनाका अभाव हो है। ते पुद्गल अन्य-पर्यायरूप परिणमैं हैं। याका नाम सविपाक निर्जरा है। ऐसैं समय समय प्रति उदय होय कर्म खिरैं हैं। कर्मत्वपना नास्ति भए पीछैं ते परमाणु तिस ही स्कंधविषै रहो वा जुदे होय जाहु, किछू प्रयोजन रह्या नाहीं।

इहाँ इतना जानना—इस जीवके समय समय प्रति अनन्त परमाणु बंधे हैं तहां एक समयविषैं बंधे परमाणु ते आबाधाकाल छोड़ अपनी स्थितिके जेते समय होहिं तिन विषै उदय आवै हैं बहुरि बहुत समयनिविषै बंधे परमाणु जे एक समय विषै उदय आवने योग्य हैं ते इकट्ठे होय उदय आवैं हैं। तिन सब परमाणुनिका अनुभाग मिले जेता अनुभाग होय तितनाफल तिस काल विषैं निपजै है। बहुरि अनेक समयनिविषै बंधे परमाणु बंधसमयतैं लगाय उदयसमय पर्यन्त कर्मरूप अस्तित्वको धरे जीवसों सम्बन्धरूप रहैं हैं। ऐसैं कर्मनिकी बन्ध उदय सत्तारूप अवस्था जाननी। तहाँ समय समय प्रति एक समय बद्ध मात्र परमाणु बधैं हैं, एक समय प्रबद्ध मात्र निर्जरै हैं। ड्योढगुणहानिकरि गुणित समय प्रबद्ध मात्र सदा काल सत्ता रहै है। सो इन सबनिका विशेष आगे कर्मअधिकारविषैं लिखेंगे तहां जानना।

द्रव्यकर्म और भावकर्मका स्वरूप

बहुरि ऐसैं यहु कर्म है सो परमाणुरूप अनन्त पुद्गलद्रव्य-निकरि निपजाया कार्य है तातैं याका नाम द्रव्यकर्म है। बहुरि मोहके निमित्ततैं मिथ्यात्वक्रोधादिरूप जीवका परिणाम है सो अशुद्ध भावकरि निपजाया कार्य है तातैं याका नाम भावकर्म है। सो द्रव्य-कर्मके निमित्ततैं भावकर्म होय अर भावकर्मके निमित्ततैं द्रव्यकर्म का बन्ध होय। बहुरि द्रव्यकर्मतैं, भावकर्म भावकर्मतैं द्रव्यकर्म ऐसैं ही परस्पर कारणकार्यभावकरि संसारचक्रविषै परिभ्रमण हो है। इतना विशेष जानना—तीव्र मन्द बन्ध होनेतैं वा संक्रमणादि होनेतैं वा एक कालविषै बन्ध्या अनेककालविषैं वा अनेककालविषैं बन्धे एककालविषै उदय आवनेतै काहू कालविषै तीव्रउदय आवै तब तीव्रकषाय होय तब तीव्र ही नवीनबन्ध होय। अर काहू कालविषैं मन्द उदय आवै तब मन्द कषाय होय तब मन्द ही नवीनबन्ध होय। बहुरि तिन तीव्र-मन्दकषायनिहीके अनुसारि पूर्वबन्धे कर्मनिका भी संक्रमणादिक होय

तो होय। या प्रकार अनादितै लगाय धाराप्रवाहरूप द्रव्यकर्म वा भावकर्मकी प्रवृत्ति जाननी।

बहुरि नामकर्मके उदयतैं शरीर हो है सो द्रव्यकर्मवत् किंचित् सुख दुःखकों कारण है। तातैं शरीरको नोकर्म कहिए है। इहां नो शब्द ईषत् कषायवाचक जानना। सो शरीर पुद्गलपरमाणुनिका पिंड है अर द्रव्यइन्द्रिय, द्रव्यमन, श्वासोश्वास अर वचन ए भी शरीरके अंग हैं सो ए भी पुद्गलपरमाणुनिके पिंड जानने। सो ऐसें शरीरके अर द्रव्यकर्मसम्बन्धसहित जीवके एक क्षेत्रावगाहरूप बंधान हो है सो शरीर का जन्म समयतैं लगाय जती आयुकी स्थिति होय तितने काल पर्यन्त शरीरका सम्बन्ध रहै है। बहुरि आयु पूर्ण भए मरण हो है। तब तिस शरीरका सम्बन्ध छूटै है। शरीर आत्मा जुदे जुदे होय जाय बहुरि ताके अनंतर समयविषै वा दूसरे तीसरे चौथे समय जीव कर्म-उदयके निमित्ततैं नवीन शरीर धरै है तहाँ भी अपने आयुपर्यन्त तैसें ही सम्बन्ध रहै है, बहुरि मरण हो है तब तिससों सम्बन्ध छूटै है। ऐसें ही पूर्व शरीरका छोड़ना नवीन शरीरका ग्रहण करना अनुक्रमतैं हुआ करै है। बहुरि यह आत्मा यद्यपि असंख्यातप्रदेशी है तथापि संकोचविस्तारशक्तितैं शरीरप्रमाण ही रहै है। विशेष इतना—समुद्घात होतैं शरीरतैं बाह्य भी आत्माके प्रदेश फैलै हैं। बहुरि अंतराल समयविषै पूर्व शरीर छोड्या था तिस प्रमाण रहै है। बहुरि इस शरीरके अंगभूत द्रव्यइन्द्रिय अर मन तिनके सहायतै जीवकै जानपना की प्रवृत्ति हो है। बहुरि शरीरकी अवस्थाके अनुसार मोहके उदयतैं सुखी दुःखी हो है। बहुरि कबहूं तो जीवकी इच्छाके अनुसार शरीर प्रवर्तै है, कबहूं शरीरकी अवस्थाके अनुसार जीव प्रवर्तै है। कबहूं जीव अन्यथा इच्छारूप प्रवर्तै है, पुद्गल अन्यथा अवस्थारूप प्रवर्तै है। ऐसें इस नोकर्मकी प्रवृत्ति जाननी।

नित्य निगोद और इतर निगोद

तहाँ अनादितैं लगाय प्रथम तो इस जीवके नित्यनिगोदरूप

शरीर का सम्बन्ध पाइये है। तहां नित्यनिगोद शरीरकों धरि आयु पूर्ण भए मरि नित्यनिगोदशरीरहीकों धारै है। याही प्रकार अनंतानंत प्रमाण लिए जीवराशि है सो अनादितें तहाँ ही जन्ममरण किया करै है। बहुरि तहाँतें छै महीना अर आठ समयविष छैस्सै आठ जीव निकसै हैं ते निकसि अन्य पर्यायनिकों धारै हैं। सो पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन, प्रत्येकवनस्पतीरूप एकेन्द्रिय पर्यायनिविषें वा बेइन्द्रिय तेइन्द्रिय चोइन्द्रियरूप पर्यायनिविषै वा नारक तिर्यंच मनुष्य देवरूप पंचेन्द्रिय पर्यायनिविषै भ्रमण करै है; बहुरि तहां कितेककाल भ्रमणकरि फिर निगोदपर्यायको पावै सो वाका नाम इतरनिगोद है। बहुरि तहां कितेक-काल रहै तहां तें निकसि अन्य पर्यायनिविषै भ्रमण करै है। तहाँ परि-भ्रमण करने का उत्कृष्ट काल पृथ्वी आदि स्थावरनिविषै असंख्यात कल्पमात्र है अर द्वीद्रियादि पंचेन्द्रियपर्यंत साधिक दोय हजार सागर है अर इतरनिगोदतें निकसि कोई स्थावर पर्याय पाय बहुरि निगोद जाय ऐसें एकेंद्रियपर्यायनिविषै उत्कृष्ट परिभ्रमणकाल असख्यात पुद्गल परिवर्तन मात्र है। बहुरि जघन्य सर्वत्र एक अतर्मुहूर्त काल है। ऐसें घना तो एकेन्द्रिय पर्यायनिका ही धरना है। अन्य पर्याय पावना तो काकतालीय न्यायवत् जानना। या प्रकार इस जीवकै अनादि ही तें कर्मबंधरूप रोग भया है।

इति कर्म्मबन्धननिदान वर्णनम्।

अब इस कर्मबन्धनरूप रोगके निमित्ततें जीवकी कैसी अवस्था होय रही है सो कहिए है। प्रथम तो इस जीवका स्वभाव चैतन्य है। सो सबनिका सामान्यविशेष स्वभाव चैतन्य है सो सबनिका सामान्य-विशेष स्वरूपका प्रकाशनहारा है। जो उनका स्वरूप होय सो आपकों प्रतिभासै है तिसहीका नाम चैतन्य है। तहाँ सामान्यरूप प्रतिभासने-का नाम दर्शन है, विशेषरूप प्रतिभासनेका नाम ज्ञान है। सो ऐसे स्वभावकरि त्रिकालवर्ती सर्वगुणपर्यायसहित सर्व पदार्थनिकों प्रत्यक्ष युगपत् बिना सहाय देखै जानै ऐसी आत्माविषें शक्ति सदा काल है।

परन्तु अनादिहीतैं ज्ञानावरण दर्शनावरणका सम्बन्ध है ताके निमित्ततैं इस शक्तिका व्यक्तपना होता नाहीं। तिन कर्मनिका क्षयोपशमतैं किंचित् मतिज्ञान, श्रुतज्ञान वा अचक्षुदर्शनपाइए है अर कदाचित् चक्षुदर्शन वा अवधिदर्शन भी पाइए है। सो इनिकी भी प्रवृत्ति कैसें सो दिखाइए है।

सो प्रथम तो मतिज्ञान है सो शरीरके अंगभूत जे जीभ, नासिका, नयन, कान, स्पर्शन ए द्रव्यइन्द्रिय अर हृदयस्थान विषें आठ पांखड़ीका फूल्या कमलके आकार द्रव्यमन तिनके सहायहीतैं जानै है। जैसें जाको दृष्टि मन्द होय सो अपने नेत्रकरि ही देखै है परन्तु चश्मा दीए हीं देखै, बिना चश्मेके देख सकै नाहीं। तैसें आत्माका ज्ञान मन्द है सो अपने ज्ञानहीकरि जानै है परन्तु द्रव्यइन्द्रिय वा मनका सम्बन्ध भए ही जानै, तिन बिना जान सकै नाहीं। बहुरि जैसें नेत्र तो जैसाका तैसा है अर चश्मा विषें किछू दोष भया होय तो देखि सकै नाहीं अथवा थोरा दीसै अथवा और दीसैं, तैसें अपना क्षयोपशम तो जैसाका तैसा है अर द्रव्य इन्द्रिय वा मनके परमाणु अन्यथा परिणमें होंय तो जान सकै नाहीं, अथवा थोरा जानै अथवा औरका और जानै। जातै द्रव्यइन्द्रिय वा मनरूप परमाणुनिका परिणमनकै अर मतिज्ञानकै निमित्त नैमितिक सम्बन्ध है सो उनका परिणमनके अनुसार ज्ञानका परिणमन होय है। ताका उदाहरण-जैसें मनुष्यादिककै बाल वृद्ध अवस्थाविषें द्रव्यइन्द्रिय वा मन शिथिल होय तब जानपना भी शिथिल होय। बहुरि जैसें शीतवायु आदिके निमित्ततें स्पर्शनादि इन्द्रियनिके वा मनके परमाणु अन्यथा होंय तब जानना न होय वा थोरा जानना होयवा अन्यथा जानना होय। बहुरि इस ज्ञानकै अर बाह्य द्रव्यनिकै भी नैमित्त निमित्तिक सम्बन्ध पाइए है। ताका उदाहरण— जैसें नेत्रइन्द्रियके अन्धकारके परमाणु वा फूला आदिकके परमाणु वा पाषाणादिके परमाणु आदि आड़े आ जाएँ तो देखि न सकै। बहुरि लाल कांच तो आड़ा आवै तो सब लाल ही दीसै, हरित कांच आड़ा

आवै तो हरितही दीसै ऐसें अन्यथा जानना होय। बहुरि दुरबीन चश्मा इत्यादि आड़ा आवै तो बहुत दीसने लग जाय। प्रकाश जल हिलब्बी कांच इत्यादिकके परमाणु आड़े आवें तो भी जैसाका तैसा दीखै। ऐसें अन्य इन्द्रिय वा मनकै भी यथासम्भव निमित्तनैमित्तिक-पना जानना। बहुरि मंत्रादिक प्रयोगतें वा मदिरा पानादिकतें वा धृतादिकके निमित्ततें न जानना वा थोरा जानना वा अन्यथा जानना हो है। ऐसे यहु ज्ञान बाह्य द्रव्यके भी आधीन जानना। बहुरि इस ज्ञानकरि जो जानना हो है सो अस्पष्ट जानना हो है। दूरतें कैसा ही जानै, समीपतें कैसा ही जानै, तत्काल कैसा ही जानै, जानते बहुत बार होय जाय तब कैसा ही जाय तब कैसा ही जानै। काहूकों संशय लिए जानै, काहूकों अन्यथा जानै, काहूकों किंचित् जानै, इत्यादि रूपका निर्मल जानना होय सकै नाहीं। ऐसें यहु मतिज्ञान पराधीनता लिए इन्द्रिय मन द्वारकरि प्रवर्ते है। तहां इन्द्रियनिकरि तो जितने क्षेत्रका विषय होय तितने क्षेत्र विषें जे वर्तमान स्थूल अपने जानने योग्य पुद्गलस्कंध होंय तिनहीको जानै। तिन वर्षे भी जुदे जुदे इन्द्रियनिकरि जुदे जुदे कालविषें कोई स्कंधके स्पर्शादिकका जानना हो है। बहुरि मनकरि अपने जानने योग्य किंचिन्मात्र त्रिकाल सम्बन्धी दूर क्षेत्रवर्ती वा समीप क्षेत्रवर्ती रूपी अरूपी द्रव्य वा पर्याय तिनकों अन्यन्त अस्पष्टपने जानै है सो भी इन्द्रियनिकरि जाका ज्ञान भया होय वा अनुमानादिक जाका किया होय तिसहीको जान सकै है। बहुरि कदा-चित् अपनी कल्पनाही करि असत्को जानै है। जैसें सुपने विषै वा जागते भी जे कदाचित् कहीं न पाइए ऐसे आकारादिक चिंतवै वा जैसें नाहीं तैसें मानै। ऐसें मन करि जानना होय है सो यहु इन्द्रिय वा मन द्वारकरि जो ज्ञान हो है ताका नाम मतिज्ञान है। तहां पृथ्वी जल अग्नि पवन वनस्पतीरूप एकेन्द्रियके स्पर्शहीका ज्ञान है। लट शंख आदि बेइन्द्रिय जीवनिकै स्पर्श रसका ज्ञान है। कीड़ा मकोड़ा आदि तेइन्द्रिय जीवनिकै स्पर्श रसगंधका ज्ञान है। भ्रमर मक्षिका पतंगादिक

चौइन्द्रिय जीवनिकै स्पर्श रस गंध वर्ण शब्दनिका ज्ञान है। बहुरि तिर्यंचनिविषै केई संज्ञी हैं केई असंज्ञी हैं। तहां सज्ञीनिकै मनजनित ज्ञान है, असंज्ञीनिकै नाहीं है। बहुरि मनुष्य देव नारकी सज्ञी ही हैं, तिन सबनिकै मनजनित ज्ञान पाइए है, ऐसें मतिज्ञानको प्रवृत्ति जानना।

बहुरि मतिज्ञानकरि जिस अर्थको जान्या होय ताके सम्बन्धतें अन्य अर्थको जार्कार जानिये सो श्रुतज्ञान है। सो दोय प्रकार है। अक्षरात्मक १, अनक्षरात्मक २। तहाँ जैसें 'घट' ए दोय अक्षर सुने व देखे सो तो मतिज्ञान भया तिनके सम्बन्धतें घट पदार्थ का जानना भया सो श्रुतज्ञान भया, ऐसें अन्य भी जानना। सो यहु तो अक्षरात्मक श्रुत ज्ञान है। बहुरि जैसे स्पर्शकरि शीतका जानना भया सो तो मतिज्ञान है ताके सम्बन्धतें यह हितकारी नाहीं यातें भाग जाना इत्यादिरूप ज्ञान भया सो श्रुतज्ञान है, ऐसें अन्य भी जानना। यह अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान है। तहाँ एकेन्द्रियादिक असंज्ञी जीवनिकै तो अनक्षरात्मक ही श्रुतज्ञान है अर शेष सज्ञी पचेन्द्रियकै दोऊ है। सो यहु श्रुतज्ञान है सो अनेक प्रकार पराधीन जो मतिज्ञान ताके भी आधीन है वा अन्य अनेक कारणनिके आधीन हैं, तातें महापराधीन जानना।

बहुरि अपनी मर्यादाके अनुसार क्षेत्रकालका प्रमाण लिए रूपी पदार्थनिको स्पष्टपने जार्कार जानिये सो अवधिज्ञान है सो यह देव नारकीनिकै तो सबकै पाइए है अर संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच अर मनुष्यनिकै भी कोईकै पाइए है। असंज्ञीपर्यन्त जीवनिकै यह होता ही नाहीं। सो यहु भी शरीरादिक पुद्गलनिके आधीन है। बहुरि अवधि के तीन भेद है। देशावधि १, परमावधि २, सर्वावधि ३। सो इनविषै थोरा क्षेत्रकालकी मर्यादा लिए किंचिन्मात्र रूपी पदार्थको जाननहारा देशावधि है सो ही कोई जीवकै होय है। बहुरि परमावधि, सर्वावधि अर मनःपर्यय ए ज्ञान मोक्षमार्गविषें प्रगटै हैं। केवलज्ञान मोक्षमार्ग-स्वरूप है। तातें इस अनादि संसार अवस्था विषें इनका सद्भाव ही

नाहीं है, ऐसें तो ज्ञानकी प्रवृत्ति पाइए है। बहुरि इन्द्रिय वा मनके स्पर्शादिक विषय तिनका सम्बन्ध होतें प्रथम कालविषें मतिज्ञानके पहले जो सत्तामात्र अवलोकनरूप प्रतिभास हो है ताका नाम चक्षु-दर्शन वा अचक्षुदर्शन है। तहाँ नेत्र इन्द्रियकरि दर्शन होय ताका नाम तो चक्षुदर्शन है सो तो चौइन्द्रिय पंचेन्द्रिय जीवनिहोकै हो है। बहुरि स्पर्शन रसन घ्राण श्रोत्र इन च्यार इन्द्रिय अर मन करि दर्शन होय ताका नाम अचक्षुदर्शन है सो यथायोग्य एकेन्द्रियादि जीवनिकै हो है।

बहुरि अवधिके विषयनिका सम्बन्ध होतें अवधिज्ञानके पहले जो सत्तामात्र अवलोकनेरूप प्रतिभास होय ताका नाम अवधिदर्शन है सो जिनकै अवधिज्ञान सम्भवै तिनहीकै यहु हो है। जो यहु चक्षु अचक्षु अवधिदर्शन है सो मतिज्ञान वा अवधिज्ञानवत् पराधीन जानना। बहुरि केवलदर्शन मोक्षस्वरूप है ताका यहाँ सद्भाव ही नाहीं। ऐसें दर्शनका सद्भाव पाइए है। या प्रकार ज्ञान दर्शनका सद्भाव ज्ञाना-वरण दर्शनावरणका क्षयोपशम के अनुसार हो है। जब क्षयोपशम थोरा हो है तब ज्ञानदर्शनकी शक्ति भी थोरी हो है। जब बहुत हो है तब बहुत हो है। बहुरि क्षयोपशमतें शक्ति तो ऐसी बनी रहै अर परिणमनकरि एक जीवकै एक कालविषै एक विषयहीका देखना वा जानना है। इस परिणमनहीका नाम उपयोग है। तहाँ एक जीवकै एक कालविषें कै तो ज्ञानोपयोग हो है कै दर्शनोपयोग हो है। बहुरि एक उपयोगका भी एक ही भेदकी प्रवृत्ति हो है। जैसे मतिज्ञान होय तब अन्य ज्ञान न होय। बहुरि एक भेदविषै भी एक विषयविषै ही प्रवृत्ति हो है। जैसे स्पर्शको जानै तब रसादिकको न जानै। बहुरि एक विषय विषै भी ताके कोऊ एक अंग ही विषै प्रवृत्ति हो है। जैसें उष्णस्पर्शकों जानै तब रूक्षादिककों न जानै। ऐसें एक जीवकै एक कालविषै एक ज्ञेय वा दृश्यविषै ज्ञान वा दर्शनका परिणमन जानना। सो ऐसें ही देखिए है। जब सुनने विषै उपयोग लग्या होय तब नेत्र-निके समीप तिष्ठता भी पदार्थ न दीसै, ऐसें ही अन्य प्रवृत्ति देखिए

है। बहुरि परिणमनविषै शीघ्रता बहुत है ताकरि काहू कालविषै ऐसा मानिए है कि अनेक विषयनिका युगपत् जानना वा देखना हो है सो युगपत् होता नाहीं, क्रम ही करि हो है, संस्कारबलतैं तिनका साधन रहै है। जैसें कागलेके नेत्र के दोय गोलक हैं, पूतरी एक है सो फिरै शीघ्र है ताकरि दोऊ गोलकनिका साधन करै है तैसें ही इस जीवके द्वार तो अनेक हैं अर उपयोग एक सो फिरै शीघ्र है ताकरि सर्व द्वारनिका साधन रहै है।

इहाँ प्रश्न—जो एक कालविषै एक विषयका जानना वा देखना हो है तो इतना ही क्षयोपशम भया कहा, बहुत काहेकूं कहो? बहुरि तुम कहो हो, क्षयोपशमतैं शक्ति हो है तो शक्ति तो आत्माविषै केवलज्ञानदर्शनकी भी पाइए है।

ताकासमाधान—जैसें काहू पुरुषकै बहुत ग्रामनिविषै गमन करने की शक्ति है। बहुरि ताकों काहूने रोक्या अर यहु कह्या, पाँच ग्रामनिविषै जावो परन्तु एक दिनविषैं एक ही ग्रामको जावो। तहाँ उस पुरुष कै बहुत ग्राम जानेकी शक्ति तो द्रव्य अपेक्षा पाइए है, अन्य काल विषैं सामर्थ्य होय, वर्तमान सामर्थ्यरूप नाही है परन्तु वर्तमान पांच ग्रामनितैं अधिक ग्रामनिविषै गमन करि सकै नाहीं। बहुरि पांच ग्रामनि विषैं जानेकी पर्याय अपेक्षा वर्तमान सामर्थ्यरूप शक्ति है जातैं इनविषैं गमन करि सकै है। बहुरि व्यक्तता एक दिनविषैं एक ग्रामको गमन करनेहीकी पाइए है तैसें इस जीवकै सर्वको देखनेकी जाननेकी शक्ति है। बहुरि याकों कर्मने रोक्या अर इतना क्षयोपशम भया कि स्पर्शादिक विषयनिको जानो वा देखो परन्तु एक काल विषै एकहीका जानो वा देखो। तहां इस जीव के सबके देखने जाननेकी शक्ति तो द्रव्यअपेक्षा पाइए है, अन्य-कालविषै सामर्थ्य होय परन्तु वर्तमान सामर्थ्यरूप नाही, जातैं अपने योग्य विषयनितैं अधिक विषयनिकों देखि जानि सकै नाहीं। बहुरि अपने योग्य विषयनिकूं देखने जाननेकी पर्याय अपेक्षा वर्तमान सामर्थ्यरूप शक्ति है जातैं इनिकों देखि जानि

सकै है; बहुरि व्यक्तता एक कालविषै एकहीको देखने वा जानने की पाइए।

बहुरि इहां प्रश्न—जो ऐसैं तो जान्या परन्तु क्षयोपशम तो पाइए अर बाह्य इन्द्रियादिका अन्यथा निमित्त भये देखना जानना न होय वा थोरा होय वा अन्यथा होय सो ऐसैं कर्महीका निमित्त तो न रह्या ?

ताका समाधान—जैसें रोकनहाराने एहु कह्या जो पाँच ग्रामनिविषै एक ग्रामको एक दिनविषें जावो परन्तु इन किंकरनिको साथ लेके जावो तहां वे किंकर अन्यथा परिणमैं तो जाना न होय वा थोरा जाना होय वा अन्यथा जाना होय। तैसें कर्मका ऐसा हो क्षयोपशम भया है जो इतने विषयनिविषै एक विषयको एक कालविषै देखो वा जानो परन्तु इतने बाह्य द्रव्यनिका निमित्त भये देखो वा जानो। तहां वे बाह्य द्रव्य अन्यथा परिणमैं तो देखना जानना न होय वा अन्यथा होय। ऐसें यहु कर्मके क्षयोपशमहीका विशेष है तातैं कर्महीका निमित्त जानना। जैसें काहूकै अंधकारके परमाणु आड़े आएँ देखना न होय, घूघू मार्जारादिकनिकै तिनको आये भी देखना होय। सो ऐसा यहु क्षयोपशमहीका विशेष है। जैसें जैसें क्षयोपशम होय तैसें तैसेंही देखना जानना होय। ऐसें इस जीवकै क्षयोपशम ज्ञानको प्रवृत्ति पाइए है। बहुरि मोक्षमार्गविषैं अवधि मनःपर्यय हो हैं ते भी क्षयोपशमज्ञान ही हैं, तिनिकी भी ऐसै ही एक कालविषै एककों प्रतिभासना वा परद्रव्य का आधीनपना जानना। बहुरि विशेष है सो विशेष जानना। या प्रकार ज्ञानावरण दर्शनावरणका उदयके निमित्ततें बहुत ज्ञानदर्शनके अंशनि का तो अभाव है अर तिनके क्षयोपशमतें थोरे अंशनिका सद्भाव पाइए है।

बहुरि इस जीवकै मोहके उदयतें मिथ्यात्व वा कषायभाव हो हैं। तहाँ दर्शनमोहके उदयतें तो मिथ्यात्वभाव हो हैं ताकरि यहु जीव अन्यथा प्रतीतरूप अतत्वश्रद्धान करे है। जैसें है तैसें तो न मानै है अर जैसें नाहीं है तैसें मानै है। अमर्त्तीक प्रदेशनिका पुंज प्रसिद्ध

ज्ञानादिगुणनिका धारी अनादि निधनवस्तु आप है अर मूर्तीक पुद्गल द्रव्यनिकापिंड प्रसिद्ध ज्ञानादिकनिकरि रहित जिनका नवीन संयोग भया, ऐसे शरीरादिक पुद्गल पर हैं। इनका संयोगरूप नाना प्रकार मनुष्य तिर्यंचादि पर्याय ही हैं, तिस पर्यायनिविषें अहंबुद्धि धारै है, स्व-परका भेद नाहीं करि सकै है। जो पर्याय पावै तिसहीको आपा मानै। बहुरि तिस पर्यायविषै ज्ञानादिक हैं ते तो आपके गुण हैं अर रागादिक हैं ते आपके कर्मनिमित्ततैं उपाधिक भाव भए हैं अर वर्णादिक हैं ते आपके गुण नाहीं हैं, शरीरादिक पुद्गलके गुण हैं। अर शरीरादिकविषै वर्णादिकनिकी वा परमाणुनिकी नाना प्रकार पलटनि हो है सो पुद्गल की अवस्था है सो इन सबनिहीको अपनो स्वरूप जानै है, स्वभाव परभावका विवेक नाहीं होय सकै है। बहुरि मनुष्यादिक पर्यायनिविषै कुटम्ब धनादिकका सम्बन्ध हो है, ते प्रत्यक्ष आपतैं भिन्न हैं अर ते अपने आधीन होय नाहीं परिणमैं हैं तथापि तिन विषैं ममकार करै है। ए मेरे हैं वे काहू प्रकार भी अपने होते नाहीं, यह ही अपनी मानि तैं अपने मानै है। बहुरि मनुष्यादि पर्यायविषै कदाचित् देवादिकका वा तत्त्वनिका अन्यथा स्वरूप जो कल्पित किया ताकी तो प्रतीत करै है अर यथार्थस्वरूप जैसें है तैसें प्रतीति न करै है। ऐसें दर्शनमोहके उदय करि जीवकै अतत्वश्रद्धानरूप मिथ्यात्व-भाव हो है। जहां तीव्र उदय होय है तहां सत्यश्रद्धानतैं घना विपरीत श्रद्धान होय है। जब मन्द उदय होय है तब सत्य श्रद्धानतैं थोरा विपरीत श्रद्धान हो है।

बहुरि चारित्रमोहके उदयतैं इस जीवकै कषायभाव हो हैं तब वह देखता जानता संता परपदार्थनिविषें इष्ट अनिष्टपनो मानि क्रोधादि करै है तहाँ क्रोधका उदय होतें पदार्थनिविषै अनिष्टपनो वा ताका बुरा होना चाहै। कोउ मन्दिरादि अचेतन पदार्थ बुरा लागै तब फोरना तोरना इत्यादि रूपकरि वाका बुरा चाहै। बहुरि शत्रु आदि सचेतन पदार्थ बुरा लागै तब ताकों बध बन्धादिकरि वा

मारनेकरि दुःख उपजाय ताका बुरा चाहै। बहुरि आप वा अन्य सचेतन अचेतन पदार्थ कोई प्रकार परिणए, आपको सो परिणमन बुरा लागै तब अन्यथा परिणमावनेकरि तिस परिणमनका बुरा चाहै। या प्रकार क्रोधकरि बुरा चाहनेकी इच्छा तो होय, बुरा होना भवितव्य आधीन है।

बहुरि मानका उदय होतें पदार्थविषैं अनिष्टपनो मानि ताकों नीचा किया चाहै, आप ऊँचा भया चाहै, मन धूलि आदि अचेतन पदार्थनिविषै घृणा वा निरादरादिककरि तिनको होनता, आपकी उच्चता चाहै। बहुरि पुरुषादिक सचेतन पदार्थनिकों नमावना, अपने आधीन करना इत्यादि रूपकरि तिनकी होनता, आपकी उच्चता चाहै। बहुरि आप लोकविषै जैसें ऊंचा दोसै तैसें शृंगारादि करना वा धन खरचना इत्यादि रूपकरि औरनिकों हीन दिखाय आप ऊंचा हुआ चाहै। बहुरि अन्य कोई आपतें ऊँचा कार्य करै ताको कोई उपाय करि नोचा दिखावै ओर आप कार्य करै ताकूं ऊचा दिखावै; या प्रकार मानकरि अपनी महंतताकी इच्छा तो होय महंतता होनी भवितव्य आधीन है।

बहुरि मायाका उदय होतें कोई पदार्थकों इष्ट मानि नाना प्रकार छलनिकरि ताको सिद्ध किया चाहै। रत्न सुवर्णादिक अचेतन पदार्थनिकी वा स्त्री दासी दासादि सचेतन पदार्थनिकी सिद्धिके अर्थि अनेक छल कर परको ठगनेके अर्थि अपनी अवस्था अनेक प्रकार करै वा अन्य अचेतन सचेतन पदार्थनिकी अवस्था पलटावै इत्यादिरूप छलकरि अपना अभिप्राय सिद्ध किया चाहै। या प्रकार मायाकरि इष्टसिद्धिके अर्थि छल तो करै अर इष्टसिद्धि होना भवितव्य आधीन है।

बहुरि लोभका उदय होतें पदार्थनिकों इष्ट मानि तिनकी प्राप्ति चाहै। वस्त्राभरण धनधान्यादि अचेतन पदार्थनिकी तृष्णा होय, बहुरि स्त्री पुत्रादिक चेतन पदार्थनिकी तृष्णा होय। बहुरि आपकै वा अन्य सचेतन अचेतन पदार्थकै कोई परिणमन होना इष्ट मानि तिनकों तिस

परिणमनरूप परिणमाया चाहै। या प्रकार लोभकरि इष्टप्राप्ति की इच्छा तो होय अर इष्ट प्राप्ति होनी भवितव्य आधीन है। ऐसें क्रोधादिका उदयकरि आत्मा परिणमैं है। तहां एक एक कषाय चार चार प्रकार है। अनन्तानुबन्धी १, अप्रत्याख्यानावरण २, प्रत्याख्यानावरण ३, संज्वलन ४। तहाँ जिनका उदयतैं आत्माकै सम्यक्त्व न होय, स्वरूपाचरण चारित्र न होय सकै ते अनन्तानुबन्धीकषाय हैं।* जिनका उदय होतें देशचारित्र न होय तातैं किंचित् त्याग भी न होय सकै, ते अप्रत्याख्यानावरण कषाय हैं। बहुरि जिनका उदय होतें सकलचारित्र न होय तातैं सर्वथा त्याग न होय सकै, ते प्रत्याख्यानावरण कषाय हैं। बहुरि जिनका उदय होतें सकलचारित्रकों दोष उपज्या करै तातैं यथाख्यातचारित्र न होय सकै, ते संज्वलन कषाय हैं। सो अनादि संसार अवस्थाविषैं इन चारयों ही कषायनिका निरंतर उदय पाइए है। परमकृष्णलेश्यारूप तीव्रकषाय होय तहाँ भी अर शुक्ललेश्यारूप मन्दकषाय होय तहां भी निरन्तर च्यारयोंहीका उदय रहै है। जातैं तीव्र मन्दकी अपेक्षा अनन्तानुबन्धी आदि भेद नाहीं हैं, सम्यक्त्वादि घातनेकी अपेक्षा ए भेद हैं। इनही प्रकृतिनिका तीव्र अनुभाग उदय होतें तीव्र क्रोधादिक हो हैं, मन्द अनुभाग उदय होतें मन्द उदय हो हैं। बहुरि मोक्षमार्ग भए इन च्यारों विषै तीन, दोय, एकका उदय हो है, पीछैं च्यारयोंका अभाव हो है। बहुरि क्रोधादिक च्यारयों कषायनिविषै एककाल एकही का उदय हो है। इन कषायनिकै परस्पर कारणकार्यपनो है। क्रोधकरि मानादिक होय जाय, मानकरि क्रोधादिक होय जाय, तातै काहूकाल भिन्नता भासै, काहूकाल न भासै है। ऐसें कषायरूप परिणमन जानना। बहुरि चारित्रमोहहीके उदयतैं नोकषाय होय हैं तहां हास्यका उदयकरि कहीं इष्टपना मानि प्रफुल्लित हो है, हर्ष मानै है। बहुरि रतिका उदयकरि काहूकों इष्ट मान प्रीति करै है तहां आसक्त हो है। बहुरि अरतिका

* यह पंक्ति खरड़ा प्रति में नहीं है।

उदयकरि काहूकों अनिष्ट मान अप्रीति करै है तहां उद्वेगरूप हो है। बहुरि शोक का उदयकरि कहीं अनिष्टपनों मान दिलगीर हो है, विषाद मानै है। बहुरि भयका उदयकरि किसीकों अनिष्ट मान तिसतैं डरै है, वाका संयोग न चाहै है। बहुरि जुगुप्साका उदयकरि काहू-पदार्थकों अनिष्ट मान ताको घृणा करै है, वाका वियोग च.है है। ऐसें ए हास्यादिक छह जाननै। बहुरि वेदनिके उदयतैं याकै काम परिणाम हो है तहां स्त्रीवेदके उदयकरि पुरुषसों रमनेकी इच्छा हो है अर पुरुषवेदके उदयकरि स्त्रीसों रमनेकी इच्छा हो है अर नपुन्सक-वेदके उदयकरि युगपत् दोऊनिसों रमनेकी इच्छा हो है, ऐसें ए नव तो नोकषाय हैं। क्रोधादि सारिखे ए बलवान नाहीं तातैं इनको ईषत्-कषाय कहैं हैं। यहां नोशब्द ईषत् वाचक जानना। इनका उदय तिन क्रोधादिकनिकी साथ यथासम्भव हो है। ऐसें मोहके उदयतैं मिथ्यात्व वा कषायभाव हो हैं सो ए संसारके मूल कारण ही हैं। इनही करि वर्तमान काल विषें जीव दुःखी हैं अर आगामी कर्मबन्धके भी कारण ए ही हैं। बहुरि इनहोका नाम राग द्वेष मोह है। तहां मिथ्यात्वका नाम मोह है जातैं तहां सावधानीका अभाव है। बहुरि माया लोभ कषाय अर हास्य रति तीन वेदनिका नाम राग है जातैं तहां इष्ट-बुद्धि करि अनुराग पाइए है। बहुरि क्रोध मान कषाय अर अरति शोक भय जुगुप्सानिका नाम द्वेष है जातैं तहां अनिष्ट बुद्धि करि द्वेष पाइए है। बहुरि सामान्यपने सबही का नाम मोह है। तातैं इन विषें सर्वत्र असावधानी पाइए है। बहुरि अन्तरायके उदयतैं जीव चाहै सो न होय। दान दिया चाहै देय न सकै। वस्तुकी प्राप्ति चाहै सो न होय। भोग किया चाहै सो न होय। उपभोग किया चाहै सो न होय। अपनी ज्ञानादि शक्तिको प्रगट किया चाहै सो न प्रगट होय सकै। ऐसें अन्तरायके उदयतैं चाह्या चाहै सो होय नाहीं। बहुरि तिसहीका क्षयोपशमतैं किंचिन्मात्र चाह्या भी हो है। चाहिए तो बहुत है परन्तु किंचिन्मात्र चाह्या हुआ होय है। बहुत दान देना चाहै है परन्तु

थोड़ा ही*) दान देय सकै है। बहुत लाभ चाहै है परन्तु थोड़ाही लाभ हो है। ज्ञानादिक शक्ति प्रगट हो है तहाँ भी अनेक बाह्य कारण चाहिएं। या प्रकार घातिकर्मनिके उदयतें जीवकै अवस्था हो है। बहुरि अघातिकर्मविषें वेदनीयके उदयकरि शरीर विषै बाह्य सुख दुःखका कारण निपजै है। शरीरविषै आरोग्यपना रोगीपनो शक्ति-वानपनो दुर्बलपनो इत्यादि अर क्षुधा तृषा रोग खेद पीड़ा इत्यादि सुख दुःखनिके कारण हो हैं। बहुरि बाह्यविषैं सुहावना ऋतु पवनादिक वा इष्ट स्त्री पुत्रादिक वा मित्र धनादिक, असुहावना ऋतु पवनादिक वा अनिष्ट स्त्री पुत्रादिक वा शत्रु दरिद्र वध बंधनादिक सुख दुःखकों कारण हो हैं। ए बाह्य कारण कहे तिन विषै केई कारण तो ऐसे हैं जिनके निमित्तस्यों शरीरको अवस्था ही सुख दुःखको कारण हो है अर वे ही सुख दुःखकों कारण न हों हैं। बहुरि केई कारण ऐसे हैं जे आप ही सुख दुःखकों कारण हो हैं। ऐसे कारणका मिलना वेदनीयके उदयतें हो है। तहां साता वेदनीयतें सुखके कारण मिलें अर असातावेदनीयतें दुःखके कारण मिलें। सो इहां ऐसा जानना, ए कारणही तो सुख दुःखको उपजावैं नाहीं, आत्मा मोहकर्म का उदयतें आप सुखदुःख मानै है। तहां वेदनीयकर्मका उदयकैं अर मोहकर्मका उदयकैं ऐसाही सम्बन्ध है। जब सातावेदनीयका निपजाया बाह्य कारण मिलै तब तो सुख माननेरूप मोहकर्मका उदय होय अर जब असातावेदनीयका निपजाया बाह्यकारण मिलै तब दुःख मानने-रूप मोहकर्मका उदय होय। बहुरि एक ही कारण काहूकों सुखका, काहूकों दुःखका कारण हो है। जैसें काहूकै सातावेदनीयका उदय होतें मिल्या जैसा वस्त्र सुखका कारण हो है तैसा ही वस्त्र काहूकों असाता वेदनीयका उदय होतें मिल्या दुःखका कारण हो है। तातें बाह्य वस्तु सुखदुःखका निमित्त मात्र हो है। सुख दुःख हो है सो मोहके

* यह या खरडा प्रति में नहीं हैं, किन्तु अन्य सब प्रतियों में हैं। इस कारण आवश्यक जानि दे दी गई हैं।

निमित्ततैं हो है। निर्मोही मुनिनकैं अनेक ऋद्धि आदि परीसह आदि कारण मिलै तो भी सुख दुःख न उपजै। मोही जीवकै कारण मिले वा बिना कारण मिले भी अपने संकल्प हीतें सुख दुःख हुआ ही करै है। तहां भी तीव्रमोहीकै जिस कारणको मिले तीव्र सुख दुःख होय तिसही कारणको मिले मन्दमोहीकै मन्द सुखदुःख होय। तातैं सुख दुःखका मूल बलवान कारण मोहका उदय है। अन्य वस्तु हैं सो बलवान कारण नाहीं। परन्तु अन्य वस्तुकै अर मोही जीवके परिणामनिकै निमित्तनैमित्तिकको मुख्यता पाइए है। ताकरि मोहीजीव अन्य वस्तुहीकों सुखदुःखका कारण मानै है। ऐसें वेदनीयकरि सुखदुःखका कारण निपजै है। बहुरि आयुकर्मके उदयकरि मनुष्यादि पर्यायनिकी स्थिति रहै है। यावत् आयुका उदय रहै तावत् अनेक रोगादिक कारण मिलो, शरीरस्यों सम्बन्ध न छूटै। बहुरि जब आयुका उदय न होय तब अनेक उपाय किये भी शरीरस्यों सम्बन्ध रहै नाहीं, तिसही काल आत्मा अर शरीर जुदा होय। इस संसारविषैं जन्म, जीवन, मरणका कारण आयुकर्म ही है। जब नवीन आयुका उदय होय तब नवीन-पर्यायविषै जन्म हो है। बहुरि यावत् आयुका उदय रहै तावत् तिस पर्यायरूप प्राणनिके धारणतैं जीवना हो है। बहुरि आयुका क्षय होय तब तिस पर्यायरूप प्राण छूटनेतैं मरण हो है। सहज ही ऐसा आयु-कर्मका निमित्त है। और कोई उपजावनहारा, क्षपावनहारा, रक्षाकरनेहारा है नाहीं, ऐसा निश्चय करना। बहुरि जैसा नवीन वस्त्र पहरे कितेक काल पहरे रहै, पीछे ताकूं छोड़ि अन्य वस्त्र पहरे तैसें जीव नवीन शरीर धरे कितेक काल धरे रहै, पीछे ताकूं छोड़ि अन्य शरीर धरै है। तातैं शरीरसम्बन्धअपेक्षा जन्मादिक हैं। जीव जन्मादिरहित नित्य ही है तथापि मोही जीवकै अतीत अनागतका विचार नाहीं। तातैं पर्याय-पर्याय मात्र अपना अस्तित्व मानि पर्याय सम्बन्धी कार्यनि-विषैं ही तत्पर होय रह्या है। ऐसें आयुकरि पर्यायकी स्थिति जाननी। बहुरि नामकर्मकरि यहु जीव मनुष्यादिगतिनिविषै प्राप्त हो है, तिस

पर्यायरूप अपनी अवस्था हो है। बहुरि तहां त्रसस्थावरादि विशेष निपजै हैं। बहुरि तहां एकेंद्रियादि जातिकों धारै है। इस जाति कर्मका उदयके अर मतिज्ञानावरणका क्षयोपशमके निमित्तनैमित्तिकपना जानना। जैसा क्षयोपशम होय तैसी जाति पावै। बहुरि शरीरनिका सम्बन्ध हो है तहां शरीरके परमाणु अर आत्मा के प्रदेशोंका एक बन्धन हो है अर संकोच विस्ताररूप होय शरीरप्रमाण आत्मा रहै है। बहुरि नोकर्मरूप शरीरविषै अंगोपांगादिकका योग्यस्थान प्रमाण लिए हो है। इसहीकरि स्पर्शन रसना आदि द्रव्यइन्द्रिय निपजें हैं वा हृदय स्थान विषै आठ पांखड़ीका फूल्या कमलके आकार द्रव्य मन हो है। बहुरि तिस शरीरहीविषै आकारादिकका विशेष होना अर वर्णादिकका विशेष होना अर स्थूलसूक्ष्मत्वादिकका होना इत्यादि कार्य निपजै हैं सो ये शरीररूप परणिए परमाणु ऐसें परिणमै हैं। बहुरि श्वासोच्छ्वास वा स्वर निपजै हैं सो ये भी पुद्गलके पिंड हैं अर शरीरस्यों एक बंधानरूप हैं। इनविषैं भी आत्माके प्रदेश व्याप्त हैं। तहां श्वासोच्छ्वास तो पवन है सो जैसें आहारकों ग्रहै नीहारकों निकासैं तबही जीवना होय तैसें बाह्यपवनको ग्रहै अर अभ्यंतर पवनको निकासै तब ही जीवितव्य रहै। तातैं श्वासोच्छ्वास जीवितव्यका कारण है। इस शरीरविषैं जैसें हाड़ मांसादिक हैं तैसें ही पवन जानना। बहुरि जैसें हस्तादिकसों कार्य करिये तैसें ही पवनतैं कार्य करिए है। मुखमें ग्रास धरया ताकों पवनतैं निगलिए है, मलादिक पवनतैं हो बाहर काढ़िए है, तैसें ही अन्य जानना। बहुरि नाड़ी वा वायुरोग वा वायगोला इत्यादि ये पवनरूप शरीरके अंग जानने। बहुरि स्वर है सो शब्द है। सो जैसें वीणाकी तांतकों हलाये भाषारूप होने योग्य पुद्गलस्कन्ध हैं, ते साक्षर वा अनक्षर शब्दरूप परिणमै हैं; तैसें तालवा होठ इत्यादि अंगनिकों हलाएं भाषा पर्याप्तिविषैं ग्रहे पुद्गलस्कन्ध हैं, ते साक्षर वा अनक्षर शब्दरूप परिणमै हैं। बहुरि शुभ अशुभ गमनादिक हो है। इहां ऐसा जानना, जैसे दोयपुरुषनिकै इकदंडो बेड़ो है तहां एक

पुरुष गमनादिक किया चाहै अर दूसरा भी गमनादिक करै तो गमनादिक होय सकै, दोऊनिविषैं एक बैठि रहै तो गमनादि होय सकै नाहीं अर दोऊनिविषे एक बलवान होय तो दूसरेको भी घसीट ले जाय तैसें आत्माकै अर शरीरादिकरूप पुद्गलकै एकक्षेत्रावगाहरूप बंधान है तहाँ आत्मा हलनचलनादि किया चाहै अर पुद्गल तिस शक्तिकरि रहित हुआ हलन चलन न करै वा पुद्गलविषै शक्ति पाइए है अर आत्माकीं इच्छा न होय तो हलनचलनादि न होय सकं। बहुरि इन विषं पुद्गल बलवान होय हालै चालै तो ताकी साथ बिना इच्छा भी आत्मा आदि हालै चालै। ऐसें हलन चलनादि होय है। बहुरि याका अपजस आदि बाह्य निमित्त बनै है। ऐसें ये कार्य निपजै हैं, तिनकरि मोहके अनुसार आत्मा सुखी दुःखी भी हो है। नामकर्मके उदयतें स्वयमेव ऐसे नाना प्रकार रचना हो है, और कोई करनहारा नाहीं है। बहुरि तीर्थंकरादि प्रकृति यहां हैं हो नाहीं। बहुरि गोत्रकरि ऊँचा नीचाकुलविषै उपजा हो है तहाँ अपना अधिक हीनपना प्राप्त हो है। मोहके उदय करि - आत्मा सुखी दुःखी भी हो है। ऐसें अघाति कर्मनिका निमित्ततें अवस्था हो है। या प्रकार इस अनादि संसारविषें घाति अघाति कर्मनिका उदयके अनुसार आत्माकै अवस्था हो है। सो हे भव्य ! अपने अन्तरंगविषै विचारकरि देख, ऐसें ही है कि नाहीं। सो ऐसा विचार किये ऐसें ही प्रतिभासै। बहुरि जो ऐसे है तो तू यह मान कि 'मेरे अनादि संसार रोग पाइये है, ताके नाशका मोकों उपाय करना', इस विचारतें तेरा कल्याण होगा।

इति श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक नाम शास्त्रविषें संसार अवस्था निरूपक द्वितीय अधिकार सम्पूर्ण भया ॥२॥

तीसरा अधिकार

संसार अवस्थाका स्वरूप-निर्देश

दोहा

सो निजभाव सदा सुखद, अपवो करो प्रकाश ।
जो बहुविधि भवदुःखनिको, करि है सत्तानाश ॥१॥

अब इस संसार अवस्थाविषै नाना प्रकार दुःख हैं तिनका वर्णन करिए है—जातैं जो संसारविषै भी सुख होय तो संसारतैं मुक्त होने का उपाय काहेको करिये। इस संसारविषैं अनेक दुःख हैं, तिसहीतैं संसारतैं मुक्त होने का उपाय कीजिए है। बहुरि जैसे वैद्य है सो रोग का निदान अर ताकी अवस्थाका वर्णनकरि रोगीको—रोगका निश्चय कराय पीछे तिसका इलाज करने की रुचि करावै है तैसे यहाँ संसार का निदान वा ताकी अवस्थाका वर्णनकरि संसारीको संसार रोगका निश्चय कराय अब तिनका उपाय करनेकी रुचि कराइए है। जैसें रोगी रोगतैं दुःखी होय रह्या है परन्तु ताका मूल कारण जानें नाही, साँचा उपाय जानें नाहीं अर दुःख भी सह्या जाय नाहीं। तब तड़फि तड़फि परवश हुआ तिन दुःखनिकों सहै है परन्तु ताका मूल कारण जानै नाही। याकों वैद्य दुःखका मूलकारण बताव, दुःखका स्वरूप बतावै, या के किये उपायनिकूं झूठ दिखावै तब साँच उपाय करनेको रुचि होय। तैसेंही यहु संसारी संसारतें दुःखी होय रह्या है परन्तु ताका मूल कारण जानं नाहीं अर साँचा उपाय जानै नाहीं अर दुःख भी सह्या जाय नाहीं। तब आपको भासै सो ही उपाय करै तातै दुःख दूर होय नाहीं। तब तड़फि-तड़फि परवश हुआ तिन दुःखनिको सहै है।

दुःखोंका मूल कारण

याकौं यहाँ दुःखका मूल कारण बताइए है, दुःखका स्वरूप बताइये है अर तिन उपायनिकूं झूंठे दिखाइये तो साँचे उपाय करनेकी रुचि होय तातैं यह वर्णन इहां करिये है। तहां सब दुःखनिका मूल-कारन मिथ्यादर्शन, अज्ञान अर असंयम हैं। जो दर्शनमोहके उदयतैं भया अतत्वश्रद्धान मिथ्यादर्शन है ताकरि वस्तुरूपकी यथार्थ प्रतीति न होय सकै है, अन्यथा प्रतीति हो है। बहुरि तिस मिथ्यादर्शनहीके निमित्ततैं क्षयोपशमरूप ज्ञान हैं सो अज्ञान होय रह्या है। ताकरि यथार्थ वस्तुरूपका जानना न हो है, अन्यथा जानना हो है। बहुरि चारित्रमोहके उदयतैं भया कषायभाव ताका नाम असंयम है ताकरि जैसें वस्तुका स्वरूप है तैसा नाही प्रवर्त्ते है, अन्यथा प्रवृत्ति हो है। ऐसैं ये मिथ्यादर्शनादिक हैं तेई सब दुःखनिके मूलकारन हैं। कैसें ? सो दिखाइये है :—

मिथ्यात्व का प्रभाव

मिथ्यादर्शनादिककरि जीवकै स्व-पर-विवेक नाहीं होइ सकै है, एक आप आत्मा अर अनंत पुद्गलपरमाणुमय शरीर इनका संयोगरूप मनुष्यादिपर्याय निपजै है तिस पर्यायहीको आपो मानै है। बहुरि आत्माका ज्ञानदर्शनादि स्वभाव है ताकरि किंचित् जानना देखना हो है। अर कर्मउपाधितैं भये क्रोधादिकभाव तिनरूप परिणाम पाइए है। बहुरि शरीरका स्पर्श रस गंध वर्ण स्वभाव है सो प्रगटै है अर स्थूल कृषादिक होना वा स्पर्शादिकका पलटना इत्यादि अनेक अवस्था हो है। इन सबनिको अपना स्वरूप जानै है। तहां ज्ञानदर्शनकी प्रवृत्ति इन्द्रिय मनके द्वारे हो है तातैं यहु मानै है कि ए त्वचा जीभ नासिका नेत्र कान मन ये मेरे अंग है। इनकरि मैं देखूं जानूं हूं, ऐसी मानि तातैं इन्द्रियनिविषै प्रीति पाइए है।

मोहजनित–विषयाभिलाषा

बहुरि मोहके आवेशतैं तिन इन्द्रियनिके द्वारा विषय ग्रहण

की इच्छा हो है। बहुरि तिन विषयनिका ग्रहण भये तिस इच्छा के मिटनेतें निराकुल हो है तब आनन्द मानै है। जैसें कूकरा हाड़ चाबै ताकरि अपना लोहू निकसै ताका स्वाद लेय ऐसें मानै, यहु हाड़निका स्वाद है। तैसें यहु जीव विषयनिका जानैं ताकरि अपना ज्ञान प्रवर्त्तै, ताका स्वाद लेय ऐसें मानै, यहु विषयका स्वाद है सो विषयमें तो स्वाद है नाहीं। आप ही इच्छा करी थी ताको आप ही जानि आप ही आनन्द मान्या परन्तु मैं अनादि अनंतज्ञानस्वरूप आत्मा हूं ऐसा निःकेवलज्ञानका तो अनुभव है नाहीं। बहुरि मैं नृत्य देख्या, राग सुन्या, फूल सूंघ्या, पदार्थ स्पर्शा, स्वाद जान्या तथा मोकों यहु जानना, इस प्रकार ज्ञेयमिश्रित ज्ञानका अनुभव है ताकरि विषयनिकरि ही प्रधानता भासै है। ऐसें इस जीवके मोहके निमित्तें विषयनिकी इच्छा पाइये है।

सो इच्छा तो त्रिकालवर्ती सर्वविषयनिके ग्रहण करनेकी है। मैं सर्वको स्पर्शूं, सर्वकूं स्वादूं, सर्व को सूंघूं, सर्वको देखूं, सर्वको सुनूं, सर्वको जानूं, सो इच्छा तो इतनी है अर शक्ति इतनी ही है जो इन्द्रियनिके सम्मुख भया वर्तमान स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण, शब्द तिनविषै काहूको किंचिन्मात्र ग्रहै वा स्मरणादिकतें मनकरि किछू जानै सो भी बाह्य अनेक कारन मिलें सिद्धि होय। तातें इच्छा कबहूं पूर्ण होय नाहीं। ऐसी इच्छा तो केवल ज्ञान भये सम्पूर्ण होय। क्षयोपशमरूप इन्द्रियकरि तो इच्छा पूर्ण होय नाहीं तातें मोहके निमित्ततें इन्द्रियनिकैं अपने अपने विषय ग्रहणकी निरन्तर इच्छा रहिबो ही करै ताकरि आकुलित हुवा दुःखी हो रह्या है। ऐसा दुःखी हो रहा है जो एक कोई विषयका ग्रहणके अर्थि अपना मरनेको भी नाहीं गिनै है। जैसें हाथीकै कपटकी हथिनीका शरीर स्पर्शनेकी अर मच्छकै बड़सीकैं लाग्या मांस स्वादनेकी अर भ्रमरकै कमलसुगन्ध सूंघनेकी अर पतंगकै दीपकका वर्ण देखनेकी अर हिरणकै राग सुननेकी इच्छा ऐसी हो है जो तत्काल मरन भासैं तो भी मरनेको गिनै नाहीं, विषयनिका ग्रहण

करै, जातै मरण होनेतैं इन्द्रियनिकरि विषय सेवनकी पीड़ा अधिक भासै है। इन इन्द्रियनिकी पीड़ाकरि सर्व जीव पीड़ितरूप निर्विचार होय जैसैं कोऊ दुःखी पर्वततैं गिर पड़ै तैसैं विषयनिविषैं झंपापात ले हैं। नाना कष्टकरि धनको उपजावैं ताकों विषयके अर्थि खोवैं। बहुरि विषयनिके अर्थि जहां मरन होता जानैं तहां भी जाय, नरकादिको कारन जे हिंसादिक कार्य तिनको करैं वा क्रोधादि कषायनिकों उपजावैं, कहा करैं, इन्द्रियनिकी पीड़ा सही न जाय तातैं अन्य विचार किछू आवता नाहीं। इस पीड़ाही करि पीड़ित भये इन्द्रादिक हैं ते भी विषयनिविषैं अति आसक्त हो रहे हैं। जैसैं खाज रोगकरि पीड़ित हुआ पुरुष आसक्त होय खुजावै है, पीड़ा न होय तो काहेकों खुजावै; तैसैं इन्द्रिय रोगकरि पीड़ित भये इन्द्रादिक आसक्त होय विषय सेवन करैं हैं, पीड़ा न होय तो काहेकों विषय सेवन करैं ? ऐसे ज्ञानावरण दर्शनावरणका क्षयोपशमतैं भया इन्द्रियजनित ज्ञान है सो मिथ्यादर्शनादिके निमित्ततैं इच्छासहित होय दुःखका कारण भया है।

ज्ञान दर्शनावरण के उदय से भया दुःख और उसकी निवृत्ति के उपाय का झूठापरणा

अब इस दुःख दूर होनेका उपाय यह जीव कहा करै है सो कहिये है—इन्द्रियनिकरि विषयनिका ग्रहण भये मेरी इच्छा पूरन होय ऐसा जानि प्रथम तो नाना प्रकार भोजनादिकरि इन्द्रियनिको प्रबल करै है अर ऐसें ही जानै है जो इन्द्रिय प्रबल रहे मेरे विषय ग्रहणकी शक्ति विशेष हो है। बहुरि तहां अनेक बाह्यकारण चाहिए है तिनका निमित्त मिलावै है। बहुरि इन्द्रिय हैं ते विषयको सन्मुख भए ग्रहैं तातैं अनेक बाह्य उपाय करि विषयनिका अर इन्द्रियनिका संयोग मिलावै है। नाना प्रकार वस्त्रादिकका वा भोजनादिकका वा पुष्पादिकका वा मन्दिर आभूषणादिकका वा गायक वादित्रादिकका संयोग मिलावनेके अर्थि बहुत खेदखिन्न हो है। बहुरि इन इन्द्रियनिके सन्मुख विषय रहै तावत् तिस विषयका किंचित् स्पष्ट जानपना रहै। पीछे

मन द्वारे स्मरणमात्र रह जाय। काल व्यतीत होते स्मरण भी मन्द होता जाय तातैं तिन विषयनिकों अपने आधीन राखनेका उपाय कर अर शीघ्र-शीघ्र तिनका ग्रहण किया करै। बहुरि इन्द्रियनिकै तो एक कालविषै एक विषयहीका ग्रहण होय अर यह बहुत ग्रहण किया चाहै तातैं आखता* होय शीघ्र शीघ्र एक विषयका छोड़ औरको ग्रहे। बहुरि वाको छोड़ि औरको ग्रहै, ऐसैं हापटा मारै है। बहुरि जो उपाय याको भासै है सो करै है सो यह उपाय झूठा है। जातैं प्रथम तो इन सबनिका ऐसैं ही होना अपने आधीन नाहीं, महा कठिन है। बहुरि कदाचित् उदय अनुसार ऐसैं ही विधि मिलै तो इन्द्रियनिको प्रबल किये किछू विषय ग्रहणकी शक्ति बधै नाहीं। यह शक्ति तो ज्ञानदर्शन बधे×बध+। सो यह कर्मका क्षयोपशमके अधीन है। किसीका शरीर पुष्ट है ताकै ऐसी शक्ति घाटि दीखिये है। काहूका शरीर दुर्बल है ताकै अधिक दीखिये है। तातैं भोजनादिककरि इन्द्रिय-पुष्टि किये किछू सिद्धि है नाहीं। कषायादि घटनतैं कर्मका क्षयोपशम भये ज्ञानदर्शन बधै तब विषय ग्रहणकी शक्ति बधै है। बहुरि विषयनिका संयोग मिलावै सो बहुतकालताई रहता नाहीं अथवा सर्व विषयनिका संयोग मिलता ही नाहीं। तातैं यह आकुलता रहिबो ही करै। बहुरि तिन विषयनिको अपने आधीन राखि शीघ्र शीघ्र ग्रहण करै सो वे आधीन रहते नाहीं। वे तो जुदे द्रव्य अपने आधीन परिणमै हैं वा कर्मोदयके आधीन है। सो ऐसा कर्मका बन्धन यथायोग्य शुभ भाव भए होय। फिर पीछे उदय आवै सो प्रत्यक्ष दीखिये है। अनेक उपाय करते भी कर्मका निमित्त बिना सामग्री मिलै नाहीं। बहुरि एक विषयको छोड़ि अन्यका ग्रहणको ऐसैं हापटा मारै है सो कहा सिद्धि हो है। जैसैं मणकी भूख वालेको कण मिल्या तो भूख कहा मिटै? तैसैं सर्वका ग्रहणकी जाकै इच्छा ताकै एक विषयका ग्रहण भए इच्छा कैसैं मिटै? इच्छा मिटे बिना सुख होता नाहीं। तातैं यह उपाय झूठा है।

---

* उतावला, × बढ़ने पर, + बढ़े।

कोऊ पूछै कि इस उपायतें केई जीव सुखी होते देखिए हैं, सर्वथा झूठ कैसें कहो हो ?

ताका समाधान—सुखी तो न हो है, भ्रमतें सुख मानै है। जो सुखी भया तो अन्य विषनिकी इच्छा कैसें रहेगी। जैसें रोग मिट अन्य औषध काहेको चाहै तैसें दुःख मिटें अन्य विषयको काहेको चाहै। तातें विषयका ग्रहणकरि इच्छा थंभि जाय तो हम सुख मानें। सो तो यावत् जो विषय ग्रहण न होय तावत् काल तो तिसकी इच्छा रहै अर जिस समय वाका ग्रहण भया तिसही समय अन्य विषय ग्रहणकी इच्छा होतो दीखये है तो यह सुख मानना कैसे है। जैसें कोऊ महा क्षुधावान् रंक ताको एक अन्नका कण मिल्या ताका भक्षण करि चैन मानै, तैसें यह महातृष्णावान् याको एक विषयका निमित्त मिल्या ताका ग्रहणकरि सुख मानै है। परमार्थतें सुख है नाही।

कोऊ कहै जैसे कण कणकरि अपनी भूख मेटै तैसें एक एक विषयका ग्रहणकरि अपनी इच्छा पूरण करै तो दोष कहा ?

ताका समाधान—जो कण भले होंय तो ऐसें ही मानें। परन्तु जब दूसरा कण मिलै तब तिस कण का निर्गमन हो जाय तो कैसें भूख मिटै ? तैसे ही जानने विषै विषयनिका ग्रहण भले होता जाय तो इच्छा पूरन होय जाय परन्तु जब दूसरा विषय ग्रहण करै तब पूर्व विषय ग्रहण किया था ताका जानना रहै नाही तो कैसें इच्छा पूरण होय ? इच्छा पूरन भये बिना आकुलता मिटै नाहीं। आकुलता मिटै बिना सुख कैसें कह्या जाय। बहुरि एक विषयका ग्रहण भी मिथ्या दर्शनादिकका सद्भावपूर्वक करै है तातें आगामी अनेक दुःखका कारन कर्म बंधै है। जातें यह वर्त्तमानविषें सुख नाहीं, आगामी सुखका कारन नाहीं, तातें दुःख ही है। सोई प्रवचनसार विषें कह्या है—

"सपरं बाधासहियं विच्छिण्णं बंधकारणं विसमं।
जं इंदिएहिं लद्धं त सोक्खं दुक्खमेव तहा*॥१॥

* प्रवचनसार १-७६ में 'तहा' पाठ दिया है।

याका अर्थ—जो इन्द्रियनिकरि पाया सुख सो पराधीन है, बाधासहित है, विनाशीक है, बंधका कारण है, विषम है सो ऐसा सुख तैसा दुखही है, ऐसें इस संसारीकरि किया उपाय झूठा जानना। तो सांचा उपाय कहा।

दुःख निवृत्तिका सांचा उपाय

जब इच्छा तो दूरि होय अर सर्व विषयनिका युगपत् ग्रहण रह्या करै तब यह दुःख मिटे। सो इच्छा तो मोह गये मिटै और सबका युगपत् ग्रहण केवलज्ञान भये होय। सो इनका उपाय सम्यग्दर्शनादिक है, सोई सांचा उपाय जानना। ऐसें तो मोहके निमित्त तें ज्ञानावरण दर्शनावरणका क्षयोपशम भी दुःखदायक है, ताका वर्णन किया।

इहां कोऊ कहै—ज्ञानावरण दर्शनावरण का उदयतें जानना न भया ताकूं दुःखका कारण कहो, क्षयोपशमको काहेको कहा ?

ताका समाधान—जो जानना न होना दुःखका कारण होय तो पुद्गलकै भी दुःख ठहर। तातें दुःखका मूलकारण तो इच्छा है सो इच्छा क्षयोपशमहोतें हो है, तातें क्षयोपशमको दुःख का कारण कह्या है, परमार्थतें क्षयोपशम भी दुःखका कारण नाहीं। जो मोहतें विषय-ग्रहणकी इच्छा हैं सोई दुःखका कारण जानना। बहुरि मोहका उदय है सो दुःखरूप हो है। कैसें सो कहिये है—

दर्शनमोहसे दुःख और उसकी निवृत्ति

प्रथम तो दर्शनमोहके उदयतें मिथ्यादर्शन हो है ताकरि जैसें याकें श्रद्धान है तैसें तो पदार्थ है नाहीं, जैसें पदार्थ है तैसें यह मानै नाहीं, तातें याकै आकुलता ही रहै। जैसें बाउलाको काहूने वस्त्र पहराया, वह बाउला तिस वस्त्रकों अपना अङ्ग जानि आपकूं अर शरीरको एक मानै। वह वस्त्र पहरावनेवालेके आधीन है सो वह कबहू फारै, कबहू जोरै, कबहू खोसै, कबहू नवा पहरावै इत्यादि

चारित्र करै। वह बाउला तिसको अपने आधीन मान, वाकी पराधीन क्रिया होय तातैं महाखेदखिन्न होय। तैसैं इस जीवको कर्मोदयने शरीर सम्बन्ध कराया, वह जीव तिस शरीरको अपना अङ्ग जानि आपको अर शरीरको एक मानै सो शरीर कर्मके आधीन कबहू कृष होय, कबहू स्थूल होय, कबहू नष्ट होय, कबहू नवीन निपजै इत्यादि चरित्र होय। यह जीव तिसको आपके आधीन जानै, वाको पराधीन क्रिया होय तातैं महाखेदखिन्न हो है। बहुरि जैसैं जहाँ बाउला तिष्ठै था तहाँ मनुष्य घोटक धनादिक कहीतैं आन उतरे, वह बाउला तिन कौं अपनो जानै, वे तो उन्हींके आधीन, कोऊ आवै, कोऊ जावै, कोऊ अनेक अवस्थारूप परिणमै। यह बाउला तिनको अपने आधीन मानै, उनकी पराधीन क्रिया होइ तब खेदखिन्न होय। तैसैं यह जीव जहां पर्याय धरै वहां स्वयमेव पुत्र घोटक धनादिक कहींतैं आन प्राप्त भये, यह जीव तिनकों अपने जानै सो वे तो उनहीके आधीन, कोऊ आवै कोऊ जावै,, कोऊ अनेक अवस्थारूप परिणमै। यह जीव तिनको अपने आधीन मानै, उनकी पराधीन क्रिया होइ तब खेद खिन्न होय।

इहाँ कोऊ कहै, काहूकालविषै शरीरकी वा पुत्रादिकी इस जीव के आधीन भी तो क्रिया होती देखिये है तब तो सुखी हो है।

ताका समाधान—शरीरादिककी, भवितव्यकी अर जीवकी इच्छा की विधि मिले कोई एक प्रकार जैसैं वह चाहै तैसैं परिणमै तातैं काहू कालविषै वाहीका विचार होतें सुखकी सी आभासा होय परन्तु सर्व ही तो सर्व प्रकार यह चाहै तैसैं न परिणमै। तातैं अभि-प्रायविषै तो अनेक आकुलता सदाकाल रहबो ही करै। बहुरि कोई कालविषै कोई प्रकार इच्छा अनुसार परिणमता देखिकरि यह जीव शरीर पुत्रादिक विषै अहंकार ममकार करै है। सो इस बुद्धिकरि तिनके उपजावनेको वा बधावनेको वा रक्षा करनेकी चिंताकरि निरन्तर व्याकुल रहै है। नाना प्रकार कष्ट सहकरि भी तिनका भला चाहै है। बहुरि जो विषयनिको इच्छा हो है, कषाय हो है, बाह्य

सामग्रीविषैं इष्ट अनिष्टपनों मानै है, उपाय अन्यथा करै है साँचा उपायको न श्रद्धहै है, अन्यथा कल्पना करै है सो इन सबनिका मूल-कारण एक मिथ्यादर्शन है। याका नाश भए सबनिका नाश होइ जाय तातैं सब दुःखनिका मूल यह मिथ्यादर्शनके नाशका उपाय भी नाहीं करै है। अन्यथा श्रद्धानकों सत्य श्रद्धान मानै, उपाय काहेको करै। बहुरि संज्ञी पंचेन्द्रिय कदाचित् तत्व निश्चय करनेका उपाय विचारै तहां अभाग्यतैं कुदेव कुगुरु कुशास्त्र का निमित्त बनै तो अतत्त्व श्रद्धान पुष्ट होई जाय; यह तो जानै कि इनतैं मेरा भला होगा, वे ऐसा उपाय करैं जाकरि यह अचेत होय जाय। वस्तु स्वरूपका विचार करनेका उद्यमी भया सो विपरीत विचारविषै दृढ़ होय जाय। तब विषयकषाय की वासना बधनेतैं अधिक दुःखी होइ। बहुरि कदाचित् सुदेव सगुरु सुशास्त्रका भी निमित्त बनि जाय तो तिनका निश्चय उपदेशको तो श्रद्धहै नाहीं, व्यवहार श्रद्धानकरि अतत्वश्रद्धानी ही रहै। तहां मन्द कषाय वा विषय इच्छा घटै तो थोरा दुःखी होय, पीछे बहुरि जैसाका तैसा होइ जाय। तातैं यह संसारी उपाय करै सो भी झूठा ही होय। बहुरि इस संसारीकै एक यह उपाय है जो आपके जैसा श्रद्धान है तैसैं पदार्थनिको परिणमाया चाहै सो वै परिणमैं तो याका सांचा श्रद्धान हो जाय परन्तु अनादि निधन वस्तु जुदी जुदी अपनी मर्यादा लिये परिणमैं है. कोऊ कोऊके आधीन नाहीं। कोऊ किसीका परिणमाया परिणमैं नाहीं। तिनको परिणमाया चाहै सो उपाय नाहीं। यह तो मिथ्यादर्शन ही है। तो सांचा उपाय कहा है? जैसे पदार्थ-निका स्वरूप है तैसैं श्रद्धान होइ तो सर्व दुःख दूरि हो जाय। जैसैं कोऊ मोहित होय मुरदाको जीवता मानै वा जिवाया चाहै सो आप ही दुःखी हो है। बहुरि वाकों मुरदा मानना अर यह जिवाया जीवेगा नाहीं ऐसा मानना सो ही तिस दुःख दूर होनेका उपाय है। तैसैं मिथ्यादृष्टी होइ पदार्थनिको अन्यथा मानै, अन्यथा परिणमाया चाहै तो आप ही दुःखी हो। बहुरि उनको यथार्थ मानना अर ए

परिणमाए अन्यथा परिणमैंगे नाहीं ऐसा मानना सोही तिस दु:खके दूर होनेका उपाय है। भ्रमजनित दु:खका उपाय भ्रम दूर करना ही है। सो भ्रम दूर होनेतें सम्यक्‌श्रद्धान होय सो ही सत्य उपाय जानना।

चारित्रमोहसे दु:ख और उसकी निवृत्ति

बहुरि चारित्रमोहके उदयतें क्रोधादि कषायरूप वा हास्यादि नोकषायरूप जीवके भाव हो हैं। तब यह जीव क्लेशवान होय दु:खी होता संता विह्वल होय नाना कुकार्यनिविषै प्रवर्तै है। सोई दिखाइए है—जब याकै क्रोध कषाय उपजै तब अन्यका बुरा करने की इच्छा होई। बहुरि ताके अर्थि अनेक उपाय विचारै। मरमच्छेद गाली-प्रदानादिरूप बचन बोलै। अपने अंगनि करि वा शस्त्रपाषाणादिकरि घात करै। अनेक कष्ट सहनेकरि वा धनादि खर्चनेकरि वा मरणादि-करि अपना भी बुरा कर अन्यका बुरा करनेका उद्यम करै। अथवा औरनि करि बुरा होता जानै तो औरनिकरि बुरा करावै। वाका स्वयमेव बुरा होय तो अनुमोदना करै। वाका बुरा भए अपना किछू भी प्रयोजन सिद्ध न होय तो भी वाका बुरा करै। बहुरि क्रोध होते कोई पूज्य वा इष्ट भी बीचि आवै तो उनको भी बुरा कहै। मारने लगि जाय, किछू विचार रहता नाहीं। बहुरि अन्यका बुरा न होई तो अंतरंग विषै आप ही बहुत सन्तापवान होइ वा अपने ही अंगनिका घात करै वा विषादकरि मरि जाय। ऐसी अवस्था क्रोध होते होहै। बहुरि जब याकै मानकषाय उपजै तब औरनिको नीचा वा आपको ऊंचा दिखावनेकी इच्छा होइ। बहुरि ताके अर्थि अनेक उपाय विचारै अन्यकी निंदा करै, आपकी प्रशंसा करै वा अनेक प्रकारकरि औरनिकी महिमा मिटावै, आपकी महिमा करै। महाकष्टकरि धनादिकका संग्रह किया ताको विवाहादि कार्यनिविषै खरचै वा देना करि भी खर्चै। मूए पीछैं हमारा जस रहेगा ऐसा विचारि अपना मरन करिकैं भी अपनी महिमा बधावै। जो अपना सन्मानादि न करै ताकों भय आदिक दिखाय दु:ख उपजाय अपना सम्मान करावै। बहुरि मान होतें

कोई पूज्य बड़े होहिं तिनका भी सम्मान न करै, किछू विचार रहता नाहीं। बहुरि अन्य नीचा, आप ऊँचा न दीसै तो अपने अंतरंग विषै आप बहुत सन्तापवान् होय वा अपने अंगनिका घात करै वा विषाद-करि मरि जाय। ऐसी अवस्था मान होते होय है। बहुरि जब याकै मायाकषाय उपजै तब छलकरि कार्य सिद्ध करने की इच्छा होय। बहुरि ताके अर्थि अनेक उपाय विचारै, नाना प्रकार कपटके वचन कहै, कपटरूप शरीर अवस्था करै, बाह्य वस्तुनिको अन्यथा दिखावै। बहुरि जिन विषै अपना मरन जानै ऐसे भी छल करैं; बहुरि कपट प्रगट भये अपना बहुत बुरा होई, मरनादिक होई तिनको भी न गिनै। बहुरि माया होतैं कोई पूज्य वा इष्टका भी सम्बन्ध बनै तो उनस्यों भी छल करै, किछू विचार रहता नाहीं। बहुरि छलकरि कार्यसिद्ध न होइ तो आप बहुत संतापवान होय, अपने अंगनिका घात करै वा विषादिकरि मरि जाय। ऐसी अवस्था माया होते हो है। बहुरि जब वाकै लोभ कषाय उपजै तब इष्ट पदार्थका लाभ की इच्छा होय, ताके अर्थि अनेक उपाय विचारै याके साधनरूप वचन बोलै, शरीरकी अनेक चेष्टा करै, बहुत कष्ट सहै, सेवा करै, विदेशगमन करै, जाकरि मरन होता जानै सो भी कार्य करै। घना दुःख जिनविषै उपजै ऐसा कार्य होय तहां भी अपना प्रयोजन साधै, किछू विचार रहता नाहीं। बहुरि जिस इष्ट वस्तुकी प्राप्ति भई है ताकी अनेक प्रकार रक्षा करै है; बहुरि इष्टवस्तुकी प्राप्ति न होय वा इष्टका वियोग होइ तो आप बहुत सन्तापवान होय अपने अंगनिका घात करै वा विषादकरि मरि जाय, ऐसी अवस्था लोभ होते हो है; ऐसें कषाय-निकरि पीड़ित हुआ इन अवस्थानिविषें प्रवर्ते है।

बहुरि इन कषायनिकी साथ नोकषाय हो हैं। जहाँ जब हास्य कषाय होइ तब आप विकसित होइ प्रफुल्लित होइ सो यह ऐसा जानना जैसा वायवालेका हंसना; नाना रोगकरि आप पीड़ित है, कोई कल्पनाकरि हंसने लग जाय है। ऐसें ही यह जीव अनेक पीड़ा-

सहित है, कोई झूठो कल्पनाकरि आपका सुहावता कार्य मानि हर्ष मानै है। परमार्थतें दुःखी हो है। सुखी तो कषाय रोग मिटे होगा। बहुरि जब रति उपजै है, तब इष्ट वस्तुविषै अति आसक्त हो है। जैसें बिल्ली मूँसाको पकड़ि आसक्त हों है, कोऊ मारै तो भी न छोरै। सो इहाँ इष्टपना है। बहुरि वियोग होनेका अभिप्राय लिये आसक्तता हो है ताते दुःखही है। बहुरि जब अरति उपजै तब अनिष्ट वस्तुका संयोग पाय महा व्याकुल हो है। अनिष्टका संयोग भया सो आपकूँ सुहावता नाहीं। सो यह पीड़ा सही न जाय तातै ताका वियोग करने को तड़फड़ै है सो यह दुःख हो है। बहुरि जब शोक उपजै है तब इष्टका वियोग व अनिष्टका संयोग होतें अतिव्याकुल होइ सन्ताप उपजावै, रोवै, पुकारै, असावधान होइ जाय, अपना अंगघात करि मरि जाय, किछू सिद्धि नाहीं तो भी आपही महादुःखी हो है। बहुरि जब भय उपजै है तब काहूको इष्टवियोग, अनिष्टसंयोगका कारण जानि डरै, अति विह्वल होइ, भागै वा छिपै वा शिथिल होइ जाय, कष्ट होनेके ठिकाने प्राप्त होंय वा मरि जाय सो यह दुःख रूपही है। बहुरि जुगुप्सा उपजै है तब अनिष्ट वस्तुसों घृणा करै। ताका तो संयोग भया, आप घृणाकरि भाग्या चाहै, खेदखिन्न होई कैं वाकूं दूर किया चाहै, महादुःखको पावै है। बहुरि तीनूं वेदनकरि जब काम उपजै हैं तब पुरुषवेदकरि स्त्रीसहित रमनेकी अर स्त्रीवेदकरि पुरुष सहित रमनेकी अर नपुंसकवेदकरि दोऊनिस्यों रमनेकी इच्छा हो है। तिस-करि अति व्याकुल हो है, आताप उपजै है, निर्लज्ज हो है, धन खर्चे है। अपजसको न गिनै है। परम्परा दुःख होइ वा दंडादिक होय ताको न गिनै है। कामपीडातै बाउला हो है, मरि जाय है। सो रसग्रंथनि-विषै कामकी दस दशा कही हैं। तहाँ बाउला होना मरण होना लिख्या है। वैद्यक शास्त्रनिमें ज्वरके भेदनिविषैं कामज्वर मरणका कारण लिख्या है। प्रत्यक्ष कामकरि मरणपर्यन्त होते देखिये है। कामान्धकै किछू विचार रहता नाहीं। पिता पुत्री वा मनुष्य

तिर्यंचणी इत्यादितें रमने लगि जाय है। ऐसी कामकी पीड़ा महा-दुःखरूप है। या प्रकार कषाय वा नोकषायनिकरि अवस्था हो है। इहां ऐसा विचार आवै है जो इन अवस्थाविषै न प्रवर्तें तो क्रोधादिक पीड़ें अर अवस्थानिविषै प्रवर्ते तो मरण पर्यंत कष्ट होइ। तहाँ मरण पर्यन्त कष्ट तो कबूल करिये है अर क्रोधादिककी पीड़ा सहनी कबूल न करिये है। तातैं यह निश्चय भया जो मरणादिकतैं भी कषायनिक पीड़ा अधिक है। बहुरि जब याकैं कषायका उदय होइ तब कषाय किये बिना रह्या जाता नाहीं। बाह्य कषायनिके कारण आय मिलैं तो उनके आश्रय कषाय करै, न मिलैं तो आप कारण बनावै। जैसें व्यापारादि कषायनिका कारण न होइ तो जूआ खेलना वा अन्य क्रोधादिकके कारण अनेक ख्याल खेलना वा दुष्ट कथा कहनी सुननी इत्यादिक कारण बनावै है। बहुरि काम क्रोधादि पोड़ै शरीरविषै तिनरूप कार्य करनेकी शक्ति न होइ तो औषधि बनावै, अन्य अनेक उपाय करै। बहुरि कोई कारण बनै नाहीं तो अपने उपयोग विषै कषायनिको कारणभूत पदार्थनिका चितवनकरि आप ही कषायरूप परिणमै। ऐसैं यह जीव कषायभावनिकरि पीड़ित हुआ महान् दुःखोहो है। बहुरि जिस प्रयोजनको लिये कषायभाव भया है तिस प्रयोजनकी सिद्धि होय तो यह मेरा दुःख दूरि होय अर मोकूं सुख होय, ऐसे विचारि तिस प्रयोजनकी सिद्धि होनेके अर्थि अनेक उपाय करना सो तिस दुःख दूर होनेका उपाय मानै है। सो इहाँ कषायभावनितैं जो दुःख हो है सो तो सांचा हो है, प्रत्यक्ष आप ही दुःखी हो है। बहुरि यह उपाय करै सो झूंठा है। काहेतै सो कहिए है – क्रोध विषैं तो अन्यका बुरा करना, मानविषैं औरनिकूं नीचा करि आप ऊँचा होना मायाविषैं छलकरि कार्य सिद्धि करना, लोभविषै इष्टका पावना, हास्यविषैं विकसित होनेका कारण बन्या रहना, रतिविषैं इष्टसंयोगका बन्या रहना, अरतिविषैं अनिष्टका दूर होना, शोकविषैं शोकका कारण मिटना, भयविषैं भयका मिटना, जुगुप्साविषैं जुगुप्साका कारण दूर

होना, पुरुषवेदविषैं स्त्रीस्यों रमना, स्त्रीवेदविषैं पुरुषस्यों रमना, नपुंसकवेदविषैं दोऊनिस्यों रमना, ऐसें प्रयोजन पाइये है। सो इनकी सिद्धि होय तो कषाय उपशमनेतैं दुःख दूरि होय जाय, सुखी होय परन्तु इनकी सिद्धि इनके किये उपायनिके आधीन नाहीं, भवितव्यके आधीन हैं। जातैं अनेक उपाय करते देखिए है अर सिद्धि न हो है। बहुरि उपाय बनना भी अपने आधीन नाहीं, भवितव्य के आधीन है। जातैं अनेक उपाय करना विचारै और एक भी उपाय न होता देखिये है। बहुरि काकतालीय न्यायकरि भवितव्य ऐसा ही होय, जैसा आपका प्रयोजन होय तैसा ही उपाय होय अर तातैं कार्य की सिद्धि भी होय जाय तो तिस कार्य सम्बन्धी कोई कषायका उपशम होय परन्तु तहां थम्भाव होता नाहीं। यावत् कार्य सिद्ध न भया तावत् तो तिस कार्य सम्बन्धी कषाय थी, जिस समय कार्य सिद्ध भया तिस ही समय अन्य कार्य सम्बन्धी कषाय होइ जाय। एक समय मात्रभी निराकुल रहै नाहीं। जैसें कोऊ क्रोधकरि काहूका बुरा विचारै था, वाका बुरा होय चुक्या तब अन्य सों क्रोधकरि वाका बुरा चाहने लाग्या अथवा थोरी शक्ति थी तब छोटेनिका बुरा चाहै था, घनी शक्ति भई तब बड़ेनिका बुरा चाहने लाग्या। ऐसे ही मानमाया लोभादिक करि जो कार्य विचारै था सो सिद्ध होय चुक्या तब अन्य विषैं मानादिक उपजाय तिस की सिद्धि किया चाहै। थोरी शक्ति थी तब छोटे कार्यको सिद्धि किया चाहै था, घनी शक्ति भई तब बड़े कार्य की सिद्धि करनेका अभिलाषी भया। कषायनिविषैं कार्यका प्रमाण होइ तो तिस कार्यको सिद्धि भए सुखी होइ जाय सो प्रमाण है नाहीं, इच्छा बधती ही जाय। सोई आत्मानुशासनविषैं कह्या है—

"आशागर्तःप्रतिप्राणी यस्मिन्विश्वमणूपमम्।
कस्य किं कियदायाति वृथा वो विषयैषिता ॥३६॥

याका अर्थ—आशारूपी खाडा प्राणी प्रति पाइये है। अनंतानंत जीव हैं तिन सबनिकके ही आशा पाइये है। बहुरि वह आशारूपी

खाड़ा कैसा है, जिस एक ही खाड़े विषै समस्त लोक अणुसमान है। अर लोक एक ही सो अब इहां कौन कौनके कितना कितना बटवारे* आवै। तुम्हारे यह विषयनिकी इच्छा है सो वृथा ही है। इच्छा पूर्ण तो होती ही नाहीं। तातैं कोई कार्य सिद्ध भए भी दुःख दूर न होय अथवा कोई कषाय मिटै तिस ही समय अन्य कषाय होय जाय। जैसें काहूकों मारनेवाले बहुत होंय जब कोई काकूं न मारै तब अन्य मारने लगि जांय। तैसें जीवकों दुःख द्यावनेवाले अनेक कषाय हैं, जब क्रोध न होय तब मानादिक होइ जाय, जब मान न होइ तब क्रोधादिक होइ जांय। ऐसें कषायका सद्भाव रह्या ही करै। कोई एक समय भी कषाय रहित होय नाहीं। तातैं कोई कषायका कोई कार्य सिद्ध भये भी दुःख दूर कैसें होई ? बहुरि याकै अभिप्राय तो सर्वकषायनिका सर्वप्रयोजन सिद्ध करनेका है सो होइ तो सुखी होइ। सो तो कदाचित् होइ सकै नाहीं। तातैं अभिप्राय विषै शाश्वत दुःखी ही रहै है। तातैं कषायनिका प्रयोजनकों साधि दुःख दूरिकरि सुखी भया चाहै है, सो यह उपाय झूंठा ही है तो सांचा उपाय कहा है ? सम्यग्दर्शनज्ञानतैं यथावत् श्रद्धान वा जानना होइ तब इष्ट अनिष्ट बुद्धि मिटै। बहुरि तिनहीके बलकरि चारित्रमोहका अनुभाग हीन होय। ऐसें होते कषायनिका अभाव होइ तब तिनकी पीड़ा दूर होय। तब प्रयोजन भी किछू रहै नाहीं, निराकुल होनेतैं महासुखी होइ। तातैं सम्यग्दर्शनादिक ही इस दुःख मेटनेका सांचा उपाय है। बहुरि अन्तरायका उदयतैं जीवके मोहकरि दान लाभ भोग उपभोग वीर्य शक्ति का उत्साह उपजें परन्तु होई सकै नाहीं। तब परम आकुलता होइ सो यह दुःखरूप है ही, याका उपाय यह करैहै कि जो विघ्नके बाह्य कारण सूझै तिनके दूर करनेका उद्यम करे, सो यह उपाय झूठा है। उपाय किये भी अन्तरायका उदय होतैं विघ्न होता देखिये है। अन्तरायका क्षयोपशम भये बिना उपाय भी कार्य विषें विघ्न न हो है। तातैं विघ्न का मूल-

* बांटमें—हिस्सेमें।

कारण अन्तराय है। बहुरि जैसें कूकराकै पुरुषकरि बाही हुई लाठी लागी, वह कूकरा लाठीस्यों वृथा ही द्वेष करै है। तैसें जीवके अन्तरायकरि निमित्त भूत किया बाह्य चेतन अचेतन द्रव्यकरि विघ्न भया यह जीव तिन बाह्य द्रव्यनिसों वृथा द्वेषकरै है। अन्यद्रव्य याकै विघ्न किया चाहै अर याकै न होइ। बहुरि अन्य द्रव्य विघ्न किया न चाहै अर याकै होइ। तातैं जानिए है, अन्य द्रव्यका किछु वश नाहीं, जिनका वश नाहीं तिनसों काहेको लरिये। तातैं यह उपाय झूठा है। सो सांचा उपाय कहा है? मिथ्यादर्शनादिकतैं इच्छाकरि उत्साह उपजै था सो सम्यग्दर्शनादिककरि दूर होय अर सम्यग्दर्शनादिक ही करि अन्तरायका अनुभाग घटै तब इच्छा तो मिट जाय, शक्ति बांध जाय तब वह दुःख दूर होइ निराकुल सुख उपजै। तातैं सम्यग्दर्शनादिकही सांचा उपाय है। बहुरि वेदनीयके उदयतैं दुःख सुखके कारण का संयोग हो है। तहां केई तो शरीर विषै ही अवस्था हो हैं। केई शरीरकी अवस्थाको निमित्तभूत बाह्य सयोग हो है। केई बाह्य ही वस्तूनिका संयोग हो है। तहां असाताके उदयकरि शरीर विषै तो क्षुधा, तृषा, उल्लास, पीड़ा, रोग इत्यादि हो हैं। बहुरि शरीरकी अनिष्ट अवस्थाको निमित्त भूत बाह्य अति शीत उष्ण पवन बंधनादिकका संयोग हो है। बहुरि बाह्य शत्रु कुपुत्रादिक वा कुवर्णादिक सहित स्कंधनिका संयोग हो है। सो मोहकरि इन विषै अनिष्ट बुद्धि हो है। जब इनका उदय होय तब मोह का उदय ऐसा ही आवै जाकरि परिणामनिमें महाव्याकुल होइ इनको दूर किया चाहै। यावत् ये दूर न होंय तावत् दुःखी हो है सो इनका होतें तो सर्व ही दुःख मानें हैं; बहुरि साताके उदयकरि शरीरविषै आरोग्यवानपनो बलवानपनो इत्यादि हो हैं। बहुरि शरीरकी इष्ट अवस्थाको निमित्तभूत बाह्य खानपानादिक वा सुहावना पवनादिकका संयोग हो है। बहुरि बाह्य मित्र सुपुत्र स्त्री किंकर हस्ती घोटक धन धान्य मन्दिर वस्त्रादिकका संयोग हो है सो मोहकरि इनविषै इष्टबुद्धि हो है। जब इनका उदय होय तब मोहका

उदय ऐसा ही आवै जाकरि परिणामनिमें चैन मानै। इनकी रक्षा चाहै, यावत् रहै तावत सुख मानै। सो यह सुख मानना ऐसा है जैसें कोऊ घने रोगनिकरि बहुत पीड़ित होय रह्या था ताके कोई उपचारकरि कोई एक रोगकी कितेक काल किछू उपशांतता भई तब वह पूर्व अवस्थाकी अपेक्षा आपको सुखी कहै, परमार्थतें सुख है नाहीं। तैसें यहु जीव घने दुःखनिकरि बहुत पीड़ित होई रह्या था ताके कोई प्रकार करि कोऊ एक दुःखको कितेक काल किछु उपशांतता भई। तब यहु पूर्वअवस्थाकी अपेक्षा आपको सुखी कहै है, परमार्थतें सुखहै नाहीं। बहुरि याको असाताका उदय होते जो होय ताकरि तो दुःख भासै है तातें ताके दूर करनेका उपाय करै है अर साताका उदय होतें जो होय ताकरि सुख भासै है तातें ताको होनेका उपाय करै है। सो यहु उपाय झूठा है।

प्रथम तो याका उपाय याके आधीन नाहीं, वेदनीयकर्मका उदयके आधीन है। असाताके मेटनेके अर्थि साताकी प्राप्तिके अर्थितो सर्वहीकै यत्न रहैहै परन्तु काहूकै थोरा यत्न किए भी वा न किये भी सिद्धि होइ जाय, काहूके बहुत यत्न किये भी सिद्धि न होय, तातैं जानिये है याका उपाय याके आधीन नाहीं; बहुरि कदाचित् उपाय भी करै अर तैसा ही उदय आवै तो थोरे काल किंचित् काहू प्रकारकी असाताका कारण मिटै अर साताका कारण होय, तहाँ भी मोहके सद्भावतें तिनको भोगनेकी इच्छाकरि आकुलित होय, एक भोग्यवस्तुकी भोगनेकी इच्छा होय, वह यावत् न मिलै तावत् तो वाकी इच्छाकरि आकुलित होय अर वह मिल्या अर उसही समय अन्यको भोगनेकी इच्छा होइ जाय, तब ताकरि आकुलित होइ। जैसे काहूको स्वाद लेनेकी इच्छा भई थी, वाका आस्वाद जिस समय भया तिसही समय अन्य वस्तुका स्वाद लेनेकी वा स्पर्शनादि करनेकी इच्छा उपजै है। अथवा एक ही वस्तुको पहिले अन्य प्रकार भोगनेकी इच्छा होइ, वह यावत् न मिलै तावत् वाकी आकुलता रहै अर वह भोग भया

अर उसही समय अन्य प्रकार भोगनेकी इच्छा होय। जैसें स्त्रीको देख्या चाहै था; जिस समय अवलोकन भया उस ही समय रमनेकी इच्छा हो है। बहुरि ऐसें भोग भोगतें ही तिनके अन्य उपाय करनेकी आकुलता हो है सो तिनको छोरि अन्य उपाय करनेको लागै है। तहाँ अनेक प्रकार आकुलता हो है। देखो एक धनका उपाय करनेमे व्यापारादिक करते बहुरि वाकी रक्षा करनेमें सावधानी करते केती आकुलता हो है। बहुरि क्षुधा तृषा, शीत, उष्ण मल श्लेष्मादि असाताका उदय आया हो करै, ताका निवारणकरि सुख मानै सो काहेका सुख है, यह तो रोगका प्रतिकार है। यावत् क्षुधादिक रहैं तावत् तिनकों मिटावनेकी इच्छाकरि आकुलता होय, वह मिटै तब कोई अन्य इच्छा उपजै ताकी आकुलता होय, बहुरि क्षुधादिक होय तब उनकी आकुलता होइ आवै। ऐसें याके उपाय करते कदाचित् असाता मिटि साता होइ तहाँ भी आकुलता रह्या ही करै, तातैं दुःख ही रहै है। बहुरि ऐसें भी रहना तो होता नाहीं, आपको उपाय करते करते ही कोई असाताका उदय ऐसा आवै ताका किछू उपाय बनि सकै नाहीं अर ताकी पीड़ा बहुत होय, सही जाय नाहीं; तब ताकी आकुलताकरि विह्वल होइ जाय तहाँ महादुःखी होय। सो इस संसार में साताका उदय तो कोई पुण्यका उदयकरि काहूकै कदाचित् ही पाइए है, घने जीवनिकै बहुत काल असाताहीका उदय रहै है। तातै उपाय करै सो झूठा है। अथवा बाह्य सामग्रीतें दुःख मानिये है सो ही भ्रम है। सुख दुःख तो साता असाताका उदय होतं मोहका निमित्ततें हो है सो प्रत्यक्ष देखिये है। लक्ष धनका धनीकै सहस्र धनका व्यय भया तब वह तो दुःखी है अर शत धनका धनीकै सहस्रधन भया तब वह सुख मानै है; बाह्य सामग्री तो वाकै यातैं निन्याणवै गुणी है। अथवा लक्ष धन का धनीकै अधिक धनकी इच्छा है तो वह दुःखी है अर शत धनका धनीकै सन्तोष है तो यह सुखी है। बहुरि समान वस्तु मिले कोऊ सुख मानै है, कोऊ दुःख मानै है। जैसें काहूको मोटा वस्त्रका मिलना

दुःखकारी होइ; बहुरि शरीर विषै क्षुधा आदि पीड़ा वा बाह्य इष्टका वियोग अनिष्टका संयोग भए काहूकै बहुत दुःख होइ, काहूकै थोरा होइ काहूकै न होइ। तातैं सामग्रीके आधीन सुख दुःख नाहीं। साता-असाता का उदय होतें मोहपरिणमनिक निमित्ततें ही सुख दुःख मानिए है।

इहां प्रश्न—जो बाह्य सामग्रीकी तो तुम कहो हो तैसें ही है परन्तु शरोरविषैं तो पोड़ा भए दुःखा होय ही होय अर पोड़ा न भये सुखी होय सो यह तो शरीरअवस्था हीके आधीन सुख दुःख भासै है।

ताका समाधान—आत्माका तो ज्ञान इन्द्रियाधीन है अर इंद्रिय शरीरका अङ्ग है। सो यामें जो अवस्था बीतै ताका जाननेरूप ज्ञान परिणमै ताकी साथ हो मोहभाव होइ ताकरि शरीर अवस्थाकरि सुख दुःख विशेष जानिए है। बहुरि पुत्र धनादिकस्यों अधिक मोह होय ता अपना शरोरका कष्ट सहै ताका थोरा दुःख मानै, उनकों दुःख भए वा संयोग मिटे बहुत दुःख मानै। अर मुनि हैं सो शरीरको पीड़ा होंतेभो किछु दुःख मानते नाहीं। तातैं सुख दुःख मानना तो मोहहीके आधीन है। मोहके अर वेदनीयके निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध है, तातें साता असाताका उदयतें सुख दुःखका होना भासै है। बहुरि मुख्यपने केतोक सामग्री साताके उदयतें हो है, केतीक असाताके उदयतें हो है ताकरि सामग्रीनिकरि सुख दुःख भासै है। परन्तु निर्द्धार किए मोहहीतें सुख दुःख का मानना हो है, औरनिकरि सुख दुःख होने का नियम नाहीं। केवलीकै साता असाताका उदयभी है अर सुखदुःखको कारण सामग्रीका संयोग भी है परन्तु मोहका अभावतें किंचिन्मात्र भी सुख दुःख होता नाहीं, तातैं सुख दुःख मोहजनित ही मानना। तातैं तू सामग्रीके दूर करनेका वा होनेका उपायकरि दुःख मेट्या चाहै, सुखी भया चाहै सो यहु उपाय झूठा है, तो सांचा उपाय कहा है?

सम्यग्दर्शनादिकतें भ्रम दूर होई तब सामग्रीतें सुख दुःख भासै नाहीं, अपने परिणामहोतें भासैं; बहुरि यथार्थ विचारका अभ्यासकरि

अपने परिणाम जैसें सामग्रीके निमित्ततें सुखी दुःखी न होय तैसें साधन करै। सम्यग्दर्शनादि भावनाहीतें मोह मंद होइ जाय तब ऐसी दशा होइ जाय जो अनेक कारण मिले आपकों सुख दुःख होइ नाहीं। जब एक शांतदशारूप निराकुल होइ सांचासुखको अनुभवै तब सर्व दुःख मिटे सुखी होय, यहु सांचा उपाय है। बहुरि आयुकर्मकेनिमित्ततें पर्याय का धारना सो जीवितव्य है, पर्याय छूटना सो मरन है। बहुरि यह जीव मिथ्यादर्शनादिकतें पर्यायहीको आपो अनुभवै है, तातें जीवितव्य रहे अपना अस्तित्व मानै है, मरन भए अपना अभाव होना मानै है। इसही कारणतें सदा काल याके मरनका भय रहै है, तिस भयकरि सदा आकुलता रहै है। जिनको मरनका कारण जाने तिनसों बहुत डरै। कदाचित् उनका संयोग बनै तो महाविह्वल होइ जाय। ऐसें महादुःखी रहै है। ताका उपाय यहु करै है जो मरनेके कारणनिकों दूर राखै है वा उनसों आप भागै है। बहुरि औषधादिकका साधन करै है, गढ़ कोट आदिक बनावै है इत्यादि उपाय करै है। सो यहु उपाय झूठा है, जातें आयु पूर्ण भये तो अनेक उपाय करै है, अनेक सहाई होइ तो भी मरन होइ ही होइ, एक समय मात्र भी न जीवै। अर यावत् आयु पूरी न होइ तावत् अनेक कारण मिलो, सर्वथा मरन न होइ। तातें उपाय किए मरन मिटता नाहीं। बहुरि आयुकी स्थिति पूर्ण होइ ही होइ तातें मरन भी होइ ही होइ, याका उपाय करना झूठा ही है तो सांचा उपाय कहा है?

सम्यग्दर्शनादिकतें पर्यायविषै अहंबुद्धि छूटै, अनादिनिधन आप चैतन्यद्रव्य है तिसविषै अहंबुद्धि आवै। पर्यायको स्वांग समान जानै तब मरणका भय रहै नाहीं। बहुरि सम्यग्दर्शनादिकहोतें सिद्धपद पावै तब मरणका अभाव ही होय। तातें सम्यग्दर्शनादिकही सांचा उपाय है।

बहुरि नामकर्मके उदयतें गति जाति शरीरादिक निपजै हैं तिनविषै पुण्यके उदयतै ज हो हैं ते तो सुखके कारण हो है। पापके

उदयतैं हो हैं ते दुःखके कारण हो हैं। सो इहाँ सुख मानना भ्रम है; बहुरि यहु दुःखके कारण मिटावनेका, सुखके कारण होनेका उपाय करै है सो झूठा है। सांचा उपाय सम्यग्दर्शनादिक है। सो जैसें वेदनीयका कथन करते निरूपण किया तैसें इहाँ भी जानना। वेदनीय अर नामके सुख दुःखका कारणपनाकी समानतातैं निरूपणकी समानता जाननी। बहुरि गोत्र कर्मके उदयतैं ऊँचा नीचा कुलविषै उपजै है। तहाँ ऊँचा कुलविषै उपजे आपको ऊँचा मानै है अर नीचा कुलविषै उपजे आपको नीचा मानै है सो कुल पलटनेका उपाय तो याको भासै नाहीं तातैं जैसा कुल पाया तिसही कुल विषैं आपो मानै है। सो कुल अपेक्षा आपको ऊँचा नीचा मानना भ्रम है। ऊँचा कुलका कोई निद्य कार्य करै तो वह नीचा होइ जाय अर नीचा कुलविषैं कोई श्लाघ्य कार्य करै तो वह ऊँचा होइ जाय। लोभादिकतैं नीच कुलवालेकों उच्चकुलवाला सेवा करने लगि जाय। बहुरि कुल कितेक काल रहै? पर्याय छूटे कुलको पलटन होइ जाय। तातैं ऊँचा नीचा कुलकरि आपकूं ऊँचा नीचा मानै। ऊँचाकुल वालेको नीचा होनेके भयका अर नीचाकुलवालेको पाए हुये नीचापने का दुःख ही है तो याका सांचा उपाय यहु ही है सो कहिए है। सम्यग्दर्शनादिकतै ऊँचा नीचा कुलविषै हर्षविषाद न मानै। बहुरि तिनहीतें जाकी बहुरि पलटन न होइ ऐसा सर्वतैं ऊंचा सिद्धपद पावै, तब सब दुःखमिटै, सुखी होय (तातैं सम्यग्दर्शनादि दुःख मेटने अरु सुख करने का सांचा उपाय है*)। या प्रकार कर्मका उदयकी अपेक्षा मिथ्यादर्शनादिजके निमित्ततैं संसार विषै दुःख ही दुःख पाइए है ताका वर्णन किया। अब इसही दुःखकों पर्याय अपेक्षाकरि वर्णन करिए है।

एकेन्द्रिय जीवोंके दुःख

इस संसारविषैं बहुत काल तो एकेन्द्रिय पर्यायही विषैं बीते है। तातैं अनादिहीतें तो नित्यनिगोद विषै रहना, बहुरि तहांतें निकसना

* यह पंक्ति खरडा प्रति में नहीं है।

ऐसें जैसें भार भूनतें चणाका उछटि जानासो तहांतें निकसि अन्य पर्याय धरै तो त्रसविषें तो बहुत थोरेही काल रहै, एकेंद्रीही विषें बहुत काल व्यतीत करै है। तहां इतरनिगोदविषें बहुत रहना होइ। अर कितेक काल पृथिवी अप तेज वायु प्रत्येक वनस्पतीविषै रहना होई। नित्य निगोदतें निकसे पीछें त्रसविषें तो रहनेका उत्कृष्ट काल साधिक दो हजार सागर हो है अर एकेन्द्रियविषें उत्कृष्ट रहनेका काल असंख्यात पुद्गल परावतन मात्र है अरु पुद्गल परावर्तनका काल ऐसा है जाका अनन्तवां भागविषैंभी अनन्ते सागर हो हैं। तातें इस संसारीके मुख्य-पने एकेन्द्रिय पर्यायविषैही काल व्यतीत हो है। तहाँ एकेन्द्रियकै ज्ञानदर्शन की शक्ति तो किंचिन्मात्र हो रहै है। एक स्पर्शन इन्द्रियके निमित्ततें भया मतिज्ञान अर ताके निमिततें भया श्रुतज्ञान अर स्पर्श-नइन्द्रियजनित अचक्षुदर्शन जिनकरि शोत उष्णादिकको किंचित् जानै देखै है, ज्ञानावरण दर्शनावरणके तीव्र उदयकरि यातें अधिक ज्ञानदर्शन न पाइए है अर विषयनिकी इच्छा पाइए है तातैं महादुःखी हैं। बहुरि दर्शनमोहके उदयतें मिथ्यादर्शन हो है ताकरि पर्यायहीको आपो श्रद्धै है, अन्यविचार करनेको शक्ति हो नाहीं। बहुरि चारित्रमोहके उदयतें तीव्र क्रोधादि कषायरूप परिणमैं है जातें उनके केवली भगवानने कृष्ण नील कापोत ए तीन अशुभ लेश्याही कही हैं। सो ए तीव्र कषाय होते ही हो हैं सो कषाय तो बहुत अर शक्ति सर्व प्रकारकरि महाहीन तातैं बहुत दुःखी होय रहे हैं, किछू उपाय कर सकते नाहीं।

इहां कोऊ कहै—ज्ञान तो किंचिन्मात्रही रह्या है, वे कहा कषाय करैं?

ताका समाधान—जो ऐसा तो नियम है नाहीं जेता ज्ञान होय तेता ही कषाय होय। ज्ञान तो क्षयोपशम जेता होय तेता हो है। सो जैसें कोऊ आंधा बहरा पुरुषकै ज्ञान थोरा होते भी बहुत कषाय होते देखिए है तैसें एकेन्द्रियके ज्ञान थोरा होते भी बहुत कषायका होना मानना है। बहुरि बाह्य कषाय प्रगट तब हो है जब कषायके अनुसार

किछु उपाय करै। सो वे शक्तिहीन हैं तातैं उपाय करि सकते नाहीं। तातैं उनकी कषाय प्रगट नाहीं हो है। जैसें कोऊ पुरुष शक्तिहीन है ताके कोई कारणतैं तीव्र कषाय होय परन्तु किछु करि सकते नाहीं। तातैं वाका कषाय प्रगट नाहीं हो है। यूं ही अति दुःखी हो है। तैंसें एकेन्द्रिय जीव शक्तिहीन हैं, तिनकै कोई कारणतैं कषाय हो है परन्तु किछु कर सकै नाहीं, तातैं उनको कषाय बाह्य प्रगट नाहीं हो है; वे आप ही दुःखी हो हैं। बहुरि ऐसा जानना, जहां कषाय बहुत होय अर शक्तिहीन होय तहां घना दुःखो हो है। बहुरि जैसें कषायघटती जाय, शक्ति बधती जाय तैंसें दुःख घटता हो है। सो एकेन्द्रियनिकै कषाय बहुत अर शक्तिहीन तातैं एकेन्द्रिय जीव महादुःखी हैं। उनके दुःख वे ही भोगवै हैं अर केवली जानै हैं। जैसे सन्निपातीका ज्ञान घट जाय अर बाह्य शक्तिके हीनपनेतैं अपनादुःख प्रगट भी न करि सकै परन्तु वह महादुःखी है, तैसे एकेन्द्रियका ज्ञान तो थोरा है अर बाह्य शक्तिहीनपनातैं अपना दुःखकों प्रगट भी न करि सकै है परन्तु महादुःखी है। बहुरि अन्तरायके तीव्र उदय करि बहुत बाह्या होता नाहीं तातैं भी दुःखी ही हो है। बहुरि अघातिकर्मनिविषैं विशेषपने पापप्रकृतिका उदय है तहां असातावेदनीयका उदय होतें तिसके निमित्ततैं महादुःखी हो है। बहुरि वनस्पती है सो पवनते टूटे है, शीत उष्णकरि सूकि जाय है, जल न मिलै सूकि जाय है, अगनिकरि बलै है, ताकों कोऊ छेदै है, भेदै है, मसलै है, खाय है, तोरै है इत्यादि अवस्था हो है। ऐसें ही यथासम्भव पृथ्वी आदिविषै अवस्था हो हैं। तिन अवस्थाको होते वे महादुःखी हो हैं। जैसें मनुष्यके शरीर विषैं ऐसी अवस्था भये दुःख हो है तैसें ही उनके हो है। जातैं इनका जानपना स्पर्शन इन्द्रियतैं हो है सो वाकै स्पर्शनइन्द्रिय है ही ताकरि उनको जानि मोहके वशतैं महाव्याकुल हो हैं परन्तु भागनेकी वा लरने की वा पुकारने की शक्ति नाहीं तातैं अज्ञानी लोक उनके दुःखको जानते नाही। बहुरि कदाचित् किंचित् साताका उदय होय सो वह बलवान

होता नाहीं। बहुरि आयुकर्मतैं इन एकेन्द्रिय जीवनिविषैं जे अपर्याप्त हैं तिनके तो पर्यायकी स्थिति उश्वासके अठारहवें भाग मात्र ही है अर पर्याप्तनिकी अन्तर्मुहूर्त्त आदि कितेकवर्ष पर्यंत है। सो आयु थोरा तातैं जन्ममरण हुवाही करै, ताकरि दुःखी हैं; बहुरि नामकर्मविषैं तिर्यंच गति आदि पापप्रकृतिनिकाही उदय विशेषपने पाइए है। कोई हीनपुण्य प्रकृतिका उदय होइ ताका बलवानपना नाहीं तातैं तिनकरि भी मोहके वशतैं दुःखी हो है। बहुरि गोत्रकर्मविषैं नोचगोत्रही का उदय है तातैं महंतता होय नाहीं तातैं भी दुःखी ही हैं। ऐसैं एकेन्द्रिय जीव महादुःखी हैं अर संसारविषैं जैसे पाषाण आधारविषैं तो बहुत काल रहै है, निराधारविषैं तो कदाचित् किंचिन्मात्रकाल रहै, तैसैं जीव एकेन्द्रिय पर्यायविषैं बहुतकाल रहै है अन्य पर्यायनविषैं तो कदाचित् किंचिन्मात्र काल रहै है। तातैं यहु जीव संसारविषै महा-दुःखी है।

दो इन्द्रियादिक जीवों के दुःख

बहुरि द्वीन्द्रिय तेन्द्रिय चतुरेन्द्रिय असंज्ञीपंचेंन्द्रिय पर्यायनिकौं जीव धरै तहां भी एकेन्द्रियवत् दुःख जानना। विशेष इतना—इहां क्रमतैं एक एक इन्द्रियजनित ज्ञानदर्शनकी वा किछु शक्तिकी अधिकता भई है बहुरि बोलने चालनेकी शक्ति भई है। तहाँ भी जे अपर्याप्त हैं वा पर्याप्त भी हीन शक्ति के धारक छोटे जीव हैं, तिनकी शक्ति प्रगट होती नाहीं। बहुरि केई पर्याप्त बहुत शक्तिके धारक बड़े जीव हैं, तिनकी शक्ति प्रकट हो है। तातैं ते जीव विषयनिका उपाय करै हैं, दुःख दूर होनेका उपाय करै हैं। क्रोधादिककरि काटना, मारना, लरना छलकरना, अन्नादिका संग्रह करना, भागना इत्यादि कार्य करै हैं। दुःखकरि तड़भड़ाहट करना, पुकारना इत्यादि क्रिया करं हैं। तातैं तिनका दुःख किछु प्रगट भी हो है सो लट कीड़ी आदि जीवन के शीत उष्ण छेदन भेदनादिकतैं वा भूख तृषा आदितैं परम दुःखी

देखिये है। जो प्रत्यक्ष दीसै ताका विचार करि लेना। इहाँ विशेष कहा लिखें। ऐसे द्वीन्द्रियादिक जीव भी महादुःखी ही जानने।

नरकगति के दुःख

बहुरि संज्ञीपंचेन्द्रियनिविषैं नारकी जीव हैं ते तो सर्व प्रकार घने दुःखी हैं। ज्ञानादिकी शक्ति किछु है परन्तु विषयनिकी इच्छा बहुत अर इष्टविषयनिकी सामग्री किंचित् भी न मिलै तातें तिस शक्तिके होने करि भी घने दुःखी हैं; बहुरि क्रोधादिक कषायका अति तीव्रपना पाइये है, जातें उनके कृष्णादि अशुभलेश्या ही हैं। तहाँ क्रोध मानकरि परस्पर दुःख देनेका निरन्तर कार्य पाइए है। जो परस्पर मित्रता करैं तो यहु मिट जाय। अर अन्यको दुःख दिए किछु उनका कार्य भी होता नाहीं परन्तु क्रोध मानका अति तीव्रपना पाईए है ताकरि परस्पर दुःख देनेहीको बुद्धि रहै। विक्रियाकरि अन्यको आप पीड़ै अर आपको कोई ओर पीड़ै, कदाचित् कषाय उपशांत होय नाहीं। बहुरि माया लोभको अति तीव्रता है परन्तु कोई इष्ट सामग्री तहाँ दीखै नाहीं। तातें तिन कषायनिका कार्य प्रगट करि सकते नाहीं तिनकरि अन्तरंगविषै महादुःखी हैं। बहुरि कदाचित् किंचित् कोई प्रयोजन पाय तिनका भी कार्य हो है। बहुरि हास्य रति कषाय हैं परन्तु बाह्य निमित्त नाहीं तातें प्रगट होते नाहीं, कदाचित् किंचित् किसी कारणतें हो हैं। बहुरि अरति शोक भय जुगुप्सानिके बाह्य कारण बनि रहे हैं, तातें ए कषाय तीव्र प्रगट होय हैं। बहुरि वेदनिविषैं निमित्त नाहीं, तातें महापीड़ित हैं। ऐसें कषायनिकरि अति दुःखी हैं। बहुरि वेदनीय विषै असाताहीका उदय है ताकरि तहां अनेक वेदनाका निमित्त है। शरीर विषैं कोढ़ कास श्वासादि अनेकरोग युगपत् पाइए हैं अर क्षुधा-तृषा ऐसी है, सर्वका भक्षण पान किया चाहै है अर तहांकी माटी-हीका भोजन मिलै है सो माटीभी ऐसी है जो इहां आवै तो ताका दुर्गंधतें केई कोसनिके मनुष्य मरि जांय। अर शीत उष्ण तहां ऐसी है जो लक्ष योजन का लोहाका गोला होइ सो भी तिनकरि भस्म होय

जाय। कहीं शीत है, कहीं उष्ण है। बहुरि तहाँ पृथ्वी शस्त्रनितैं भी महातीक्ष्ण कंटकनि कर सहित है। बहुरि तिस पृथ्वीविषै वन हैं सो शस्त्रको धारा समान पत्रादि सहित हैं। नदी है सो ताका स्पर्श भये शरीर खण्ड खण्ड होइ जाय ऐसे जल सहित है। पवन ऐसा प्रचण्ड है जाकरि शरीर दग्ध हुवा जाय है। बहुर नारकी नारकीको अनेक प्रकार पीड़ैं, घाणीमें पेलैं; खण्ड खण्ड करैं, हांडीमें रांधैं, कोरडा मारैं, तप्त लोहादिकका स्पर्श करावैं इत्यादि वेदना उपजावैं। तीसरी पृथिवी पर्यंत असुरकुमारदेव जांय ते आप पीड़ा दें वा परस्पर लड़ावैं। ऐसी वेदना होते भी शरीर छूटै नाहीं, पारावत् खण्ड खण्ड होई जाय तो भी मिल जाय, ऐसी महा पीड़ा है। बहुरि साताका निमित्त तो किछु है नाहीं। कोई अंश कदाचित् कोईकै अपनी मानतैं कोई कारण अपेक्षा साताका उदय हो है सो बलवान् नाहीं। बहुरि आयु तहां बहुत जघन्य दशहजार वर्ष, उत्कृष्ट तेतीस सागर। इतने काल ऐसे दुःख तहाँ सहने होंय। बहुरि नामकर्मकी सर्वपापप्रकृतिनिहीका उदय है, एक भी पुण्यप्रकृतिका उदय नाहीं, तिन करि महादुःखी हैं। बहुरि गोत्रविषै नीचगोत्रहीका उदय है ताकरि महंतता न होइ तातैं दुःखी ही हैं; ऐसें नरकगतिविषैं महादुःख जानने।

तिर्यंच गतिके दुःख

बहुरि तिर्यंचगतिविषै बहुत लब्धि अपर्याप्त जीव हैं तिनकी तो उश्वासके अठारवें भाग मात्र आयु है। बहुरि केई पर्याप्त भी छोटे जीव हैं सो इनको शक्ति प्रगट भासै नाहीं। तिनके दुःख एकेन्द्रियवत् जानना। ज्ञानादिकका विशेष है सो विशेष जानना। बहुरि बड़े पर्याप्त जीव केई सम्मूर्छन हैं, केई गर्भज हैं। तिनविषै ज्ञानादिक प्रगट हो है सो विषयनिकी इच्छाकरि आकुलित हैं। बहुतको तो इष्टविषय-की प्राप्ति नाहीं है, काहूको कदाचित् किंचित् हो है। बहुरि मिथ्यात्व भावकरि अतत्व श्रद्धानी होय हो रहे हैं। बहुरि कषाय मुख्यपने तीव्र हो पाइए है। क्रोध मानकरि परस्पर लरै हैं, भक्षण करै हैं, दुःखदेय

हैं, माया लोभकरि छल करै हैं, वस्तुको चाहै हैं, हास्यादिककरि तिन कषायनिका कार्यनिविषै न प्रवर्तै हैं। बहुरि काहूकै कदाचितमन्दकषाय हो है परन्तु थोरे जीवनिकै हो है तातैं मुख्यता नाहीं। बहुरि वेदनीय-विषै मुख्य असाताका उदय है ताकरि रोग पीड़ा क्षुधा तृषा छेदन भेदन बहुत भार वहन शीत उष्ण अंगभंगादि अवस्था हो है ताकरि दुःखी होते प्रत्यक्ष देखिए है। तातैं बहुत न कह्या है। काहूकै कदाचित् किंचित् साताका भी उदय हो है परन्तु थोरे जीवनिके हो है, मुख्यता नाहीं। बहुरिआयु अन्तर्मुहूर्त्त आदि कोटिवर्ष पर्यंत है। तहां घने जीव स्तोक आयुके धारक हो हैं तातैं जन्म मरनका दुःख पावै हैं। बहुरि भोगभूमियोंकी बड़ी आयु है अर उनकै साताका भी उदय है सो वे जीव थोरे हैं। बहुरि नामकर्मको मुख्यपने तो तिर्यंचगति आदि पाप-प्रकृतिनिकाही उदय है। काहूकै कदाचित् कोई पुण्य प्रकृतिनिका भी उदय हो है परन्तु थोरे जीवनिकै थोरा हो है, मुख्यता नाहीं। बहुरि गोत्रविषैं नीच गोत्रहीका उदय है तातैं हीन होय रहे हैं। ऐसी तिर्यंचगतिविषैं महादुःख जानने।

मनुष्यगतिके दुःख

बहुरि मनुष्यगतिविषै असंख्याते जीव तो लब्धि अपर्याप्तक हैं ते सम्मूर्छन ही हैं, तिनकी तो आयु उश्वासके अठारवें भागमात्र है। बहुरि केई जीव गर्भमें आय थोरे ही कालमें मरन पावैं हैं, तिनकी तो शक्ति प्रगट भासै नाहीं है। तिनके दुःख एकेन्द्रियवत् जानना। विशेष है सो विशेष जानना। बहुरि गर्भजनिके कितेक काल गर्भमें रहना पीछैं बाह्य निकसना हो है। सो तिनका दुःखका वर्णन कर्म अपेक्षा पूर्वै वर्णन किया है तैसें जानना। वह सर्व वर्णन गर्भज मनुष्यनिकै सम्भवै है अथवा तिर्यंचनिका वर्णन किया है तैसें जानना। विशेष यहु है, इहां कोई शक्ति विशेष पाइये है वा राजादिकनिकै विशेष साताका उदय हो है वा क्षत्रियादिकनिकै उच्चगोत्रका भी उदय हो है। बहुरि धन कुटुम्बादिकका निमित्त विशेष पाइये है इत्यादि विशेष जानना।

अथवा गर्भ आदि अवस्थाके दुःख प्रत्यक्ष भासै हैं। जैसें विष्टाविषै लट उपजै तैसें गर्भमें शुक्र शोणितका बिन्दुको अपना शरीररूपकरि जीव उपजै। पीछैं तहां क्रमतैं ज्ञानादिककी वा शरीरको वृद्धि होइ। गर्भका दुःख बहुत है संकोचरूप अधोमुख क्षुधातृषादि सहित तहां काल पूरण करै। बहुरि बाह्य निकसै तब बाल्य अवस्था में महा दुःख हो है। कोऊ कहै—बाल्यावस्था में दुःख थोरा है सो नाहीं है। शक्ति थोरी है तातैं व्यक्त न होय सकै है। पीछै व्यापारादि वा विषयइच्छा आदि दुःखनिकी प्रगटता हो है। इष्ट अनिष्ट जनित आकुलता रहवो ही करै। पीछें वृद्ध होइ तब शक्तिहीन होइ जाय तब परमदुःखी हो है। सो ये दुःख प्रत्यक्ष होते देखिए हैं। हम बहुत कहा कहैं। प्रत्यक्ष जाको न भासें सो कह्या कैसें सुनै। काहूकै कदाचित् किंचित् साताका उदय हो है सो आकुलतामय है। अर तीर्थंकरादि पद मोक्षमार्ग पाये बिना होय नाहीं। ऐसे मनुष्य पर्यायविषै दुःख ही हैं एक मनुष्य पर्यायविषैं कोई अपना भला होनेका उपाय करै तो होय सकै है। जैसें काना सांठा* की जड़ वा बाड़× तो चूसने योग्य नाहीं अर बीचकी पेली कानी सो भी चूसी जाय नाहीं। कोई स्वादका लोभी वाकूं बिगारे तो बिगारो। अर जो वाको बोइ दे तो वाके बहुत साँठे होंइ, तिनका स्वाद बहुत मीठा आवै। तैसें मनुष्यपर्यायका बालकवृद्धपना तो सुख भोगने योग्य नाहीं अर बीचकी अवस्था सो रोग क्लेशादिकरि युक्त तहाँ सुख होई सकै नाहीं। कोई विषय सुखका लोभी याको बिगारं तो बिगारो। अर जो वाको धर्मसाधनविषैं लगावै तो बहुत ऊंचे पदको पावै। तहां सुख बहुत निराकुल पाइये। तातैं इहां अपना हित साधना, सुख होनेका भ्रमकरि वृथा न खोवना।

देवगतिके दुःख

बहुरि देवपर्यायविषैं ज्ञानादिककी शक्ति किछु औरनितैं विशेष है। मिथ्यात्वकरि अतत्त्वश्रद्धानी होय रहे हैं। बहुरि तिनकै कषाय किछु

* गन्ना × गन्ने के ऊपरका फीका भाग।

मंद है; तहां भवनवासीं व्यंतर ज्योतिष्कनिकै कषाय बहुत मन्द नाहीं अर उपयोग तिनका चंचल बहुत अर किछु शक्ति भी है सो कषायनिके कार्यनिविषै प्रवर्तें हैं। कोतूहल विषयादि कार्यनिविषै लगि रहे हैं सो तिस आकुलताकर दुखी हो हैं। बहुरि वैमानिकनिकै ऊपरि-ऊपरि विशेष मन्द कषाय है अर शक्ति विशेष है तातैं आकुलता घटनेतें दुःख भी घटता है। इहां देवनिके क्रोधमान कषाय है परन्तु कारन थोरा है। तातैं तिनके कार्य की गौणता है। काहूका बुरा करना वा काहूको हीन करना इत्यादि कार्य निकृष्ट देवनिकै तो कोतूहलादिकरि होइ है अर उत्कृष्ट देवनिकै थोरा हो है, मुख्यता नाहीं। बहुरि माया लोभ कषायनिकै कारण पाइए है तातै तिनके कार्य की मुख्यता है। तातैं छल करना विषयसामग्रीकी चाह करनो इत्यादि कार्य विशेष हो हे। सो भी ऊँचे-ऊँचे देवनिकै घाटि * है। बहुरि हास्य रति कषायके कारन घटे होइये हैं तातें इनके कार्यनिको मुख्यता है। बहुरि अरति शोक भय जुगुप्सा इनके कारण थोरे हैं तातें तिनके कार्यनिकी गोणता है। बहुरि स्त्रीवेद पुरुषवेदका उदय है अर रमनेका भी निमित्त है सो कामसेवन करे हैं। ये भी कषाय ऊपरि ऊपरि मन्द हैं। अहमिंद्रनिके वेदनिकी मन्दताकरि कामसेवनका अभाव है। ऐसें देवनिकै कषायभाव है सो कषायहीतें दुःख है। अर इनके कषाय जेता थोरा है तितना दुःख भी थोरा है तातैं औरनिकी अपेक्षा इनको सुखी कहिए है। परमार्थतें कषायभाव जीवै है ताकरि दुःखी ही हैं। बहुरि वेदनीयविषै साताका उदय बहुत है। तहां भवनत्रिककै थोरा है। वैमानिकनिकै ऊपरि ऊपरि विशेष है। इष्ट शरीरको अवस्था स्त्री-मन्दिरादि सामग्री का संयोग पाइए है। बहुरि कदाचित् किंचित् असाताका भी उदय कोई कारणकरि हो है। तहां निकृष्टदेवनिकै किछु प्रगट भी है अर उत्कृष्ट देवनिकै विशेष प्रगट नाहीं है। बहुरि आयु बड़ी है। जघन्य दशहजार वर्ष उत्कृष्ट इकत्तीस सागर है। अर

* कम है।

३१ सागर से अधिक आयुका धारी मोक्षमार्ग पाए बिना होता नाहीं। सो इतना काल विषय सुखमें मगन रहै है। बहुरि नामकर्मकी देवगति आदि सर्वपुण्य प्रकृतिनिहीका उदय है। तातैं सुखका कारण है। अर गोत्र विषैं उच्च गोत्रहीका उदय है तातैं महंतपदको प्राप्त हैं। ऐसैं इनके पुण्यउदयकी विशेषताकरि इष्ट सामग्री मिली है अर कषाय-निकरि इच्छा पाइए है, तातैं तिनके भोगनेविषैं आसक्त होय रहे हैं परन्तु इच्छा अधिक ही रहै है तातैं सुखी होते नाहीं। ऊँचे देवनिकै उत्कृष्ट पुण्य का उदय है, कषाय बहुत मन्द है तथापि तिनकै भी इच्छाका अभाव होता नाहीं, तातैं परमार्थतैं दुःखी ही हैं। ऐसैं सर्वत्र संसारविषै दुःख ही दुःख पाइए है ऐसैं पर्याय अपेक्षा दुःखका वर्णन किया।

दुःखका सामान्य स्वरूप

अब इस सर्व दुःखका सामान्यस्वरूप कहिए है। दुःखका लक्षण आकुलता है सो आकुलता इच्छा होते हो है। सोई संसारी-जीवकै इच्छा अनेक प्रकार पाइए है। एक तो इच्छा विषय ग्रहण की है सो देख्या जान्या चाहै। वैसें वर्ण देखनेकी, राग सुननेकी, अव्यक्तको जानने इत्यादिकी इच्छा हो है। सो तहां अन्य किछु पीड़ा नाहीं परंतु यावत् देखै जानै नाहीं तावत् महाव्याकुल होय। इस इच्छाका नाम विषय है। बहुरि एक इच्छा कषाय भावनिके अनुसारि कार्य करने की है सो कार्य किया चाहै। जैसे बुरा करनेकी, हीन करनेकी इत्यादि इच्छा हो है। सो इहाँ भी अन्य कोई पीड़ा नाहीं। परन्तु यावत् वह कार्य होइ तावत् महाव्याकुल होय। इस इच्छा का नाम कषाय है। बहुरि एक इच्छा पापके उदयतैं शरीरविषैं या बाह्य अनिष्ट कारण मिलें तब उनके दूरि करनेकी हो है। जैसैं रोग पीड़ा क्षुधा आदिका संयोग भए उनके दूर करने की इच्छाहो है सो इहां यह्न हो पीड़ा मानै है। यावत् वह दूरि न होइ तावत् महा-व्याकुल रहै। इस इच्छा नाम पापका उदय है। ऐसैं इन तीन प्रकारको

इच्छा होते सर्व ही दु:ख ही है। बहुरि एक इच्छा बाह्य निमित्ततैं बनै है सो इन तीन प्रकार ही इच्छानिके अनुसारि प्रवर्तनेकी इच्छा हो है। सो तीन प्रकारकी इच्छानिविषैं एक एक प्रकारकी इच्छा अनेक प्रकार है। तहां केई प्रकारकी इच्छा पूरण होनेका कारण पुण्यउदयतैं मिलै। तिनिका साधन युगपत् होइ सकै नाहीं। तातैं एकको छोरि अन्यको लागै, आगै भी वाकों छोरि अन्यको लागै। जैसें काहूकै अनेक सामग्री मिली है, वह काहूको देखै है, वाको छोरि राग सुनै है, वाकों छोरि काहूका बुरा करने लगि जाय, वाको छोरि भोजन करै है अथवा देखने विषैं हो एकको देखि अन्यका देखै है। ऐसें हो अनेक कार्यनिको प्रवृत्ति विषैं इच्छा हो है सो इस इच्छाका नाम पुण्य का उदय है। याको जगत सुख मानै है सो सुख है नाहीं, दु:ख ही है। काहेतैं —प्रथम तो सर्वप्रकार इच्छा पूरन होनेके कारण काहूकै भी न बनैं। अर कोई प्रकार इच्छा पूरन करनेके कारण बनैं तो युगपत् तिनका साधन न होय। सो एकका साधन यावत् न होय तावत् वाकी आकुलता रहै है, वाका साधन भये उस ही समय अन्यका साधनकी इच्छा हो है तब वाकी आकुलता होय। एक समयभी निराकुल न रहै, तातैं दु:ख ही है। अथवा तीन प्रकार के इच्छा रोगके मिटानेका किंचित् उपाय करै है, तातैं किंचित् दु:ख घाटि हो है, सर्व दु:खका तो नाश न होइ तातैं दु:ख ही है। ऐसें संसारी जीवननिकै सर्वप्रकार दु:ख ही है। बहुरि यहाँ इतना जानना तीन प्रकार इच्छानिकरि सर्वजगत पीड़ित है अर चौथी इच्छा तो पुण्यका उदय आए होइ सो पुण्यका बंध धर्मानुरागतैं होइ सो धर्मानुराग विषैं जीव थोरा लागै। जीव तो बहुत पाप क्रिया-निविषैं ही प्रवर्तै है। तातैं चौथी इच्छा कोई जीवकै कदाचित् काल-विषैंही हो है। बहुरि इतना जानना—जो समान इच्छावान् जीवनिकी अपेक्षा तो चौथी इच्छावालाकै किछु तीन प्रकार इच्छाके घटनेतैं सुख कहिए है। बहुरि चौथी इच्छावालाकी अपेक्षा महान् इच्छावाला चौथी इच्छा होतेंभी दु:खीहो है। काहूकै बहुत विभूति है अर वाकै

इच्छा बहुत है तो वह बहुत आकुलतावान् है। अर जाकै थोरी विभूति है अर वाकै इच्छा थोरी है तो वह थोरा आकुलतावान् है। अथवा कोऊकै अनिष्ट सामग्री मिली है, ताकै उसके दूर करनेकी इच्छा थोरी है तो वह थोड़ा आकुलतावान् है। बहुरि काहूकै इष्ट सामग्री मिली है परन्तु ताकै उनके भोगनेकी वा अन्य सामग्रीकी इच्छा बहुत है तो वह जीव घना आकुलतावान् है। तातैं सुखी दुःखी होना इच्छाके अनुसार जानना; बाह्य कारणके आधीन नाहीं है। नारकी दुःखी अर देव सुखी कहिये है सो भी इच्छाहीकी अपेक्षा कहिये है; तातैं नारकोनिकं तीव्र कषायतैं इच्छा बहुत है। देवनिकै मन्द कषायतैं इच्छा थोरी है। बहुरि मनुष्य तिर्यंच भी सुखी दुःखी इच्छा होकी अपेक्षा जानने। तीव्र कषायतैं जाकै इच्छा बहुत ताको दुःखी कहिये है। मन्द कषायतैं जाके इच्छा थोरी ताको सुखी कहिए है। परमार्थतैं घना वा थोरा दुःखही है, सुख नाहीं है, देवादिककै भी सुख मानिये है सो भ्रम ही है। उनकै चौथी इच्छाकी मुख्यता है तातैं आकुलित हैं। या प्रकार जो इच्छा है सो मिथ्यात्व अज्ञान असंयमतैं हो है। बहुरि इच्छा है सो आकुलता है सोदुःख है। ऐसें सर्व संसारी जीव नानाप्रकार के दुःखनिकरि पीड़ित होइ रहे हैं।

दुःख निवृत्तिका उपाय

अब जिन जीवनिको दुखतैं छूटना होय सो इच्छा दूर करनेका उपाय करो। बहुरि इच्छा दूर तब ही होइ जब मिथ्यात्व अज्ञान असंयमका अभाव होइ अर सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रकी प्राप्ति होय। तातैं इस ही कार्यका उद्यम करना योग्य है। ऐसा साधन करते जेती जेती इच्छा मिटै तेता तेताही दुःख दूर होता जाय। बहुरि जब मोहके सर्वथा अभावतैं सर्वथा इच्छाका अभाव होइ तब सर्व दुःख मिटै, सांचा सुख प्रगटै। बहुरि ज्ञानावरण दर्शनावरण अन्तरायका अभाव होय तब इच्छाका कारण क्षयोपशम ज्ञानदर्शनका वा शक्तिहीनपनाका भी अभाव होय। अनन्तज्ञानदर्शनवीर्यकी प्राप्ति होय। बहुरि केतेक काल

पीछें अघाति कर्मनिकाभी अभाव होय, तब इच्छाके बाह्य कारण तिन-का भी अभाव होय। सो मोह गये पीछें एक समय मात्रभी किछु इच्छा उपजावनेको समर्थ है नाहीं, मोह हीतें कारण थे तातें कारण कहे हैं सो इनका भी अभाव भया तब सिद्धपदको प्राप्त हो है। तहाँ दुःख-का वा दुःखके कारणनिका सर्वथा अभाव होनेतें सदा काल अनौपम्य अखंडित सर्वोत्कृष्ट आनन्दसहित अनन्तकाल विराजमान रहै हैं। सोई दिखाइए है—

सिद्ध अवस्थामें दुःखके अभावकी सिद्धि

ज्ञानावरण दर्शनावरणका क्षयोपशम होते वा उदय होते मोह करि एक एक विषय देखने जाननेकी इच्छाकरि महाव्याकुल होता था सो अब मोहका अभावतें इच्छाका भी अभाव भया। तातें दुःखका अभाव भया है। बहुरि ज्ञानावरण दर्शनावरणका क्षय होनेतें सर्व इन्द्रियनिको सर्वविषयनिका युगपत् ग्रहण भया, तातें दुःखका कारण भी दूर भया है सोई दिखाइए है—जैसै नेत्रकरि एक विषयको देख्या चाहै था, अब त्रिकालवर्ती त्रिलोकके सर्व वर्णनिको युगपत् देखै है। कोऊ बिना देख्या रह्या नाहीं, जाके देखनेकी इच्छा उपजें ऐसै ही स्पर्शनादिककरि एक एक विषयको ग्रह्या चाहै था, अब त्रिकालवर्ती त्रिलोक के सर्व स्पर्श रस गंध शब्दनिको युगपत् ग्रहै है। कोऊ बिना ग्रह्या रह्या नाहीं, जाके ग्रहणको इच्छा उपजै।

इहां कोऊ कहै, शरीरादिक बिना ग्रहण कैसे होइ ?

ताका समाधान—इन्द्रियज्ञान होते तो द्रव्यइन्द्रियादि बिना ग्रहण न होता था। अब ऐसा स्वभाव प्रगट भया जो बिनाही इन्द्रिय ग्रहण हो है। इहां कोऊ कहै, जैसे मनकरि स्पर्शादिकको जानिए है तैसें जाना होता होगा। त्वचा जीभ आदि करि ग्रहण हो है तैसें न होता होगा। सो ऐसें नाहीं है। मनकरि तो स्मरणादि होते स्पष्ट जानना किछु हो है। इहां तो स्पर्शरसादिकको जैसे त्वचा जीभ इत्यादि करि स्पर्शे स्वादै सूंघै देखै सुनै जैसा स्पष्ट जानना हो है तिसतें भी अनन्त

गुणा स्पष्ट जानना तिनकै हो है। विशेष इतना भया है—वहां इन्द्रिय विषयका संयोग होतें ही जानना होता था, इहां दूर रहे भी वैसा ही जानना हो है। सो यहु शक्तिको महिमा है। बहुरि मनकरि किछु अतीत अनागतको वा अव्यक्तको जान्या चाहै था, अब सर्वही अनादितें अनन्तकालपर्यन्त जे सर्व पदार्थनिके द्रव्य क्षेत्र काल भाव तिनको युगपत् जानै है। कोऊ बिना जाने रह्या नाहीं, जाके जानने की इच्छा उपजै। ऐसें इन दुःख और दुःखनिके कारण तिनका अभाव जानना। बहुरि मोहके उदयतें मिथ्यात्व वा कषायभाव होते थे तिनका सर्वथा अभाव भया तातें दुःखका अभाव भया। बहुरि इनके कारणनिका अभाव दिखाइए है।

सब तत्व यथार्थ प्रतिभासें, अतत्त्वश्रद्धानरूप मिथ्यात्व कैसे होइ ? कोऊ अनिष्ट रह्या नाहीं, निंदक स्वयमेव अनिष्ट पावै ही है, आप क्रोध कौनसों करै ? सिद्धनितें ऊंचा कोई है नाहीं। इन्द्रादिक आपहीतें नमै हैं, इष्ट पावें हैं तो कौनसो मान करै ? सर्व भवितव्य भासि गया, कोऊ कार्य रह्या नाहीं, काहूसो प्रयोजन रह्या नाही, काहे का लोभ करैं ? कोऊ अन्य इष्ट रह्या नाहीं, कौन कारणतें हास्य होइ ? कोऊ अन्य इष्ट प्रीति करने योग्य है नाही, इहाँ कहा रति करै ? कोऊ दुःखदायक संयोग रह्या नाहीं, कहा अरति करै ? कोऊ इष्ट अनिष्ट संयोग वियोग होता नाहीं, काहेका शोक करै ? कोऊ अनिष्ट करने वाला कारण रह्या नाहीं, कौनका भय करै ? सर्ववस्तु अपने स्वभाव लिए भासै, आपको अनिष्ट नाहीं, कहा जुगुप्सा करै ? काम पीड़ा दूर होनेतें स्त्री पुरुष उभयसों रमनेका किछु प्रयोजन रह्या नाहीं, काहेको पुरुष स्त्री नपुंसकवेद रूप भाव होई ? एसें मोह उपजनेके कारणनिका अभाव जानना। बहुरि अंतरायके उदयतें शक्ति हीनपनाकरि पूरण न होती थी, अब ताका अभाव भया, तातें दुःखका अभाव भया। बहुरि अनंतशक्ति प्रगट भई, तातें दुःखके कारणका भी अभाव भया।

इहाँ कोऊ कहै, दान लाभ भोग उपभोग तो करते नाहीं, इनकी शक्ति कैसें प्रगट भई ?

ताका समाधान—ये कार्य रोगके उपचार थे। जब रोग ही नाहीं तब उपचार काहेको करै। तातैं इन कार्यनिका सद्भाव तो नाहीं। अर इनका रोकनहारा कर्मका अभाव भया, तातैं शक्ति प्रगटी कहिए है। जैसें कोऊ गमन किया चाहै ताकों काहूने रोक्या था तब दु:खी था। जब वाकै रोकना दूर भया अर जिस कार्यके अर्थि गया चाहै था सो कार्य न रह्या तब गमन भी न किया। तब वाकै गमन न करते भी शक्ति प्रगटी कहिए। तैसें ही इहां जानना। बहुरि ज्ञानादि की शक्तिरूप अनंतवीर्य प्रगट उनके पाइए है। बहुरि अघाति कर्मनि विषै मोहतैं पाप प्रकृतिनिका उदय होते दु:ख मानै था, पुण्यप्रकृतिनि का उदय होतैं सुख मानै था, परमार्थतैं आकुलताकरि सर्व दु:ख ही था। अब मोहके नाशतैं सर्व आकुलता दूर होनेतैं सर्व दु:खका नाश भया। बहुरि जिन कारणनिकरि दु:ख मानै था, ते तो कारण सर्व नष्ट भए। अर जिनकरि किंचित् दु:ख दूर होनेतैं सुख मानै था, सो अब मूलहीमें दु:ख रह्या नाहीं। तातैं तिन दु:खके उपचारनिका किछु प्रयोजन रह्या नाहीं, जो तिनकरि कार्यको सिद्ध किया चाहै। ताकी स्वयमेव ही सिद्धि होय रही है। इसहीका विशेष दिखाइये है—

वेदनीय विषैं असाताका उदयतैं दु:खके कारण शरीर विषै रोग क्षुधादिक होते थे। अब शरीर ही नाहीं तब कहां होंय? अर शरीरकी अनिष्ट अवस्था को कारण आतापादिक थे सो अब शरीर बिना कौन को कारण होय? अर बाह्य अनिष्ट निमित्त बनै था सो अब इनके अनिष्ट रह्या ही नाहीं। ऐसैं दु:खका कारणका तो अभाव भया। बहुरि साताके उदयतैं किंचित् दु:ख मेटनेके कारण औषधि भोजनादिक थे, तिनका प्रयोजन रह्या नाही। अर इष्ट कार्य पराधीन रह्या नाहीं। इन करि दु:ख मेट्या चाहै था वा इष्ट किया चाहै था सो अब सम्पूर्ण दु:ख नष्ट भया अर सम्पूर्ण इष्ट पाया। बहुरि आयुके निमित्ततैं मरण जीवन था तहां मरणकरि दु:ख मानै था सो अविनाशी पद पाया, तातैं दु:खका कारण रह्या नाही। बहुरि द्रव्य प्राणनिको धरे कितेक

काल जीवनतें सुख मानै था, तहाँ भी नरक पर्याय विषै दुःखकी विशेषताकरि तहाँ जीवना न चाहै था, सो अब इस सिद्धपर्याय विषै द्रव्यप्राण बिना ही अपने चैतन्य प्राणकरि सदाकाल जीवै है अर तहाँ दुःखका लवलेश भी न रह्या है। बहुरि नामकर्मतें अशुभ गति जाति आदि होते दुःख मानै था सो अब तिन सबनिका अभाव भया, दुःख कहांतें होय ? अर शुभगति जाति आदि होते किंचित् दुःख दूर होनेतें सुख मानै था, सो अब तिन बिना ही सर्व दुःख का नाश अर सर्व सुख का प्रकाश पाईए है। तातें तिनका भी किछु प्रयोजन रह्या नाहीं। बहुरि गोत्रके निमित्ततें नीचकुल पाये दुःख मानै था सो ताका अभाव होने तें दुःखका कारण रह्या नाहीं। बहुरि उच्चकुल पाये सुख मानै था सो अब उच्चकुल बिनाही त्रैलोक्यपूज्य उच्चपदको प्राप्त है, या प्रकार सिद्धनिके सर्वकर्मके नाश होनेतें सर्व दुःखका नाश भया है।

दुःखका लक्षण आकुलता है सो आकुलता तब ही हो है जब इच्छा होय। सो इच्छा का वा इच्छा के कारणनिका सर्वथा अभाव भया तातें निराकुल होय सर्व दुःख रहित अनन्त सुखको अनुभवै है, जातें निराकुलपना ही सुख का लक्षण है। संसारविषें भी कोइ प्रकार निराकुलित होइ तब ही सुख मानिए है। जहाँ सर्वथा निराकुल भया तहाँ सुख सम्पूर्ण कैसे न मानिए ? या प्रकार सम्यग्दर्शनादि साधनतें सिद्ध पद पाए सर्व दुःख का अभाव हो है, सर्व सुख प्रगट हो है।

अब इहां उपदेश दीजिए है—हे भव्य ! हे भाई ! जो तोकूं संसार के दुःख दिखाए, ते तुझ विषै बीतं हैं कि नाहीं सो विचारि। अर सिद्धपद पाए सुख होय कि नाहीं सो विचारि। जो तेरे प्रतीति जैसे कही है तैसे ही आवै है तो तू संसारतें छूटि सिद्धपद पावने का हम उपाय कहै है सो करि, विलम्ब मति करै। इह उपाय किए तेरा कल्याण होगा।

इति श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक नाम शास्त्रविषें संसार दुःखका वा मोक्ष सुखका निरूपक तृतीय अधिकार सम्पूर्ण भया ॥३॥

चौथा अधिकार

मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्रका निरूपण

दोहा

इस भवके सब दुःखनिके, कारण मिथ्याभाव ।
तिनकी सत्ता नाश करि, प्रगटै मोक्ष उपाव ॥१॥

अब इहाँ संसार दुःखनिके बोजभूत मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र हैं तिनका स्वरूप विशेष निरूपण कीजिए हैं। जैसें वैद्य है सो रोगके कारणनिका विशेष कहै तो रोगी कुपथ्य सेवन न करै तब रोगरहित होय, तैसें इहाँ संसार के कारणनिका विशेष निरूपण करिए है तो संसारी मिथ्यात्वादिकका सेवन न करै तब संसार रहित होय। तातैं मिथ्यादर्शनादिकनिका स्वरूप विशेष कहिए है—

मिथ्यादर्शनका स्वरूप

यहु जीव अनादितैं कर्मसम्बन्धसहित है। याकै दर्शनमोहके उदयतैं भया जो अतत्व श्रद्धान ताका नाम मिथ्यादर्शन है। जातैं सद्-भाव जो श्रद्धान करनेयोग्य अर्थ है ताका जो भाव अथवा स्वरूप ताका नाम तत्व है। तत्व नाहीं ताका नाम अतत्व है। अर जो अतत्व है सो असत्य है, तातैं इसहीका नाम मिथ्या है। बहुरि ऐसैं ही यहु है, ऐसा प्रतीति भाव ताका नाम श्रद्धान है। इहाँ श्रद्धान हो का नाम दर्शन है। यद्यपि दर्शन शब्दका अर्थ सामान्य अवलोकन है तथापि इहां प्रकरणके वशतैं इस ही धातुका अर्थ श्रद्धान जानना। सो ऐसैं ही सर्वार्थसिद्धि नाम सूत्रकी टीकाविषैं कह्या है। जातैं सामान्य अवलोकन ससारमोक्ष को कारण होई नाहीं। श्रद्धान ही संसार मोक्षको कारण है, तातैं संसार मोक्षका कारणविषैं दर्शनका अर्थ श्रद्धान ही जानना। बहुरि

मिथ्यारूप जो दर्शन कहिए श्रद्धान ताका नाम मिथ्यादर्शन है। जैसे वस्तुका स्वरूप नाहीं तैसें मानना, जैसें है तैसें न मानना ऐसा विपरीताभिनिवेश कहिए विपरीत अभिप्राय ताकों लिए मिथ्यादर्शन हो है।

इहाँ प्रश्न—जो केवलज्ञान बिना सर्व पदार्थ यथार्थ भासैं नाहीं अर यथार्थ भासे बिना यथार्थ श्रद्धान न होइ; तातैं मिथ्यादर्शनका त्याग कैसें बनै ?

ताका समाधान—पदार्थनिका जानना, न जानना, अन्यथा जानना तो ज्ञानावरण के अनुसार है। बहुरि प्रतीति हो है सो जाने ही हो है, बिना जाने प्रतीति कैसे आवै ? यह तो सत्य है। परन्तु जैसें कोऊ पुरुष है सो जिनसे प्रयोजन नाहीं, तिनकों अन्यथा जाने वा यथार्थ जाने बहुरि जैसे जानै तैसे ही मानै, किछु वाका बिगार सुधार है नाहीं, तातैं बाउला स्याना नाम पावै नाहीं। बहुरि जिनसों प्रयोजन पाइए है, तिनकों जो अन्यथा जानै अर तैसें ही मानै तो बिगार होई तातैं वाकों बाउला कहिए। बहुरि तिनको जो यथार्थ जानै अर तैसें ही मानै तो सुधार होई तातैं बाकों स्याना कहिए। तैसें ही जीव है सो जिनस्यों प्रयोजन नाहीं, तिनकों अन्यथा जानो वा यथार्थ जानो बहुरि जैसें जानै तैसें श्रद्धान करं, किछु याका बिगार सुधार नाहीं तातैं मिथ्यादृष्टि सम्यग्दृष्टि नाम पावै नाहीं। बहुरि जिनस्यों प्रयोजन पाइए है तिनकों जो अन्यथा जानै अर तैसें ही श्रद्धान करै तो बिगार होइ तातैं याको मिथ्यादृष्टि कहिए। बहुरि तिनकों जो यथार्थ जानै अर तैसे ही श्रद्धान करै तो सुधार होइ तातैं याको सम्यग्दृष्टि कहिये। इहाँ इतना जानना कि अप्रयोजनभूत या प्रयोजनभूत पदार्थनिका जानना वा यथार्थ अयथार्थ जानना जो होइ तामें ज्ञानकी हीनता अधिकता होना इतना जीवका बिगार सुधार है। ताका निमित्त तो ज्ञानावरण कर्म है। बहुरि तहाँ प्रयोजनभूत पदार्थनिको अन्यथा वा यथार्थ श्रद्धान किए जीवका किछु और भी बिगार सुधार हो है। तातै याका निमित्त दर्शनमोह नामा कर्म है।

इहां कोऊ कहै कि जैसा जानै तैसा श्रद्धान करै तातैं ज्ञानावरणही के अनुसारि श्रद्धान भासै है, इहां दर्शनमोहका विशेष निमित्त कैसे भासै ?

ताका समाधान—प्रयोजनभूत जीवादि तत्वनिका श्रद्धान करने योग्य ज्ञानावरणका क्षयोपशम तो सर्व संज्ञी पंचेन्द्रियनकै भया है। परन्तु द्रव्यलिंगी मुनि ग्यारह अंग पर्यन्त पढ़े वा ग्रैवेयकके देव अवधि ज्ञानादियुक्त हैं तिनकै ज्ञानावरणका क्षयोपशम बहुत होते भी प्रयोजनभूत जीवादिका श्रद्धान न होइ। अर तिर्यंचादिककै ज्ञानावरणका क्षयोपशम थोरा होते भी प्रयोजनभूत जीवादिकका श्रद्धान होइ, तातैं जानिए है ज्ञानावरणहीके अनुसारि श्रद्धान नाही। कोई जुदा कर्म है सो दर्शनमोह है। याके उदयतैं जोवकै मिथ्यादर्शन हो है तब प्रयोजनभूत जीवादितत्वनिका अन्यथा श्रद्धान करै है।

प्रयोजन अप्रयोजनभूत पदार्थ

इहाँ कोऊपूछै कि प्रयोजनभूत अप्रयोजनभूत पदार्थ कौन कौन है ?

ताका समाधान—इस जीवके प्रयोजन तो एक यहु ही है कि दुःख न होय, सुख होय। अन्य किछु भी कोई ही जीवकैं प्रयोजन है नाहीं। बहुरि दुःख न होना, सुख का होना एक ही है, जातैं दुःख का अभाव सोई सुख है। सो इस प्रयोजनको सिद्धि जीवादिकका सत्य श्रद्धान किये हो है। कैसे ? सो कहिये है।

प्रथम तो दुःख दूर करने विषै आपापरका ज्ञान अवश्य चाहिए। जो आपापरका ज्ञान नाहीं होय तो आपको पहिचाने बिना अपना दुःख कैसे दूरि करै। अथवा आपापरको एक जानि अपना दुःख दूर करनेके अर्थि परका उपचार करै तो अपना दुःख दूर कैसे होइ ? अथवा आपतैं पर भिन्न अर यहु परविषै अहंकार ममकार करै तातैं दुःख ही होय। तातैं आपापरका ज्ञान भए ही दुःख दूर हो है। बहुरि आपा परका ज्ञान जीव अजीवका ज्ञान भए ही

होइ। जातें आप जीव है, शरीरादिक अजीव हैं। जो लक्षणादिकरि जीव अजीव की पहिचान होइ तो आपापरको भिन्नपनो भासै। तातें जीव अजीवकी जानना अथवा जीव अजीव का ज्ञान भये जिन पदार्थनिको अन्यथा श्रद्धानतें दुःख होता था तिनका यथार्थ ज्ञान होनेतें दुःख दूरि होइ तातें जीव अजीवको जानना। बहुरि दुःखका कारन तो कर्मबन्धन है अर ताका कारण मिथ्यात्वादिक आस्रव है। सो इनको न पहिचानै, इनको दुःखका मूलकारन न जानै तो इनका अभाव कैसे करै? अर इनका अभाव न करै तब कर्मबन्धन कैसे न होइ, तातें दुःख ही होय। अथवा मिथ्यात्वादिक भाव हैं सो दुःखमय हैं। सो ए इनकों जैसेके तैसे न जानै तो इनका अभाव न करै तब दुःखी ही रहै तातें आस्रवको जानना। बहुरि समस्त दुःखका कारण कर्मबन्धन है सो याकों न जानै तब यातें मुक्त होनेका उपाय न करै तब ताके निमित्ततें दुःखी होइ तातें बन्धको जानना। बहुरि आस्रवका अभाव करना सो संवर है, याका स्वरूप न जानै तो या विषैं न प्रवर्तै तब आस्रव ही रहै तातें वर्तमान या आगामी दुःख ही होइ तातें संवरको जानना। बहुरि कथंचित् किंचित् कर्मबन्धनका अभाव करना ताका नाम निर्जरा है तो याको न जानै तब याकी प्रवृत्तिका उद्यमी न होइ। तब सर्वथा बन्धही रहै तातें दुःख ही होइ तातें निर्जराको जानना। बहुरि सर्वथा सर्व कर्मबन्धका अभाव होना ताका नाम मोक्ष है। सो याकों न पहिचानै तो याका उपाय न करै, तब संसारविषै कर्मबन्धतें निपजे दुःखनिहीकों सहै तातें मोक्षको जानना। ऐसें जीवादि सप्त तत्त्व जानने। बहुरि शास्त्रादिक करि कदाचित् तिनकों जानै अर ऐसें ही है ऐसो प्रतीति न आई तो जानें कहा होय तातें तिनका श्रद्धान करना कार्यकारी है। ऐसे जीवादि तत्त्वनिका सत्यश्रद्धान किएही दुःख होनेका अभावरूप प्रयोजनकी सिद्धि हो है। तातें जीवादिक पदार्थ हैं ते ही प्रयोजनभूत जानने। बहुरि इनके विशेषभेद पुण्यपापादिकरूप तिनका भी श्रद्धान

प्रयोजनभूत है जातैं सामान्यतैं विशेष बलवान् है। ऐसें ये पदार्थ तो प्रयोजनभूत हैं तातें इनका यथार्थ श्रद्धान किए तो दुःख न होय, सुख होय अर इनको यथार्थ श्रद्धान किए बिना दुःख हो है, सुख न हो है। बहुरि इन बिना अन्य पदार्थ हैं, ते अप्रयोजनभूत हैं। जातैं तिनकों यथार्थश्रद्धान करो वा मति करो, उनका श्रद्धान किछू सुख दुःखकों कारण नाहीं।

इहां प्रश्न उपजै है, जो पूर्वे जीव अजीव पदार्थ कहे तिनविषैं तो सर्व पदार्थ आय गए, तिन बिना अन्य पदार्थ कौन रहे जिनकों अप्रयोजनभूत कहे।

ताका समाधान—पदार्थ तो सर्व जीव अजीवविषं ही गर्भित हैं परन्तु तिन जीव अजीवनिके विशेष बहुत हैं। तिन विषैं जिन विशेषनिकरि सहित जीव अजीवको यथार्थ श्रद्धान किये स्व-परका श्रद्धान होय रागादिक दूर करनेका श्रद्धान होइ, तातैं सुख उपजै; अयथार्थ श्रद्धान किए स्व-परका श्रद्धान न होई रागादिक दूर करनेका श्रद्धान न होइ, यातैं दुःख उपजै, तिन विशेषनिकरि सहित जीव अजीव पदार्थ तो प्रयोजनभूत जानने। बहुरि जिन विशेषननिकरि सहित जीव अजीव आदिको यथार्थ श्रद्धान किए वा न किये स्व-परका श्रद्धान होइ वा न होइ अर रागादिक दूर करनेका श्रद्धान होइ वा न होइ, किछू नियम नाहीं तिन विशेषनिकरि सहित जीव अजीव पदार्थ अप्रयोजनभूत जानने। जैसे जीव अर शरीरका चैतन्य मूर्त्तत्वादिक विशेषनिकरि श्रद्धान करना तो प्रयोजनभूत है अर मनुष्यादि पर्यायनिको वा घटादिकी अवस्था आकारादि विशेषनिकरि श्रद्धान करना अप्रयोजनभूत है। ऐसेंही अन्य जानने। या प्रकार कहे जे प्रयोजनभूत जीवादिक तत्त्व तिनका अयथार्थ श्रद्धान ताका नाम मिथ्यादर्शन जानना।

अब संसारी जीवनिकें मिथ्यादर्शनकी प्रवृत्ति कैसें पाइए है

सो कहिए हैं। इहां वर्णन तो श्रद्धानका करना है परन्तु जानै तब श्रद्धान करै, तातैं जाननेकी मुख्यताकरि वर्णन करिए है।

मिथ्यादर्शनकी प्रवृत्ति

अनादितैं जीव है सो कर्मके निमित्ततैं अनेक पर्याय धरै है तहाँ पूर्व पर्यायको छोरै, नवीन पर्याय धरै। बहुरि वह पर्याय है सो एक तो आप आत्मा अर अनन्त पुद्गलपरमाणुमय शरीर तिनका एक पिंड बंधानरूप है। बहुरि जीवकै तिस पर्यायविषै यह मैं हूँ, ऐसैं अहंबुद्धि हो है। बहुरि आप जीव है ताका स्वभाव तो ज्ञानादिक है अर विभाव क्रोधादिक हैं अर पुद्गल परमाणूनिके वर्ण गंध रस स्पर्शादि स्वभाव हैं तिन सबनिको अपना स्वरूप मानै है। ये मेरे हैं, ऐसैं मम बुद्धि हो है। बहुरि आप जीव है ताको ज्ञानादिककी वा क्रोधादिककी अधिक हीनतारूप अवस्था हो है अर पुद्गलपरमाणूनिकी वर्णादि पलटनेरूप अवस्था हो है तिन सबनिको अपनी अवस्था मानै है। ये मेरी अवस्था हैं. ऐसैं मम बुद्धि करै है। बहुरि जीवकै अर शरीरकै निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध है तातैं जो क्रिया हो है ताको अपनी मानै। अपना दर्शनज्ञानस्वभाव है, ताकी प्रवृत्तिको निमित्त मात्र शरीरका अंगरूप-स्पर्शनादि द्रव्यइन्द्रिय हैं यहु तिनको एक मान ऐसे मानै है जो हस्तादि स्पर्शनकरि मैं स्पर्श्या, जीभकरि चाख्या नासिकाकरि सूंघ्या, नेत्रकरि देख्या, काननिकरि सुन्या, ऐसैं मानै है। मनोवर्गणारूप आठ पांखुड़ीका फूल्या कमलके आकार हृदय स्थानविषै द्रव्यमन है, दृष्टि-गम्य नाहीं ऐसा है सो शरीरका अंग है, ताका निमित्त भये स्मरणादि-रूप ज्ञानकी प्रवृत्ति हो है। यहु द्रव्यमनको अर ज्ञानको एक मानि ऐसैं मानै है कि मैं मनकरि जान्या। बहुरि अपने बोलनेकी इच्छा हो है तब अपने प्रदेशनिकों जैसैं बोलना बनै हलावै, तब एक क्षेत्रावगाह सम्बन्धतैं शरीरके अंग भी हालैं, ताके निमित्ततैं भाषा वर्गणारूप पुद्गल वचनरूप परिणमैं। यहु सबको एक मानि ऐसैं मानै जो मैं

बोलूं हूं। बहुरि अपने गमनादि क्रियाको वा वस्तु ग्रहणादिककी इच्छा होय तब अपने प्रदेशनिको जैसें कार्य बनै तैसें हलावै, तब एक क्षेत्रावगाहतैं शरोरके अंग हालें तब वह कार्य बनै। अथवा अपनी इच्छा बिना शरीर हालै तब अपने प्रदेश भी हालें, यहु सबको एक मानि ऐसें मानै, मैं गमनादि कार्य करूं हूं वा वस्तु ग्रहूं वा मैं किया है इत्यादिरूप मानै है। बहुरि जीवकै कषाय भाव होय तब शरीरको ताके अनुसार चेष्टा होइ जाय। जैसें क्रोधादिक भये रक्त नेत्रादि होइ जाय, हास्यादि भये प्रफुल्लित वदनादि होइ जाय, पुरुष वेदादि भये लिंगकाठिन्यादि होइ जाय। यहु सबकों एक मानि ऐसा मानै कि ये सर्व कार्य मैं करूं हूँ। बहुरि शरीरविषै शीत उष्ण क्षुधा तृषा रोग इत्यादि अवस्था हो है ताके निमित्ततें मोहभावकरि आप सुखदुःख मानै। इन सबनिकों एक जानि शीतादिकको वा सुख दुःख को अपने ही भये मानै है। बहुरि शरीरका परमाणूनिका मिलना बिछुरनादि होनेकरि वा तिनकी अवस्था पलटनेकरि वा शरीर स्कंधका खंडादि होनेकरि स्थूल कृशादि वा बाल वृद्धादिक वा अंगहीनादिक होय अर ताके अनुसार अपने प्रदेशनिका संकोच विस्तार होय। यहु सबको एक मानि मैं स्थूल हूं, मैं कृश हूं, मैं बालक हूं, मैं वृद्ध हूं, मेरे इन अंगनिका भंग भया है इत्यादि रूप मानै है। बहुरि शरीरकी अपेक्षा गतिकुलादिक होइ तिनको अपने मानि मैं मनुष्य हूं. मैं तिर्यंच हूं, मैं क्षत्रिय हूं इत्यादिरूप मानै है। बहुरि शरीर संयोग होने छूटनेकी अपेक्षा जन्म मरण होय, तिनको अपना जन्म मरण मानि मैं उपज्या, मैं मरूंगा ऐसा मानै है। बहुरि शरीर ही की अपेक्षा अन्य वस्तुनिस्यों नाता मानै है। जिनकरि शरीर निपज्या तिनकों अपने माता पिता मानै है। जो शरीरको रमावै ताको अपनी रमनी मानै है। जो शरोरकरि निपज्या ताको अपना पुत्र मानै है। जो शरीरको उपकारी ताको मित्र मानै है। जो शरीर का बुरा करै ताको शत्रु मानै है इत्यादिरूप मानि हो है। बहुत कहा कहिये जिस प्रकारकरि

आप अर शरीरको एक ही माने है। इन्द्रादिक का नाम तो इहाँ कह्या है। याको तो किछू गम्य नाहीं। अचेत हुआ पर्यायविषें अहंबुद्धि धारै है। सो कारण कहा है? सो कहिये है।

इस आत्माकै अनादितें इन्द्रियज्ञान है ताकरि आप अमूर्तीक है सो तो भासै नाहीं अर शरीर मूर्तीक है सोही भासै। अर आत्मा काहूको आपो जानि अहंबुद्धि धारै सो आप जुदा न भास्या तब तिनका समुदायरूप पर्यायविषैं ही अहंबुद्धि धारै है। बहुरि आपकै अर शरीरकै निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध घना ताकरि भिन्नता भासै नाहीं। बहुरि जिस विचारकरि भिन्नता भासै सो मिथ्यादर्शनके जोर तैं होइ सकै नाहीं तातैं पर्याय ही विषें अहंबुद्धि पाइये है। बहुरि मिथ्यादर्शनकरि यहु जीव कदाचित् बाह्य सामग्रीका संयोग होतें तिन को भी अपनी मानै है। पुत्र, स्त्री, धन, धान्य, हाथी, घोड़े, मन्दिर, किंकरादिक प्रत्यक्ष आपतै भिन्न अर सदा काल अपने आधीन नाहीं, ऐसे आपकों भासै तो भी तिन विषै ममकार करै है। पुत्रादिकविषै ये हैं सो मैं ही हूं, ऐसो भी कदाचित् भ्रमबुद्धि हो है। बहुरि मिथ्यादर्शनतैं शरीरादिका स्वरूप अन्यथा ही भासै है। अनित्यको नित्य मानै, भिन्नको अभिन्न मानै, दुःख के कारणको सुखका कारण मानै, दुःखको सुख मानै इत्यादि विपरीत भासै है। ऐसैं जीव अजीव तत्त्वनिका अयथार्थज्ञान होतें अयथार्थ श्रद्धान हो है।

बहुरि इस जीवकै मोहके उदयतैं मिथ्यात्व कषायादिक भाव हो हैं। तिनकों अपना स्वभाव मानै है, कर्म उपाधितैं भये न जानै है। दर्शन ज्ञान उपयोग अर ए आस्रवभाव तिनकों एक मानै है। जातैं इनका आधारभूत तो एक आत्मा अर इनका परिणमन एकै काल होइ, तातैं याकों भिन्नपनो न भासै अर भिन्नपनो भासनेका कारण जो विचार है सो मिथ्यादर्शनके बलतैं होइ सकै नाहीं। बहुरि ये मिथ्यात्व कषायभाव आकुलता लिए हैं, तातैं वर्तमान दुःखमय हैं अर कर्मबंधके कारण हैं, तातैं आगामी दुःख उपजावैंगे, तिनको ऐसैं न मानै है।

आप भला जानि इनभावनिरूप होइ प्रवर्तै है। बहुरि यहु दुःखी तो अपने इन मिथ्यात्व कषायभावनितैं होइ अर वृथा ही औरनिकों दुःख उपजावनहारे मानै है। जैसें दुखीतो मिथ्यात्वश्रद्धानतैं होइ अर अपने श्रद्धानके अनुसार जो पदार्थ न प्रवर्तै ताकों दुखदायक मानै। बहुरि दुःखी तो क्रोधतैं हो है। अर जासों क्रोध किया होय ताको दुःखदायक मानै। दुःखी तो लोभतैं होइ अर इष्ट वस्तुकी अप्राप्तिकों दुःखदायक मानै, ऐसैं ही अन्यत्र जानना। इनकी तीव्रताकरि भावनिका जैसा फल लागै तैसा न भासै है। इनको तीव्रताकरि नरकादिक हो है, मन्दता-करि स्वर्गादिक हो है। तहां घनी थोरी आकुलता हो है सो भासै नाहीं, तातैं बुरे न लागै हैं। कारण कहा है—ये आपके किये भासैं तिनकों बुरे कैसें मानै? बहुरि ऐसैं ही आस्रव तत्वका अयथार्थ ज्ञान होतें अयथार्थ श्रद्धान हो है।

बहुरि इन आस्रवभावनिकरि ज्ञानावरणादिकर्मनिका बंध हो है। तिनका उदय होतें ज्ञानदर्शनका हीनपना होना, मिथ्यात्वकषायरूप परिणमन, चाह्या न होना, सुख-दुःखका कारन मिलना, शरीर संयोग रहना, गतिजाति शरीरादिकका निपजना, नीचा ऊँचा कुल पावना होय। सो इनके होनेविषैं मूल कारन कर्म है। ताकों तो पहिचानै नाहीं, जातैं यहु सूक्ष्म है, याकों सूझता नाहीं। अर वह आपको इन कार्यनिका कर्ता दीसै नाहीं, तातैं इनके होनेविषैं कै तो आपको कर्त्ता मानै, कै काहू औरको कर्त्ता मानै। अर आपका वा अन्यका कर्त्तापना न भासै तो गहलरूप होई भवितव्य मानै। ऐसें ही बन्धतत्वका अय-थार्थ ज्ञान होते अयथार्थ श्रद्धान हो है।

बहुरि आस्रवका अभाव होना सो संवर है। जो आस्रवको यथार्थ न पहिचानै, ताके संवरका यथार्थश्रद्धान कैसें होइ? जैसें काहूकै अहित आचरण है, वाकों वह अहित न भासै तो ताके अभावको हित-रूप कैसें मानै? तैसें ही जीवकै आस्रव की प्रवृति है। याकों यहु अहित न भासै तो ताके अभावरूप संवरको कैसें हित मानै। बहुरि

अनादितें इस जीवकै आस्रवभाव ही भया, संवर कबहू न भया, तातें संवर का होना भासै नाहीं। संवर होतें सुख हो है सो भासै नाहीं। संवरतें आगामी दुःख न होसी सो भासै नाहीं। तातैं आस्रवका तो संवर करै नाहीं अर तिन अन्य पदार्थनिकों दुःखदायक मानै है। तिनहीके न होने का उपाय किया करै है सो वे अपने आधीन नाहीं, वृथा ही खेदखिन्न हो है। ऐसें संवर तत्वका अयथार्थ ज्ञान होतें अयथार्थ श्रद्धान हो है।

बहुरि बन्धका एकदेश अभाव होना सो निर्जरा है। जो बन्धको यथार्थ न पहिचानै, ताके निर्जराका यथार्थ श्रद्धान कैसें होय? जैसें भक्षण किया हुवा विष आदिकतें दुःख होता न जानै तो ताके उषाल* का उपायको कैसें भला जानै। तैसें बन्धनरूप किए कर्मनितें दुःख होता न जानै तो तिनकी निर्जराका उपायको कैसें भला जानै। बहुरि इस जीवकै इन्द्रियनितें सूक्ष्मरूप जे कर्म तिनका तो ज्ञान होता नाहीं। बहुरि तिनविषें दुःखकूं कारणभूत शक्ति है ताका ज्ञान नाहीं। तातें अन्य पदार्थनिहीके निमित्तको दुःखदायक जानि तिनके ही अभाव करनेका उपाय करै है सो वे अपने आधीन नाहीं। बहुरि कदाचित दुःख दूरि करनेके निमित्त कोई इष्ट संयोगादि कार्य बनै है सो वह भी कर्मके अनुसार बनै है। तातें तिनका उपायकरि वृथा ही खेद करै है। ऐसें निर्जरातत्वका अयथार्थ ज्ञान होतें अयथार्थ श्रद्धान हो है।

बहुरि सर्व कर्मबन्धका अभाव ताका नाम मोक्ष है। जो बन्धको वा बन्धजनित सर्व दुखनिको नाही पहिचानै, ताके मोक्षका यथार्थ श्रद्धान कैसें होइ। जैसें काहूकै रोग है, वह रोगको वा रोग-जनित दुःखनिको न जानै तो सर्वथा रोगके अभावको कैसें भला जानै? तैसें याकै कर्मबन्धन है, यहु तिस बन्धनको वा बन्धजनित दुःखको

* नष्ट करना।

न जानै तो सर्वथा बन्धके अभावको कैसें भला जानै ? बहुरि इस जीवकै कर्मका वा तिनकी शक्तिका तो ज्ञान नाहीं, तातैं बाह्यपदार्थनिको दुःखका कारन जानि तिनके सर्वथा अभाव करनेका उपाय करै है। अर यहु तो जानै सर्वथा दुःख दूर होनेका कारन इष्ट सामग्रीनिको मिलाय सर्वथा सुखी होना सो कदाचित् होय सकै नाहीं। यहु वृथा ही खेद करै है। ऐसें मिथ्यादर्शनतें मोक्षतत्वका अयथार्थ ज्ञान होनेतें अयथार्थ श्रद्धान हो है। या प्रकार यहु जीव मिथ्यादर्शनतें जीवादि सप्त तत्व जे प्रयोजनभूत हैं तिनका अयथार्थ श्रद्धान करै है। बहुरि पुण्यपाप हैं ते इनहीके विशेष है। सो इन पुण्यपापनिकी एक जाति है तथापि मिथ्यादर्शनतें पुण्यको भला जानै है, पापको बुरा जानै है। पुण्यकरि अपनी इच्छाके अनुसार किंचित् कार्य बनै है, ताको भला जानै है। सो दोनों ही आकुलताके कारण हैं, तातैं बुरे ही हैं। बहुरि यहु अपनी मानितें तहाँ सुख दुःख मानै है। परमार्थतें जहाँ आकुलता है तहाँ दुःख ही है। तातैं पुण्यपापके उदयको भला बुरा जानना भ्रम ही है। बहुरि केई जीव कदाचित् पुण्यपापके कारन जे शुभ अशुभ भाव तिनको भले बुरे जानै है सो भी भ्रम ही है, जातैं दोऊ ही कर्मबन्धनके कारन हैं। ऐसें पुण्यपापका अयथार्थज्ञान होतें अयथार्थश्रद्धान हो है। या प्रकार अतत्वश्रद्धानरूप मिथ्यादर्शनका स्वरूप कह्या। यहु असत्यरूप है तातैं याहीका नाम मिथ्यात्व है। बहुरि यहु सत्यश्रद्धानतें रहित है तातैं याहीका नाम अदर्शन है।

मिथ्याज्ञानका स्वरूप

अब मिथ्याज्ञानका स्वरूप कहिए है—प्रयोजनभूत जीवादि तत्वनिका अयथार्थ जानना ताका नाम मिथ्याज्ञान है। ताकरि तिनके जाननेविषै संशय विपर्यय अनध्यवसाय हो है। तहाँ ऐसें है कि ऐसें है, ऐसा परस्पर विरुद्धता लिए दोयरूप ज्ञान ताका नाम संशय है, जैसें 'मैं आत्मा हूं कि शरीर हूं' ऐसा जानना। बहुरि किछु है, ऐसा निर्द्धाररहित विचार ताका नाम अनध्यवसाय है; जैसे 'मैं कोई हूं' ऐसा

जानना। या प्रकार प्रयोजनभूत जीवादि तत्वनिविषै संशय विपर्यय अनध्यवसायरूप जो जानना होय ताका नाम मिथ्याज्ञान है। बहुरि अप्रयोजनभूत पदार्थनिको यथार्थ जानै वा अयथार्थ जानै ताकी अपेक्षा मिथ्याज्ञान सम्यग्ज्ञान नाहीं है। जैसें मिथ्यादृष्टि जेवरीको जेवरी जानै तो सम्यग्ज्ञान नाम न होय अर सम्यग्दृष्टि जेवरीको साँप जानै तो मिथ्याज्ञान नाम न होय।

इहां प्रश्न—जो प्रत्यक्ष सांचा झूठा ज्ञानको सम्यग्ज्ञान मिथ्याज्ञान कैसे न कहिए?

ताका समाधान—जहां जाननेहीका सांच झूठ निर्द्धार करनेहीका प्रयोजन होय तहां तो कोई पदार्थ है ताका साचा झूठा जाननेकी अपेक्षा ही मिथ्याज्ञान सम्यग्ज्ञान नाम पावै है। जैसे प्रत्यक्ष परोक्षप्रमाणका वर्णनविषै कोई पदार्थ हो है ताका सांचा जानने रूप सम्यग्ज्ञानका ग्रहण किया है। संशयादिरूप जाननेको अप्रमाणरूप मिथ्याज्ञान कह्या है। बहुरि इहां संसार मोक्षके कारणभूत साचा झूठा जाननेका निर्द्धार करना है सो जेवरी सर्पादिकका यथार्थ वा अन्यथा ज्ञान संसार मोक्षका कारण नाहीं। तातैं तिनकी अपेक्षा इहां मिथ्याज्ञान सम्यग्ज्ञान न कह्या। इहां प्रयोजनभूत जीवादिकतत्वनिहीका जाननेकी अपेक्षा मिथ्याज्ञान सम्यग्ज्ञान कह्या है। इस ही अभिप्रायकरि सिद्धांतविषैं मिथ्यादृष्टिका तो सर्वजानना मिथ्याज्ञान ही कह्या अर सम्यग्दृष्टिका सर्वजानना सम्यग्ज्ञान कह्या।

इहां प्रश्न—जो मिथ्यादृष्टिकै जीवादि तत्वनिका अयथार्थ जानना है ताको मिथ्याज्ञान कहो। जेवरी सर्पादिकके यथार्थ जाननेको तो सम्यग्ज्ञान कहो?

ताका समाधान—मिथ्यादृष्टि जानै है, तहां वाकै सत्ता असत्ता का विशेष नाहीं है। तातैं कारणविपर्यय वा स्वरूपविपर्यय वा भेदाभेद विपर्ययको उपजावै है। तहां जाको जानै है ताका मूल कारणको न पहिचानै। अन्यथा कारण मानै सो तो कारण विपर्यय है। बहुरि

जाको जानै ताका मूलवस्तु तत्वस्वरूप ताको नाहीं पहिचानै, अन्यथा स्वरूप मानै सो स्वरूप विपर्यय है। बहुरि जाको जानै ताको यहु इनतैं भिन्न है यहु इनतैं अभिन्न है ऐसा न पहिचानै, अन्यथा भिन्न अभिन्नपनों मानै सो भेदाभेदविपर्यय है। ऐसें मिथ्यादृष्टिकै जाननेविषै विपरीतता पाइये है। जैसें मतवाला माताको भार्या मानै, भार्याको माता मानै, तैसें मिथ्यादृष्टिकै अन्यथा जानना है। बहुरि जैसें काहू-कालविषें मतवाला माताको माता वा भार्या भी जानै तो भी वाकै निश्चयरूप निर्द्धारकरि श्रद्धान लिए जानना न हो है। तातैं वाकै यथार्थज्ञान न कहिए। तैसें मिथ्यादृष्टि काहू काल विषं किसी पदार्थ-को सत्य भी जानै तो भी वाकै निश्चयरूप निर्द्धारकरि श्रद्धान लिए जानना न हो है। अथवा सत्य भी जानैं परन्तु तिनकरि अपना प्रयोजन तो अयथार्थ ही साधैं है तातैं वाकैं सम्यग्ज्ञान न कहिए। ऐसे मिथ्यादृष्टकीके ज्ञानको मिथ्याज्ञान कहिये है।

इहां प्रश्न—जो इस मिथ्याज्ञानका कारण कौन है ?

ताका समाधान—मोहके उदयतैं जो मिथ्यात्वभाव होय, सम्यक्त्व न होय सो इस मिथ्याज्ञानका कारण है। जैसें विषके संयोगतैं भोजन भी विषरूप कहिए तैसें मिथ्यात्वके सम्बन्धतैं ज्ञान है सो मिथ्याज्ञान नाम पावैं है।

इहां कोऊ कहै—ज्ञानावरणका निमित्त क्यों न कहो ?

ताका समाधान—ज्ञानावरणके उदयतैं तो ज्ञानका अभावरूप अज्ञानभाव हो है। बहुरि क्षयोपशमतैं किंचित् ज्ञानरूप मति आदि ज्ञान हो है। जो इनविषै काहूको मिथ्याज्ञान काहूको सम्यग्ज्ञान कहिए तो ए दोऊहीका भाव मिथ्यादृष्टि वा सम्यग्दृष्टोकै पाइए है तातैं तिन दोऊनिकै मिथ्याज्ञान वा सम्यग्ज्ञानका सद्भाव होइ जाय सो तो सिद्धान्तविषै विरुद्ध होइ। तातैं ज्ञानावरणका निमित्त बने नाहीं।

बहुरि इहां कोऊ पूछै कि जेवरी सर्पादिकके अयथार्थ यथार्थ ज्ञानका कौन कारण है तिसहीको जीवादि तत्वनिका अयथार्थज्ञानका कारण कहो ?

ताका उत्तर—जो जाननेविषै जेता अयथार्थपना हो है तेता तो ज्ञानावरणका उदयतें हो है। अर जेता यथार्थपना हो है तेता ज्ञानावरणके क्षयोपशमतेंहो है। जैसें जेवरीको सर्प जान्या सो अयथार्थ जानने की शक्तिका कारण उदयमें हो है, तातें अयथार्थ जानै है। बहुरि जेवरीको जेवरी जानी सो यथार्थ जानने की शक्तिका कारण क्षयोपशम है तातें यथार्थ जानै है। तैसें ही जीवादि तत्वनिका यथार्थ जाननेकी शक्ति न होने वा होने विषै तो ज्ञानावरणहीका निमित्त है परन्तु जैसें काहू पुरुषकै क्षयोपशमतें दुःखकों वा सुखकों कारणभूत पदार्थनिको यथार्थ जाननेकी शक्तिहोय तहाँ जाकै असातावेदनीयका उदय होय सो दुःखकों कारणभूत जो होय तिसहीकों वेदैं, सुखका कारणभूत पदार्थनिको न वेदै अर जो सुखका कारणभूत पदार्थको वेदै तो सुखी हो जाय। सो असाताका उदय होतें होय सकै नाहीं। तातें इहां दुःखको कारणभूत अर सुखको कारणभूत पदार्थ वेदनेविषें ज्ञानावरणका निमित्त नाहो, असाता साता का उदय हो काणभूत है। तैसें ही जोवकै प्रयोजनभूत जोवादितत्व, अप्रयोजनभूत अन्य तिनके यथार्थ जानने की शक्ति होय। तहां जाकै मिथ्यात्वका उदय होय सो जे अप्रयोजनभूत होय तिनहो को वेदै, जानै, अप्रयोजनभूतकों न जानै। जो प्रयोजनभूतकों जानै तो सम्यग्ज्ञान होय जाय सो मिथ्यात्वका उदय होतें होइ सकै नाहीं। तातें इहां प्रयोजनभूत अप्रयोजनभूत पदार्थ जाननेविषें ज्ञानावरणका निमित्त नाहीं, मिथ्यात्वका उदय अनुदय ही कारणभूत है। इहां ऐसा जानना—जहां एकेन्द्रियादिककै जीवादि तत्वनिका यथार्थ जाननेकी शक्ति ही न होय वहां तो ज्ञानावरणका उदय अर मिथ्यात्वका उदयतें भया मिथ्याज्ञान अर मिथ्यादर्शन इन दोऊनिका निमित्त है। बहुरि जहां संज्ञी मनुष्यादिकै

क्षयोपशमादि लब्धि होतें शक्ति होय अर न जानै तहाँ मिथ्यात्वके उदयहीका निमित्त जानना। याहीतें मिथ्याज्ञानका मुख्य कारण ज्ञाना-वरण न कह्या, मोहका उदयतें भया भाव सो ही कारण कह्या हो है।

बहुरि इहां प्रश्न—जो ज्ञान भये श्रद्धान हो है तातैं पहिलै मिथ्याज्ञान कहो, पीछें मिथ्यादर्शन कहो ?

ताका समाधान—है तो ऐसें ही, जाने बिना श्रद्धान कैसे होय। परन्तु मिथ्या अर सम्यक् ऐसी संज्ञा ज्ञानकै मिथ्यादर्शन सम्यग्दर्शनके निमित्ततें हो है। जैसें मिथ्यादृष्टि वा सम्यग्दृष्टी सुवर्णादि पदार्थनिको जानै तो समान है परन्तु सो ही जानना मिथ्यादृष्टिकै मिथ्याज्ञान नाम पावै, सम्यग्दृष्टिकै सम्यग्ज्ञान नाम पावै। ऐसेही सर्वमिथ्याज्ञान को कारण मिथ्यादर्शन और सम्यग्ज्ञान को कारण सम्यग्दर्शन जानना। तातैं जहाँ सामान्यपने ज्ञान श्रद्धानका निरूपण होय तहां तो ज्ञान कारण भूत है ताकों पहिले कहना अर श्रद्धान कार्यभूत है ताकों पीछे कहना। बहुरि जहां मिथ्या सम्यग्ज्ञान श्रद्धानका निरूपण होय तहाँ श्रद्धान कारणभूत है ताकों पहिले कहना, ज्ञान कार्यभूत है ताकों पीछे कहना।

बहुरि प्रश्न—जो ज्ञान श्रद्धान तो युगपत् हो है, इन विषै कारण कार्यपना कैसें कहो ?

ताका समाधान—वह होय इस अपेक्षा कारण कार्यपना हो है। जैसें दीपक अर प्रकाश युगपत् हो है तथापि दीपक होय तो प्रकाश होय, तातैं दीपक कारण है, प्रकाश कार्य है। तैसें ही ज्ञान श्रद्धान है मिथ्यादर्शन मिथ्याज्ञानकै वा सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान के कारण कार्य पना जानना।

बहुरि प्रश्न—जो मिथ्यादर्शन के संयोगतें ही मिथ्याज्ञान नाम पावै है तो एक मिथ्यादर्शन ही संसारका कारण कहना था, मिथ्या-ज्ञान जुदा काहेकों कह्या ?

ताका समाधान—ज्ञानहीकी अपेक्षा तो मिथ्यादृष्टि वा सम्यग्दृष्टि कै क्षयोपशमसे भया यथार्थ ज्ञान तामें किछू विशेष नाहीं

अर ज्ञान केवलज्ञानविषै भी जाय मिलै है, जैसें नदी समुद्र में मिलै। तातैं ज्ञानविषैं किछु दोष नाहीं परन्तु क्षयोपशम ज्ञान जहां लागै तहाँ एक ज्ञेयविषै लागै सो यहु मिथ्यादर्शनके निमित्ततैं अन्य ज्ञेयनिविषै तो ज्ञान लागै अर प्रयोजनभूतजीवादि तत्वनिका यथार्थ निर्णय करनेविषैं न लागै सो यहु ज्ञान विषैं दोष भया। याकों मिथ्याज्ञान कह्या। बहुरि जीवादि तत्वनिका यथार्थ श्रद्धान न होय सो यहु श्रद्धानविषैं दोष भया। याको मिथ्यादर्शन कह्या। ऐसें लक्षणभेदतें मिथ्यादर्शन मिथ्याज्ञान जुदा कह्या। ऐसें मिथ्याज्ञान का स्वरूप कह्या। इसहीकों तत्वज्ञानके अभावतें अज्ञान कहिए है। अपना प्रयोजन न सधै तातैं याहीकों कुज्ञान कहिए है।

मिथ्याचारित्रका स्वरूप

अब मिथ्याचारित्रका स्वरूप कहिए है—जो चारित्रमोहके उदयतें कषाय भाव होइ ताका नाम मिथ्याचारित्र है। इहाँ अपने स्वभावरूप प्रवृत्ति नाहीं, झूठी परस्वभावरूप प्रवृत्ति किया चाहै सो बनै नाहीं, तातें याका नाम मिथ्याचारित्र है। सोइ दिखाइए है—अपना स्वभाव तो दृष्टा ज्ञाता है सो आप केवल देखनहारा जानन-हारा तो रहै नाहीं। जिन पदार्थनिको देखै जानै तिन विषं इष्ट अनिष्टपनो मानं तातें रागी द्वषी होय काहूका सद्भावको चाहै, काहूका अभावको चाहै सो उनका सद्भाव अभाव याका होता नाहीं। जातें कोई द्रव्य कोई द्रव्यका कर्ता हर्ता है नाहीं। सर्व द्रव्य अपने अपने स्वभावरूप परिणमैं हैं। यहु वृथा ही कषाय भावकरि आकुलित हो है। बहुरि कदाचित् जैसें आप चाहै तैसें ही पदार्थ परिणमै तो अपना परिणमाया तो परिणम्या नाहीं। जैसें गाड़ा चालै अर वाकों बालक धकायकरि ऐसा मानै कि याकों मैं चलाऊं हूं। सो वह असत्य मानै है; जो वाका चलाया चालै तब क्यों न चलावै? तैसें पदार्थ परिणमैं हैं अर उनको यहु जीव अनुसारी होय करि ऐसा मानै जो याको मैं ऐसे परिणमाऊं हूं। सो यहु असत्य मानै है।

जो याका परिणमाया परिणमैं तो वह तैसें न परिणमैं तब क्यों न परिणमावै ? सो जैसें आप चाहै तैसें तो पदार्थ का परिणमन कदाचित् ऐसें ही बानक बनै तब हो है, बहुत परिणमन तो आप न चाहै तैसें ही होता देखिए है। तातें यहु निश्चय है, अपना किया काहू का सद्भाव अभाव होई ही नाहीं। बहुरि जो अपना किया सद्भाव का अभाव होई ही नाहीं तो होइ ही नाहीं। कषायभाव करनेतें कहा होय ? केवल आप ही दुःखी होय। जैसें कोऊ विवाहादि कार्य विषें जाका किछु कह्या न होय अर वह आप कर्ता होय कषाय करै तो आप ही दुःखी होय तैसें जानना। तातैं कषायभाव करना ऐसा है जैसा जल का बिलोवना किछु कार्यकारी नाहीं। तातैं इन कषायनिको प्रवृत्ति को मिथ्या-चारित्र कहिए है। बहुरि कषायभाव हो है सो पदार्थनिकों इष्ट अनिष्ट माने ही है। सो इष्ट अनिष्ट मानना भी मिथ्या है. जातैं कोई पदार्थ इष्ट अनिष्ट है नाहीं। कैसें ? सो कहिए है।

इष्ट-अनिष्टकी मिथ्या कल्पना

आपको सुखदायक उपकारी होय ताकों इष्ट कहिए। आपका दुःख दायक अनुपकारो होय ताको अनिष्ट कहिए। सो लोकमें सर्व पदार्थ अपने अपने स्वभावहीके कर्त्ता हैं। कोऊ काहूकों सुख दुःख-दायक उपकारी अनुपकारी है नाहीं। यह जीव अपने परिणाम-निविषें तिनकों सुखदायक उपकारी मानि इष्ट जानै है अथवा दुःखदायक अनुपकारो जानि अनिष्ट मानै है। जैसें जाको वस्त्र न मिलै ताको वह अनिष्ट लागै है। सूकरादिकको विष्टा इष्ट लागै है, देवादिकको अनिष्ट लागै है। काहूको मेघवर्षा इष्ट लागै है, काहूको अनिष्ट लागै है। ऐसें ही अन्य जानने। बहुरि याही प्रकार एक जीव को भी एक ही पदार्थ काहू कालविषै इष्ट लागै है, काहू कालविषै अनिष्ट लागै है। बहुरि यहु जीव जाको मुख्यपने इष्ट मानै सो भी अनिष्ट होता देखिए है, इत्यादि जानने। जैसें शरीर इष्ट है सो रोगा-

विसंहित होय तब अनिष्ट होइ जाय। पुत्रादिक इष्ट हैं सो कारणपाय अनिष्ट होते देखिए हैं, इत्यादि जानने। बहुरि यहु जीव जाको मुख्यपने अनिष्ट मानै सो भी इष्ट होता देखिए है। जैसें गाली अनिष्ट लागै है सो सासरेमें इष्ट लागै है, इत्यादि जानने। ऐसें पदार्थविषैं इष्ट अनिष्टपनो है नाहीं। जो पदार्थविसैं इष्ट अनिष्टपनो होता तो जो पदार्थ इष्ट होता सो सर्वको इष्ट ही होता, जो अनिष्ट होता सो अनिष्ट ही होता, सो है नाहीं। यहु जीव आप ही कल्पनाकरि तिनको इष्ट अनिष्ट मानै है सो यह कल्पना झूठी है। बहुरि पदार्थ है सो सुखदायक उपकारो वा दुःखदायक अनुपकारो हो है सो आपही नाहीं हो है, पुण्य पापके उदयके अनुसारि हो है। जाकै पुण्यका उदय हो है ताकै पदार्थनिका संयोग सुखदायक उपकारी हो है, जाकै पापका उदय हो है ताकै पदार्थनिका संयोग दुःखदायक अनुपकारी हो है सो प्रत्यक्ष देखिए है। काहूकै स्त्रीपुत्रादिक सुखदायक हैं, काहूकै दुःखदायक हैं; व्यापार किये काहूकै नफा हो है, काहूकै टोटा हो है; काहूकै शत्रु भी किंकर हो हैं, काहूकै पुत्र भी अहितकारी हो हैं। तातैं जानिए है, पदार्थ आप ही इष्ट अनिष्ट होते नाहीं, कर्म उदयके अनुसार प्रवर्तै हैं। जैसें काहूकै किंकर अपने स्वामीके अनुसार किसी पुरुषको इष्ट अनिष्ट उपजावैं तो किछु किंकरनिका कर्त्तव्य नाहीं, उनके स्वामीका कर्तव्य है। जो किंकरनिहीकों इष्ट अनिष्ट मानै सो झूठ है। तैसें कर्मके उदयतैं प्राप्त भये पदार्थ कर्मके अनुसार जीवको इष्ट अनिष्ट उपजावें तो किछु पदार्थनिका कर्तव्य नाहीं, कर्मका कर्त्तव्य है। जो पदार्थनिहीकों इष्ट अनिष्ट मानै सो झूठ है। तातें यहु बात सिद्ध भई कि पदार्थनिकों इष्ट अनिष्ट मानि तिनविषै रागद्वेष करना मिथ्या हो है।

इहां कोऊ कहै कि बाह्य वस्तुनिका संयोग कर्म निमित्ततैं बनै है तो कर्मनिविषै तो राग द्वेष करना।

ताका समाधान—कर्म तो जड़ हैं, उनके किछू सुख दुःख देनेकी

इच्छा नाहीं। बहुरि वे स्वयमेव तो कर्मरूप परिणमें नाहीं, याके भावनिके निमित्ततैं कर्मरूप हो हैं। जैसें कोऊ अपने हाथकरि भाटा (पत्थर) लेई अपना सिर फोरै तो भाटाका कहा दोष है? तैसें जीव अपने रागादिक भावनिकरि पुद्गलकों कर्मरूप परिणमाय अपना बुरा करै तो कर्मका कहा दोष है। तातैं कर्मस्यों भी राग द्वेष करना मिथ्या है। या प्रकार परद्रव्यनिकों इष्ट मानि रागद्वेष करना मिथ्या है। जो परद्रव्य इष्ट अनिष्ट होता अर तहाँ राग द्वेष करता तो मिथ्या नाम न पाता। वे तो इष्ट अनिष्ट है नाहीं अर यहु इष्ट अनिष्ट मानि रागद्वेष करै, तातै इन परिणमननको मिथ्या कह्या है मिथ्यारूप जो परिणमन ताका नाम मिथ्याचारित्र है।

अब इस जीवके रागद्वेष होय है, ताका विधान वा विस्तार दिखाइए है—

राग-द्वेषका विधान तथा विस्तार

प्रथम तो इस जीवकै पर्यायविषें अहंबुद्धि है सो आपको वा शरीर को एक जानि प्रवर्तै है बहुरि इस शरीरविषें आपको सुहावै ऐसी इष्ट अवस्था हो है तिसविषै राग करै है। आपको न सुहावै ऐसी अनिष्ट अवस्था हो है तिसविषै द्वेष करै है। बहुरि शरीरकी इष्ट अवस्थाके कारणभूत बाह्य पदार्थनिविषै तो राग करै है अर ताके घातकनिविषै द्वेष करै है। बहुरि शरीरकी अनिष्ट अवस्थाके कारणभूत बाह्यपदार्थ-निविषै तो द्वेष करै है अर ताके घातकनिविषै राग करै है। बहुरि इन विषें जिन बाह्य पदार्थनिसों राग करै है तिनके कारणभूत अन्य पदार्थनिविषै राग करै है, तिनके घातकनिविषै द्वेष करै है। बहुरि जिन बाह्य पदार्थनिस्यों द्वेष करै है तिनके कारणभूत अन्य पदार्थ निविषै द्वेष करै है, तिनके घातकनिविषै राग करै है। बहुरि इन विषै भी जिनस्यों राग करै है तिनके कारण वा घातक अन्य पदार्थनिविषै राग वा द्वेष करै है अर जिनस्यों द्वेष करै है तिनके कारण वा घातक अन्य पदार्थनिविषै द्वेष वा राग करै है। ऐसें ही रागद्वेषकी परम्परा

प्रवर्तें है। बहुरि केई बाह्य पदार्थ शरीरकी अवस्थाको कारण नाहीं तिन विषैं भी रागद्वेष करै है। जैसें गऊ आदिके पुत्रादिकतैं किछू शरीरका इष्ट होय नाहीं तथापि तहां राग करै है। जैसें ककरा आदिकै बिलाई आदिक तें किछू शरीर का अनिष्ट होय नाही तथापि तहां द्वेष करै है। बहुरि केई वर्ण गन्ध शब्दादिकके अवलोकनादिकतैं शरीरका इष्ट होता नाहीं तथापि तिनविषै राग करै है। केई वर्णादिकके अवलोकनादिकतैं शरीरका अनिष्ट होता नाहीं तथापि तिनविषै द्वेष करै है। ऐसें भिन्न बाह्य पदार्थनिविषैं रागद्वेष हो है। बहुरि इनविषैं भी जिनस्यों राग करै है तिनके कारण अर घातक अन्य पदार्थनिविषैं राग वा द्वेष करै है अर जिनस्यों द्वेष करै है तिन के कारण वा घातक अन्यपदार्थ तिन विषै द्वेष वा राग करै है। ऐसें ही यहाँ भी रागद्वेषकी परम्परा प्रवर्तें है।

इहां प्रश्न—जो अन्य पदार्थनिविषै तो रागद्वेष करने का प्रयोजन जान्या परन्तु प्रथम ही मूलभूत शरीरको अवस्थाविषै वा शरीरको अवस्थाको कारण नाहीं, तिन पदार्थनिविषैं इष्ट अनिष्ट माननेका प्रयोजन कहा है?

ताका समाधान—जो मूलभूत शरीरकी अवस्था आदिक हैं तिन विषै भी प्रयोजन विचार द्वेष करै तो मिथ्याचारित्र काहेकों नाम पावै। तिनविषै बिना ही प्रयोजन रागद्वेष करै है अर तिनहीके अर्थि अन्यस्यों रागद्वेष करै है तातैं सब रागद्वेष परिणतिका नाम मिथ्याचारित्र कह्या है।

इहाँ प्रश्न—जो शरीरकी अवस्था वा बाह्य पदार्थनिविषै इष्ट अनिष्ट माननेका प्रयोजन तो भासै नाहीं अर इष्ट अनिष्ट माने बिना रह्या जाता नाहीं सो कारण कहा है?

ताका समाधान—इस जीवकै चारित्रमोहका उदयतैं रागद्वेषभाव होय ए भाव कोई पदार्थका आश्रय बिना होय सकै नाहीं। जैसें राग होय सो कोई पदार्थ विषं होय, द्वेष होय सो कोई पदार्थ विषै हो

होय। ऐसें तिन पदार्थनिके अर रागद्वेषकै निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध है। तहां विशेष इतना जो केई पदार्थ तो मुख्यपने रागकों कारण हैं, केई पदार्थ मुख्यपने द्वेषकों कारण हैं। केई पदार्थ काहूकों काहू काल विषें रागके कारण हो हैं, काहूकों काहूकाल विषें द्वेषके कारण हो हैं। इहाँ इतना जानना—एक कार्य होने विषें अनेक कारण चाहिए हैं सो रागादिक होने विषें अंतरंग कारण मोहका उदय हैं सो तो बलवान् है अर बाह्या कारण पदार्थ है सो बलवान् नाहीं है। महामुनिनिकै मोह मन्द होतें बाह्या पदार्थनिका निमित्त होतें भी रागद्वेष उपजते नाहीं। पापी जीवननिकै मोह तीव्र होतें बाह्यकारण न होतें भी तिनका संकल्प ही करि रागद्वेष हो है। तातैं मोहका उदय होतें रागादिक हो हैं। तहाँ जिस बाह्यपदार्थका आश्रय करि रागभाव होना होय, तिस विषें बिना ही प्रयोजन वा कछू प्रयोजन लिए इष्टबुद्धि हो है। बहुरि जिस पदार्थका आश्रय करि द्वेषभाव होना होय, तिस विषें बिना ही प्रयोजन वा किछू प्रयोजन लिए अनिष्ट बुद्धि हो है। तातैं मोहका उदयतैं पदार्थनिको इष्ट अनिष्ट माने बिना रह्या जाता नाहीं। ऐसै पदार्थनि विषें इष्ट अनिष्ट बुद्धि होतें जो रागद्वेष रूप परिणमन होय ताका नाम मिथ्याचारित्र जानना। बहुरि इन रागद्वेषनि होके विशेष क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुन्सकवेदरूप कषायभाव हैं ते सर्व इस मिथ्याचारित्रहीके भेद जानने। इनका वर्णन पूर्वें कियाही है। बहुरि इस मिथ्याचारित्रविषें स्वरूपाचरणचारित्रका अभाव है तातैं याका नाम अचारित्र भी कहिए। बहुरि यहां परिणाम मिटै नाहीं अथवा विरक्त नाहीं, तातैं याहीका नाम असंयम कहिए है वा अविरति कहिए है। जातैं पांच इन्द्रिय अर मनके विषयनिविषें बहुरि पंचस्थावर अर त्रसकी हिंसा विषें स्वछन्दपना होय अर इनके त्यागरूप भाव न होय सोई असंयम वा अविरति बारह प्रकार कह्या है सो कषायभाव भये ऐसें कार्य हो हैं तातैं मिथ्याचारित्रका नाम असंयम वा अविरति

जानना। बहुरि इसही का नाम अव्रत जानना। जातैं हिंसा, अनृत, अस्तेय, अब्रह्म, परिग्रह इन पाप कार्यनिविषै प्रवृतिका नाम अव्रत है। सो इनका मूलकारण प्रमत्तयोग कह्या है। प्रमत्तयोग है सो कषायमय है तातैं मिथ्याचारित्रका नाम अव्रत भी कहिए है। ऐसैं मिथ्याचारित्र का रूप कह्या। या प्रकार इस संसारी जीवकै मिथ्यादर्शन मिथ्याज्ञान मिथ्याचारित्ररूप परिणमन अनादितैं पाइए है। सो ऐसा परिणमन एकेन्द्रिय आद असंज्ञीपर्यंत तो सर्व जीवनिकै पाइए है। बहुरि संज्ञी पंचेन्द्रियनिविषै सम्यग्दृष्टी बिना अन्य सर्व जीवनिकै ऐसा ही परिणमन पाइए है। परिणमनविषै जैसा जहां सम्भवै तैसा तहां जानना। जैसैं एकेन्द्रियादिककै इन्द्रियादिकनिकी हीनता अधिकता पाइए है वा धन पुत्रादिकका सम्बन्ध मनुष्यादिककै ही पाइये है सो इनके निमित्ततैं मिथ्यादर्शनादिका वर्णन किया है : तिस विषैं जैसा विशेष सम्भवै तैसा जानना। बहुरि एकेन्द्रियादिक जीव इन्द्रिय शरीरादिक का नाम जानै नाहीं हैं परन्तु तिस नामका अर्थरूप जो भाव है तिसविषै पूर्वोक्त प्रकार परिणमन पाइए है। जैसैं मैं स्पर्शनकरि स्परशूं हूं, शरीर मेरा है ऐसा नाम न जानै हैं तथापि इसका अर्थरूप जो भाव है तिस रूप परिणमै है। बहुरि मनुष्यादिक केई नाम भी जानै हैं अर ताके भावरूप परिणमैं हैं, इत्यादि विशेष सम्भवै सो जान लेना। ऐसैं ए मिथ्यादर्शनादिक भाव जीवकै अनादितैं पाइये हैं, नवीन ग्रहे नाहीं। देखो याकी महिमा कि जो पर्याय धरै है तहां बिना ही सिखाए मोहके उदयतैं स्वयमेव ऐसा ही परिणमन हो है। बहुरि मनुष्यादिककै सत्य विचार होनेके कारण मिलैं तो भी सम्यक् परिणमन होय नाहीं अर श्रीगुरुके उपदेशका निमित्त बनै, वे बारबार समझावें, यहु कछु विचार करै नाहीं। बहुरि आपको भी प्रत्यक्ष भासै सो तो न मानै अर अन्यथा ही मानै। कैसें ? सो कहिए है —

मरण होते शरीर आत्मा प्रत्यक्ष जुदा हो हैं। एक शरीरको छोरि आत्मा अन्य शरीर धरै है सो व्यंतरादिक अपने पूर्व भवका

सम्बन्ध प्रकट करते देखिए हैं परन्तु याकै शरीरतैं भिन्न बुद्धि न होय सकै है। स्त्री पुत्रादिक अपने स्वार्थके सगे प्रत्यक्ष देखिए हैं। उनका प्रयोजन न सधै तब ही विपरीत होते देखिए हैं। यहु तिन विषै ममत्व करै है अर तिनके अर्थि नरकादिकविषैं गमनको कारण नाना पाप उपजावै है। धनादिक सामग्री अन्यकी अन्यकै होती देखिए है, यहु तिनको अपनी मानै है; बहुरि शरीरकी अवस्था वा बाह्यसामग्री स्वयमेव होती विनशती दीसै है, यहु वृथा आप कर्ता हो है। तहाँ जो अपने मनोरथ अनुसार कार्य होय ताको तो कहै मैं किया अर अन्यथा होय ताकों कहै मैं कहा करूँ ? ऐसैं ही होना था वा ऐसैं क्यों भया ऐसा मानै है। सो कै तो सर्वका कर्त्ता ही होना था, कै अकर्ता रहना था सो विचार नाहीं। बहुरि मरण अवश्य होगा ऐसा जानै परन्तु मरण का निश्चयकरि किछू कर्तव्य करै नाहीं, इस पर्याय सम्बन्धी ही यत्न करै है। बहुरि मरणका निश्चयकरि कबहूं तो कहै मैं मरूंगा, शरीर को जलावेंगे। कबहूं कहै मोको जलावेंगे। कबहूं कहै जस रह्या तो हम जीवते ही हैं। कबहूं कहै पुत्रादिक रहेंगे तो मैं ही जीऊंगा। ऐसैं बाऊलाकीसी नाईं बकै किछू सावधानी नाहीं। बहुरि आपको परलोकविषै प्रत्यक्ष जाता जानै, ताका तो इष्ट अनिष्टका किछू ही उपाय नाहीं अर इहां पुत्र पोता आदि मेरी संततिविषै घने काल ताईं इष्ट रह्या करै अर अनिष्ट न होइ, ऐसैं अनेक उपाय करै है। काहू का परलोक भए पीछें इस लोककी सामग्रीकरि उपकार भया देख्या नाहीं परन्तु याकै परलोक होनेका निश्चय भए भी इस लोककी सामग्रीहीका यतन रहै है। बहुरि विषयकषायकै प्रवृत्ति करि वा हिंसादि कार्यकरि आप दुःखी होय, खेदखिन्न होय, औरनिका बैरी होय, इस लोकविषै निंद्य होय, परलोकविषै बुरा होय सो प्रत्यक्ष आप जानै तथापि तिनही विषैं प्रवर्त्तै। इत्यादि अनेक प्रकार प्रत्यक्ष भासै ताकों भी अन्यथा श्रद्धै जानै आचरै, सो यहु मोहका माहात्म्य है ऐसैं

यहु मिथ्यादर्शन ज्ञानचारित्ररूप अनादितैं जीव परिणमै है। इस ही परिणमनकरि संसारविषै अनेक प्रकार दुःख उपजावनहारे कर्मनिका सम्बन्ध पाइए है। एई भाव दुःखनिके बीज हैं, अन्य कोई नाहीं। तातैं हे भव्य जो दुखतैं मुक्त भया चाहै तो इन मिथ्यादर्शनादिक विभाव-भावनिका अभाव करना, यहु ही कार्य है, इस कार्यके किए तेरा परम कल्याण होगा।

इति श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक नाम शास्त्रविषै मिथ्यादर्शनज्ञान-चारित्रका निरूपणरूप चौथा अधिकार सम्पूर्ण भया ॥४॥

पांचवां अधिकार

विविध मत-समीक्षा

दोहा

बहुविधि मिथ्या गहनकरि, मलिन भयोनिज भाव ।
ताको होत अभाव ह्वै, सहजरूप दरसाव ॥१॥

अथ यहु जीव पूर्वोक्त प्रकारकरि अनादिही तैं मिथ्यादर्शनज्ञान-चारित्ररूप परिणमै है ताकरि संसारविषै दुःख सहतो संतो कदाचित् मनुष्यादि पर्यायनि विषै विशेष श्रद्धानादि करनेकी शक्तिको पावै। तहां जो विशेष मिथ्याश्रद्धानादिकके कारणनिकरि तिन मिथ्या-श्रद्धानादिककों पोषै तो तिस जीवका दुःखतैं मुक्त होना अति दुर्लभ हो है। जैसें कोई पुरुष रोगी है सो किछू सावधानीकों पाय कुपथ्य सेवन करै तो उस रोगी का सुलझना कठिन ही होय। तैसें यहु जीव मिथ्यात्वादि सहित है सो किछू ज्ञानादि शक्तिकों पाय विशेष विपरीत श्रद्धानादिकके कारणनिका सेवन करै तो इस जीवका मुक्त होना कठिन ही होय। तातैं जैसें वैद्य कुपथ्यनिका विशेष दिखाय तिनके सेवनकों निषेधै तैसें ही इहां विशेष मिथ्याश्रद्धानादिकके कारणनिका विशेष दिखाय तिनका निषेध करिए है। इहां अनादितैं जे मिथ्यात्वादि भाव पाइए हैं ते तो अगृहीतमिथ्यात्वादि जानने, जातैं ते नवीन ग्रहण किए नाहीं। बहुरि तिनके पुष्ट करनेके कारणनिकरि विशेष मिथ्या-त्वादिभाव होय ते गृहीतमिथ्यात्वादि जानने। तहाँ अगृहीतमिथ्या-त्वादिकका तो पूर्वे वर्णन किया है सो ही जानना अर गृहीतमिथ्या-त्वादिकका अब निरूपण कीजिए है सो जानना।

गृहीत मिथ्यात्व का निराकरण

कुदेव कुगुरु कुधर्म अर कल्पिततत्त्व तिनका श्रद्धान सो तो मिथ्यादर्शन है। बहुरि जिन—विषै विपरीत निरूपणकरि रागादि पोषे होंय ऐसे कुशास्त्र तिनविषै श्रद्धानपूर्वक अभ्यास सो मिथ्याज्ञान है। बहुरि जिस आचरणविषैं कषायनिका सेवन होय अर ताकौं धर्म रूप अंगीकार करैं सो मिथ्याचारित्र है। अब इन ही को विशेष दिखाइए हैं—इन्द्र लोकपाल इत्यादि; बहुरि अद्वैत ब्रह्म, राम, कृष्ण, महादेव बुद्ध, खुदा, पीर, पैगम्बर इत्यादि; बहुरि हनुमान, भैरूं, क्षेत्रपाल, देवी, दिहाड़ी, सती इत्यादि; बहुरि शीतला, चौथि, सांझी, गणगोरि, होली इत्यादि; बहुरि सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नखत, पितर, व्यन्तर इत्यादि; बहुरि गऊ, सर्प इत्यादि; बहुरि अग्नि, जल, वृक्ष इत्यादि; बहुरि शस्त्र, दवात, बासण इत्यादि अनेक तिनका अन्यथा श्रद्धानकरि तिनको पूजैं। बहुरि तिनकरि अपना कार्य सिद्ध किया चाहैं सो वे कार्य सिद्धिके कारण नाहीं, तातैं ऐसे श्रद्धानको गृहीतमिथ्यात्व कहिए है। तहां तिनका अन्यथा श्रद्धान कैसें हो है सो कहिए है—

सर्वव्यापी अद्वैत ब्रह्मका निराकरण

अद्वैतब्रह्मको* सर्वव्यापी सर्वका कर्त्ता मानैं सो कोई है नाहीं। प्रथम वाकों सर्वव्यापो मानैं सो सर्व पदार्थ तो न्यारे न्यारे प्रत्यक्ष हैं वा तिनके स्वभाव न्यारे न्यारे देखिए हैं, इनकों एक कैसें मानिए है? इनका मानना तो इन प्रकारनि करि—एक प्रकार तो यह है जो सर्व न्यारे न्यारे हैं तिनके समुदायकी कल्पनाकरि ताका किछू नाम धरिए। जैसें घोटक हस्ती इत्यादि भिन्न भिन्न हैं तिनके समुदायका नाम सेना

---

* "सर्वं खैल्विदं ब्रह्म" छान्दोग्योपनिषद् प्र० खं० १४ मं० १
"नेह नानास्ति किंचन" कण्ठोपनिषद् अ० २ व० ४१ मं० ११
ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद ब्रह्मदक्षिणतपश्चोत्तरेण।
अधश्चोर्ध्वं च प्रसृतं ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम् ॥मुण्डको० खंड २, मं०११

है, तिनतैं जुदा कोई सैना वस्तु नाहीं। सो इस प्रकारकरि सर्वपदार्थनिका जो नाम ब्रह्म है तो ब्रह्म कोई जुदा वस्तु तो न ठहरया, कल्पना मात्र ही ठहरया। बहुरि एक प्रकार यह है जो व्यक्ति अपेक्षा तो न्यारे न्यारे हैं तिनको जाति अपेक्षा कल्पना करि कहिए है। जैसैं सौ घोटक (घोड़ा) हैं ते व्यक्ति अपेक्षा तो जुदे जुदे सो हो हैं तिनके आकारादिककी समानता देखि एक जाति कहैं, सो वह जाति तिसतैं जुदी ही तो कोई है नाहीं। सो इस प्रकार करि जो सबनिकी कोई एक जाति अपेक्षा एक ब्रह्म मानिए है तो ब्रह्म जुदा तो कोई न ठहरया, इहाँ भी कल्पना मात्र ही ठहरया। बहुरि एक यहु है जो पदार्थ न्यारे न्यारे हैं तिनके मिलापतैं एक स्कंध होय ताकों एक कहिए। जैसें जलके परमाणु न्यारे न्यारे है तिनका मिलाप भए समुद्रादि कहिए अथवा जैसें पृथ्वी के परमाणूनिका मिलाप भए घट आदि कहिए सो इहां समुद्रादि वा घटादिक हैं ते तिन परमाणूनितें भिन्न कोई जुदा तो वस्तु नाहीं। सो इस प्रकार करि जो सर्व पदार्थ न्यारे न्यारे हैं परन्तु कदाचित् मिलि एक हो जाय हैं सो ब्रह्म है, ऐसें मानिए तो इनतैं जुदा तो कोई ब्रह्म न ठहरया। बहुरि एक प्रकार यहु है जो अंग तो न्यारे न्यारे हैं अर जाके अंग हैं सो अंगी हैं सो अंगी एक है। जैसें नेत्र, हस्त, पादादिक भिन्न भिन्न हैं अर जाके ए हैं सो मनुष्य एक है। सो इस प्रकार करि जो सर्व पदार्थ तो अंग हैं अर जाके ए हैं सो अंगी ब्रह्म है। यहु सर्व लोक विराट स्वरूप ब्रह्मका अंग है, ऐसें मानिए तो मनुष्यके हस्तपादादिक अंगनिकै परस्पर अन्तराल भए तो एकत्वपना रहता नाहीं जुड़े रहें ही एक शरीर नाम पावै। सो लोकविषै तो पदार्थनिकै अन्तराल परस्पर भासै है। याका एकत्वपना कैसें मानिए? अन्तराल भए भी एकत्व मानिए तो भिन्नपना कहां मानिएगा?

इहाँ कोऊ कहै कि समस्त पदार्थनिके मध्यविषै ब्रह्मके अंग हैं तिनकरि सर्व जुरि रहे हैं, ताकों कहिए है—

जो अंग जिस अंगतैं जुरचा है, तिसहीतैं जुरचा रहै कि टूटि टूटि अन्य अन्य अंगनिस्यों जुरचा करै है। जो प्रथम पक्ष ग्रहेगा तो सूर्यादि गमन करैं हैं, तिनको साथि जिन सूक्ष्म अंगनितैं वह जुरे हैं ते भी गमन करें। बहुरि उनको गमन करते सूक्ष्म अंग अन्य स्थूल अंगनितैं जुरे रहैं, ते भी गमन करैं हैं सो ऐसें सर्व लोक अस्थिर होइ जाय। जैसें शरीरका एक अंग खींचे सर्व अंग खींचे जांय, तैसें एक पदार्थको गमनादि करते सर्व पदार्थनिका गमनादि होय सो भासै नाहीं। बहुरि जो द्वितीय पक्ष ग्रहेगा तो अंग टूटनेतैं भिन्नपना होय ही जाय तब एकत्वपना कैसें रह्या? तातैं सर्वलोक के एकत्वको ब्रह्म मानना कैसें सम्भवै? बहुरि एक प्रकार यहु है जो पहलें एक था, पीछें अनेक भया बहुरि एक हो जाय तातैं एक है। जैसें जल एक था सो बासणनिमैं जुदा जुदा भया बहुरि मिलै तब एक होय वा जैसे सोनाका गदा* एक था सो कंकण कुंडलादिरूप भया, बहुरि मिलकरि सोनाका गदा होय जाय। तैसें ब्रह्म एक था, पीछें अनेकरूप भया बहुरि एक हो गया तातैं एक ही है। इस प्रकार एकत्व मानैं है तो जब अनेक रूप भया तब जुरचा रह्या कि भिन्न भया। जो जुरचा रह्या कहेगा तो पूर्वोक्त दोष आवेगा। भिन्न भया कहेगा तो तिस काल तो एकत्व न रह्या। बहुरि जल सुवर्णादिकको भिन्न भए भी एक कहिए है सो तो एक जाति अपेक्षा कहिए है सो सर्व पदार्थनि की एक जाति भासै नाहीं। कोऊ चेतन है, कोऊ अचेतन है इत्यादि अनेकरूप है तिनकी एक जाति कैसें कहिए? बहुरि पहिले एक था पीछें भिन्न भया मानै है तो जैसें एक पाषाण फूटि टुकड़े होय जाय हैं तैसें ब्रह्मके खंड होय गये, बहुरि तिनका एकट्ठा होना मानै है तो तहां तिनका स्वरूप भिन्न रहै है कि एक होइ जाय है। जो भिन्न रहै है तो तहां अपने अपने स्वरूपकरि भिन्न हो है अर एक होइ जाय है तो जड़ भी चेतन होइ जाय वा चेतन जड़ होइ जाय। तहां अनेक

* डला वा पासा

वस्तुनिका एक वस्तु भया तब काहू कालविषैं अनेक वस्तु, काहू काल-विषैं एक वस्तु ऐसा कहना बनै। अनादि अनन्त एक ब्रह्म है ऐसा कहना बनै नाहीं। बहुरि जो कहेगा लोक रचना होतें वा न होतें ब्रह्म जैसाका तैसा ही रहै है, तातैं ब्रह्म अनादि अनन्त है। सो हम पूछै हैं, लोकविषैं पृथवी जलादिक देखिए है ते जुदे नवीन उत्पन्न भए हैं कि ब्रह्मही इन स्वरूप भया है? जो जुदे नवीन उत्पन्न भए हैं तो ये न्यारे भये ब्रह्म न्यारा रहा, सर्वव्यापी अद्वैतब्रह्म न ठहरया। बहुरि जो ब्रह्म ही इन स्वरूप भया तो कदाचित् लोक भया, कदाचित् ब्रह्म भया तो जैसाका तैसा कैसें रह्या? बहुरि वह कहै है जो सबही ब्रह्म तो लोकस्वरूप न हो है, वाका कोई अंश हो है। ताकों कहिए है— जैसें समुद्रका एक बिन्दु बिसरूप भया तहां स्थूलदृष्टिकरि तो गम्य नाहीं परन्तु सूक्ष्मदृष्टि दिये तो एक बिन्दु अपेक्षा समुद्रकै अन्यथापना भया तैसें ब्रह्मका एक अंश भिन्न होय लोकरूप भया तहां स्थूल विचारकरि तो किछू गम्य नाहीं परन्तु सूक्ष्मविचार किये तो एक अंश अपेक्षा ब्रह्मकै अन्यथापना भया। यह अन्यथापना और तो काहूकै भया नाहीं। ऐसें सर्वरूप ब्रह्मको मानना भ्रम ही है।

बहुरि एक प्रकार यहु है—जैसें आकाश सर्वव्यापी एक है तैसें ब्रह्म सर्वव्यापी एक है। जो इस प्रकार मानै है तो आकाशवत् बड़ा ब्रह्मको मानि वा जहाँ घटपटादिक हैं तहाँ जैसें आकाश है तैसें तहाँ ब्रह्म भी है ऐसा भी मानि। परन्तु जैसें घटपटादिकको अर आकाशको एक ही कहिए तो कैसें बनै? तैसैं लोकको अर ब्रह्मको एक मानना कैसें सम्भवै? बहुरि आकाशका तो लक्षण सर्वत्र भासै है तातैं ताका तो सर्वत्र सद्भाव मानिये है। ब्रह्मका तो लक्षण सर्वत्र भासता नाहीं तातैं ताका सर्वत्र सद्भाव कैसें मानिए? ऐसें इस प्रकारकरि भी सर्व-रूप ब्रह्म नाहीं है। ऐसें ही विचारकरतें किसी भी प्रकारकरि एक सम्भवै नाहीं। सर्व पदार्थ भिन्न भिन्न ही भासै हैं।

इहाँ प्रतिवादी कहै है—जो सर्व एक ही है परन्तु तुम्हारे भ्रम है

तातैं तुमको एक भासै नाहीं। बहुरि तुम युक्ति कही सो ब्रह्मका स्वरूप युक्तिगम्य नाहीं, वचन अगोचर है। एक भी है, अनेक भी है। जुदा भी है, मिल्या भी है। वाकी महिमा ऐसी ही है। ताको कहिए है—जो प्रत्यक्ष तुमको वा हमको वा सबनिको भासै, ताको तो तू भ्रम कहै अर युक्तिकरि अनुमान करिये सो तू कहै कि सांचा स्वरूप युक्तिगम्य है ही नाहीं। बहुरि वह कहै, सांचास्वरूप वचन अगोचर है तो वचन बिना कैसे निर्णय करै? बहुरि कहै—एक भी है, अनेक भी है; जुदा भी है, मिल्या भी है सो तिनकी अपेक्षा बतावै नाहीं, बाउलेकीसी नाईं ऐसे भी है, ऐसे भी है ऐसा कहि याकी महिमा बतावै। सो जहां न्याय न होय है तहां झूठे ऐसैं ही वाचालपना करै है सो करो, न्याय तौ जैसैं सांच है तैसैं होयगा।

सृष्टि कर्तृत्ववाद का निराकरण जगत् की सृष्टि

बहुरि अब तिस ब्रह्मको लोकका कर्त्ता मानै है ताको मिथ्या दिखाइये हैं—प्रथम तो ऐसा मानै है जो ब्रह्मकै ऐसी इच्छा भई कि "एकोऽहं बहुस्यां" कहिए मैं एक हूं सो बहुत होस्यूं। तहां पूछिये है—पूर्व अवस्थामें दुःखी होय तब अन्य अवस्था को चाहै। सो ब्रह्म एकरूप अवस्थातैं बहुतरूप होनेको इच्छा करी सो तिस एक रूप अवस्थाविषै कहा दुःख था? तब वह कहै है जो दुःख तो न था, ऐसा ही कौतूहल उपज्या। ताको कहिये है—जो पूर्व थोरा सुखी होय अर कौतूहल किये घना सुखी होय सो कौतूहल करना विचारै सो ब्रह्मकै एक अवस्थातैं बहुत अवस्थारूप भए घना सुख होना कैसैं सम्भवै? बहुरि जो पूर्व ही सम्पूर्ण सुखी होय तो अवस्था काहेको पलटै। प्रयोजन बिना तो कोई किछू कर्त्तव्य करै नाहीं। बहुरि पूर्वै भी सुखी होया, इच्छा अनुसारि कार्य भए भी सुखी होगा परन्तु इच्छा भई तिस काल तो दुःखी होय। तब वह कहै है, ब्रह्मकै जिस काल इच्छा हो है तिस काल ही कार्य हो है तातैं दुखी न हो है। तहां कहिए है—स्थूलकाल की अपेक्षा ऐसैं मानो परन्तु सूक्ष्मकालकी अपेक्षा तो इच्छाका अर

कार्यका होना युगपत् सम्भवै नाहीं। इच्छा तो तब ही होय जब कार्य न होय। कार्य होय तब इच्छा न रहै, तातैं सूक्ष्मकाल मात्र इच्छा रही तब तो दुःखी भया होगा। जातैं इच्छा है सो ही दुःख है, और कोई दुःखका स्वरूप है नाहीं। तातैं ब्रह्मकै इच्छा कैसैं बनै?

ब्रह्म की माया का निराकरण

बहुरि वे कहै हैं, इच्छा होतैं ब्रह्म की माया प्रगट भई सो ब्रह्मके माया भई तब ब्रह्म भी मायावी भया, शुद्धस्वरूप कैसैं रह्या? बहुरि ब्रह्मकै अर मायाकै दंडी दंडवत संयोग सम्बन्ध है कि अग्नि उष्णवत् समवायसम्बन्ध है। जो संयोगसम्बन्ध है तो ब्रह्म भिन्न है, माया भिन्न है, अद्वैत ब्रह्म कैसे रह्या? बहुरि जैसे दंडी दंडको उपकारी जानि ग्रहै है तैसें ब्रह्म मायाको उपकारी जानै है तो ग्रहै है, नाहीं तो काहेको ग्रहै? बहुरि जिस मायाकों ब्रह्म ग्रहै ताका निषेध करना कैसें सम्भवै, वह तो उपादेय भई। बहुरि जो समवायसम्बन्ध है तो जैसैं अग्नि का उष्णत्व स्वभाव है तैसें ब्रह्मका मायास्वभाव ही भया। जो ब्रह्मका स्वभाव है ताका निषेध करना कैसें सम्भवै? यह तो उत्तम भई।

बहुरि वे कहै हैं कि ब्रह्म तो चैतन्य है, माया जड़ हैं सो समवाय सम्बन्धविषैं ऐसे दोय स्वभाव सम्भवैं नाहीं। जैसैं प्रकाश अर अन्धकार एकत्र कैसें सम्भवै? बहुरि वह कहै है—मायाकरि ब्रह्म आप तो भ्रमरूप होता नाहीं, ताकी मायाकरि जीव भ्रमरूप हो है। ताकों कहिए है—जैसें कपटी अपने कपटको उपजावै सो आप भ्रमरूप न होय, वाके कपटकरि अन्य भ्रमरूप होय जाय। तहां कपटी तो वाही कों कहिए जानै कपट किया, ताके कपटकरि अन्य भ्रमरूप भए तिनकों तो कपटी न कहिए। तैसें ब्रह्म अपनी मायाकों आप जानै सो आप तो भ्रमरूप न होय, वाकी मायाकरि अन्य जीव भ्रमरूप होय हैं। तहां मायावी तो ब्रह्म ही कों कहिए, ताकी मायाकरि अन्य जीव भ्रमरूप भए तिनको मायावी काहेकों कहिए है।

बहुरि पूछिए है, वे जीव ब्रह्म तें एक हैं कि न्यारे हैं। जो एक हैं तो जैसें कोऊ आपही अपने अंगनिको पीड़ा उपजावै तो ताकों बाउला कहिए है तैसें ब्रह्म आपही आपतें भिन्न नाहीं ऐसे अन्य जीव तिनको मायाकरि दुःखी करै है सो कैसें बनै। बहुरि जो न्यारे हैं तो जैसें कोऊ भूत बिना ही प्रयोजन अन्य जीवनि कों माया उपजाय पीड़ा उपजावै सो भी बनै नाहीं। ऐसें माया ब्रह्म की कहिए है सो कैसे सम्भवै ?

जीवों की चेतना को ब्रह्म की चेतना मानने का निराकरण

बहुरि वे कहै हैं, माया होतें लोक निपज्या तहां जीवनिकै जो चेतना है सो तो ब्रह्मस्वरूप है। शरीरादिक माया है, तहां जैसें जुदे जुदे बहुत पात्रनिविषैं जल भरया है तिन सबनिविषैं चन्द्रमाका प्रतिबिंब जुदा जुदा पड़ै है, चन्द्रमा एक है। तैसें जुदे जुदे बहुत शरीरनिविषैं ब्रह्म का चैतन्य प्रकाश जुदा जुदा पाइए है। ब्रह्म एक है, तातैं जीवनिकै चेतना है सो ब्रह्म की है। सो ऐसा कहना भी भ्रमही है जातैं शरीर जड़ है, या विषैं ब्रह्म का प्रतिबिंबतैं चेतना भई तो घट पटादि जड़ हैं तिनविषैं ब्रह्मका प्रतिबिंब क्यों न पड्या अर चेतना क्यों न भई ? बहुरि वह कहै है शरीरको तो चेतन नाहीं करै है, जीव को करै है। तब वाको पूछिए है कि जीवका स्वरूप चेतन है कि अचेतन है। जो चेतन है तो चेतनका चेतन कहा करैगा। अचेतन है तो शरीर की वा घटादिक की वा जीव की एक जाति भई। बहुरि वाकों पूछिये है—ब्रह्म की अर जीवनि की चेतना एक है कि भिन्न है। जो एक है तो ज्ञानका अधिकहीनपना कैसें देखिए है। बहुरि ये जीव परस्पर वह वाकी जानी को न जानै, वह वाकी जानी को न जानै सो कारण कहा ? जो तू कहेगा, यहु घट उपाधि भेद है तो घट उपाधि होते तो चेतना भिन्न भिन्न ठहरी। घट उपाधि मिटे याकी चेतना ब्रह्म में मिलेगी कै नाश हो जायगी ? जो नाश हो जायगी तो यहु जीव तो

अचेतन रह जायगा। अर तू कहेगा जीव ही ब्रह्म में मिल जाय है तो तहां ब्रह्मविषैं मिले याका अस्तित्व रहै है कि नाहीं रहै है। जो अस्तित्व रहै है तो यहु रह्या, याकी चेतना याकै रही, ब्रह्मविषैं कहा मिल्या ? अर जो अस्तित्व न रहै है तो ताका नाश ही भया, ब्रह्मविषैं कौन मिल्या ? बहुरि जो तू कहेगा—ब्रह्म की अर जीवनिकी चेतना भिन्न है तो ब्रह्म अर सर्वजीव आपही भिन्न-भिन्न ठहरे। ऐसें जीवनि कें चेतना है सो ब्रह्म की है, ऐसें भी बनै नाहीं।

शरीरादिक का मायारूप माननेका निराकरण

शरीरादि मायाके कहो हो सो माया ही हाड मांसादिरूप हो है कि मायाके निमित्ततैं और कोई तिनरूप हो है। जो माया ही होय तो माया के वर्ण गंधादिक पूर्वे हो थे कि नवीन भए। जो पूर्वे ही थे तो पूर्वे तो माया ब्रह्मकी थी, ब्रह्म अमूर्तीक है तहाँ वर्णादि कैसें सम्भवै ? बहुरि जो नवीन भए अमूर्त्तीक का मूर्तिक भया तब अमूर्त्तीक स्वभाव शाश्वता न ठहर्‌या। बहुरि जो कहेगा, माया के निमित्त तैं और कोई होय तो और पदार्थ तो तू ठहरावता ही नाहीं, भया कौन ? जो तू कहेगा, नवीन पदार्थ निपजे। तो ते मायातैं भिन्न निपजे कि अभिन्न निपजे। मायातैं भिन्न निपजे तो मायामयी शरीरादिक काहेकों कहै, वे तो तिनपदार्थमय भए। अर अभिन्न निपजे तो माया ही तद्रूप भई, नवीन पदार्थ निपजे काहेको कहै। ऐसें शरीरादिक मायास्वरूप हैं ऐसा कहना भ्रम है।

बहुरि वे कहै हैं, माया तैं तीन गुण निपजे—१ राजस २ तामस ३ सात्विक। सो यहु भी कहना कैसें बनै ? जातैं मानादि कषायरूप भावकों राजस कहिए है, क्रोधादिकषायरूप भावकों तामस कहिए है, मंदकषायरूप भावकों सात्विक कहिए है। सो ए तो भाव चेतनामयी प्रत्यक्ष देखिए है अर माया का स्वरूप जड़ कहो सो जड़तैं ए भाव कैसें निपजैं। जो जड़के भी होई तो पाषाणादिकके भी होता सो तो

चेतनास्वरूप जीव तिनहीके ए भाव दीसैं हैं ए भाव मायातैं निपजे नाहीं। जो मायाको चेतन ठहरावें तो यहु मानें। सो मायाको चेतन ठहराएं शरीरादिक मायातैं निपजे कहेगा तो न मानेंगे तातैं निर्धारकरि, भ्रमरूप माने नफा कहा है ?

बहुरि वे कहै हैं तिन गुणनि तें ब्रह्मा विष्णु महेश ए तीन देव प्रगट भए सो कैसें सम्भवै ? जातें गुणोतें तो गुण होइ, गुणतें गुणी कैसें निपजै। पुरुषतें तो क्रोध होय, क्रोधतें पुरुष कैसें निपजें। बहुरि इन गुणनिकी तो निन्दा करिए है। इनकहि निपजे ब्रह्मादिक तिनकों पूज्य कैसें मानिए है। बहुरि गुण तो मायामई अर इनकों ब्रह्म के अवतार[1] कहिए है सो ए तो माया के अवतार भए, इनकों ब्रह्म के अवतार कैसें कहिए है ? बहुरि ए गुण जिनके थोरे भी पाइए तिनकों तो छुड़ावने का उपदेश दीजिए अर जे इनही की मूर्ति तिनकों पूज्य मानिए, यह कहा भ्रम है। बहुरि तिनका कर्तव्य भी इनमई भासै है। कोतूहलादि वा स्त्री सेवनादिक वा युद्धादिक कार्य करै हैं सो तिन राजसादि गुणनिकरि ही ये क्रिया हो हैं, सो इनके राजसादिक पाइये है ऐसा कहो। इनको पूज्य कहना, परमेश्वर कहना ता बनै नाहीं। जैसे अन्य संसारी हैं तैसें ए भी हैं। बहुरि कदाचित् तू कहेगा, संसारी तो माया के अधीन हैं सो बिना जाने तिन कार्यनिको करें हैं सो यहु भी भ्रम ही है। जातैं माया के आधीन भए तो काम क्रोधादिकहो निपजै हैं और कहा हो है। सो ए ब्रह्मादिकनिकै तो काम क्रोधादिककी तीव्रता पाइए है। कामकी तीव्रताकरि स्त्रीनिके

---

१ ब्रह्मा, विष्णु और शिव यह तीनों ब्रह्म की प्रधान शक्तियां हैं।

विष्णु पु० अ० २२-५८

कलिकाल के प्रारम्भमें पर-ब्रह्म परमात्माने रजोगुणसे उत्पन्न होकर ब्रह्मा बनकर प्रजा की रचनाकी। प्रलयके समय तमोगुणसे उत्पन्न हो काल (शिव) बनकर उस सृष्टिको ग्रस लिया। उस परमात्मा ने सत्वगुण से उत्पन्न हो। नारायणबनकर समुद्रमें शयन किया। —वायु० पु० अ० ७-६८, ६९।

वशीभूत भए नृत्यगानादि करते भये, विह्वल होते भये, नाना प्रकार कुचेष्टा करते भये, बहुरि क्रोध के वशीभूत भये अनेक युद्धादि कार्य करते भये, मान के वशीभूत भये, आपकी उच्चता प्रगट करने के अर्थि अनेक उपाय करते भये, माया के वशीभूत भये अनेक छल करते भये, लोभ के वशीभूत भये परिग्रहका संग्रह करते भये इत्यादि बहुत कहा कहिये। ऐसें वशीभूत भये, चीरहरणादि निर्लज्जनिकी क्रिया और दधि लूटनादि चोरनिकीक्रिया अर रुन्डमाला धारणादि बाउलेनिकी क्रिया,* बहुरिरूपधारणादि भूतनिकीक्रिया, गौचरावणादि नीच कुल वालों की क्रिया इत्यादि जे निंद्य क्रिया तिनको तो करते भये, यातैं अधिक माया के वशीभूत भये कहा क्रिया हो है सो जानी न परी। जैसें कोऊ मेघपटलसहित अमावस्याकी रात्रिको अन्धकार रहित मानै तैसें बाह्य कुचेष्टा सहित तीव्र काम क्रोधादिकनिके धारी ब्रह्मादिक-निकों मायारहित मानना है।

बहुरि वह कहै है कि इनको काम क्रोधादि व्याप्त नाहीं होता, यहु भी परमेश्वर को लीला है। याकों कहिये है—ऐसे कार्य करै है ते इच्छाकरि करै है कि बिना इच्छा करै हैं। जो इच्छाकरि करै है तो स्त्रीसेवनकी इच्छाहीका नाम काम है, युद्ध करनेकी इच्छाही का नाम क्रोध है इत्यादि ऐसें ही जानना। बहुरि जो बिना इच्छा करै है तो आप जाकों न चाहै ऐसा कार्य तो परवश भये ही होय, सो परवशपना कैसें सम्भवै? बहुरि तू लीला बतावै है सो परमेश्वर अवतार धारि इन कार्यनिकरि लीला करै है तौ अन्य जीवनिकों इन कार्यनितें छुड़ाय मुक्त करनेका उपदेश काहेकों दीजिए है। क्षमा सन्तोष शील संयमादिका उपदेश सर्व झूठा भया।

बहुरि वह कहै है कि परमेश्वरको तो किछू प्रयोजन नाहीं। लोकरीतिकी प्रवृत्तिके अर्थि वा भक्तिनिकी रक्षा, दुष्टनिका निग्रह

---

* नानारूपाय मुण्डाय वरूथपृथुदण्डिने।
नमः कपालहस्ताय दिग्वासाय शिखण्डिने ॥मत्स्य पु० अ० २५०, श्लोक २

ताके अर्थि अवतार धरै* है तो याकों पूछिए है—प्रयोजन बिना कींडी हू कार्य न करै, परमेश्वर काहेकों करै। बहुरितैं प्रयोजन भी कह्या, लोकरीतिकी प्रवृत्तिके अर्थि करै है। सो जैसें कोई पुरुष आप कुचेष्टा-करि अपने पुत्रनिकों सिखावै बहुरि वे तिस चेष्टारूप प्रवर्तें तब उनको मारै तो ऐसें पिताकों भला कैसें कहिए तैसें ब्रह्मादिक आप कामक्रोध-रूप चेष्टाकरि अपने निपजाये लोकनिकों प्रवृत्ति करावै। बहुरि वे लोक तैसें प्रवर्त्तें तब उनको नरकादिकविषैं डारै। नरकादिक इनही भावनिका फल शास्त्रविषें लिख्या है सो ऐसे प्रभुको भला कैसें मानिए? बहुरि तैं यहु प्रयोजन कह्या कि भक्तनिकी रक्षा, दुष्टनिका निग्रह करना। सो भक्तनिकों दुखदायक जे दुष्ट भये ते परमेश्वर की इच्छाकरि भए कि बिना इच्छाकरि भये। जो इच्छाकरि भए तो जैसे कोऊ अपने सेवक को आप ही काहू को कहकरि मरावै बहुरि पीछे तिस मारने वालेकों आप मारै सो ऐसे स्वामीकों भला कैसें कहिए। तैसें ही जो अपने भक्तकों आप ही इच्छाकरि दुष्टनिकरि पीड़ित करावै बहुरि पीछें तिन दुष्टिनिकों आप अवतार धारि मारै तो ऐसे ईश्वर को भला कैसें मानिए? बहुरि जो तू कहेगा कि बिना इच्छा दुष्ट भए तो कै तो परमेश्वरकै ऐसा आगामी ज्ञान न होगा जो ये दुष्ट मेरे भक्तको दुःख देवेंगे, कै पहिलें ऐसे शक्ति न होगी जो इनको ऐसे न होने दे। बहुरि वाकों पूछिये है जो ऐसे कार्य के अर्थि अवतार धारया, सो कहा बिना अवतार धारे शक्ति थी कि नाहीं। जो थी तो अवतार काहेकों धारै अर न थी तो पीछे सामर्थ्य होनेका कारण कहा भया। तब वह कहै है—ऐसैं किए बिना परमेश्वर की महिमा प्रगट कैसें होय। याकों पूछिए है कि अपनी महिमा के अर्थि अपने अनुचरनिका पालन करै, प्रतिपक्षीनिका निग्रह करै सो ही राग द्वेष है। सो रागद्वेष तो लक्षण संसारी जीवका है। जो परमेश्वर-

---

* परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥८॥—गीता ४-८

कै भी रागद्वेष पाइये है तो अन्य जीवनिका रागद्वेष छोरि समता भाव करने का उपदेश काहेको दीजिए। बहुरि रागद्वेषके अनुसारि कार्य थोरे वा बहुत काल लागे बिना होय नाहीं, तावत् काल आकुलता भी परमेश्वर कै होती होसी। बहुरि जैसें जिस कार्यको छोटा आदमी ही कर सकै तिस कार्यको राजा आप आय करै तो किछू राजा की महिमा होती नाहीं, निन्दा ही होय। तैसें जिस कार्य को राजा वा व्यंतरदेवादिक करि सकै तिस कार्यको परमेश्वर आप अवतार धारि करै ऐसा मानिए तो किछू परमेश्वर की महिमा होतो नाहीं, निंदा ही है। बहुरि महिमा तो कोई और होय ताकों दिखाइए है। तू तो अद्वैत ब्रह्म मानै है, कौनको महिमा दिखावै है। अर महिमा दिखावने का फल तो स्तुति करावना है सो कौनपै स्तुति कराया चाहै है। बहुरि तू तो कहै है सर्व जीव परमेश्वरकी इच्छा अनुसारि प्रवर्तें हैं अर आपके स्तुति करावनेकी इच्छा है तो सबकों अपनी स्तुतिरूप प्रवर्त्तावो, काहेकों अन्य कार्य करना परै। तातें महिमाके अर्थि भी कार्य करना न बनें।

बहुरि वह कहै है—परमेश्वर इन कार्यनिकों करता सन्ता भी अकर्त्ता है, वाका निर्द्धार होता नाहीं। याकों कहिए है—तू कहेगा यह मेरी माता भी है अर बाँझ भी है तो तेरा कह्या कैसें मानेंगे। जो कार्य करै ताकों अकर्त्ता कैसे मानिए। अर तू कहै निर्द्धार होता नाहीं सो निर्द्धार बिना मानि लेना ठहरया तो आकाश के फूल, गधे के सींग भी मानो, सो ऐसा असम्भव कहना युक्त नाहीं। ऐसें ब्रह्मा, विष्णु महेशका होना कहै हैं सो मिथ्या जानना।

ब्रह्मा–विष्णु–महेशका सृष्टिका कर्त्ता, रक्षक और संहारक पने का निराकरण

बहुरि वे कहै हैं—ब्रह्मा तो सृष्टिको उपजाय है, विष्णु रक्षा करै है, महेश संहार करै है सो ऐसा कहना भी न सम्भवं है। जातें

इन कार्यनिकों करते कोऊ किछू किया चाहै कोऊ किछू किया चाहै तब परस्पर विरोध होय। अर जो तू कहेगा, ए तो एक परमेश्वरका ही स्वरूप है, विरोध काहेकों होय। तो आप ही उपजावै, आप ही खपावै, ऐसे कार्यमें कौन फल है। जो सृष्टि आपकों अनिष्ट है तौ काहेकों उपजाई अर इष्ट है तो काहे कों खपाई। अर जो पहिले इष्ट लागी तब उपजाई, पीछे अनिष्ट लागी तब खपाई ऐसें हैं तो परमेश्वर का स्वभाव अन्यथा भया कि सृष्टिका स्वरूप अन्यथा भया। जो प्रथम पक्ष ग्रहेगा तो परमेश्वर का एक स्वभाव न ठहर्‌या। सो एक स्वभाव न रहनेका कारण कौन है ? सो बताय, बिना कारण स्वभाव को पलटनि काहेकों होय। अर द्वितीय पक्ष ग्रहेगा तो सृष्टि तो परमेश्वर के आधीन थी, वाकों ऐसी काहेकों होने दीनी जो आपकों अरिष्ट लागै।

बहुरि हम पूछें हैं—ब्रह्मा सृष्टि उपजावै है सो कैसें उपजावै है। एक तो प्रकार यहु है—जैसें मन्दिर चुननेवाला चूना पत्थर आदि सामग्री एकट्ठी करि अकारादि बनावै है तैसें ही ब्रह्मा सामग्री एकट्ठी करि सृष्टि रचना करै है तो ए सामग्री जहाँतें ल्याय एकट्ठी करी सो ठिकाना बताय। अर एक ब्रह्माही एतो रचना बनाई सो पहिले पीछें बनाई होगी, कै अपने शरीरके हस्तादि बहुत किए होंगे सो कैसें है सो बताय। जो बतावेगा तिसही में विचार किए विरुद्ध भासेगा।

बहुरि एक प्रकार यहु है—जैसे राजा आज्ञा करै ताके अनुसार कार्य होय, तैसें ब्रह्माकी आज्ञाकारी सृष्टि निपजै है तो आज्ञा कौनकों दई। अर जिनकों आज्ञा दई वे कहाँतें सामग्री ल्याय कैसें रचना करें हैं सो बताय।

बहुरि एक प्रकार यहु—जैसें ऋद्धिधारी इच्छा करै ताके अनुसारि कार्य स्वयमेव बनै। तैसें ब्रह्म इच्छा करै ताके अनुसारि सृष्टि निपजै है तो ब्रह्मा तो इच्छाहीका कर्त्ता भया, लोक तो स्वयमेव

ही निपज्या। बहुरि इच्छा तो परब्रह्म कीन्ही थी, ब्रह्मका कर्तव्य कहा भया जातैं ब्रह्मको सृष्टिका निपजावनहारा कह्या। बहुरि तू कहेगा परमब्रह्म भी इच्छा करी अर ब्रह्मा भी इच्छा करी तब लोक निपज्या तो जानिए है केवल परमब्रह्मकी इच्छा कार्यकारी नाहीं। तहाँ शक्तिहीनपना आया।

बहुरि हम पूछैं हैं—जो लोक केवल बनाया हुवा बनै है तो बनावनहारा तो सुखके अर्थि बनावै सो इष्ट ही रचना करै। इस लोकविषैं तो इष्ट पदार्थ थोरे देखिए हैं, अनिष्ट घने देखिए हैं। जीवनिविषैं देवादिक बनाए सो तो रमनेके अर्थि वा भक्ति करावनेके अर्थि इष्ट बनाए अर लट कीड़ो कूकर सूअर सिंहादिक बनाए सो किस अर्थि बनाए। ए तो रमणीक नाहीं, भक्ति करते नाहीं। सर्व प्रकार अनिष्ट ही हैं। बहुरि दरिद्री दुःखी नारकिनिकों देखें आपको जुगुप्सा ग्लानि आदि दुःख उपजै ऐसे अनिष्ट काहेको बनाए। तहाँ वह कहै है—कि जीव अपने पापकरि लट कीड़ी दरिद्री नारकी आदि पर्याय भुगतै हैं। याकों पूछिए है कि पीछैं तो पापहीका फलतैं ए पर्याय भए कहो परन्तु पहिले लोकरचना करते ही इनको बनाए सो किस अर्थि बनाए। बहुरि पीछे जीव पापरूप परिणए सो कैसें परिणए। जो आपही परिणए कहोगे तो जानिए है ब्रह्मा पहलें तो निपजाए पीछैं वे याके आधीन न रहे। इस कारणतैं ब्रह्माको दुःख ही भया। बहुरि जो कहोगे—ब्रह्माके परिणमाए परिणमैं हैं तो तिनको पापरूप काहेकों परिणमाए। जीव तो आपके निपजाए थे उनका बुरा किस अर्थि किया। तातैं ऐसैं भी न बनै। बहुरि अजीवनिविषैं सुवर्ण सुगन्धादि सहित वस्तु बनाए सो तो रमणेके अर्थि बनाए कुवर्ण दुर्गन्धादिसहित वस्तु दुःखदायक बनाये सो किस अर्थि बनाये। इनका दर्शनादिकरि ब्रह्मा कै किछू सुख तो नाहीं उपजता होगा। बहुरि तू कहेगा, पापी जीवनिकों दुःख देने के अर्थि बनाये। तो आपहीके निपजाये जीव तिनस्यों ऐसी दुष्टता काहेकों करी जो तिनकों दुःखदायक सामग्री

पहले ही बनाई। बहुरि धूलि पर्वतादिक वस्तु केतेक ऐसी हैं जे रमणीक भी नाहीं अर दुःखदायक भी नाहीं, तिनको किस अर्थि बनाये। स्वयमेव तो जैसें तैसें ही होय अर बनावनहारा तो जो बनावै सो प्रयोजन लिये हो बनावै। तातें बृह्मा सृष्टि का कर्त्ता कैसें कहिये है ?

बहुरि विष्णुको लोकका रक्षक कहै हैं। रक्षक होय सो तो दोय ही कार्य करै। एक तो दुःख उपजावने के कारण न होनें दे अर एक विनशने के कारण न होने दे। सो तो लोकविषैं दुःखही के उपजनेके कारण जहाँ तहाँ देखिये हैं अर तिनकरि जीवनिकों दुःख ही देखिये है क्षुधा तृषादिक लगि रहे हैं। शीत उष्णादिक करि दुःख हो है। जोव परस्पर दुःख उपजावै हैं, शस्त्रादि दुःख के कारण बनि रहे हैं। बहुरि विनशनेके कारण अनेक बन रहे हैं। जीवनिकै रोगादिक वा अग्नि विष शस्त्रादिक पर्यायके नाशके कारण देखिये है अर अजी-वनिकै भी परस्पर विनशनेके कारण देखिये हैं। सो ऐसें दोय प्रकार-ही की रक्षा तो कीन्हीं नाहीं तो विष्णु रक्षक होय कहा किया। वह कहै है—विष्णु रक्षक ही है। देखो क्षुधा तृषादिकके अर्थि अन्न जला-दिक किये हैं। कीड़ीको कण कुञ्जरको मण पहुंचावै है। संकटमें सहाय करै है। मरणके कारण बने टीटोड़ी* कीसी नाईं उबारै है। इत्यादि प्रकार करि विष्णु रक्षा करै है। याकों कहिए है—ऐसें है तो जहाँ जीवनिकै क्षुधातृषादिक बहुत पीड़ैं अर अन्न जलादिक मिलैं नाहीं, संकट पड़े सहाय न होय, किंचित कारण पाइ मरण होय जाय, तहाँ विष्णु की शक्ति हीन भई कि वाको ज्ञान ही न भया। लोक-विषें बहुत तो ऐसें ही दुःखी हो हैं, मरण पावैं हैं, विष्णु रक्षा काहे

* एक प्रकार का पक्षी जो एक समुद्र के किनारे रहता था। उसके अंडे समुद्र बहा ले जाता था सो उसने दुःखी होकर गरुड़ पक्षी की मार्फत विष्णु से अर्ज की, तो उन्होंने समुद्रसे अंडे दिलवा दिये। ऐसी पुराणों में कथा है।

को न करो। तब वह कहै है, यहु जीवनिके अपने कर्तव्यका फल है। तब वाकों कहिये है कि जैसें शक्तिहोन लोभी झूठा वैद्य काहूकै किछू भला होइ ताको तो कहै, मेरा किया भया है अर जहाँ बुरा होय, मरण होय तब कहै ताका ऐसा ही होनहार था। तैसें ही तू कहै है कि भला भया तो विष्णुका किया भया अर बुरा भया सो याका कर्तव्य फल भया। ऐसें झूठी कल्पना काहेकों कोजिये। कै तो बुरा वा भला दोऊ विष्णु का किया कहो, कै अपना कर्तव्यका फल कहो। जो विष्णुका किया भया तो घनें जीव दुःखी अर शीघ्र मरते देखिए हैं सो ऐसा कार्य करै ताको रक्षक कैसें कहिए? बहुरि अपने कर्तव्य का फल है तो करेगा सो पावेगा, विष्णु कहा रक्षा करेगा? तब वह कहै है, जे विष्णुके भक्त हैं तिनकी रक्षा करै है। याको कहिए है कि जो ऐसा है तो कीड़ी कुञ्जर आदि भक्त नाहीं उनकै अन्नादिक पहुंचावने विषै वा संकट में सहाय होने विषै वा मरण न होने विषैं विष्णु का कर्त्तव्य मानि सर्वका रक्षक काहेकों मानैं, भक्तनिही का रक्षक मानि। सो भक्तनिका भी रक्षक दीसता नाहीं जातैं अभक्त भी भक्त पुरुषनिको पीड़ा उपजावते देखिये हैं। तब वह कहै है—घनी ही जायगा (जगह) प्रह्लादादिकको सहाय करी है। याको कहै हैं—जहाँ सहाय करी तहाँ तो तू तैसे ही मानि परन्तु हम तो प्रत्यक्ष म्लेच्छ मुसलमान आदि अभक्त पुरुषनिकरि भक्त पुरुष पीड़ित होते देखि वा मन्दिरादिकों विघ्न करते देखि पूछें हैं कि इहाँ सहाय न करै है सो शक्ति ही नाहीं, कि खबर हो नाहीं। जो शक्ति नाहीं तो इनतैं भी हीनशक्तिका धारक भया। खबर ही नाहीं तो जाकों एती भी खबर नाहीं सो अज्ञानी भया। अर जो तू कहेगा, शक्ति भी है अर जानै भी है, इच्छा ऐसी ही भई, तो फिर भक्तवत्सल काहेंकों कहै। ऐसें विष्णु को लोकका रक्षक मानना बनता नाहीं।

बहुरि वे कहै हैं—महेश संहार करै है सो वाकों पूछिये है। प्रथम तो महेश संहार सदा करै है कि महाप्रलय हो है तब ही करै

है। जो सदा करै है तो जैसें विष्णुकी रक्षा करनेकरि स्तुति कोनो, तैसें याकी संहार करवेकरि निंदा करो। जातैं रक्षा अर संहार प्रतिपक्षी हैं। बहुरि यहु संहार कैसें करै है? जैसें पुरुष हस्तादिककरि काहूकों मारै वा कहकरि मरावै तैसें महेश अपने अंगनिकरि संहार करै है वा आज्ञाकरि मरावै है। तो क्षण क्षणमें संहार तो घने जीवनिका सर्व लोकमें हो है, यहु कैसे कैसे अंगनिकरि वा कौन कौनकों आज्ञा देय युगपत् कैसें संहार करै है। बहुरि महेश तो इच्छा ही करै, याको इच्छातें स्वयमेव उनका संहार हो है। तो याकै सदा काल मारने रूप दुष्ट परिणाम हो रह्या करते होंगे अर अनेक जीवनिके युगपत् मारनें की इच्छा कैसें होती होगी। बहुरि जो महाप्रलय होतें संहार करै है तो परमब्रह्म की इच्छा भए करै है कि वाकी बिना इच्छा ही करै है। जो इच्छा भये करै है तो परमब्रह्म के ऐसा क्रोध कैसें भया जो सर्वका प्रलय करने की इच्छा भई। जातैं कोई कारण बिना नाश करनेकी इच्छा होय नाहीं। अर नाश करनेकी जो इच्छा ताहीका नाम क्रोध है सो कारन बताय। बहुरि तू कहेगा–परमब्रह्म यह ख्याल (खेल) बनाया था बहुरि दूर किया, कारन किछू भी नाहीं। तो ख्याल बनावने वालोंकों भी ख्याल इष्ट लागै तब बनावै है, अनिष्ट लागै है तब दूर करै है। जो याकों यहुलोक इष्ट अनिष्ट लागै है तो याकै लोकस्यों रागद्वेष तो भया। साक्षीभूत ब्रह्मका स्वरूप काहेकों कहो हो, साक्षीभूत तो वाका नाम है जो स्वयमेव जैसै होय तैसें देख्या जान्या करै। जो इष्ट अनिष्ट मान उपजावै, नष्ट करै ताकों साक्षीभूत कैसें कहिए, जातैं साक्षीभूत रहना अर कर्त्ता हर्त्ता होना ये दोऊ परस्पर विरोधी हैं। एककैं दोऊ सम्भवै नाहीं। बहुरि परमब्रह्मके पहिले तो इच्छा यहु भई थी कि 'मैं एक हूं सो बहुत होस्यूं' तब बहुत भया। अब ऐसी इच्छा भई होसी जो "मैं बहुत हूं सो एक होस्यूं" सो जैसें कोऊ भोलेपने तैं कार्यकरि पीछे तिस कार्यकों दूर किया चाहै, तैसें परमब्रह्म भी बहुत होय एक होनेकी इच्छाकरी सो जानिए है कि बहुत होनेका

कार्य किया होय सो भोलपनेहीतैं किया, आगामी ज्ञानकरि किया होता तो काहेकों ताके दूरि करनेकी इच्छा होती।

बहुरि जो परमब्रह्मकी इच्छा बिना ही महेश संहार करै है तो यहु परमब्रह्मका वा ब्रह्मका विरोधी भया। बहुरि पूछैं हैं यहु महेश लोककों कैसें संहार करै है। अपने अंगनिहीकरि संहार करै है कि इच्छा होतें स्वयमेवही संहार होय है? जो अपने अंगनिकरि संहार करै है तो सर्वका युगपत् संहार कैसे करै है? बहुरि याकी इच्छा होतें स्वयमेव संहार हो है तो इच्छा तो परमब्रह्म कीन्हीं थी, यातैं संहार कहा किया?

बहुरि हम पूछैं हैं कि संहार भए सर्व लोकविषै जीव अजीव थे ते कहां गये? तब वह कहै है—जीवनिविषैं भक्त तो ब्रह्म विषै मिले, अन्य मायाविषै मिले। अब याकों पूछिये है कि माया ब्रह्मतैं जुदी रहै है कि पीछें एक होय जाय है। जो जुदी रहै है तो ब्रह्मवत् माया भी नित्य भई। तब अद्वैतब्रह्म न रह्या। अर मायाब्रह्म में एक होय जाय है तो जे जीव मायामें मिले थे ते भो मायाकी साथि ब्रह्ममें मिल गये तो महाप्रलय होतें सर्वका परमब्रह्ममें मिलना ठहरया ही तो मोक्षका उपाय काहेकों करिए। बहुरि जे जीव मायामें मिले ते बहुरि लोकरचना भये वे ही जीव लोकविषैं आवेंगे कि वे तो ब्रह्म में मिल गये थे कि नये उपजेंगे। जो वे ही आवेंगे तो जानिये है जुदे जुदे रहै हैं, मिले काहेकों कहो। अर नये उपजेंगे तो जीवका अस्तित्व थोरा कालपर्यंत ही रहै, काहेको मुक्त होनेका उपाय कीजिये। बहुरि वह कहै है कि पृथिवी आदिक है ते मायाविषैं मिले हैं सो माया अमूर्त्तीक सचेतन है कि मूर्त्तीक अचेतन है। जो अमूर्त्तीक सचेतन है तो अमूर्त्तीक में मूर्त्तीक अचेतन कैसें मिलैं? अर मूर्त्तीक अचेतन है तो यहु ब्रह्ममें मिलै है कि नाहीं जो मिलै है तो याके मिलनेतैं ब्रह्म भी मूर्त्तीक अचेतनकरि मिश्रित भया। अर न मिलै है तो अद्वैतता न रही। अर तू कहेगा ये सर्व अमूर्त्तीक अचेतन होइ जाय हैं तो आत्मा अर शरीरा-

दिककी एकता भई, सो यहु संसारी एकला मानै हो है, याकों अज्ञानी काहेकों कहिए। बहुरि पूछें हैं – लोकका प्रलय होतें महेशका प्रलय हो है कि न हो है। जा हो है तो युगपत् हो है कि आगें पीछें हो हैं। जो युगपत् हो है तो आप नष्ट होता लोककों नष्ट कैसें करै। अर आगें पीछें हो है तो महेश लोककों नष्टकरि आप कहाँ रह्या, आप भी तो सृष्टिविषै ही था, ऐसें महेशकों सृष्टिका संहारकर्त्ता मानै हैं सो असम्भव है। या प्रकारकरि वा अन्य अनेक प्रकारनिकरि ब्रह्मा विष्णु महेशकों सृष्टिका उपजावनहारा, रक्षा करनहारा, संहारकरनहारा मानना न बनै तातैं लोककों अनादिनिधन मानना।

इस लोकविषें जे जीवादि पदार्थ हैं ते न्यारे न्यारे अनादिनिधन हैं। बहुरि तिनकी अवस्थाकी पलटनि हुवा करै है। तिस अपेक्षा उपजते विनशते कहिये है। बहुरि जे स्वर्ग नरक द्वीपादिक हैं ते अनादितें ऐसें ही हैं अर सदाकाल ऐसें ही रहेंगे। कदाचित् तू कहेगा बिना बनाये ऐसें आकारादिक कैसें भये, जो भये होंय तो बनाये ही होंय। सो ऐसा नाहीं है जातैं अनादितें ही जे पाइये तहां तर्क कहा। जैसें तू परमब्रह्मका स्वरूप अनादिनिधन मानै है तैसें ये जीवादिक वा स्वर्गादिक अनादिनिधन मानिये हैं। तू कहेगा जीवादिक वा स्वर्गादिक कैसें भये? हम कहेंगे परमब्रह्म कैसें भया। तू कहेगा इनकी रचना ऐसी कौनकरी? हम कहेंगे परमब्रह्मकों ऐसा कोन बनाया? तू कहेगा परमब्रह्म स्वयंसिद्ध है; हम कहे हैं जीवादिक वा स्वर्गादिक स्वयंसिद्ध हैं; तू कहेगा इनकी अर परमब्रह्मकी समानता कैसें सम्भवै? तो सम्भवनेविषें दूषण बताय। लोककों नवा उपजावना ताका नाश करना तिसविषें तो हम अनेक दोष दिखाये। लोककों अनादि निधन माननेतें कहा दोष है? सो तू बताय। जो तू परमब्रह्म मानै है सो जुदाही कोई है नाहीं। ये संसारविषें जीव हैं ते ही यथार्थ ज्ञानकरि मोक्षमार्ग साधनतें सर्वज्ञ वीतराग हो हैं।

इहां प्रश्न—जो तुम तो न्यारे न्यारे जीव अनादिनिधन कहो

हो। मुक्त भये पीछें तो निराकार हो हैं, तहाँ न्यारे न्यारे कैसें सम्भवै ?

ताका समाधान—जो मुक्त भये पीछें सर्वज्ञकों दीसै हैं कि नाहीं दीसै हैं। जो दीसै हैं तो किछू आकार दीसता ही होगा। बिना आकार देखें कहा देख्या अर न दीसै है तो कै तो वस्तु ही नाहीं, कै सर्वज्ञ नाहीं। तातें इन्द्रियज्ञानगम्य आकार नाहीं तिस अपेक्षा निराकार है अर सर्वज्ञ ज्ञानगम्य है तातैं आकारवान् है। जब आकारवान् ठहरया तब जुदा जुदा होय तो कहा दोष लागै ? बहुरि जो तू जाति अपेक्षा एक कहै तो हम भी मानें है। जैसें गेहूं भिन्न भिन्न हैं तिनकी जाति एक है ऐसें एक मानें तो किछू दोष है नाहीं। या प्रकार यथार्थ श्रद्धानकरि लोकविषैं सर्व पदार्थ अकृत्रिम जुदे जुदे अनादिनिधन मानने। बहुरि जो वृथा ही भ्रमकरि सांच झूंठ का निर्णय न करै तो तू जानै, तेरे श्रद्धान का फल तू पावेगा।

ब्रह्म से कुलप्रवृत्ति आदि का प्रतिषेध

बहुरि वे ही ब्रह्मतैं पुत्रपौत्रादिकरि कुलप्रवृत्ति कहै हैं। बहुरि कुलनिविषैं राक्षस मनुष्यदेव तियर्चनिकै परस्पर प्रसूति भेद बतावें हैं। तहां देवतें मनुष्य वा मनुष्यतें देव वा तिर्यचतें मनुष्य इत्यादि कोई माता कोई पितातें कोई पुत्रपुत्री का उपजना बतावें सो कैसें सम्भवै ? बहुरि मनहीकरि वा पवनादिकरि वा वीर्यसूंघने आदिकरि प्रसूति होनी बतावैं हैं सो प्रत्यक्षविरुद्ध भासै है। ऐसें होते पुत्रपौत्रादिकका नियम कैसें रह्या ? बहुरि बड़े बड़े महन्तनिको अन्य अन्य मातापितातें भए कहै हैं। सो महत पुरुष कुशीलो माता पिताकै कैसें उपजें ? यहु तो लोकविषैं गालि है। ऐसा कहि उनकी महतता काहेकों कहिए है।

अवतार मीमांसा

बहुरि गणेशादिककी मैला आदि करि उत्पत्ति बतावै हैं वा काहूके अंग काहूकै जुरे बतावै है। इत्यादि अनेक प्रत्यक्ष विरुद्धकहै हैं।

बहुरि चौईस अवतार* भए कहे हैं, तहां केई अवतारनिकों पूर्णावतार कहैं हैं। केईनिकों अंशावतार कहे हैं। सो पूर्णावतार भए तब ब्रह्म अन्यत्र व्यापक रह्या कि न रह्या। जो रह्या तो इनअवतारनिकों पूर्णावतार काहेकों कहो। जो (व्यापक) न रह्या तो एतावन्मात्र ही ब्रह्म रह्या। बहुरि अंशावतार भए तहाँ ब्रह्म का अंश तो सर्वत्र कहो हो, इन विषें कहा अधिकता भई ? बहुरि कार्य तो तुच्छ तिसके वास्ते आप ब्रह्म अवतार धार्‌या कहैं सो जानिये है। बिना अवतार धारें ब्रह्मकी शक्ति तिस कार्यके करनेकी न थी। जातैं जो कार्य स्तोक उद्यमतैं होइ तहां बहुत उद्यम काहेकों करिए ? बहुरि अवतारनिविषें मच्छ कच्छादि अवतार भये सो किंचित् कार्य करने के अर्थि हीन तिर्यंच पर्यायरूप भये, सो कैसें सम्भवै ? बहुरि प्रह्लादके अर्थि नरसिंह अवतार भये सो हिरणांकुशकों ऐसा काहेकों होने दिया अर कितेक काल अपने भक्तोंको काहेकों दुःख द्याया। बहुरि ऐसा रूप काहेकों धर्‌या। बहुरि नाभिराजाकै वृषभावतार भया बतावैं हैं सो नाभिकों पुत्रपनेका सुख उपजावनेकों अवतार धार्‌या। घोरतपश्चरण किस अर्थि किया। उनकों तो किछु साध्य था ही नाहीं। अर कहेगा जगत्‌के दिखवानेकों किया तो कोई अवतार तो तपश्चरण दिखावै, कोई अवतार भोगादिक दिखावै, जगत किसकों भला जानि लागै।

बहुरि (वह) कहै है—एक अरहंत नामका राजा भया× सो वृषभावतारका मत अंगीकारकरि जैनमत प्रगट किया सो जैनविषै कोई एक अरहंत भया नाहीं। जो सर्वज्ञपद पाय पूजन योग्य होय

* सनत्कुमार १ शूकरावतार २ देवर्षि नारद ३ नर नारायण ४ कपिल ५ दत्तात्रय ६ यज्ञपुरुष ७ ऋषभावतार ८ पृथु अवतार ९ मत्स्य १० कच्छप ११ धन्वन्तरि १२ मोहिनी १३ नृसिंहावतार १४ वामन १५ परशुराम १६ व्यास १७ हंस १८ रामावतार १९ कृष्णावतार २० हयग्रीव २१ हरि २२ बुद्ध २३ और कल्कि ये २४ अवतार माने जाते हैं।

× भागवत स्कंध ५ अ० ६, ७, ११

ताहीका नाम अर्हत् है। बहुरि रामकृष्ण इन दोउ अवतारनिकों मुख्य कहैं हैं सो रामावतार कहा किया। सीताके अर्थि विलापकरि रावणसों लरि वाकू मारि राज किया। अर कृष्णावतार पहिलें गुवालिया होइ परस्त्री गोपिकानिके अर्थि नाना विपरीति निंद्य चेष्टाकरी ×, पीछें जरासिंधु आदिकों मारि राजकिया। सो ऐसे कार्य करने में कहा सिद्धिभई। बहुरि रामकृष्णादिका एक स्वरूप कहैं। सो बीचमें इतने काल कहां रहे ? जो ब्रह्मविषै रहे तो जुदे रहे कि एक रहे। जुदे रहे तो जानिए है, ए ब्रह्मतैं जुदे रहै हैं। एक रहे तो राम ही कृष्ण भया सीता ही रुक्मणी भई इत्यादि कैसें कहिए है। बहुरि रामावतारविषें तो सीताकों मुख्य करें अर कृष्णावतारविषें सीताकों रुक्मणी भई कहैं अर ताको तो प्रधान न कहैं, राधिका कुमारी ताको मुख्य करें। बहुरि पूछें तब कहैं राधिका भक्त थी, सो निजस्त्रीकों छोरि दासीका मुख्य करना कैसें बनें ? बहुरि कृष्णके तो राधिकासहित परस्त्री सेवनके सर्व विधान भए सो यहु भक्ति कैसी करी, ऐसे काय तो महानिंद्य हैं। बहुरि रुक्मणी को छोरि राधा को मुख्य करी, सो परस्त्री सेवनकों भला जानि करी होसी। बहुरि एक राधा विषै ही आसक्त न भया, अन्य गोपिका कुब्जा* आदि अनेक परस्त्रीनिविषें भी आसक्त भया। सो यहु अवतार ऐसेही कार्यका अधिकारी भया। बहुरि कहैं—लक्ष्मी वाकी स्त्री है अर धनादिककों लक्ष्मी कहैं सो ये तो पृथ्वी आदि विषें जेसें पाषाण धूलि है तैसें ही रत्न सुवर्णादि धन देखिये है। जुदी ही लक्ष्मी कौन जाका भर्तार नारायण है। बहुरि सीतादिककों माया का स्वरूप कहैं सो इन विषें आसक्त भये तब मायाविषें आसक्त कैसें न भया। कहाँ ताई कहिये जो निरूपण करें सो विरुद्ध करें। परन्तु जीवनिकों भोगादिककी वार्ता सुहावै, तातैं तिनका कहना वल्लभ लागे

× विष्णु० पु० अ० १३ श्लोक ४५ से ६० तक
ब्रह्मपुराण अ० १८९ और भागवत स्कंध १०, अ० ३०, ४८

* भागवत स्कंध १० अ० ४८ १-११

है। ऐसे अवतार कहे हैं, इनको ब्रह्मस्वरूप कहैं हैं। बहुरि औरनिकों भी ब्रह्मस्वरूप कहे हैं। एक तो महादेवकों ब्रह्मस्वरूप माने हैं ताको योगी कहै हैं, सो योग किस अर्थि गह्या। बहुरि मृगछाला भस्मी धारैं हैं सो किस अर्थीधारी है। बहुरि रुण्डमाला पहरैं हैं सो हाड़का छीवना भी निंद्य है ताकों गलेमें किस अर्थि धारैं हैं। सर्पादि सहित है सो यामें कौन बड़ाई है। आक धतूरा खाय है सो यामें कौन भलाई है। त्रिशूलादि राखं है सो कौनका भय है। बहुरि पार्वती संग लिये है सो योगी होय स्त्रीराखै सो ऐसा विपरीतपना काहेकों किया। कामासक्त था तो घरही में रह्या होता। बहुरि बानै नाना प्रकार विपरीत चेष्टा कीन्हीं ताका प्रयोजन तो किछू भासै नाहीं बाउलेकासा कर्त्तव्य भासै ताकों ब्रह्मस्वरूप कहैं।

बहुरि कबहूं कृष्णको याका सेवक कहैं, कबहूं याकों कृष्णका सेवक कहै। कबहूं दोऊनिकों एक ही कहैं, किछू ठिकाना नाहीं। बहुरि सूर्य्यादिककों ब्रह्मका स्वरूप कहैं। बहुरि ऐसा कहैं जो विष्णु कह्या सो धातुनिविषैं सुवर्ण, वृक्षनिविषैं कल्पवृक्ष, जूवा विषै झूठ इत्यादि में मैं ही हूं सो किछू पूर्वापर विचारे नाही। कोई एक अंगकरि केई संसारी जाकों महंत मानै ताहीको ब्रह्मका स्वरूप कहै। सो ब्रह्म सर्वव्यापी है तो ऐसा विशेष काहेकों किया। अर सूर्यादिविषैं वा सुवर्णादिविषैं ही ब्रह्म है तो सूर्य उजारा करै है, सुवर्ण धन है इत्यादि गुणनिकरि ब्रह्म मान्या सो सूर्यवत् दीपादिकभी उजाला करै हैं, सुवर्णवत् रूपा लोहा आदि भी धन हैं इत्यादि गुण अन्य पदार्थनिविषैं भी हैं तिनकों भी ब्रह्म मानो। बड़ा छोटा मानो परन्तु जाति तो एक भई। सो झूंठी महंता ठहरानेके अर्थि अनेक प्रकार युक्ति बनावै हैं।

बहुरि अनेक ज्वालामालिनी आदि देवी तिनकों मायाका स्वरूप कहि हिंसादिक पाप उपजाय पूजना ठहरावैं हैं सो माया तो निंद्य है ताका पूजना कैसें सम्भवै? अर हिंसादिक करना कैसें भला होय?

बहुरि गऊ सर्प आदि पशु अभक्ष्य भक्षणादिसहित तिनको पूज्य कहैं। अग्नि पवन जलादिककों देव ठहराय पूज्य कहैं। वृक्षादिककों युक्ति बनाय पूज्य कहैं। बहुत कहा कहिए, पुरुषलिंगी नाम सहित जे होय तिनविषें ब्रह्मकी कल्पना करें अर स्त्रीलिंगी नाम सहित होय तिन विषें मायाकी कल्पनाकरि अनेक वस्तुनिका पूजना ठहरावें हैं। इनके पूजे कहा होगा सो किछू विचार नाहीं। झूठ लौकिक प्रयोजनके कारण ठहराय जगतकों भ्रमावें हैं। बहुरि वे कहै है—विधाता शरीर-कों घड़ै है, बहुरि यम मारै है, मरते समय यम के दूत लेने आवें है, मूए पीछें मार्गविषें बहुत काल लागै है, बहुरि तहां पुण्य पाप का लेखा करें हैं, बहुरि तहां दंडादिक दे है। सो ए कल्पित झूठी युक्ति है। जीव तो समय समय अनन्ते उपजें मरें तिनका युगपत ऐसे होना कैसे सम्भवै ? अर ऐसें माननेका कोई कारण भी भासै नाहीं।

बहुरि मूये पीछें श्राद्धादिककरि वाका भला होना कहै सो जीवतां तो काहूके पुण्य-पापकरि कोई सुखी दुःखी होता दीसै नाहीं, मूये पीछें कैसे होइ। ये युक्ति मनुष्यनिकों भ्रमाय अपने लोभ साधने के अर्थि बनाई है। कीड़ी पतंग सिंहादिक जीव भी तो उपजैं मरें हैं, उनको तो प्रलय के जीव ठहरावें। सो जैसें मनुष्यादिककें जन्म मरण होते देखिए है, तैसें ही उनके होते देखिये है। झूठी कल्पना किये कहा सिद्धि है ? बहुरि वे शास्त्रनिविषें कथादिक निरूपै हैं तहां विचार किए विरुद्ध भासै।

यज्ञमें पशुहिंसा का प्रतिषेध

बहुरि यज्ञादिक करना धर्म ठहरावें हैं। सो तहां बड़े जीव तिनि का होम करै हैं, अग्न्यादिकका महा आरम्भ करै हैं तहां जीव-घात हो है सो उनहीके शास्त्रविषें वा लोकविषें हिंसाका निषेध है सो ऐसे निर्दय हैं किछू गिनै नाहीं। अर कहैं—'यज्ञार्थं पशवः सृष्टाः" ए यज्ञ ही के अर्थि पशु बनाए हैं। तहां घात करने का दोष नाहीं। बहुरि

मेघादिकका होना, शत्रु आदिका विनाशन इत्यादि फल दिखाय अपने लोभके अर्थि राजादिकनिकों भ्रमावै। सो कोई विषतें जीवना कहै तो प्रत्यक्ष विरुद्ध है। तैसें हिंसा किये धर्म अर कार्यसिद्ध कहना प्रत्यक्ष विरुद्ध है। परन्तु जिनकी हिंसा करनी कही, तिनकी तो किछू शक्ति नाहीं, उनकी काहूकों पीर नाहीं। जो किसी शक्तिवान् वा इष्ट का होम करना ठहराया होता तो ठीक पड़ता। बहुरि पाप का भय नाहीं तातें पापी दुर्बलके घातक होय अपने लोभके अर्थि अपना वा अन्यका बुरा करनेविषें तत्पर भये हैं।

बहुरि ते मोक्षमार्ग भक्तियोग अर ज्ञानयोग करि दोय प्रकार प्ररूपें हैं। अब भक्तियोग करि मोक्षमार्ग कहैं ताका स्वरूप कहिये हैं :—

भक्तियोग मीमांसा

तहां भक्ति निर्गुण सगुण भेदकरि दोय प्रकार कहै हैं। तहाँ अद्वैत परब्रह्म की भक्ति करनी सो निर्गुणभक्ति है। सो ऐसें करें हैं—तुम निराकार हो, निरंजन हो, मन वचन के अगोचर हो, अपार हो, सर्वव्यापी हो, एक हो, सर्वके प्रतिपालक हो, अधमउधारण हो, सर्व के कर्त्ता हर्त्ता हो इत्यादि विशेषणनिकरि गुण गावें हैं। सो इन विषें केई तो निराकारादि विशेषण हैं सो अभावरूप हैं तिनकों सर्वथा माने अभाव ही भासै। जातें आकारादि बिना वस्तु कैसें होई। बहुरि केई सर्वव्यापी आदि विशेषण असम्भवपना पूर्वे दिखाया ही है। बहुरि ऐसा कहैं जो जीव बुद्धिकरि मैं तिहारा दास हूं, शास्त्रदृष्टिकरि तिहारा अंश हूं, तत्त्वबुद्धिकरि 'तू ही मैं हूं' सो ये तीनों ही भ्रम हैं। यहु भक्तिकरनहारा चेतन है कि जड़ है। जो चेतन है तो यहु चेतना ब्रह्मकी है कि इसहीकी है। जो ब्रह्मकी है तो मैं दास हूं ऐसा मानना तो चेतनाहीके हो है सो चेतना ब्रह्मका स्वभाव ठहरया अर स्वभाव स्वभावीकै तादात्म्यसम्बन्ध है। तहां दास अर स्वामी का सम्बन्ध कैसें बनै ? दास स्वामी का सम्बन्ध तो भिन्न पदार्थ होय तब ही बनै।

बहुरि जो यहु चेतना इसहीकी है तो यहु अपनी चेतनाका धनीं जुदा पदार्थ ठहर्‌या तो मैं अंश हूँ वा 'जो तू है सो मैं हूँ' ऐसा कहना झूंठा भया। बहुरि जो भक्ति करणहारा जड़ है तो जड़कै बुद्धिका होना असम्भव है ऐसी बुद्धि कैसे भई। तातैं 'मैं दास हूं' ऐसा कहना तो तब ही बनै जब जुदे-जुदे पदार्थ होंय। अर 'तेरा मैं अंश हूं' ऐसा कहना बनै हा नाहीं। जातैं 'तू' अर 'मैं' ऐसा तो भिन्न होय तब ही बनै, सो अंश अंशी भिन्न कैसें होय? अंशी तो कोई जुदा वस्तु है नाहीं, अंशनिका समुदाय सो हो अंशी है। अर तू है सो मैं हूं, ऐसा बचन ही विरुद्ध है। एक पदार्थविषैं आपो भो मानै अर वाको पर भी मानै सो कैसें सम्भवे। तातैं भ्रम छोड़ि निर्णय करना। बहुरि केई नाम ही जपै है सो जाका नाम जपैं ताका स्वरूप पहिचाने बिना केवल नामही का जपना कैसें कार्यकारी होय। जो तू कहेगा, नामहोका अतिशय है तो जो नाम ईश्वरका है सो ही नाम किसी पापी पुरुषका, तहां दोऊनिका नाम उच्चारणविषै फलकी समानता होय सो कैसें बनै। तातैं स्वरूपका निर्णयकरि पीछै भक्ति करने योग्य होय ताकी भक्ति करनी। ऐसें निर्गुणभक्तिका स्वरूप दिखाया।

बहुरि जहां काम क्रोधादिककरि निपजे कार्यनिका वर्णनकरि स्तुत्यादि करिए ताको सगुणभक्ति कहै हैं। तहां सगुणभक्तिविषें लौकिक शृङ्गार वर्णन जैसें नायक नायिकाका करिये तैसें ठाकुरठकुरानीका वर्णन करें हैं। स्वकीया परकीया स्त्रीसम्बन्धी सयोगवियोगरूप सर्वव्यवहार तहां निरूपें हैं। बहुरि स्नान करती स्त्रीका वस्त्र चुरावना, दधि लूटना स्त्रीनिके पगां पड़ना, स्त्रीनिके आगैं नाचना इत्यादि जिन कार्यनिकों संसारी जीव भी करते लज्जित होंय तिनि कार्यनिका करना ठहरावैं हैं। सो ऐसा कार्य अतिकाम पीड़ित भएही बनै बहुरि युद्धादिक किये कहैं तो ए क्रोध के कार्य हैं। अपनी महिमा दिखावने के अर्थि उपाय किये कहैं सो ए मान के कार्य हैं। अनेक छल किये कहैं सो मायाके कार्य हैं। विषय सामग्री प्राप्तिके अर्थि यत्न किये

कहैं सो ए लोभके कार्य हैं। कौतूहलादिक किये कहैं सो हास्यादिकके कार्य हैं। ऐसें कार्य क्रोधादिकरि युक्त भये ही बनै। या प्रकार काम क्रोधादिकरि निपजे कार्यनिको प्रगटकरि कहैं, हम स्तुति करै हैं। सो काम क्रोधादिके कार्य हो स्तुतियोग्य भए तो निंद्य कौन ठहरेंगे। जिनकी लोकविषैं, शास्त्रविषैं अत्यन्त निन्दा पाइये तिनि कार्यनिका वर्णनकरि स्तुति करना तो हस्तचुगलकासा कार्य भया। हम पूछै हैं— कोऊ किसीका नाम तो कहै नाहीं अर ऐसे कार्यनिहीका निरूपण करि कहैं कि किसीने ऐसे कार्य किये हैं, तब तुम वाकों भला जानो कि बुरा जानो। जो भला जानो तो पापी भले भये, बुरा कोन रह्या। बुरे जानो तो ऐसे कार्य कोई करो सो ही बुरा भया। पक्षपात रहित न्याय करो : जो पक्षपातकरि कहोगे, ठाकुरका ऐसा वर्णन करना भी स्तुति है तो ठाकुर ऐसे कार्य किस अर्थि किये। ऐसे निंद्यकार्य करनेमें कहा सिद्धी भई? कहोगे, प्रवृत्ति चलावनेके अर्थि किये तो परस्त्री सेवन आदि निंद्यकार्यनिकी प्रवृत्ति चलावनेमें आपकै वा अन्यकै कहा नफा भया। तातैं ठाकुरकै ऐसा कार्य करना सम्भव नाहीं। बहुरि जो ठाकुर कार्य न किये तुम ही कहो हो, जामें दोष न था ताकों दोष लगाया, तातैं ऐसा वर्णन करना तो निंदा है, स्तुति नाहीं। बहुरि स्तुति करतैं जिन गुणनिका वर्णन करिये तिस रूप ही परिणाम होंय वा तिनही विषैं अनुराग आवै। सो काम क्रोधादि कार्यनिका वर्णन करिये तिस रूप ही परिणाम होंय वा तिनही विषैं अनुराग आवै। सो काम क्रोधादि कार्यनिका वर्णन करता आप भी कामक्रोधादिरूप होय अथवा कामक्रोधादि विषैं अनुरागी होय तो ऐसे भाव तो भले नाहीं। जो कहोगे, भक्त ऐसा भाव न करैं हैं तो परिणाम भये बिना वर्णन कैसैं किया। तिनका अनुराग भये बिना भक्ति कैसैं करी। सो ए भाव ही भले होंय तो ब्रह्मचर्यकों वा क्षमादिककों भले काहेकों कहिये। इनके तो परस्पर प्रतिपक्षीपना है। बहुरि सगुण भक्ति करनेके अर्थि राम कृष्णादिकको मूर्ति भी शृंगारादि किये वक्रत्वादि सहित स्त्री

आदि संग लिये बनावें हैं, जाकों देखते ही कामक्रोधादि भाव प्रगट होय आवै अर महादेवके लिंगहीका आकार बनावें हैं। देखो विडम्बना, जाका नाम लिये लाज आवै, जगत् जिसको ढांक्या राखै ताके आकारका पूजन करावें हैं। कहा अन्य अङ्ग वाके न थे ? परन्तु घनी विडम्बना ऐसे ही किये प्रगट होय। बहुरि सगुणभक्तिके अर्थि नाना प्रकार विषयसामग्री भेली करें। बहुरि नाम तो ठाकुरका करै अर तिनकों आप भोगवै। भोजनादि बनावै बहुरि ठाकुरकों भोग लगाया कहै, पीछे आप ही प्रसादकी कल्पना करि ताका भक्षणादि करै। सो इहाँ पूछिये है, प्रथम तो ठाकुरकै क्षुधा तृषा पीड़ा होसी। न होइ तो ऐसी कल्पना कैसें सम्भवै। अर क्षुधादिकरि पीडित होय सो व्याकुल होइ तब ईश्वर दुःखी भया, औरका दुःख कैसें दूरि करे। बहुरि भोजनादि सामग्री आप तों उनके अर्थि अर्पण करी, सो करी, पीछें प्रसाद तो ठाकुर देवै तब होय, आपही का तो किया न होय। जैसें कोऊ राजाको भेंट करि पीछें राजा बक्सै तो वाकों ग्रहण करना योग्य अर आप राजा को भेंट करै अर राजा तो किछू कहै नाहीं, आप ही 'राजा मोकूं बकसी' ऐसे कहि वाकों अङ्गीकार करै तो यहु ख्याल (खेल) भया। तैसे इहां भी ऐसें किये भक्ति तो भई नाहीं, हास्य करना भया। बहुरि ठाकुर अर तू दोय हो कि एक हों। दोय हो तो तैनें भेंट करी, पीछें ठाकुर बकसै सो ग्रहण कीजे, आप ही तैं ग्रहण काहेकों करै है। अर त कहेगा ठाकुरकी तो मूर्ति है तातैं मैं ही कल्पना करूं हूं, तो ठाकुरका करने का कार्य तैं ही किया तब तू हीं ठाकुर भया। बहुरि जो एक हो तो भेंट करनी, प्रसाद कहना झूंठा भया। एक भए यह व्यवहार सम्भवै नाहीं तातैं भोजनासक्त पुरुषनिकरि ऐसी कल्पना करिये है। बहुरि ठाकुरके अर्थि नृत्य गानादि करावना, शीत ग्रीष्म बसंत आदि ऋतुनिविषैं संसारीनिकै सम्भवती ऐसी विषय सामग्री भेली करनी इत्यादि कार्य करै। तहां नाम तो ठाकुर का लेना अर इन्द्रियनिके विषय अपने पोषने सो विषयासक्त जीवनिकरि ऐसा

उपाय किया है। बहुरि जन्म विवाहादिक की सोवना जागना इत्यादि की कल्पना तहां करै है सो जैसें लड़की गुड्डागुड्डीनिका ख्याल बनाय करि कोतूहल करै, तैसें यहु भी कौतुहल करना है। किछू परमार्थरूप गुण है नाहीं। बहुरि लड़के ठाकुरका स्वांग बनाय चेष्टा दिखावैं। ताकरि अपने विषय पोषैं अर कहैं यहु भी भक्ति है, इत्यादि कहा कहिए। ऐसो अनेक विपरीतता सगुण भक्ति विषैं पाईए है। ऐसें दोय प्रकार भक्तिकरि मोक्ष मार्ग कहैं सो ताकौं मिथ्या दिखाया।

अब अन्य मत प्ररूपित ज्ञानयोगकरि मोक्षमार्गका स्वरूप बताइये है—

ज्ञानयोग मीमांसा

एक अद्वैत सर्वव्यापी परब्रह्म को जानना ताकों ज्ञान कहैं हैं सो ताका मिथ्यापना तो पूर्वे कह्या ही है। बहुरि आपकों सर्वथा शुद्ध ब्रह्मस्वरूप मानना, कामक्रोधादिक व शरीरादिककों भ्रम जानना तातों ज्ञान कहै हैं सो यहु भ्रम है। आप शुद्ध हैं तो मोक्षका उपाय काहेकों करै है। आप शुद्धब्रह्म ठहरचा तब कर्तव्य कहा रह्या? बहुरि प्रत्यक्ष आपके कामक्रोधादिक होते देखिये है अर शरीरादिकका संयोग देखिये है सो इनिका अभाव होगा तब होगा, वर्त्तमान विषै इनिका सद्‌भाव मानना भ्रम कैसें भया? बहुरि कहै हैं, मोक्षका उपाय करना भी भ्रम है। जैसें जेवरी तो जेवरी ही है ताकों सर्प जानै था सो भ्रम था—भ्रम मेटें जेवरी ही है। तैसें आप तो ब्रह्म ही है, आपको अशुद्ध जानै था सो भ्रम का, भ्रम मेटें आप ब्रह्म ही है। सो ऐसा कहना मिथ्या है। जो आप शुद्ध होय अर ताको अशुद्ध जानै तो भ्रम अर आप कामक्रोधादिसहित अशुद्ध होय रह्या ताकों अशुद्ध जानै तो भ्रम कैसे होइ। शुद्ध जाने भ्रम होइ सो झूंठा भ्रम-करि आपको शुद्धब्रह्म माने कहा सिद्धि है। बहुरि तू कहेगा, ये काम क्रोधादिक तो मनके धर्म हैं ब्रह्मन्यारा है तो तुझकूं पूछिये है—मन तेरा स्वरूप है कि नाहीं। जो है तो काम क्रोधादिक भी तेरे ही भये।

अर नाहीं है तो तू ज्ञान स्वरूप है कि जड़ है। जो ज्ञानस्वरूप है तो तेरे तो ज्ञान मन वा इन्द्रिय द्वारा ही होता दीसै है। इनि बिना कोई ज्ञान बतावै तो ताकों जुदा तेरा स्वरूप मानैं सो भासता नाहीं। बहुरि 'मन ज्ञाने' धातुतैं मन शब्दनिपजै है सो मन तो ज्ञानस्वरूप है। सो यहु ज्ञान किसका है ताकों बताय सो जुदा कोऊ भासै नाहीं। बहुरि जो तू जड़ है तो ज्ञान बिना अपने स्वरूपका विचार कैसे करै है, यहु बनै नाहीं। बहुरि तू कहै है, बृह्मन्यारा है सो वह न्यारा बृह्म तू ही है कि और है। जो तू हो है तो तेरे 'मैं बृह्म हूं' ऐसा मानने वाला जो ज्ञान है सो तो मन स्वरूप ही है, मनतैं जुदा नाहीं अर आपा मानना आप ही विषैं होय। जाकों न्यारा जानै तिसविषैं आपा मान्यो जाय नाहीं। सो मनतैं न्यारा बृह्म है तो मनरूप ज्ञान बृह्मविषै आपा काहे-कों मानै है। बहुरि जो ब्रह्म और ही है तो तू ब्रह्मविषैं आपा काहेकों मानै तातैं भ्रम छोड़ि ऐसा जानि, जैसें स्पर्शनादि इन्द्रिय तो शरीर का स्वरूप है सो जड़ है, याके द्वारि जो जानपनो हो है सो आत्माका स्वरूप है; तैसें ही मन भी सूक्ष्म परमाणूनिका पुञ्ज है सो शरीर हीका अंग है, ताके द्वारि जानपना हो है वा कामक्रोधादि भाव हो सर्व आत्माका स्वरूप है। विशेष इतना-जानपनां तो निज स्वभाव है, काम क्रोधादिक उपाधिक भाव हैं तिसकरि आत्मा अशुद्ध है। जब कालपाय काम क्रोधादिक मिटेंगे अर जानपनाकै इन मन इन्द्रियनका आधीनपना मिटेगा, तब केवल ज्ञानस्वरूप आत्मा शुद्ध होगा। ऐसें ही बुद्धि अहंकारादिक भी जानि लेने, जातैं मन अर बुद्धयादिक एकार्थ हैं अर अहंकारादिक हैं ते काम क्रोधादिकवत् उपाधिक भाव हैं। इनिकों आपतैं भिन्न जानना भ्रम है। इनकों अपने जानि उपाधिक भावनिके अभाव करनेका उद्यम करना योग्य है। बहुरि जिनितैं इनिका अभाव न होय सकै अर अपनी महंतता चाहैं ते जीव इनिकों अपने न ठहराय स्वच्छन्द प्रवर्तै हैं। काम क्रोधादिक भावनिको बधाय विषयसामग्रीनिविषै वा हिंसादिकार्यनिविषैं तत्पर हो हैं। बहुरि अहं-

कारादिक का त्यागकों भी अन्यथा मानें हैं। सर्वकों परब्रह्म मानना, कहीं आपो न मानमों ताकों अहंकारका त्याग बतावें सो मिथ्या है जातें कोई आप है कि नाहीं। जो है ता आपविषें आपो कैसें न मानिए, जो आप नाहीं हैं तो सर्वको ब्रह्म कौन मानें है ? तातें शरीरादि पर विषै अहंबुद्धि न करनी, तहां करता न होना सो अहंकार का त्याग है। आप विषें अहंबुद्धि करनेका दोष नाहीं। बहुरि सर्वकों समान जानना, कोई विषें भेद न करना ताकों रागद्वेषका त्याग बतावै हैं सो भी मिथ्या है। जातें सर्व पदार्थ समान हैं नाहीं। कोई चेतन है कोई अचेतन है कोई कैसा है कोई कैसा तिनिकों समान कैसें मानिए ? तातें परद्रव्यनिकों इष्ट अनिष्ट न मानना सो रागद्वेषका त्याग है। पदार्थनिका विशेष जानने में तो किछू दोष नाहीं। ऐसें ही अन्य मोक्ष-मार्गरूप भावनिके अन्यथा कल्पना करें हैं। बहुरि ऐसी कल्पनाकरि कुशील सेवें हैं, अभक्ष्य भखै हैं, वर्णादि भेद नाहीं करें हैं, हीन क्रिया आचरें हैं इत्यादि विपरीतरूप प्रवर्तें हैं। जब कोऊ पूछै तब कहै हैं, ये तो शरीरका धर्म है अथवा जैसी प्रालब्धि है तैसें हो है अथवा जैसें ईश्वरकी इच्छा हो है तैसें हो है, हमको तो विकल्प न करना। सो देखो झूंठ, आप जानि जानि प्रवर्तै ताकों तो शरीर का धर्म बतावै। आप उद्यमी होय कार्य करै ताकों प्रालब्धि कहै। आप इच्छाकरि सेवै ताकों ईश्वरकी इच्छा बतावै। विकल्प करै अर कहै हमको तो विकल्प न करना। सो धर्मका आश्रय लेय विषयकषाय सेवे, तातें ऐसी झूंठी युक्ति बनावै है। जों अपने परिणाम किछू भी न मिलावै तो हम याका कर्त्तव्य न मानें। जैसें आप ध्यान धरे तिष्ठै है, कोऊ अपने ऊपरि वस्त्र गेरि गया तहाँ आप किछू सुखी न भया, तहाँ तो ताका कर्त्तव्य नाहीं सो साँच अर आप वस्त्रकों अंगीकारकरि पहरै, अपनी शीता-दिक वेदना मिटाय सुखी होय, तहां जो अपना कर्त्तव्य मानै नाहीं सो कैसें सम्भवै। बहुरि कुशील सेवना अभक्ष्य भखणा इत्यादि कार्य तो परिणाम मिले बिना होते ही नाहीं। तहाँ अपना कर्त्तव्य कैसें न

मानिए । तातैं जो काम क्रोधादिका अभाव ही भया हो तो तहाँ किसी क्रियानिविषैं प्रवृत्ति सम्भवे ही नाहीं । अर जो कामक्रोधादि पाईये है तो जैसें ये भाव थोरे होंय तैसें प्रवृत्ति करनी । स्वच्छन्द होय इनिको बधावना युक्त नाहीं ।

पवनादि साधन द्वारा ज्ञानी होने का प्रतिषेध

बहुरि कई जीव पवनादिका साधनकरि आपकों ज्ञानी मानें हैं तहां इडा सुषुम्णारूप नासिकाद्वारकरि पवन निकसै, तहां वर्णादिक भेदनितें पवन होकों पथ्वा तत्वादिकरूप कल्पना करे हैं । ताका विज्ञानकरि किछू साधनतें निमित्तका ज्ञान होय तातें जगतकों इष्ट अनिष्ट बतावै, आप महंत कहावै सो यहु तो लौकिक कार्य है, किछू मोक्षमार्ग नाहीं । जीवनिको इष्ट अनिष्ट बताय उनकै राग द्वेष वधावै अर अपने लोभादिक निपजावे, यामें कहा सिद्धि है ? बहुरि प्राणायामादिका साधन करे, पवनकों चढ़ाय समाधि लगाई कहै, सो यहु तो जैसें नट साधनतें हस्तादिक करि क्रिया करे तैसें यहाँ भी साधनतें पवनकरि क्रिया करी । हस्तादिक अर पवन ए तो शरीर ही के अङ्ग हैं । इनिके साधनतें आत्महित कैसें सधै ? बहुरि तू कहेगा—तहाँ मनका विकल्प मिटै है, सुख उपजै है, यमके वशीभूतपना न हो है सो यहु मिथ्या है । जैसें निद्राविषैं चेतनाकी प्रवृत्ति मिटै है तैसें पवन साधनतें यहां चेतनाकी प्रवृत्ति मिटै है । तहां मनको रोकि राख्या है, किछ वासना तो मिटी नाहीं । तातैं मनका विकल्प मिट्या न कहिये अर चेतना बिना सुख कौन भोगवै है तातैं सुख उपज्या न कहिये । अर इस साधनवाले तो इस क्षेत्रविषैं भये हैं तिन विषैं कोई अमर दीसता नाहीं । अग्नि लगाएं ताका भी मरण होता दीसै है तातैं यमके वशीभूत नाहीं, यह झूठी कल्पना है । बहुरि जहाँ साधन विषैं किछू चेतना रहै अर तहां साधनतें शब्द सुनै, ताकों अनहद नाद बतावै । सो जैसें वीणादिकके शब्द सुननेतें सुख मानना तैसैं तिसके सुननेतें सुख मानना है । इहां तो विषयपोषण भया, परमार्थतो किछू

नाहीं। बहुरि पवन का निकसने पैठने विषै "सोहं" ऐसे शब्दकी कल्पनाकरि ताको 'अजपा जाप' कहै हैं। सो जैसें तीतरके शब्दविषैं 'तू ही' शब्दकी कल्पना करै है, किछू तीतर अर्थ अवधारि ऐसा शब्द कहता नाहीं। तैसें यहां 'सोहं' शब्द की कल्पना है, किछू पवन अर्थ अवधारि ऐसा शब्द कहता नाहीं। बहुरि शब्दके जपने सुनने ही तैं तो किछू फलप्राप्ति नाहीं, अर्थ अवधारि फलप्राप्ति हो है। सो 'सोहं' शब्दका तो अर्थ यहु है 'सोऽहं छूं' यहां ऐसो अपेक्षा चाहिए है, 'सो' कौन? तब ताका निर्णय किया चाहिए। जातैं तत् शब्दकै अर यत् शब्दकै नित्य सम्बन्ध है। तातैं वस्तुका निर्णयकरि ताविषैं अहंबुद्धि धारने विषैं 'सोहं' शब्द बनै। तहां भी आपकों आप अनुभवै, तहां तो 'सोहं' शब्द सम्भवै नाहीं। परकों अपने स्वरूप बतावनेविषैं 'सोहं' शब्द सम्भवै है। जैसें पुरुष आपकों आप जानैं, तहां 'सो हूं छूं' ऐसा काहेकों विचारै। कोई अन्य जोव आपकों न पहचानता होय अर कोई अपना लक्षण न पहचानता होय, तब वाकूं कहिए 'जो ऐसा है सो मैं हूं' तैसें हो यहां जानना। बहुरि केई ललाट भोंह अर नासिकाके अग्रके देखनेका साधनकरि त्रिकुटी आदि का ध्यान भया कहि परमार्थ मानै सो नेत्रकी पूतरी फिरे मूर्त्तीक वस्तु देखी, यामें कहा सिद्धि है। बहुरि ऐसे साधननितैं किंचित् अतीत अनागतादिकका ज्ञान होय वा वचनसिद्धि होय वा पृथ्वी आकाशादिविषैं गमनादिकको शक्ति होय वा शरीरविषैं आरोग्यतादिक होय तो ए तो सर्व लौकिक कार्य हैं। देवादिककै स्वयमेव ही ऐसी शक्ति पाइए है। इनितैं किछू अपना भला तो होता नाहीं, भला तो विषयकषायकी वासना मिटैं होय। सो ए तो विषयकषायपोषनेके उपाय हैं। तातैं ए सर्व साधन किछू हितकारी हैं नाहीं। इनविषैं कष्ट बहुत मरणादि पर्यन्त होय अर हित सधै नाही। तातैं ज्ञानी वृथा ऐसा खेद करै नाहीं। कषायी जीव ही ऐसे साधनविषैं लागे है। बहुरि काहूकों बहुत तपश्चरणादिककरि मोक्षका साधन कठिन बतावैं हैं। काहूकों सुगम-

पने ही मोक्ष भया कहैं। उद्धवादिकके को परमासक्त कहैं, तिनको तो तपका उपदेश दिया कहैं, वेश्यादिकके बिना परिणाम (केवल) नामादिकहीतें तरना बतावें किछू थल है नाहीं। ऐसें मोक्षमार्गकों अन्यथा प्ररूपै हैं।

अन्य मत कल्पित मोक्ष मार्ग की मीमांसा

बहुरि मोक्षस्वरूपकों भी अन्यथा प्ररूपै है। तहां मोक्ष अनेक प्रकार बतावें हैं। एक तो मोक्ष ऐसा कहै हैं—जो वैकुण्ठधामविषें ठाकुर ठाकुराणीसहित नाना भोगविलास करैं हैं तहां जाय प्राप्त होय अर तिनिको टहल किया करै सो मोक्ष है। सो यहु तो विरुद्ध है। प्रथम तो ठाकुर भी संसारीवत् विषयासक्त होय रह्या है। तो जैसा राजादिक है तैसा ही ठाकुर भया। बहुरि अन्य पासि टहल करावनी भई तब ठाकुर पराधीन भया। बहुरि जो यहु मोक्षकों पाय तहां टहल किया करै तो जैसें राजाकी चाकरी करनी तैसें यहु भी चाकरी भई; तहां पराधीन भए सुख कैसें होय? तातैं यहु भी बनैं नाहीं।

बहुरि एक मोक्ष ऐसा कहैं हैं—ईश्वरके समान आप हो हैं सो भी मिथ्या है। जो उसके समान और भी जुदा होय है तो बहुत ईश्वर भए। लोकका कर्त्ता हर्त्ता कौन ठहरेगा? सबही ठहरैं तो भिन्न इच्छा भए परस्पर विरुद्ध होय। एक है है तो समानता न भई। न्यून है ताकै नीचापनेकरि उच्च होने की आकुलता रही, तब सुखी कैसें होय? जैसें छोटा राजा कै बड़ा राजा संसारविषें हो है तैसें छोटा बड़ा ईश्वर मुक्तिविषें भी भया सो बनैं नाहीं।

बहुरि एक मोक्ष ऐसा कहै हैं—जो वैकुण्ठविषें दीपककीसी एक ज्योति है, तहाँ ज्योतिविषें ज्योति जाय मिलै है सो यहु भी मिथ्या है दीपककी ज्योति तो मूर्तीक अचेतन है, ऐसी ज्योति तहां कैसें सम्भवै? बहुरि ज्योतिमें ज्योति मिले यहु ज्योति रहै है कि विनशि जाय है। जो रहै है तो ज्योति बधती जायसी, तब ज्योतिविषें

हीनाधिकपनों होसी। अर विनशि जाय है तो आपको सत्ता नाश होय ऐसा कार्य उपादेय कैसें मानिए। तातैं ऐसें भी बनैं नाहीं।

बहुरि एक मोक्ष ऐसा कहैं हैं—जो आत्मा बृह्मही है, मायाका आवरण मिटे मुक्ति ही है सो यहु भी मिथ्या है। यहु माया का आवरणसहित था तब ब्रह्मस्यों एक था कि जुदा था। जो एक था तो बृह्मही मायारूप भया अर जुदा था तो माया दूरि भये बृह्मविषैं मिलै है तब याका अस्तित्व रहै है कि नाहीं। जो रहै है तो सर्वज्ञकों तो याका अस्तित्व जुदा भासै, तब संयोग होनेतें मिल्या कहो परन्तु परमार्थतैं तो मिल्या नाहीं। बहुरि अस्तित्व नाहीं रहै है तो आपका अभाव होना कौन चाहै, तातें यहु भी न बनै।

बहुरि एक प्रकार मोक्षकौं ऐसा भी केई कहै हैं जो बुद्धिआदिका नाश भए मोक्ष हो है। सो शरीर के अंगभूत मन इन्द्रिय तिनके आधीन ज्ञान रह्या। काम क्रोधादिक दूरि भये ऐसें कहना तो बने है, अर तहां चेतनताका भी अभाव भया मानिए तो पाषाणादि समान जड़ अवस्थाकों कैसें भली मानिए। बहुरि भला साधन करतें तो जान-पना बधे है, बहुत भला साधन किये जानपनेका अभाव होना कैसें मानिये ? बहुरि लोकविषें ज्ञानकी महंततातैं जड़पनाको तो महतता नाहीं तातें यहु बनै नाहीं। ऐसें ही अनेक प्रकार कल्पनाकरि मोक्षकों बतावें सो किछू यथार्थ तो जानें नाहीं, संसार अवस्थाकी मुक्ति अवस्थाविषें कल्पनाकरि अपनी इच्छा अनुसारि बकैं हैं। या प्रकार वेदांतादि मतनिविषें अन्यथा निरूपण करें हैं।

मुस्लिममत सम्बन्धी विचार

बहुरि ऐसें ही मुसलमानोके मतविषै अन्यथा निरूपण करें है। जैसै वे बृह्मकों सर्वव्यापी, एक, निरंजन, सर्वका कर्त्ता हर्त्ता मानै हैं तैसें ए खुदाकों मानै हैं। बहुरि जैसें अवतार भए मानैं हैं तैसें ए पैगम्बर भए मानैं हैं। जैसें वे पुण्य पापका लेखा लेना, यथायोग्य

दण्डादिक देना ठहरावै हैं तैसें ए खुदाकै ठहरावें हैं। बहुरि जैसें वे गऊ आदिकों पूज्य कहैं हैं तैसें ए सूअर आदिकों कहैं हैं, सब तिर्यंच आदिक हैं। बहुरि जैसें वे ईश्वरकी भक्तितैं मुक्ति कहैं हैं तैसें ए खुदा की भक्तितैं कहै हैं। बहुरि जैसें वे कहीं दया पोषैं कहीं हिंसा पोषैं, तैसें ए भी कहीं मेहर करनी पोषैं कहीं कतल करना पोषैं। बहुरि जैसें वे कहीं तपश्चरण करना पोषैं कहीं विषयसेवन पोषैं तैसें ही ए भी पोषैं हैं। बहुरि जैसें वे कहीं मांस मदिरा शिकार आदिका निषेध करैं, कहीं उत्तम पुरुषोंकरि तिनिका अंगीकार करना बतावैं हैं तैसें ए भी तिनिका निषेध वा अंगीकार करना बतावैं हैं। ऐसें अनेक प्रकार करि समानता पाइए है। यद्यपि नामादिक और, और हैं तथापि प्रयोजनभूत अर्थकी एकता पाइए है। बहुरि ईश्वर खुदा आदि मूल-श्रद्धानकी तो एकता है अर उत्तर श्रद्धानविषैं घनें ही विशेष हैं। तहां उनतैं भी ए विपरीतरूप विषयकषायके पोषक, हिंसादिपापके पोषक, प्रत्यक्षादि प्रमाणतैं विरुद्ध निरूपण करें हैं। तातैं मुसलमानो का मत महाविपरीतरूप जानना। या प्रकार इस क्षेत्र कालविषैं जिनिमतनिकी प्रचुर प्रवृत्ति है ताका मिथ्यापना प्रगट किया।

इहां कोऊ कहै जो ए मत मिथ्या हैं तो बड़े राजादिक वा बड़े विद्यावान् इनि मतनिविषैं कैसें प्रवर्तैं हैं?

ताका समाधान—जीवनिकैं मिथ्यावासना अनादितैं है सो इनिविषैं मिथ्यात्वहीका पोषण है। बहुरि जीवनिकै विषयकषायरूप कार्यनिकी चाह वर्तै है सो इनि विषैं विषयकषायरूप कार्यनिहीका पोषण है। बहुरि राजादिकनिका वा विद्यावानोंका ऐसे धर्मविषैं विषयकषायरूप प्रयोजनसिद्धि हो है। बहुरि जीव तो लोकनिंद्यपना कों भी उल्लंघि, पाप भी जानि जिन कार्यनिकों किया चाहै तिनि कार्यनिकों करते धर्म बतावै तो ऐसे धर्मविषैं कौन न लागैं। तातैं इनि धर्मनिकी विशेष प्रवृत्ति है। बहुरि कदाचित् तू कहैगा—इनि धर्मनि-

विषैं विरागता दया इत्यादि भी तो कहै हैं, सो जैसैं झोल दिए बिना खोटा द्रव्य चालै नाहीं, तैसें सांच मिलाये बिना झूंठ चालैं नाहीं परन्तु सर्वके हित प्रयोजन विषैं विषयकषायका ही पोषण किया है। जैसें गीताविषैं उपदेश देय राडि (युद्ध) करावनेका प्रयोजन प्रगट किया, वेदान्तविषैं शुद्ध निरूपणादिकरि स्वच्छन्द होनेका प्रयोजन दिखाया। ऐसैं ही अन्य जानने। बहुरि यहु काल तो निकृष्ट है सो इसविषै तो निकृष्ट धर्महीकी प्रवृत्ति विशेष होय है। देखो इस कालविषैं मुसलमान बहुत ही प्रधान हो गये, हिन्दू घटि गये। हिन्दूनिविषैं और वधि गये, जैनी घटि गए। सो यहु कालका दोष है, ऐसें इहाँ अबार मिथ्याधर्मकी प्रवृत्ति वहुत पाइये है। अब पंडितपनाके बलतें कल्पितयुक्तिकरि नाना मत स्थापित भए हैं तिनिविषैं जे तत्त्वादिक मानिए हैं तिनका निरूपण कीजिये है :—

सांख्यमत निराकरण

तहाँ सांख्यमतविषैं पच्चीस तत्त्व मानै हैं * सो कहिए हैं सत्त्व रजः तमः ए तीन गुण कहैं हैं। तहाँ सत्त्वकरि प्रसाद हो है, रजोगुणकरि चित्तकी चंचलता हो है, तमोगुणकरि मूढ़ता हो है, इत्यादि लक्षण कहैं हैं। इनिरूप अवस्था ताका नाम प्रकृति है। बहुरि तिसतैं बुद्धि निपजै है, याहीका नाम महत्त्व है। बहुरि तिसतैं अहंकार निपजै है। बहुरि तिसतैं सोलहमात्रा हो हैं। तहां पांच तो ज्ञानइंद्रिय हो हैं—स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र। बहुरि एक मन हो है। बहुरि पांच कर्मेन्द्रिय हो हैं—बचन, चरन, हस्त, लिंग, पायु। बहुरि पांच तन्मात्रा हो हैं—रूप, रस, गंध, स्पर्श, शब्द। बहुरि रूपतैं अग्नि, रसतैं जल, गन्धतैं पृथ्वी, स्पर्शतैं पवन, शब्दतैं आकाश, ऐसैं भया कहै हैं। ऐसैं चौईस तत्त्व तो प्रकृतिस्वरूप हैं। इनितैं भिन्न निर्गुण कर्त्ता भोक्ता एक पुरुष है। ऐसैं पच्चीस तत्त्व कहैं हैं सो ए

---

* प्रकृतेर्महांस्ततोऽहंकारस्तस्माद्गणश्च षोडशकः।
तस्मादपि षोडशकात्पंचभ्यः पंचभूतानि ॥—सांख्य का० १२

कल्पित हैं जातैं राजसादिक गुण आश्रय बिना कैसें होंय। इनका आश्रय तो चेतनद्रव्य ही सम्भवै है। बहुरि इनितें बुद्धि भई कहैं सो बुद्धि नाम तो ज्ञान का है। सो ज्ञानगुणका धारी पदार्थविषें ये होते देखिये हैं। इनितें ज्ञान भया कैसें मानिये। कोई कहै—बुद्धि जुदी है, ज्ञान जुदा है तो मन तो आगें षोड़शमात्राविषें कह्या अर ज्ञान जुदा कहोगे तो बुद्धि किसका नाम ठहरेगा। बहुरि तिसतें अहंकार भया कह्या सो परवस्तु विषें 'मैं करूं हूँ' ऐसा माननेका नाम अहंकार है। साक्षीभूत जाननें करि तो अहंकार होता नाहीं तो ज्ञानकरि उपज्या कैसें कहिए है? बहुरि अहंकारकरि षोड़श मात्रा कहीं, तिनि विषें पाँच ज्ञानइन्द्रिय कहीं सो शरीरविषें नेत्रादि आकाररूप द्रव्येन्द्रिय हैं सो तो पृथ्वी आदिवत् जड़ देखिये है अर वर्णादिकके जाननेरूप भाव-इन्द्रिय हैं सो ज्ञानरूप हैं, अहंकारका कहा प्रयोजन है। अहंकार बुद्धिरहित कोई काहूकों देखै है। तहाँ अहंकारकरि निपजना कैसें सम्भवे? बहुरि मन कह्या सो इन्द्रियवत् ही मन है। जातैं द्रव्यमन शरीररूप है, भावमन ज्ञानरूप हैं। बहुरि पांच कर्मइन्द्रिय कहैं सो ए तो शरीर के अंग हैं, मूर्तीक हैं। अहंकार अमूर्तीक तें इनिका उपजना कैसें मानिए। बहुरि कर्मइन्द्रिय पांच ही तो नाहीं। शरीरके सर्व अंग कार्यकारी हैं। बहुरि वर्णन तो सर्व जीवाश्रित है, मनुष्याश्रित ही तो नाहीं, तातें सूंडि पूंछ इत्यादि अंग भी कर्मइन्द्रिय हैं। पाँचहीकी संख्या काहेकों कहिए है। बहुरि स्पर्शादिक पाँच तन्मात्रा कहीं सो रूपादि किछू जुदे वस्तु नाहीं, ये तो परमाणूनिस्यों तन्मय गुण हैं। ये जुदे कैसें निपजे? बहुरि अहंकार तो अहंकार तो अमूर्तीक जीवका परिणाम है। तातैं ये मूर्तीकगुण कैसें निपजे मानिए। बहुरि इनि पांचनितैं अग्नि आदि निपजे कहैं सो प्रत्यक्ष झूंठ है। रूपादिक अग्न्यादिकके तो सहभूत गुण गुणी सम्बन्ध है। कहने मात्र भिन्न हैं, वस्तुविषें भेद नाहीं। किसी प्रकार कोऊ भिन्न होता भासै नाहीं, कहने मात्रकरि भेद उपजाइए हैं। तातें रूपादि करि अग्न्यादि निपजे

कैसें कहिए। बहुरि कहनेविषें भी गुणीविषें गुण हैं, गुणतें गुणी निपज्या कैसें मानिये ?

बहुरि इनितैं भिन्न एक पुरुष कहै हैं सो वाका स्वरूप अवक्तव्य कहि प्रत्युत्तर न करै तो कहा बूझैं नाहीं। कैसा है, कहां है, कैसे कर्त्ता हर्त्ता है सो बताय जो बतावेगा ताही में विचार किएं अन्यथापनों भासेगा। ऐसें सांख्यमत करि कल्पित तत्त्व मिथ्या जाननें।

बहुरि पुरुषकों प्रकृतितें भिन्न जाननेका नाम मोक्षमार्ग कहैं हैं। सो प्रथम तो प्रकृति अर पुरुष कोई है ही नाहीं। बहुरि केवल जाननें ही तें तो सिद्धि होती नाहीं। जानिकरि रागादिक मिटाए सिद्धि होय। सो ऐसें जाने किछू रागादिक घटैं नाहीं। प्रकृतिका कर्त्तव्य मानै, आप अकर्त्ता रहै, तब काहेकों आप रागादि घटावै। तातें यहु मोक्षमार्ग नाहीं है।

बहुरि प्रकृति, पुरुषका जुदा होना मोक्ष कहैं हैं। सो पच्चीस तत्त्वनिविषें चौईस तत्त्व तो प्रकृति सम्बन्धी कहे, एक पुरुष भिन्न कह्या। सो ये तो जुदे हैं ही अर जीव कोई पदार्थ पच्चीस तत्त्वनिविषें कह्या ही नाहीं। अर पुरुष ही कों प्रकृति संयोग भए जीव संज्ञा हो है तो पुरुष न्यारे न्यारे प्रकृति सहित हैं, पीछें साधनकरि कोई पुरुष प्रकृति रहित हो है, ऐसा सिद्ध भया—एक पुरुष न ठहरया।

बहुरि प्रकृति पुरुषकी भूलि है कि कोई व्यंतरीवत् जुदी ही है जो जीवकों आनि लागै है। जो याकी भूलि है तो प्रकृतितें इन्द्रियादिक वा स्पर्शादिक तत्त्व उपजे कैसें मानिए ? अर जुदी है तो वह भी एक वस्तु है, सर्व कर्त्तव्य वाका ठहरया। पुरुषका किछू कर्त्तव्य ही रह्या नाहीं, तब काहेकों उपदेश दीजिए है। ऐसें यहु मोक्ष मानना मिथ्या है। बहुरि तहां प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम ए तीन प्रमाण कहै हैं सो तिनिका सत्य असत्यका निर्णय जैनके न्याय ग्रन्थनितें जानना।

बहुरि इस सांख्यमतविषें कोई ईश्वरकों न मानै हैं। केई एक पुरुषकों ईश्वर मानै हैं। केई शिवकों, केई नारायणकों देव मानै हैं।

अपनी इच्छा अनुसारि कल्पना करै हैं, किछू निश्चय है नाहीं। बहुरि इस मतविषैं केई जटा धारैं हैं, केई चोटी राखैं हैं, केई मुण्डित हो हैं, केई काथे वस्त्र पहरैं हैं, इत्यदि अनेक प्रकार भेष धारि तत्त्वज्ञानका आश्रयकरि महंत कहावैं हैं। ऐसैं सांख्यमतका निरूपण किया।

नैयायिक मत निराकरण

बहुरि शिवमतविषैं दोय भेद हैं—नैयायिक, वैशेषिक। तहां नैयायिकमत विषैं सोलह तत्त्व कहै हैं। प्रमाण, प्रमेय, संसय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद जल्प, वितंडा, हेत्वाभास, छल, जाति, निग्रहस्थान। तहाँ प्रमाण च्यारि प्रकार कहै हैं। प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द, उपमा। बहुरि आत्मा, देह, अर्थ, बुद्धि इत्यादि प्रमेय कहै हैं। बहुरि 'यहु कहा है' ताका नाम संशय है। जाके अर्थि प्रवृत्ति होय सो प्रयोजन है। जाकों वादी प्रतिवादी मानैं सो दृष्टान्त है। दृष्टांतकरि जाकों ठहराइए सो सिद्धान्त है। बहुरि अनुमानके प्रतिज्ञा आदि पंच अंग ते अवश्य हैं। संशय दूरि भए किसी विचारतैं ठीक होय सो तर्क है। पीछैं प्रतीतिरूप जानना सो निर्णय है। आचार्य शिष्यकै पक्ष प्रतिपक्षकरि अभ्यास सो वाद है। जाननेकी इच्छारूप कथाविषैं जो छल जाति आदि दूषण होय सो जल्प है। प्रतिपक्ष-रहित वाद सो वितंडा है। साँचे हेतु नाहीं, ते असिद्ध आदि भेद लिए हेत्वाभास है। छललिए वचन सो छल हैं। सांचे दूषण नाहीं ऐसे दूषणाभास सो जाति है। जाकरि परिवादीका निग्रह होय सो निग्रहस्थान है। या प्रकार संशयादि तत्त्व कहे सो ये तो कोई वस्तुस्वरूप तो तत्त्व हैं नाहीं। ज्ञानके निर्णय करने को वा वादकरि पांडित्य प्रकट करनेकों कारणभूत विचाररूप तत्त्व कहे सो इनितैं परमार्थ कार्य कहा होई? काम क्रोधादि भावकों मेटि निराकुल होना सो कार्य है। सो तो इहां प्रयोजन किछू दिखाया ही नाहीं। पंडिताई की नाना युक्ति बनाई सो यहु भी एक चातुर्य्य है, तातैं ये तत्त्व तत्त्वभूत नाहीं। बहुरि कहोगे इनिकों जानें बिना प्रयोजनभूत तत्त्वनिका

निर्णय न करि सकैं, तातैं ये तत्त्व कहे हैं। सो ऐसे परम्परा तो व्याकरण वाले भी कहे हैं। व्याकरण पढ़े अर्थ निर्णय होइ, वा भोजनादिकके अधिकारी भी कहै हैं कि भोजन किये शरीरकी स्थिरता भए तत्त्व-निर्णय करनेकों समर्थ होंय सो ऐसी युक्ति कार्यकारी नाहीं। बहुरि जो कहोगे, व्याकरण भोजनादिक तो अवश्य तत्त्वज्ञानकों कारण नाहीं, लौकिक कार्य साधनेकों भी कारण हैं, सो जैसें ये हैं, तैसें हो तुम तत्त्व कहे, सो भी लौकिक (कार्य) साधनेकों कारण हो हैं। जैसें इन्द्रियादिक के जाननेकों प्रत्यक्षादि प्रमाण कहे वा स्थाणु पुरुषादिविषें संशयादिक का निरूपण किया। तातें जिनिकों जानें अवश्य काम क्रोधादि दूरि होंय, निराकुलता निपजै, वे ही तत्त्व कार्यकारी हैं। बहुरि कहोगे, जो प्रमेय तत्त्वविषें आत्मादिकका निणय हो है सो कार्यकारी है। सो प्रमेय तो सर्व ही वस्तु हैं। प्रमितिका विषय नाहीं, ऐसा कोई भी नाहीं, तातैं प्रमेय तत्त्व काहेकों कह्या। आत्मा आदि तत्त्व कहने थे। बहुरि आत्मादिकका भी स्वरूप अन्यथा प्ररूपण किया सो पक्षपात-रहित विचार किये भासै है। जैसें आत्माके दोय भेद कहै हैं—पर-मात्मा, जीवात्मा। तहां परमात्माकों सर्वका कर्त्ता बतावें हैं। तहां ऐसा अनुमान करै हैं जो यहु जगत कर्त्ताकरि निपज्या है, जातें यहु कार्य है। जो कार्य है सो कर्त्ताकरि निपज्या है, जैसें घटादिक। सो यहु अनुमानाभास हैं। जातें ऐसा अनुमानान्तर सम्भवै है। यहु जगत सर्व कर्त्ताकरि निपज्या नाहीं जातैं याविषें कोई अकार्यरूप भी पदार्थ हैं। जो अकार्य हैं सो कर्त्ताकरि निपज्या नाहीं, जैसें सूर्य्यबिम्बादिक। जातैं अनेक पदार्थनिका समुदायरूप जगत् तिसविषें कोई पदार्थ कृत्रिम हैं सो मनुष्यादिककरि किए होय हैं, कोई अकृत्रिम हैं सो ताका कर्त्ता नाहीं। यहु प्रत्यक्षादि प्रमाणके अगोचर हैं तातें ईश्वरकों कर्त्ता मानना मिथ्या है। बहुरि जीवात्माकों प्रति शरीर भिन्न कहैं हैं सो यहु सत्य है परन्तु मुक्त भये पीछें भी भिन्न ही मानना योग्य है। विशेष पूर्वें कह्या ही है। ऐसें ही अन्य तत्त्वनिको मिथ्या प्ररूपै हैं। बहुरि प्रमाणा-

विकका भी स्वरूप अन्यथा कल्पै हैं सो जैनग्रन्थनितैं परीक्षा किये भासै है। ऐसें नैयायिकमतविषैं कहे कल्पित तत्त्व जानने।

वैशेषिकमत निराकरण

बहुरि वैशेषिकमतविषैं छह तत्त्व कहे हैं। द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य विशेष, समवाय। तहां द्रव्य नवप्रकार—पृथ्वी जल, अग्नि, पवन, आकाश, काल, दिशा, आत्मा, मन। तहां पृथ्वी जल अग्नि पवनके परमाणु भिन्न भिन्न हैं। ते परमाणु नित्य हैं। तिनकरि कार्यरूप पृथ्वी आदि हो है। सो अनित्य है। सो ऐसा कहना प्रत्यक्षादितैं विरुद्ध है। ईंधनरूप पृथ्वी आदिके परमाणु अग्निरूप होते देखिए हैं। अग्निके परमाणु राखरूप पृथ्वी होते देखिए है। जलके परमाणु मुक्ताफल (मोती) रूप पृथ्वी होते देखिए है बहुरि जो तू कहैगा, वे परमाणु जाते रहै हैं, और ही परमाणु तिनिरूप हो हैं सो प्रत्यक्षकों असत्य ठहरावै है। ऐसी कोई प्रबलयुक्ति कहै तो ऐसें ही मानें, परन्तु केवल कहे ही तो ऐसें ठहरैं नाहीं। तातैं सब परमाणुनिकी एक पुद्गलरूप मूर्तीक जाति है सो पृथ्वी आदि अनेक अवस्थारूप परिणमै है। बहुरि इन पृथ्वी आदिकका कहीं जुदा शरीर ठहरावै है, सो मिथ्या ही है। जातैं वाका कोई प्रमाण नाहीं। अर पृथ्वी आदि तो परमाणुपिंड है। इनिका शरीर अन्यत्र, ए अन्यत्र ऐसा सम्भवै नाहीं तातैं यहु मिथ्या है। बहुरि जहां पदार्थ अटकें नाहो, ऐसी जो पोलि ताकों आकाश कहै हैं। क्षण पल आदिकों काल कहै हैं। सो ए दोन्यों ही अवस्तु हैं। सत्तारूप ए पदार्थ नाहीं। पदार्थनिका क्षेत्रपरिणमनादिकका पूर्वापरविचार करनेके अर्थि इनकी कल्पना कीजिए है। बहुरि दिशा किछू हैं ही नाहीं। आकाशविषैं खंड कल्पनाकरि दिशा मानिए है। बहुरि आत्मा दोय प्रकार कहे हैं सो पूर्वें निरूपण किया ही है। बहुरि मन कोई जुदा पदार्थ नाहीं। भावमन तो ज्ञानरूप है सो आत्माका स्वरूप है। द्रव्यमन परमाणुनिका पिंड है सो शरीर अंग है। ऐसें ए द्रव्य कल्पित जानने। बहुरि गुण चोईस कहै हैं—स्पर्श, रस, गंध, वर्ण,

शब्द, संख्या, विभाग, संयोग, परिणाम, पृथक्त्व, परत्व, अपरत्व, बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, धर्म, अधर्म, प्रयत्न, संस्कार, द्वेष, स्नेह, गुरुत्व, द्रव्यत्व। सो इनिविषैं स्पर्शादिक गुण तो परमाणुनिविषैं पाइए है। परन्तु पृथ्वीको गन्धवती ही कहनी, जल को शीत स्पर्शवान ही कहना इत्यादि मिथ्या है, जातैं कोई पृथ्वी विषै गन्धकी मुख्यता न भासै है, कोई जल उष्ण देखिए है इत्यादि प्रत्यक्षादितैं विरुद्ध है। बहुरि शब्दकों आकाशका गुण कहैं सो मिथ्या है। शब्द तो भींति इत्यादिस्यों रुकै है, तातैं मूर्तीक है। आकाश अमूर्तीक सर्वव्यापी हैं। भींतिविषै आकाश रहै शब्दगुण न प्रवेशकरि सकै, यहु कैसे बनै? बहुरि संख्यादिक हैं सो वस्तुविषैं तो किछू हैं नाहीं, अन्य पदार्थ अपेक्षा अन्य पदार्थके हीनादिक जाननेकों अपने ज्ञानविषैं संख्यादिककी कल्पनाकरि विचार कीजिए है। बहुरि बुद्धि आदि हैं, सो आत्माका परिणमन है। तहां बुद्धि नाम ज्ञानका है तो आत्माका गुण है ही अर मनका नाम है तो मन तो द्रव्यनिविषैं कह्याही था, यहां गुण काहेकों कह्या। बहुरि सुखादिक हैं सो आत्मविषैं कदाचित् पाइए हैं, आत्माके लक्षणभूत तो ए गुण हैं नाहीं, अव्याप्तपनेतैं लक्षणभास हैं; बहुरि स्निग्धादि पुद्गलपरमाणुविषैं पाइए है सो स्निग्ध गुरुत्व इत्यादि तो स्पर्शन इन्द्रियकरि जानिए तातैं स्पर्शगुणविषैं गर्भित भए, जुदे काहेकों कहे। बहुरि द्रव्यगुण जलविषैं कह्या, सो ऐसें तो अग्निआदिविषैं ऊर्ध्वगमनत्व आदि पाइए है। कै तो सर्व कहने थे, कै सामान्यविषैं गर्भित करने थे। ऐसें ए गुण कहे ते भी कल्पित हैं। बहुरि कर्म पांच प्रकार कहै हैं—उत्क्षेपण, अवक्षेपण, आकुंचन, प्रसारण, गमन। सो ए तो शरीरकी चेष्टा हैं। इनिको जुदा कहनेका अर्थ कहा। बहुरि एती ही चेष्टा तो होती नाहीं, चेष्टा तो घनी ही प्रकारकी हो हैं। बहुरि जुदी ही इनको तत्त्वसंज्ञा कही; सो कै तो जुदा पदार्थ होय तो ताकों जुदा तत्त्व कहना था, कै काम क्रोधादि मेटनेकों विशेष प्रयोजनभूत होय तो तत्त्व कहना था; सो दोऊ ही

नाहीं। अर ऐसैं ही कहि देना तो पाषाणादिकको अनेक अवस्था हो हैं सो कह्या करो, किछू साध्य नाहीं। बहुरि सामान्य दोय प्रकार है—पर अपर। तहाँ पर तो सत्तारूप है, अपर द्रव्यत्वादिरूप है। बहुरि नित्य द्रव्यविषैं प्रवृत्ति जिनकी होय ते विशेष हैं। बहुरि अयुत-सिद्ध सम्बन्ध का नाम समवाय है। सो सामान्यादिक तो बहुतनिकों एक प्रकार करि वा एक वस्तुविषैं भेदकल्पना करि वा भेद कल्पना अपेक्षा सम्बन्ध माननेकरि अपने विचारहीविषैं हो है, कोई जुदे पदार्थ तो नाहीं। बहुरि इनिके जाने काम क्रोधादि मेटनेरूप विशेष प्रयोजन की भी सिद्धि नाहीं। तातैं इनको तत्त्व काहेकों कहे। अर ऐसे ही तत्त्व कहने थे तो प्रमेयत्वादि वस्तुके अनंतधर्म हैं वा सम्बन्ध आधा-रादिक कारकनिके अनेक प्रकार वस्तुविषैं सम्भवैं हैं। कै तो सर्व कहने थे, कै प्रयोजन जानि कहने थे। तातैं ए सामान्यादिक तत्त्व भी वृथा ही कहे। ऐसैं वैशेषिकनिकरि कहे कल्पित तत्त्व जानने। बहुरि वैशे-षिक दोय ही प्रमाण मानै हैं—प्रत्यक्ष, अनुमान। सो इनिका सत्य असत्यका निर्णय जैनन्यायग्रंथनितैं* जानना।

बहुरि नैयायिक तो कहै हैं—विषय, इन्द्रिय, बुद्धि, शरीर, सुख, दुःख इनिका अभावतैं आत्माकी स्थिति सो मुक्ति है। अर वैशेषिक कहै हैं—चौईस गुणनिविषैं बुद्धि आदि नवगुण तिनका अभाव सो मुक्ति है। सो इहाँ बुद्धिका अभाव कह्या सो बुद्धि नाम ज्ञानका है तो ज्ञानका अधिकरणपना आत्माका लक्षण कह्या था, अब इनका अभाव भए लक्षणका अभाव होतैं लक्ष्यका भी अभाव होय, तब आत्माकी स्थिति कैसैं रही। अर जो बुद्धि नाम मनका है तो भावमन तो ज्ञानरूप है सो द्रव्यमन शरीर है सो मुक्त भए द्रव्यमनका सम्बन्ध छूटै ही सो द्रव्य-मन जड़ ताका नाम बुद्धि कैसैं होय? बहुरि मनवत्

* देवागम, युक्त्यानुशासन, अष्टसहस्री, न्यायविनिश्चय, सिद्धिविनिश्चय, प्रमाणसंग्रह, तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक, राजवार्तिक, प्रमेयकमलमार्तण्ड और न्याय कुमुदचन्द्रादि दार्शनिक ग्रन्थों से जानना चाहिये।

हो इन्द्रिय जानने। बहुरि विषयका अभावहोय सो स्पर्शादि विषयनिका जानना मिटै है तो ज्ञान काहेका नाम ठहरेगा। अर तिनि विषयनिका ही अभाव होयगा तो लोकका अभाव होयगा। बहुरि सुखका अभाव कह्या सो सुखहीके अर्थ उपाय कीजिए है, ताका जहां अभाव होय सो उपादेय कैसें होय। बहुरि जो आकुलतामय इन्द्रियजनित सुखका तहाँ अभाव भया कहैं तो यहु सत्य है। अर निराकुलता लक्षण अतीन्द्रियसुख तो तहां सम्पूर्ण सम्भवै है तातैं सुखका अभाव नाहीं। बहुरि शरीर दुःख द्वेषादिकका तहाँ अभाव कहैं सो सत्य ही हो है।

बहुरि शिवमतविषैं कर्त्ता निर्गुण ईश्वर शिव है ताकौं देव मानै हैं। सो याके स्वरूपका अन्यथापना पूर्वोक्त प्रकार जानना। बहुरि यहाँ भस्मी, कोपीन, जटा, जनेऊ इत्यादि चिन्हसहित भेष हो हैं सो आचारादि भेदतैं च्यारि प्रकार हैं—शैव, पाशुपत, महाव्रती, कालमुख। सो ए रागादि सहित हैं तातैं सुलिंग नाहीं। ऐसैं शिवमत का निरूपण किया।

मीमांसकमत निराकरण

अब मीमांसक मतका स्वरूप कहिए हैं। मीमांसक दोय प्रकार हैं—ब्रह्मवादी, कर्मवादी। तहां ब्रह्मवादी तो सर्व यहु ब्रह्म है, दूसरा कोई नाहीं ऐसा वेदान्तविषैं अद्वैत ब्रह्मकौं निरूपै हैं। बहुरि आत्माविषै लय होना सो मुक्ति कहै हैं। सो इनिका मिथ्यापना पूर्वै दिखाया है सो विचारना। बहुरि कर्मवादी क्रिया आचार यज्ञादिक कार्यनिका कर्तव्यपना प्ररूपै हैं सो इन क्रियानिविषैं रागादिकका सद्भाव पाइए है, तातैं ए कार्य किछू कार्यकारी हैं नाहीं। तहां 'भट्ट' अर 'प्रभाकर' करि करी हुई दोय पद्धति हैं। तहाँ भट्ट तो छह प्रमाण मानै हैं—प्रत्यक्ष, अनुमान, वेद, उपमा, अर्थापत्ति अभाव। बहुरि प्रभाकर अभाव बिना पांच प्रमाण मानैं हैं। सो इनिका सत्यासत्यपना जैन-

शास्त्रनितैं जानना। बहुरि तहां षट्कर्मसहित ब्रह्मसूत्रके धारक शूद्रका अन्नादिके त्यागि ते ग्रहस्थाश्रम है नाम जिनिका ऐसे भट्ट हैं। बहुरि वेदान्तविषै यज्ञोपवीतरहित विप्र अन्नादिकके ग्राही, भगवत् है नाम जिनका ऐसे च्यारि प्रकार के हैं—कुटीचर, बहूदक, हंस, परमहंस। सो ए किछू त्यागकरि सन्तुष्ट भए हैं परन्तु ज्ञान श्रद्धानका मिथ्यापना अर रागादिकका सद्भाव इनकैं पाइए है। तातैं ए भेष कार्यकारी नाहीं।

जैमिनीयमत निराकरण

बहुरि यहां ही जैमिनीयमत सम्भवै है, सो ऐसें कहैं हैं—

सर्वयज्ञदेव कोई है नाहीं। नित्य वेद वचन हैं, तिनितैं यथार्थ निर्णय हो है। तातैं पहले वेदपाठकरि क्रियाप्रति प्रवर्त्तना सो तो नोदना (प्रेरणा) सोई है लक्षण जाका ऐसा धर्म, ताका साधन करना। जैसें कहैं हैं "स्वःकामोऽग्निं यजेत्" स्वर्ग अभिलाषी अग्निकों पूजै, इत्यादि निरूपण करैं है।

यहां पूछिए है—शैव, सांख्य, नैयायिकादिक सब ही वेदकों मानैं हैं, तुम भी मानो हो। तुम्हारे वा उन सबनिकं तत्त्वादि निरूपणविषै परस्पर विरुद्धता पाईए है सो है कहा? जो वेदही विषै कहीं किछू कहीं किछू निरूपण किया है, तो वाकी प्रमाणता कैसें रही? अर जो मतवाले ही कहीं किछू कहीं किछू निरूपण करैं हैं तो तुम परस्पर झगरि निर्णय करि एककों वेदका अनुसारी अन्यकों वेदतैं पराङ्मुख ठहरावो। सो हमकों तो यहु भासै है, वेदहीविषैं पूर्वापर विरुद्धता लिए निरूपण है। तिसतैं ताका अपनी अपनी इच्छानुसारि अर्थ ग्रहण करि जुदे जुदे मतके अधिकारी भए हैं। सो ऐसे वेदकों प्रमाण कैसें कीजिए है। बहुरि अग्नि पूजें स्वर्ग होय, सो अग्नि मनुष्यतैं उत्तम कैसें मानिए? प्रत्यक्षविरुद्ध है। बहुरि वह स्वर्गदाता कैसें होय। ऐसें ही अन्य वेदवचन प्रमाण विरुद्ध हैं। बहुरि वेदविषैं ब्रह्मा कह्या है,

सर्वज्ञ कैसे न मानें हैं। इत्यादि प्रकारकरि जैमिनीयमत कल्पित जानना।

बौद्धमत निराकरण

अब बौद्ध मत का स्वरूप कहिए है—

बौद्धमतविषैं च्यारिआर्यसत्य+ प्ररूपै हैं। दु:ख, आयतन, समुदय मार्ग। तहाँ संसारीकै स्कंधरूप सो दु:ख है। सो पांच प्रकार× है—विज्ञान, वेदना, संज्ञा, संस्कार, रूप। तहां रूपादिकका जानना सो विज्ञान है, सुख दु:खका अनुभव सो वेदना है, सूताका जागना सो संज्ञा है, पढ़्या था सो याद करना संस्कार है, रूपका धारना सो रूप है*। सो यहाँ विज्ञानादिकों दु:ख कह्या सो मिथ्या है। दु:ख तो काम क्रोधादिक हैं। ज्ञान दु:ख नाहीं। यह तो प्रत्यक्ष देखिए है। काहू कै ज्ञान थोरा है अर क्रोध लोभादिक बहुत है सो दु:खी हैं। काहूकै ज्ञान बहुत है, काम क्रोधादिक स्तोक हैं वा नाहीं हैं सो सुखी है। तातैं विज्ञानादिक दु:ख नाहीं हैं। बहुरि आयतन बारह कहे हैं। पाँच तो इंद्रिय अर तिनिके शब्दादिक पाँच विषय अर एक मन, एक धर्मायतन। सो ये आयतन किस अर्थि कहे। क्षणिक सबकों कहैं, इनिका कहा प्रयोजन है? बहुरि जातैं रागादिक गण निपजै ऐसा आत्मा अर आत्मीय है नाम जाका सो समुदाय है। तहाँ अहंरूप

\+ दु:खमायतनं चैव ततः समुदयो मतः।
मार्गश्चेत्यस्य च व्याख्या क्रमेण श्रूयतामतः ॥३६॥

× दु:खं संसारिणः स्कन्धास्ते च पञ्चप्रकीर्तिताः।
विज्ञानं वेदना संज्ञा संस्कारोरूपमेव च ॥३७॥—वि० वि०

* रूपं पंचेन्द्रियाण्यर्थाः पंचाविज्ञाप्तिरेव च।
तद्विज्ञानाश्रया रूपप्रसादाश्चक्षुरादयाः ॥७॥
वेदनानुभवः संज्ञा निमित्तोद्ग्रहणात्मिका।
संस्कारस्कन्धश्चतुर्भ्योऽन्ये संस्कारास्ते इमे त्रयः ॥१४॥
विज्ञानं प्रति:विज्ञप्ति...।

आत्मा अर ममरूप आत्मीय जानना, सो क्षणिक मानें इनिका भी कहनेका किछू प्रयोजन नाहीं। बहुरि सर्व संस्कार क्षणिक हैं, ऐसी वासना सो मार्ग है सो प्रत्यक्ष बहुत काल स्थायी केई वस्तु अवलोकिए हैं। तू कहैगा एक अवस्था न रहै है तो यहु हम भी मानें हैं। सूक्ष्म-पर्याय क्षणस्थायी है। बहुरि तिस वस्तु ही का नाश मानें, यहु तो होता न दीसै है, हम कैसें मानें? बहुरि बाल वृद्धादि अवस्थाविषें एक आत्मा का अस्तित्व भासै है। जो एक नाहीं है तो पूर्व उत्तर कार्यका एक कर्त्ता कैसें मानै है। जो तू कहैगा संस्कारतें है तो संस्कार कौनकै हैं। जाके सो नित्य है कि क्षणिक है। नित्य है तो सर्व क्षणिक कैसें कहै है। क्षणिक है तो जाका आधार ही क्षणिक तिस संस्कारकी परम्परा कैसें कहै। बहुरि सर्व क्षणिक भया तब आप भी क्षणिक भया। तू ऐसी वासनाकों मार्ग कहै है सो इस मार्गका फलकों आप तो पावै ही नाहीं, काहेकों इस मार्ग विषें प्रवर्तै। बहुरि तेरे मत विषें निरर्थक शास्त्र काहेकों किए। उपदेश तो किछू कर्त्तव्यकरि फल पावै तिसके अर्थ दीजिए है। ऐसें यहु मार्ग मिथ्या है। बहुरि रागादिक ज्ञानसन्तान वासनाका उच्छेद जो निरोध, ताकों मोक्ष कहै है। सो क्षणिक भया तब मोक्ष कौनकै कहै है। अर रागादिकका अभाव होना तो हम भी मानै हैं। अर ज्ञानादिक अपने स्वरूपका अभाव भए तो आपका अभाव होय ताका उपाय करना कैसें हितकारी होय। हिताहितका विचार करनेवाला तो ज्ञान ही है। सो आपका अभावकों ज्ञान हित कैसे मानैं। बहुरि बौद्ध मतविषें दोय प्रमाण मानै हैं—प्रत्यक्ष, अनुमान। सो इनिके सत्यासत्यका निरूपण जैनशास्त्रनितैं जानना। बहुरि जो ए दोय ही प्रमाण हैं, तो इनिके शास्त्र अप्रमाण भए, तिनका निरूपण किस अर्थि किया। प्रत्यक्ष अनुमान तो जीव आप ही करि लेंगे, तुम शास्त्र काहेकों किए। बहुरि तहाँ सुगतकों देव मानै है सो ताका स्वरूप नग्न वा विक्रियारूप स्थापैं हैं सो विडम्बना-रूप है। बहुरि कमंडल रक्तांबर के धारी पूर्वान्ह विषें भोजन करें

इत्यादि लिंगरूप बौद्धमतके भिक्षुकों भेष धरनेंका कहा प्रयोजन ? परन्तु महंतताके अर्थि कल्पित निरूपण करना अर भेष धरना हो है। ऐसें बौद्ध हैं ते च्यारि प्रकार हैं—वैभाषिक, सौत्रांतिक, योगाचार, मध्यम। तहाँ वैभाषिक तो ज्ञानसहित पदार्थकों मानै हैं। सौत्रांतिक प्रत्यक्ष यहु देखिए है सोई है, परै किछू नाहीं ऐसा मानै हैं। योगाचार-निकै आचारसहित बुद्धि पाईए है। मध्यम हैं ते पदार्थका आश्रय बिना ज्ञानहीकों मानै हैं। सो अपनी कल्पना करै हैं। विचार किए किछू ठिकानाकी बात नाहीं। ऐसें बौद्धमतका निरूपण किया।

चार्वाकमत निराकरण

अब चार्वाकमतका स्वरूप कहिये हैं—

कोई सर्वज्ञदेव धर्म अधर्म मोक्ष है नाहीं वा पुण्य पाप का फल है नाहीं वा परलोक नाहीं, यह इन्द्रियगोचर जितना है सो हो लोक है; ऐसें चार्वाक कहै हैं सो तहाँ वाकों पूछिए है—सर्वज्ञ देव इस कालक्षेत्र विषैं नाहीं कि सर्वदा सर्वत्र नाहीं। इस कालक्षेत्रविषैं तो हम भी नाहीं मानै हैं। अर सर्वकालक्षेत्रविषैं नाहीं ऐसा सर्वज्ञ बिना जानना किसकै भया। जो सर्व क्षेत्रकालकी जानै सो ही सर्वज्ञ अर न जानै है तो निषेध कैसें करै है। बहुरि धर्म अधर्म लोक विषैं प्रसिद्ध हैं। जो ए कल्पित होय तो सर्वजन सुप्रसिद्ध कैसें होय। बहुरि धर्म अधर्मरूप परणति होती देखिए है, ताकरि वर्तमान ही में सुखी दुःखी हो हैं। इनिकों कैसें न मानिए। अर मोक्षका होना अनुमानविषैं आवै है। क्रोधादि दोष काहूकै हीन हैं, काहूकै अधिक हैं तो जानिए है काहूकै इनिको नास्ति भी होती होसी। अर ज्ञानादि गुण काहूकै हीन काहूकै अधिक भासै हैं, तातैं जानिए है काहूके सम्पूर्ण भी होते होसी। ऐसें जाकै समस्तदोष की हानि गुणनिकी प्राप्ति होय सोई मोक्ष अवस्था है। बहुरि पुण्य पाप का फल भी देखिए है। कोऊ उद्यम करै तो भी दरिद्री रहै, कोऊकै स्वयमेव लक्ष्मी होय। कोऊ शरीरका यत्न करै तो भी रोगी रहै, काहूके बिना ही यत्न निरोगता रहै। इत्यादि प्रत्यक्ष देखिए है

सो वाका कारण कोई तो होगा। जो याका कारण सोई पुण्य पाप है। बहुरि परलोकभी प्रत्यक्ष अनुमानतैं भासै है। व्यन्तरादिक हैं ते अवलोकिए हैं। मैं अमुक था सो देव भया हूं। बहुरि तू कहैगा यहु तो पवन है सो हम तो 'मैं हूं' इत्यादि चेतनाभाव जाकै आश्रय पाईए ताहीकों आत्मा कहै हैं सो तू वाका नाम पवन कहिए परन्तु पवन तो भींति आदिकरि अटकै है, आत्मा मूंद्या (बन्द) हुआ भी अटकै नाहीं, तातैं पवन कैसें मानिए है। बहुरि जितना इन्द्रियगोचर है तितना ही लोक कहै। सो तेरी इन्द्रियगोचर तो थोरेसे भी योजन दूरिवर्ती क्षेत्र अर थोरासा अतीत अनागत काल ऐसा क्षेत्र कालवर्ती भी पदार्थ नाहीं होय सकै। अर दूरि देशकी वा बहुतकालकी बातें परम्परातैं सुनिए ही हैं, तातैं सबका जानना तेरै नाहीं, तू इतना ही लोक कैसें कहै है?

बहुरि चार्वाकमतविषैं कहै हैं कि पृथ्वी, अप, तेज, वायु, आकाश मिलें चेतना होय आवै है। सो मरते पृथ्वी आदि यहां रही। चेतनावान् पदार्थ गया सो व्यन्तरादि भया, प्रत्यक्ष जुदे जुदे देखिए है। बहुरि एक शरीरविषैं पृथ्वी आदि तो भिन्न भासै है, चेतना एक भासै है। जो पृथ्वी आदि के आधार चेतना होय तो हाड़ लोहूउस्वासादिककै जुदी जुदी चेतना होय। बहुरि हस्तादिक काटें जैसें वाकी साथि वर्णादिक रहैं तैसें चेतना भी रहै है। बहुरि अहंकार, बुद्धि तो चेतनाके है सो पृथ्वी आदि रूप शरीर तो यहाँ ही रह्या, व्यन्तरादि पर्यायविषैं पूर्वपर्याय का अहंपना मानना देखिए है सो कैसें हो है। बहुरि पूर्वपर्यायके गुह्य समाचार प्रगट करै सो यहु जानना किसकी साथि गया, जाकी साथि जानना गया सोई आत्मा है।

बहुरि चार्वाकमतविषैं खाना पीना भोग विलास करना इत्यादि स्वच्छन्द वृत्तिका उपदेश है सो ऐसें तो जगत् स्वयमेव ही प्रवर्ते हैं। तहां शास्त्रादि बनाय कहा भला होनेका उपदेश दिया। बहुरि तू कहैगा, तपश्चरण शील संयमादि छुड़ावनेके अर्थि उपदेश दिया तो इनि कार्यनि विषैं तो कषाय घटनेतैं आकुलता घटै है तातैं यहाँ ही

दुखी होना हो है, बहुरि यश आदि हो है, तू इनिको छुड़ाय कहा भला करै है। विषयासक्त जीवनिको सुहावती बातें कहि अपना वा और-निका बुरा करने का भय नाहीं, स्वच्छन्द होय विषय सेवन के अर्थि ऐसी झूठी युक्ति बनावै है। ऐसें चार्वाकमतका निरूपण किया।

अन्य मत निराकरण उपसंहार

इस ही प्रकार अन्य अनेक मत हैं ते झूठी कल्पित युक्ति बनाय विषय-कषायासक्त पापी जीवनिकरि प्रगट किए हैं। तिनिका श्रद्धा-नादिकरि जीवनिका बुरा हो है। बहुरि एक जिनमत है सो ही सत्यार्थ का प्ररूपक है, सर्वज्ञ वीतरागदेवकरि भाषित है। तिसका श्रद्धानादिक करि ही जीवनिका भला हो है। सो जिनमतविषै जीवादि तत्त्व निरूपण किए हैं। प्रत्यक्ष परोक्ष दोय प्रमाण कहे हैं। सर्वज्ञ वीतराग अर्हंत देव हैं। बाह्य अभ्यन्तर परिग्रह रहित निर्ग्रंथ गुरु हैं। सो इनिका वर्णन इस ग्रन्थविषै आगे विशेष लिखेंगे सो जानना।

यहां कोऊ कहै—तुम्हारे राग-द्वेष है, तातैं तुम अन्यमतका निषेध करि अपने मतकों स्थापो हो, ताकों कहिए हैं—

यथार्थ वस्तु के प्ररूपण करनेविषै राग-द्वेष नाहीं। किछू अपना प्रयोजन विचारि अन्यथा प्ररूपण करै तो रागद्वेष नाम पावै।

बहुरि वह कहै है—जो रागद्वेष नाहीं है तो अन्यमत बुरे जैन मत भला ऐसा कैसें कहो हो। साम्यभाव होय तो सर्वकों समान जानों, मतपक्ष काहेकों करो हो।

याकों कहिए—बुराकों बुरा कहैं हैं, भलाकों भला कहै हैं, यामें रागद्वेष कहा किया? बहुरि बुरा भलाकों समान जानना तो अज्ञान-भाव है, साम्यभाव नाहीं।

बहुरि वह कहै है—जो सर्वमतनिका प्रयोजन तो एक ही है तातैं सर्वकों समान जानना।

ताकों कहिए है—जो प्रयोजन एक होय तो नानामत काहेकों कहिये। एक मतविषैं तो एक प्रयोजन लिए अनेक अनेक प्रकार

व्याख्यान हो है, ताको जुदा मत कौन कहै। परन्तु प्रयोजन ही भिन्न भिन्न है, सो दिखाइये है—

अन्य मतों से जैन मतकी तुलना

जैनमतविषैं एक वीतरागभाव पोषने का प्रयोजन है सो कथानिविषैं वा लोकादिका निरूपण विषैं वा आचरणविषैं वा तत्त्वनिविषैं जहां तहां वीतरागकी ही पुष्टता करी है। बहुरि अन्य मतनिविषैं सरागभाव पोषने का प्रयोजन है। जातैं कल्पित रचना कषायी जीव ही करैं सो अनेक युक्ति बनाय कषायभाव ही को पोषैं। जैसे अद्वैत ब्रह्मवादी सर्वको ब्रह्म माननेंकरि अर सांख्यमतो सर्व कार्य प्रकृतिका मानि आपकों शुद्ध अकर्त्ता माननेंकरि अर शिवमती तत्व जाननेहीतैं सिद्धि होनी माननेंकरि, मोमांसक कषायजनित आचरणकों धर्म माननेंकरि, बौद्ध क्षणिक माननेंकरि, चार्वाक परलोकादि न माननेंकरि विषयभोगादिरूप कषायकार्यनिविषैं स्वच्छन्द होना ही पोषैं हैं। यद्यपि कोई ठिकानें कोई कषाय घटावनेका भी निरूपण करैं तो उस छलकरि अन्य कोई कषायका पोषण करैं हैं। जैसे गृह कार्य छोड़ि परमेश्वरका भजन करना ठहराया अर परमेश्वरका स्वरूप सरागी ठहराय उनके आश्रय अपने विषय कषाय पोषैं। बहुरि जैन धर्मविषैं देव गुरु धर्मादिकका स्वरूप वीतराग ही निरूपणकरि केवल वीतराग ताहीकों पोषैं हैं सो यहु प्रगट है। हम कहा कहैं, अन्यमति भर्त्तृहरि ताहूने वैराग्यप्रकरण विषै* कह्या है—

---

* रागी पुरुषों में तो एक महःदेव शोभित होता है, जिसने अपनी प्रियतमा पार्वतीको आधे शरीर में धारण कर रक्खा है और वीतरागियोंमें जिनदेव शोभित होते हैं, जिनके समान स्त्रियोंका संग छोड़नेवाला दूसरा कोई नहीं है। शेष लोग तो दुर्निवार कामदेवके बाणरूप सर्पोंके विषसे मूर्च्छितहुए हैं जो कामकी विडम्बना से न तो विषयों को भली भ,ति भोग ही सकते और न छोड़ ही सकते हैं।

एको रागिषु राजते प्रियतमादेहार्द्धधारी हरो,
नीरोगेसु जिनो विमुक्तललनासङ्गो न यस्मात्परः ।
दुर्वारस्मरबाणपन्नगविषव्यासक्तमुग्धो जनः,
शेषः कामविडंबितो हि विषयान् भोक्तुं न मोक्तुं क्षमः ।१।

या विषैं सरागादीनिविषैं महादेवकों प्रधान कह्या अर वीतरागीनिविषैं जिनदेवकों प्रधान कह्या है। बहुरि सरागभाव वीतरागभावनिविषैं परस्पर प्रतिपक्षीपना है सो ये दोऊ भले नाही। इनविषैं एक ही हितकारी है सो वीतराग भाव ही हितकारी है, जाके होतें तत्काल आकुलता मिटैं, स्तुति योग्य होय। आगामी भला होना सब कहैं। सरागभाव होते तत्काल आकुलता होय निंदनीय होय, आगामी बुरा होना भासै तातैं जामें वीतरागभावका प्रयोजन ऐसा जैनमत सो ही इष्ट है। जिनमें सरागभावके प्रयोजन प्रगट किए हैं ऐसे अन्य मत अनिष्ट हैं। इनिकों समान कैसें मानिए। बहुरि वह कहै है—जो यहु तो सांच परन्तु अन्यमतकी निन्दा किए अन्यमती दुःख पावैं, विरोध उपजै, तातैं काहैंकों निन्दा करिए। तहाँ कहिए है—जो हम कषायकरि निन्दा करें वा औरनिको दुःख उपजावें तो हम पापी ही हैं। अन्यमतके श्रद्धानादिककरि जीवनिकैं अतत्व श्रद्धान दृढ़ होय, तातैं संसारविषैं जीव दुःखी होय, तातैं करुणा भावकरि यथार्थ निरूपण किया है। कोई बिनादोष दुःख पावै, विरोध उपजावै तो हम कहा करें। जैसे मदिराकी निन्दाकरतें कलाल दुःख पावै, कुशीलकी निन्दा करतें वेश्यादिक दुःख पावै, खोटा खरा पहचाननेकी परीक्षा बतावतें ठग दुःख पावैं तो कहा करिए। ऐसें जो पापीनिके भयकरि धर्मोपदेश न दीजिए तो जीवनिका भला कैसें होय ? ऐसा तो कोई उपदेश नाहीं, जाकरि सर्व ही चैन पावें। बहुरि वह विरोध उपजावै सो विरोध तो परस्पर हो है। हम लरें नाहीं, वे आप ही उपशांत होय जांयगे। हमकों तो हमारे परिणामों का फल होगा।

बहुरि कोऊ कहै—प्रयोजनभूत जीवादिक तत्वनिका अन्यथा श्रद्धान किए मिथ्यादर्शनादिक हो है, अन्यमतनिका श्रद्धान किए कैसें मिथ्यादर्शनादिक होय ?

ताका समाधान—अन्यमतनिविषें विपरीत युक्ति बनाय जीवादिक तत्वनिका स्वरूप यथार्थ न भासै यहु ही उपाय किया है सो किस अर्थि किया है। जीवादिक तत्वनिका यथार्थ स्वरूप भासै तौ वीतरागभाव भए ही महंतपनो भासै। बहुरि जे जीव वीतरागी नाहीं अर अपनी महंतता चाहैं, तिनि सरागभाव होतें महन्तता बनावनेके अर्थि कल्पित युक्तिकर अन्यथा निरूपण किया है। सो अद्वैतब्रह्मादिकका निरूपण करि जीव अजीवका अर स्वच्छन्दवृत्ति पोषनेकरि आस्रव संवरादिकका अर सकषायीवत् वा अचेतनवत् मोक्षकहनेकरि मोक्षका अयथार्थ श्रद्धानकों पोषै हैं। तातैं अन्यमतनिका अन्यथापना प्रगट किया है। इनिका अन्यथापना भासै तो तत्वश्रद्धानविषै रुचिवन्त होय, उनको युक्तिकर भ्रम न उपजै। ऐसे अन्य मतनिका निरूपण किया।

अन्यमत के ग्रंथोद्धरणोंसे जैनधर्मकी प्राचीनता और समीचीनता

अब अन्यमतनिके शास्त्रनिकोही साखिकरि जिनमतकी समीचीनता वा प्राचीनता प्रगट कीजिए है—

बड़ा योगवाशिष्ट छत्तीस हजार श्लोक प्रमाण ताका प्रथम वैराग्यप्रकरण तहां अहंकार निषेध अध्यायविषें वशिष्ट अर रामका संवादविषें ऐसा कह्या है—

रामोवाच—

"नाहं रामो न मे वांछा भावेषु च न मे मनः।
शांतिमास्थातुमिच्छामि स्वात्मान्येव जिनो यथा※।१।"

※ अर्थात् मैं राम नहीं हूं, मेरी कुछ इच्छा नहीं है और भावों वा पदार्थों में मेरा मन नहीं है। मैं तो जिनदेवके समान अपनी आत्मामें ही शान्ति स्थापना करना चाहता हूं।

या विषैं रामची जिनसमान होनेकी इच्छा करी तातैं रामजीतैं जिनदेवका उत्तमपना प्रगट भया अर प्राचीनपना प्रगट भया। बहुरि 'दक्षिणामूर्ति—सहस्रनाम' विषैं कह्या है—

शिवोवाच—

"जैनमार्गरतो जैनो जितक्रोधो जितामयः।"

यहां भगवत का नाम जैनमार्गविषैं रत अर जैन कह्या, सो यामें जैनमार्गको प्रधानता व प्राचीनता प्रगट भई। बहुरि 'वैशम्पायन-सहस्रनाम' विषैं कह्या है—

"कालनेमिर्म्महा वीरः शूरः शौरिजिनेश्वरः।"

यहां भगवान्‌का नाम जिनेश्वर कह्या, तातैं जिनेश्वर भगवान हैं। बहुरि दुर्व्वासाऋषिकृत 'महिम्नस्तोत्र' विषै ऐसा कह्या है—

तत्तद्दर्शनमुख्यशक्तिरिति च त्वं ब्रह्मकर्मेश्वरी।
कर्त्तार्हन् पुरुषो हरिश्च सविता बुद्धःशिवस्त्वं गुरुः ॥१॥

यहां 'अरहंत तुमहो' ऐसैं भगवंत की स्तुति करी, तातैं अरहंतकै भगवंतपनो प्रगट भयो। बहुरि हनुमन्नाटकविषैं ऐसा कह्या है—

"यं शैवाः समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनः
बौद्धा बुद्ध इति प्रमाणपटवः कर्त्तेति नैयायिकाः।
अर्हन्नित्यथ जैनशासनरतः कर्मेति मीमांसकाः
सोऽयं वो विदधातु वांछित फलं त्रैलोक्यनाथःप्रभुः* ॥१॥

यहां छहों मतनिविषैं एक ईश्वर कह्या तहां अरहंतदेवकै भी ईश्वरपना प्रगट किया।

---

* यह हनुमन्नाटकके मंगलाचरणका तीसरा श्लोक है। इसमें बताया है कि जिसको शैव लोग शिव कहकर, वेदान्ती ब्रह्म कहकर, बौद्ध बुद्धदेव कहकर, नैयायिक कर्त्ता कहकर, जैनी अर्हन् कहकर और मीमांसक कर्म कहकर उपासना करते हैं, वह त्रैलोक्यनाथ प्रभु तुम्हारे मनोरथको सफल करें।

यहां कोऊ कहै, जैसें यहां सर्वमतविषै एक ईश्वर कह्या तैसें तुम भी मानो।

ताकों कहिए है—तुमने यह कह्या है, हम तो न कह्या। तातें तुम्हारे मतविषैं अरहंतकैं ईश्वरपना सिद्ध भया। हमारे मतविषैं भी ऐसें ही कहैं तो हम भी शिवादिककों ईश्वर मानें। जैसें कोई व्यापारी सांचा रत्न दिखावै, कोई झूंठा रत्न दिखावै। तहां झूठा रत्नवाला तो रत्ननिको समान मोल लेने के अर्थि समान कहै। सांचा रत्नवाला कैसें समान मानै ? तैसें जैनी सांचा देवादिकों निरूपै, अन्यमती झूठा निरूपै। तहां अन्यमती अपनी समान महिमाके अर्थि सर्वकों समान कहैं—जैनी कैसे मानें ? बहुरि 'रुद्रयामलतंत्र' विषैं भवानीसहस्रनाम-विषैं ऐसें कह्या है—

"कुण्डासना जगद्धात्री बुद्धमाता जिनेश्वरी।
जिनमाला जिनेन्द्रा च शारदा हंसवाहिनी ॥१॥"

यहां भवानीके नाम जिनेश्वरी इत्यादि कहे, तातें जिनका उत्तमपना प्रकट किया। बहुरि 'गणेशपुराण विषैं ऐसें कह्या है—

"जैनं पशुपतं सांख्यं"

बहुरि व्यासकृत सूत्रविषैं ऐसा कह्या है—

'जैना एकस्मिन्नेव वस्तुनि उभयं प्ररूपयन्ति स्याद्वादिनः।'*

इत्यादि तिनिके शास्त्रनिविषैं जैन निरूपण है, तातें जैनमतका प्राचीनपना भासै है। बहुरि भागवत पंचमस्कन्धादिविषैं ऋषभावतार का वर्णन❀ है। तहां यहु करुणामय, तृष्णादिरहित ध्यानमुद्राधारी सर्वाश्रम करि पूजित कह्या है, ताके अनुसारि अरहंत राजा प्रवृत्ति करी ऐसा कहैं हैं। सो जैसे राम कृष्णादि अवतारनिके अनुसारि अन्यमत तैसें ऋषभावतारके अनुसारि जैनमत, ऐसें तुम्हारे मतहीकरि

---

* प्ररूपयन्ति 'स्याद्वादिनः इति खरडा प्रती पाठः।

❀ भागवत स्कंध ५ अ० ५, २९

जैन प्रमाण भया। यहाँ इतना विचार और किया चाहिए—कृष्णादि अवतारनिके अनुसारि विषयकषायनिकी प्रवृत्ति हो है। ऋषभावतारके अनुसारि वीतराग साम्यभावकी प्रवृत्ति हो है। यहाँ दोऊ प्रवृत्ति समान माने धर्म अधर्मका विशेष न रहै अर विशेष माने भली होय सो अंगीकार करनी। बहुरि दशावतारचरित्र विषै—"बद्ध्वा पद्मासनं यो नयनयुगमिदं न्यस्तनासाग्रदेशे" इत्यादि बुद्धावतारका स्वरूप अरहंत देव सारिखा लिख्या है, सो ऐसा स्वरूप पूज्य है तो अरहंतदेव पूज्य सहज ही भया।

बहुरि काशीखंडविषैं देवदास राजाने सम्बोधि राज्य छुड़ायो। तहां नारायण तो विनयकीर्ति यती भया लक्ष्मीकों विनयश्री आर्यिका करी, गरुड़कों श्रावक किया, ऐसा कथन है। सो जहां सम्बोधन करना भया तहाँ जैनी भेष बनाया। तातैं जैन हितकारी प्राचीन प्रतिभासै है। बहुरि 'प्रभासपुराण' विषै ऐसा कह्या है—

भवस्य पश्चिमे भागे वामनेन तपःकृतम्।
तेनैव तपसाकृष्टः शिवः प्रत्यक्षतां गतः ॥१॥

"पद्मासनसमासीनः श्याममूर्तिर्दिगम्बरः।
नेमिनाथः शिवेत्येवं नाम चक्रेऽस्य वामनः ॥२॥
कलिकाले महाघोरे सर्वं पापप्रणाशकः।
दर्शनात्स्पर्शनादेव कोटियज्ञ फलप्रदः ॥३॥"

यहाँ वामनकों पद्मासन दिगम्बर नेमिनाथका दर्शन भया कह्या। वाहीका नाम शिव कह्या। बहुरि ताके दर्शनादिकतैं कोटी-यज्ञका फल कह्या सो नेमिनाथका स्वरूप तो जैनी प्रत्यक्ष मानै हैं, सो प्रमाण ठहरया। बहुरि प्रभासपुराणविषैं कह्या है—

"रैवताद्रौ जिनो नेमिर्युगादिर्विमलाचले।
ऋषीणामाश्रमादेव मुक्तिमार्गस्य कारणम् ॥१॥"

यहां नेमिनाथकों जिनसंज्ञा कही, ताके स्थानकों ऋषिका आश्रम मुक्तिका कारण कह्या अर युगादिके स्थानकों भी ऐसाही कह्या, तातें उत्तम पूज्य ठहरे। बहुरि 'नगरपुराण' विषें भवावतार-रहस्यविषें ऐसा कह्या है—

"अकारादिहकारान्तमूर्द्धाधोरेफसंयुतम्।
नादबिन्दुकलाक्रान्तं चन्द्रमण्डलसन्निभम्॥१॥
एतद्देवि परं तत्त्वं यो विजानातितत्त्वतः।
संसारबन्धनं छित्वा स गच्छेत्परमां गतिम्॥२॥

यहां 'अर्हं' ऐसे पदको परमतत्त्व कह्या। याके जाने परमगतिकी प्राप्ति कही सो 'अर्हं' पद जैनमत उक्त है। बहुरि नगरपुराणविषें कह्या है—

"दशभिर्भोजितैर्विप्रैः यत्फलं जायते कृते।
मुनेरर्हत्सुभक्तस्य तत्फलं जायते कलौ॥१॥"

यहां कृतयुगविषें दश ब्राह्मणों कों भोजन कराएका जेता फल कह्या, तेता फल कलियुगविषें अर्हंतभक्तमुनिके भोजन कराएका कह्या तातैं जैनीमुनि उत्तम ठहरे। बहुरि 'मनुस्मृति' विषें ऐसा कह्या है—

"कुलादिबीजं सर्वेषां प्रथमो विमलवाहनः।
चक्षुष्मान् यशस्वी चाभिचन्द्रोऽथ प्रसेनजित॥१॥
मरुदेवी च नाभिश्च भरते कुल सत्तमाः।
अष्टमो मरुदेव्यां तु नाभेर्जात उरक्रमः॥२॥
दर्शयन् वर्त्म वीराणां सुरासुर नमस्कृत.।
नीतित्रितयकर्त्ता यो युगादौ प्रथमो जिनः॥३॥"

यहां विमलवाहनादिक मनु कहे, सो जैनविषें कुलकरनिके नाम कहे हैं अर यहां प्रथमजिन युगकी आदिविषें मार्गका दर्शक अर सुरासुरकरि पूजित कह्या, सो ऐसें ही है तो जैनमत युगकी आदिहीतें है अर प्रमाणभूत कैसें न कहिए। बहुरि ऋग्वेदविषें ऐसा कह्या है—

"ॐ त्रैलोक्य प्रतिष्ठितान् चतुर्विंशतितीर्थंकरान् ऋषभाद्यान् वर्द्धमानान्तान् सिद्धान् शरणं प्रपद्ये। ॐ पवित्रं नग्नमुपविस्पृशामहे एषां नग्नं येषां जातं येषां वीरं सुवीरं इत्यादि।

बहुरि यजुर्वेदविषै ऐसा कह्या है—

ॐ नमो अर्हतो ऋषभाय। बहुरि ऐसा कह्या है—

ॐ ऋषभपवित्रं पुरुहूतमध्वरं यज्ञेषु नग्नं परमं माहसंस्तुतं वरं शत्रुं जयंतं पशुरिंद्रमाहुतिरिति स्वाहा। ॐ त्रातारमिंद्रं ऋषभं वदन्ति। अमृतारमिंद्रं हवे सुगतं सुपार्श्वमिंद्रं हवे शक्रमजितं तद्वर्द्धमानपुरुहूतमिंद्रमाहुरिति स्वाहा। ॐ नग्नं सुधीरं दिग्वाससं ब्रह्मगर्भं सनातनं उपैमि वीरं पुरुषमर्हंतमादित्यवर्णं तमसः परस्तात स्वाहा। ॐ स्वस्तिन इन्द्रो वृद्धश्रवा स्वस्तिनः पूषा विश्ववेदाः स्वस्तिनस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमि स्वस्तिनो बृहस्पतिर्दधातु। दीर्घायुस्त्वायुर्बलायुर्वा शुभजातायु। ॐ रक्ष रक्ष अरिष्टनेमिः स्वाहा। वामदेव शान्त्यर्थमनुविधीयते सोऽस्माकं अरिष्टनेमिः स्वाहा*।

सो यहाँ जैनतीर्थंकरनिके जे नाम हैं तिनका पूजनादि कह्या। बहुरि यहाँ यहु भास्या, जो इनके पीछे वेद रचना भई है। ऐसें अन्य मतके ग्रंथनिकी साक्षीतैं भी जिनमतकी उत्तमता अर प्राचीनता दृढ़ भई। अर जिनमतकों देखें वे मत कल्पित ही भासैं। तातैं जो अपना हितका इच्छुक होय सो पक्षपात छोरि साँचा जैनधर्मकों अंगीकार करो। बहुरि अन्य मतनिविषै पूर्वापर विरोध भासै है। पहले अवतार वेदका उद्धार किया। तहाँ यज्ञादिकविषै हिंसादिक पोषे अर बुद्धाव-

---

* यजुर्वेद अ० २५ मं० १९ अष्ठ १६ अ० ६ वर्ग १।

तार यज्ञका निंदक होय हिंसादिक निषेधे। वृषभावतार वीतराग संयम का मार्ग दिखाया। कृष्णावतार परस्त्री रमणादि विषय कषायादिकनिका मार्ग दिखाया। सो अब यहु संसारी कौनका कह्या करै, कौन के अनुसारि प्रवर्त्तै अर इन सब अवतारनिकों एक बतावैं सो एक ही कदाचित् कैसें कहै वा प्रवर्त्तै तो याकै उनके कहने की वा प्रवर्त्तने की प्रतीति कैसें आवै? बहुरि कहीं क्रोधादिकषायनिका वा विषयनिका निषेध करैं, कहीं लरनेका वा विषयादिसेवनका उपदेश दें। तहां प्रारब्ध बतावैं सो बिना क्रोधादि भए आपही तैं लरना आदि कार्य होंय तो यहु भी मानिए सो तो होय नाहीं। बहुरि लरना आदि कार्य करते क्रोधादि भए न मानिए तो जुदे ही क्रोधादि कौन हैं जिनका निषेध किया। तातैं बनैं नहीं, पूर्वापर विरोध है। गीतादिविषै वीतरागता दिखाय लरनेका उपदेश दिया सो यहु प्रत्यक्ष विरोध भासै है। बहुरि ऋषीश्वरादिकनिकरि श्राप दिया बतावैं, सो ऐसा क्रोध किएं निंद्यपना कैसें न भया? इत्यादि जानना। बहुरि "अपुत्रस्य गतिर्नास्ति" ऐसा भी कहैं अर भारत विषैं ऐसा भी कह्या है—

अनेकानि सहस्राणि कुमार ब्रह्मचारिणाम्।
दिवं गतानि राजेन्द्र अकृत्वा कुलसन्ततिम् ॥१॥

यहां कुमार ब्रह्मचारीनिकों स्वर्ग गये बताए, सो यहु परस्पर विरोध है। बहुरि ऋषीश्वर भारतविषै ऐसा कह्या है—

मद्यमांसाशनं रात्रौ भोजनं कंदभक्षणम्।
ये कुर्वन्तिवृथास्तेषां तीर्थयात्रा जपस्तपः ॥१॥

वृथा एकादशी-प्रोक्ता वृथा जागरणं हरेः।
वृथा च पौष्करी यात्रा कृत्स्नं चान्द्रायणं वृथा ॥२॥

चातुर्मास्ये तु,सम्प्राप्ते रात्रिभोज्यं करोति यः।
तस्य शुद्धिर्न विद्येत् चान्द्रायणशतैरपि ॥३॥

इन विषैं मद्य मांसादिकका वा रात्रिभोजन का वा चौमासे में विशेषपनै रात्रिभोजनका वा कंदफलभक्षणका निषेध किया। बहुरि बड़े पुरुषनिकै मद्यमांसादिकका सेवन करना कहैं, व्रतादि विषैं रात्रि-भोजन स्थापैं वा कंदादि भक्षण स्थापैं, ऐसैं विरुद्ध निरूपै हैं। ऐसें ही अनेक पूर्वापर विरुद्ध वचन अन्यमत के शास्त्र विषैं हैं। सो करैं कहा। कहीं तो पूर्वपरम्परा जानि विश्वास जनावनेके अर्थि यथार्थ कह्या अर कहीं विषयकषाय पोषनेके अर्थि अन्यथा कह्या। सो जहां पूर्वापर विरोध होय, तिनिका वचन प्रमाण कैसैं करिए। इहां जो अन्यमत-निविषैं क्षमा शील सन्तोषादिककों पोषते वचन हैं सो तो जैनमतविषैं पाइए हैं अर विपरीत वचन हैं सो उनका कल्पित है। जिनमत अनु-सारि वचननिका विश्वासतैं उनका विपरीतवचनका श्रद्धानादिक होय जाय, तातैं अन्यमतका कोऊ अंग भला देखि भी तहां श्रद्धानादिक न करना। जैसें विषमिश्रित भोजन हितकारी नाहीं तैसें जानना। बहुरि जो कोई उत्तम धर्मका अंग जिनमतविषै न पाइए अर अन्यमत में पाइए, अथवा कोई निषिद्ध धर्मका अंग—जैनमत विषै पाइए अर अन्यत्र न पाइए, तो अन्यमतकों आदरो सो सर्वथा होय नाहीं। जातैं सर्वज्ञका ज्ञानतैं किछू छिपा नाहीं है। तातैं अन्य मतनिका श्रद्धानादिक छोरि जिनमतका दृढ़ श्रद्धानादिक करना। बहुरि कालदोषतैं कषायी जीवनिकरि जिनमतविषैं भी कल्पितरचना करी है, सो ही दिखाइए है—

श्वेताम्बर मत निराकरण

श्वेताम्बरमतवाले काहूने सूत्र बनाए, तिनिकों गणधरके किए कहैं हैं। सो उनको पूछिए है—गणधरने आचारांगादिक बनाए हैं सो तुम्हारै अबार पाइए है सो इतने प्रमाण लिए ही किए थे कि घना प्रमाण लिए किए थे। जो इतने प्रमाण लिए ही किए थे, तो तुम्हारे शास्त्रनि विषै आचारांगादिकनिके पदनिका प्रमाण अठारह हजार आदि कह्या है, सो तिनकी विधि मिलाय द्यो। पदका प्रमाण कहा ?

जो विभक्तिका अन्तको पद कहोगे, तो कहे प्रमाणतैं बहुत पद होय जांयेगे अर जो प्रमाणपद कहोगे, तो तिस एकपद के साधिक इक्यावन कोड़ि श्लोक हैं। सो ए तो बहुत छोटे शास्त्र हैं, सो बनें नाहीं। बहुरि आचारांगादिकतैं दशवैकालिकादिकका प्रमाण घाटि कह्या है। तुम्हारै बधता है सो कैसें बनै ? बहुरि कहोगे, आचारांगादिक बड़े थे, काल-दोष जानि तिनहीमेंसों केतेक सूत्र काढ़ि ये शास्त्र बनाए हैं। तो प्रथम टूटकग्रन्थ प्रमाण नाहीं। बहुरि यह प्रबन्ध है, जो बड़ा ग्रन्थ बनावै तौ वा विषै सर्व वर्णन विस्तार लिए करै अर छोटा ग्रन्थ बनावै तो तहां संक्षेप वर्णन करै परन्तु सम्बन्ध टूटै नाहीं। अर कोई बड़ा ग्रन्थमें थोरासा कथन काढ़ि लीजिए, तो तहां सम्बन्ध मिलै नाहीं—कथनका अनुक्रम टूटि जाय। सो तुम्हारे सूत्रनिविषै तो कथादिकका भी संबंध मिलता भासै है—टूटकपना भासै नाहीं। बहुरि अन्य कवीनितैं गण-धरकी तो बुद्धि अधिक होसी, ताके किए ग्रन्थनिमें थोरे शब्दमें बहुत अर्थ चाहिए सो तो अन्य कवीनिकीसी भी गम्भीरता नाहीं। बहुरि जो ग्रन्थ बनावै सो अपना नाम ऐसें धरै नाहीं 'जो अमुक कहै है', 'मैं कहूं हूं' ऐसा कहै। सो तुम्हारे सूत्रनिविषै 'हे गौतम' वा 'गौतम कहै है' ऐसे वचन हैं। सो ऐसे वचन तो तब ही सम्भवैं जब और कोई कर्त्ता होय। तातैं यह सूत्र गणधरकृत नाहीं, और के किए हैं। गणधर का नामकरि कल्पितरचना को प्रमाण कराया चाहै हैं। सो विवेकी तो परीक्षाकरि मानै, कह्या ही तो न मानें।

बहुरि वह ऐसा भी कहै हैं—जो गणधरसूत्रनिके अनुसार कोई दशपूर्वधारी भया है। ताने ये सूत्र बनाए हैं। तहां पूछिए है—जो नए ग्रन्थ बनाए हैं तो नवा नाम धरना था, अंगादिकके नाम काहेकों धरे। जैसें कोई बड़ा साहूकारकी कोठीका नामकरि अपना साहूकारा प्रगट करै, तैसें यह कार्य भया। सांचेको तो जैसें दिगम्बरविषैंग्रन्थनि के और नाम धरे अर अनुसारी पूर्व ग्रन्थनिका कह्या, तैसें कहना योग्य था। अंगादिकका नाम धरि गणधरकृत का भ्रम काहेकों उप-

भाया। तातैं श्वेताम्बरके पूर्वाचारी के वचन नाहीं। बहुरि इन सूत्रनि विषै जो विश्वास जनावनेंके अर्थि जिनमत अनुसार कथन है सो तो सांच है ही, दिगम्बर भी तैसें ही कहैं हैं। बहुरि जो कल्पित रचना करी है, तामें पूर्वापर विरुद्धपनो वा प्रत्यक्षादि प्रमाणमें विरुद्धपनो भासै है, सो ही दिखाइए है—

अन्य लिंग से मुक्ति का निषेध

अन्य लिंगीकै वा गृहस्थकै वा स्त्रीकै वा चांडालादि शूद्रनिकै साक्षात् मुक्तिको प्राप्ति होती मानै हैं सो बनै नाहीं। सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रकी एकता मोक्षमार्ग है। सो वे सम्यग्दर्शनका स्वरूप तो ऐसा कहै हैं—

अरहंतो महादेवो जावज्जीवं सुसाहुणो गुरुणो।
जिणपण्णत्तं तत्तं ए सम्मत्तं मए गहियं ॥१॥

सो अन्य लिंगीकै अरहंतदेव, साधु, गुरु, जिन प्रणीततत्त्व का मानना कैसें सम्भवै तब सम्यक्त्व भी न होय, तो मोक्ष कैसें होय। जो कहोगे अन्तरंग विषैं श्रद्धान होनेतैं सम्यक्त्व तिनकै हो है, सो विपरीत लिंगधारकको प्रशंसादिक किए भी सम्यक्त्वकों अतीचार कह्या है सो सांचा श्रद्धान भए पीछें आप विपरीत लिंगका धारक कैसें रहै। श्रद्धान भए पोछें महाव्रतादि अंगीकार किए सम्यक्चारित्र होय सो अन्यलिंगविषैं कैसें बनै? जो अन्यलिंगविषै भी सम्यक्चारित्र हो है तो जैन लिंग अन्य लिंग समान भया तातैं अन्यलिंगीकों मोक्ष कहना मिथ्या है। बहुरि गृहस्थकों मोक्ष कहैं सो हिंसादिक सर्व सावद्ययोगका त्याग किए सामायिकचारित्र होय सो सर्व सावद्ययोगका त्याग किए गृहस्थपनों कसैं सम्भवै? जो कहोगे—अन्तरंग त्याग भया है तो यहाँ तो तीनों योगकरि त्याग करै है, कायकरि त्याग कैसें भया? बहुरि बाह्य परिग्रहादिक राखें भी महाव्रत हो है, सो महाव्रतनिविषैं तो बाह्य त्याग करनेकी ही प्रतिज्ञा करिए है, त्याग किए बिना महाव्रत न होय।

महाव्रत बिना छठा आदि गुणस्थान न हो है, तो तब मोक्ष कैसें होय ? तातैं गृहस्थकों मोक्ष कहना मिथ्या वचन है।

स्त्री मुक्ति का निषेध

बहुरि स्त्रीकों मोक्ष कहैं, सो जाकरि सप्तम नरक गमन योग्य पाप न होय सकैं, ताकरि मोक्षका कारण शुद्ध भाव कैसें होय ? जातैं जाके भाव दृढ़ होंय, सोही उत्कृष्ट पाप वा धर्म उपजाय सकै है। बहुरि स्त्रीकै निःशंक एकांतविषैं ध्यान धरना अर सर्व परिग्रहादिकका त्याग करना सम्भवै नाहीं। कहोगे, एक समयविषैं पुरुषवेदीं वा स्त्रीवेदी वा नपुंसकवेदीकों सिद्धि होनी सिद्धान्तविषै कही है, तातैं स्त्रीकों मोक्ष मानिए है। सो यहाँ ये भाववेदी है कि द्रव्यवेदी है, जो भाव वेदी है तो हम मानै ही हैं। द्रव्यवेदी है तो पुरुषस्त्रीवेदी तो लोकविषैं प्रचुर दीसै हैं, नपुंसक तो कोई विरला दीसै हैं। एक समयविषैं मोक्ष जानेवाले इतने नपुंसक कैसे सम्भवें ? तातैं द्रव्यवेद अपेक्षा कथन बनैं नाहीं। बहुरि जो कहोगे, नवम गुणस्थानताँई वेद कहे हैं, सो भी भाववेद अपेक्षा ही कथन है। द्रव्यवेद अपेक्षा होय तो चौदहवाँ गुणस्थान पर्यन्त वेदका सद्भाव कहना सम्भवै। तातैं स्त्रीकै मोक्षका कहना मिथ्या है।

शूद्र मुक्ति का निषेध

बहुरि शूद्रनिकों मोक्ष कहैं। सो चांडालादिककों गृहस्थ सन्मानादिककरि दानादिक कैसें दे, लोकविरुद्ध होय। बहुरि नीचकुलवालोंके उत्तम परिणाम न होय सकैं। बहुरि नीचगोत्रकर्मका उदय तो पंचम गुणस्थान पर्यन्त ही है। ऊपरिके गुणस्थान चढ़े बिना मोक्ष कैसें होय। जो कहोगे-संयम धारे पीछैं वाकै उच्चगोत्रही का उदय कहिए, तो संयम धारने न धारने की अपेक्षातें नीच उच्च गोत्र का उदय ठहरया। ऐसे होते असंयमी मनुष्य तीर्थंकर क्षत्रियादिक तिनकै भी नीच गोत्रका उदय ठहरै। जो उनकै कुल अपेक्षा उच्चगोत्रका उदय कहोगे तो चांडालादिककै भी कुल अपेक्षा ही नीच गोत्र का उदय

कह्यो। ताका सद्भाव तुम्हारे सूत्रनिविषै भी पंचम गुणस्थान पर्यन्त ही कह्या है। सो कल्पित कहनेमें पूर्वापर विरुद्ध होय ही होय। तातैं शूद्रनिकै मोक्षका कहना मिथ्या है।

ऐसें तिनहूनें सबंके मोक्षकी प्राप्ति कही, सो ताका प्रयोजन यहु है जो सर्वका भला मनावना, मोक्षका लालच देना अर अपना कल्पितमतकी प्रवृत्ति करनी। परन्तु विचार किए मिथ्या भासै है।

अछेरों का निराकरण

बहुरि तिनके शास्त्रनिविषै 'अछेरा' कहै हैं। सो कहैं हैं—हुण्डावसर्प्पिणीके निमित्ततैं भए हैं, इनको छेड़ने नाहीं। सो कालदोषतैं केई बात होय परन्तु प्रमाणविरुद्ध तो न होय। जो प्रमाण विरुद्ध भी होय, तो आकाशके फूल, गधे के सींग इत्यादिका होना भी बनै सो सम्भवै नाहीं। वे अछेरा कहै हैं सो प्रमाण विरुद्ध है। काहेतैं सो कहिए है—

वर्द्धमानजिन केतेककालि ब्राह्मणीके गर्भविषैं रहे, पीछैं क्षत्रियाणी के गर्भ विषैं बधे, ऐसा कहै हैं। सो काहूका गर्भ काहूकै धरय्या प्रत्यक्ष भासै नाहीं, अनुमानादिकमें आवै नाहीं। बहुरि तीर्थंकरके भया कहिए, तो गर्भकल्याणक काहू के घरि भया, जन्मकल्याणक काहूके घरि भया। केतेक दिन रत्नवृष्टयादिक काहूके घर भए, केतेक दिन काहूके घरि भये। सोलह स्वप्न किसीको आए, पुत्र काहूकै भया इत्यादि असम्भव भासै। बहुरि माता तो दोय भई अर पिता तो एक ब्राह्मण ही रह्या। जन्म कल्याणादिविषै वाका सन्मान न किया, अन्य कल्पित पिताका सन्मान किया। सो तीर्थंकरकै दोय पिताका कहना महाविपरीत भासै है। सर्वोत्कृष्टपद के धारककै ऐसे बचन सुनने भी योग्य नाहीं। बहुरि तीर्थंकरकै भी ऐसी अवस्था भई तो सर्वत्र ही अन्य स्त्रीका गर्भ अन्यस्त्रीकै घरि देना ठहरै। तो वैष्णव जैसें अनेक प्रकार पुत्र पुत्रीका उपजना बतावें हैं, तैसें यहु कार्य भया।

सो ऐसे निकृष्ट काल विषैं तो ऐसें होय ही नाहीं, तहां होना कैसें सम्भवै ? तातैं यहु मिथ्या है।

बहुरि मल्लि तीर्थंकरकों कन्या कहैं हैं। सो मुनि देवादिककी सभा विषैं स्त्रीका स्थिति करना उपदेश देना न सम्भवै, वा स्त्री-पर्याय हीन है सो उत्कृष्ट तीर्थंकरपदधारककै न बनै। बहुरि तीर्थंकरकै नग्न लिंग ही कहैं हैं सो स्त्रीकै नग्नपनो न सम्भवै। इत्यादि विचार किये असम्भव भासै है।

बहुरि हरिक्षेत्रका भोगभूमियाँकों नरक गया कहैं। सो बन्ध वर्णन विषैं तो भोगभूमियाँकै देवगति देवायुहीका बन्ध कहैं, नरक कैसें गया। सिद्धान्त विषैं तो अनन्तकाल विषैं जो बात होय, सो भी कहैं। जैसें तीसरे नरक पर्यन्त तीर्थंकर प्रकृतिका सत्व कह्या, सो केवली भूले तो नाहीं। तातैं यहु मिथ्या है। ऐसें सर्व अछेरे असम्भव जाननें। बहुरि वे कहै हैं इनकों छेड़ने नाहीं सो झूंठ कहनेवाला ऐसैं ही कहै।

बहुरि जो कहोगे—दिगम्बरविषैं जैसें तीर्थंकरकै पुत्री, चक्र-वर्तिका मान भंग इत्यादि कार्य कालदोषतैं भया कहै हैं, तैसें ये भी भये। सो ये कार्य तो प्रमाण विरुद्ध नाहीं। अन्यकै होते थे सो महंत-निकै भये तातैं काल दोष कह्या है। गर्भहरणादि कार्य प्रत्यक्ष अनु-मानादितैं विरुद्ध, तिनका होना कैसें सम्भवै ? बहुरि अन्य भी घने ही कथन प्रमाणविरुद्ध कहै हैं। जैसें कहै हैं, सर्वार्थसिद्धिके देव मन ही तैं प्रश्न करैं हैं, केवली मनहीतैं उत्तर दे हैं। सो सामान्य जीव के मन की बात मनःपर्ययज्ञानी बिना जानि सकै नाहीं। केवलीके मन की सर्वार्थसिद्धिके देव कैसें जानें ? बहुरि केवलीकै भावमनका तो अभाव है, द्रव्यमन जड़ आकारमात्र है, उत्तर कौन दिया। तातैं मिथ्या है। ऐसें अनेक प्रमाणविरुद्ध कथन किये हैं, तातैं तिनके आगम कल्पित जानने।

केवली के आहार नीहारका निराकरण

बहुरि ते श्वेताम्बर मतवाले देव गुरु धर्मका स्वरूप अन्यथा निरूपें हैं। तहाँ केवलीकै क्षुधादिक दोष कहैं। सो यहु देवका स्वरूप अन्यथा है। काहेतें, क्षुधादिक दोष होतें आकुलता होय, तब अनन्त सुख कैसें बनें? बहुरि जो कहोगे, शरीरकों क्षुधा लागै है, आत्मा तद्रूप न हो है, तो क्षुधादिका उपाय आहारादिक काहेकों ग्रहण किया कहो हो। क्षुधादिकरि पीड़ित होय, तब ही आहार ग्रहण करै। बहुरि कहोगे, जैसें कर्मोदयतें विहार हो है, तैसें ही आहार ग्रहण हो है। सो विहार तो विहायोगति प्रकृतिका उदय तें हो है अर पीड़ाका उपाय नाहीं अर बिना इच्छा भी किसी जीवकै होता देखिए है। बहुरि आहार है सो प्रकृतिका उदयतें नाहीं, क्षुधाकरि पीड़ित भए ही ग्रहण करै है। बहुरि आत्मा पवनादिककों प्रेरै तब ही निगलना हो है, तातैं विहारवत् आहार नाहीं। जो कहोगे—सातावेदनीयके उदयतें आहार ग्रहण हो है, सो बनै नाहीं। जो जीव क्षुधादिकरि पीड़ित होय, पीछे आहारादिक ग्रहणतें सुख मानै, तौ आहारादिक साताके उदयतें कहिए। आहारादिका ग्रहण साता वेदनीयका उदयतें स्वयमेव होय, ऐसें तो है नाहीं। जो ऐसें होय तो सातावेदनीयका मुख्य उदय देवनिकै है, ते निरन्तर आहार क्यों न करैं। बहुरि महामुनि उपवासादि करैं, तिनकैं साताका भी उदय अर निरन्तर भोजन करनेवालों कै असाताका भी उदय सम्भवै। तातैं जैसें बिना इच्छा विहायोगतिके उदयतें विहार सम्भवै। तैसें बिना इच्छा केवल सातावेदनीय ही के उदयतैं आहारका ग्रहण सम्भवै नाहीं।

बहुरि वे कहै हैं सिद्धान्त विषैं केवलीकै क्षुधादिक ग्यारह परीषह कहै हैं, तातैं तिनकैं क्षुधाका सद्भाव सम्भवै है। बहुरि आहारादिक बिना तिनकी उपशांतता कैसें होय, तातैं तिनकै आहारादिक मानै हैं।

ताका समाधान—कर्मप्रकृतिनिका उदय मंद तीव्र भेद लिए हो है। तहां अतिमंद उदय होतें तिस उदयजनित कार्यको व्यक्तता भासै नाहीं। तातें मुख्यपनें अभाव कहिए, तारतम्यविषैं सद्भाव कहिए। जैसें नवम गुणस्थान विषें वेदादिकका उदय मन्द है, तहां मैथुनादि क्रिया व्यक्त नाहीं, तातैं तहाँ ब्रह्मचर्य ही कह्या। तारतम्य विषें मैथुनादिकका सद्भाव कहिए है। तैसें केवलीकै असाताका उदय अति मंद है। जातें एक एक कांडकविषै अनन्तवे भाग अनुभाग रहै, ऐसे बहुत अनुभागकांडकनि करि वा गुणसंक्रमणादिककरि सत्ता विषें असातावेदनीयका अनुभाग अत्यन्त मंद भया, ताका उदय विषें क्षुधा ऐसी व्यक्त होती नाहीं जो शरीरको क्षीण करै अर मोहके अभावतें क्षुधादिक जनित दुःख भी नाहीं, तातें क्षुधादिकका अभाव कहिए। तारतम्यविषैं तिनका सद्भाव कहिए है। बहुरि तैं कह्या—आहारादिक बिना तिनकी उपशांतता कैसें होय, सो आहारादिकरि उपशांत होने योग्य क्षुधा लागै तो मन्द उदय काहेका रह्या ? देव भोगभूमियां आदिकका किंचित् मंद उदय होतें ही बहुत काल पीछें किंचित् आहार ग्रहण हो है तो इनकै तो अतिमंद उदय भया है, तातें इनकै आहारका अभाव सम्भवै है।

बहुरि वह कहै है, देव भोगभूमियोंका तो शरीर ही वैसा है जाकों भूख थोरी वा घनें काल पीछें लागै, इनिका तो शरीर कर्मभूमिका औदारिक है। तातें इनिका शरीर आहार बिना देशोनकोडि पूर्वपर्यन्त उत्कृष्टपने कैसें रहै ?

ताका समाधान—देवादिकका भी शरीर वैसा है, सो कर्मके ही निमित्ततें है। यहाँ केवलज्ञान भए ऐसा ही कर्म उदय भया, जाकरि शरीर ऐसा भया, जाकरि भूख प्रगट होती ही नाहीं। जैसें केवलज्ञान भए पहलें केश नख बधैं थे, अब बधै (बढ़ै) नाहीं। छाया होती थी सो होती नाहीं। शरीर विषें निगोद थी, ताका अभाव भया। बहुत प्रकारकरि जैसें शरीरकी अवस्था अन्यथा भई, तैसें आहार बिना ही

शरीर जैसाका तैसा रहै ऐसी भी अवस्था भई, प्रत्यक्ष देखो और-निकों क्षुधा व्यापै तब शरीर शिथिल होय जाय, इनिका आयुका अन्तपर्यन्त शरीर शिथिल न होय। तातैं अन्य मनुष्यनिका अर इनिका शरीर की समानता सम्भवै नाहीं। बहुरि जो तू कहैगा—देवादिकके आहार ही ऐसा है जाकरि बहुत कालकी भूख मिटै, इनिके भूख काहे तैं मिटी अर शरीर पुष्ट कैसें रह्या ? तो सुनि, असाताका उदय मंद होनेतैं मिटी अर समय समय परम औदारिक शरीर वर्गणा का ग्रहण हो है सो वह नो कर्म आहार है सो ऐसो ऐसी वर्गणाका ग्रहण हो है जाकरि क्षुधादिक व्यापै नाहीं वा शरीर शिथिल होय नाहीं। सिद्धांत-विषें याहीकी अपेक्षा केवलीको आहार कह्या है। अर अन्नादिकका आहार तो शरीरकी पुष्टताका मुख्य कारण नाहीं। प्रत्यक्ष देखो, कोऊ थोरा आहार ग्रहै, शरीर पुष्ट बहुत होय, कोऊ बहुत आहार ग्रहै, शरीर क्षीण रहै। बहुरि पवनादि साधनेवाले बहुत काल ताईं आहार न लें, शरीर पुष्ट रह्या करे वा ऋद्धिधारी मुनि उपवासादि करैं, शरीर पुष्ट बन्या रहै। सो केवलीकै तो सर्वोत्कृष्टपना है, उनकै अन्नादिक बिना शरीर पुष्ट बन्या रहै तो कहा आश्चर्य भया। बहुरि केवली कैसें आहारकों जाँय, कैसें याचें।

बहुरि वे आहारकों जांय, तब समवशरण खाली कैसें रहै। अथवा अन्यका ल्याय देना ठहराओगे तो कौन ल्याय दें, उनके मनकी कौन जानै। पूर्वं उपवासादिककी प्रतिज्ञा करी थी, ताका कैसें निर्वाह होय। जीव अन्तराय सर्वप्रति भासै, कैसें आहार ग्रहै ? इत्यादि विरुद्धता भासै है। बहुरि वे कहै हैं—आहार ग्रहै हैं, परन्तु काहूकों दीसैं नाहीं। सो आहार ग्रहणकों निंद्य जान्या, तब ताका न देखना अति-शयविषें लिख्या। सो उनकै निंद्यपना रह्या अर और न देखें हैं तो कहा भया। ऐसें अनेक प्रकार विरुद्धता उपजै है।

बहुरि अन्य अविवेकताकी बातें सुनो—केवलीकै नीहार कहै हैं, रोगादि भया कहै हैं अर कहैं, काहूने तेजो लेश्या छोरी, ताकरि

वर्द्धमानस्वामीकै पेठूंगाका (पेचिसका) रोग भया, ताकरि बहुत बार निहार होने लागा। सो तीर्थंकर केवलीकै भी ऐसा कर्मका उदय रह्या अर अतिशय न भया, तो इन्द्रादिककरि पूज्यपना कैसें शोभै। बहुरि नीहार कैसें करैं, कहां करैं, कोऊ संभवती बातै नाहीं। बहुरि जैसें रागादि युक्त छद्मस्थकै क्रिया होय, तैसें केवलीकै क्रिया ठहरावैं वर्द्धमान स्वामीका उपदेश विषैं 'हे गौतम' ऐसा बारम्बार कहना ठहरावैं हैं। सो उनकै तो अपना कालविषैं सहज दिव्यध्वनि हो है, तहां सर्वकों उपदेश हो है, गौतमको संबोधन कैसें बनै? बहुरि केवलीकै नमस्कारादिक क्रिया ठहरावैं हैं, सो अनुराग बिना वंदना संभवै नाहीं। बहुरि गुणाधिककों वंदना सम्भवै, उन सेती कोई गुणाधिक रह्या नाहीं। सो कैसें? बहुरि हाटिविषैं समवसरण उतरया कहैं, सो इन्द्रकृत समवसरण हाटिविषैं कैसें रहे? इतनी रचना तहां कैसें समावै। बहुरि हाटि विषै काहेकों रहै? कहा इन्द्र हाटि सारिखी रचना करनेकों भी समर्थ नाहीं, जातैं हाटिका आश्रय लीजिए। बहुरि कहैं—केवली उपदेश देनेकों गए। सो घरि जाय उपदेश देना अति रागतैं होय, सो मुनिकै भी सम्भवै नाहीं। केवलीकै कैसें बनै? ऐसें ही अनेक विपरीतता तहां प्ररूपै हैं। केवली शुद्ध केवलज्ञानदर्शनमय रागादि रहित भए हैं, तिनकै अघातिनिकै उदयतैं संभवती क्रिया कोई हो है। केवलीकै मोहादिकका अभाव भया है। तातैं उपयोग मिलें जो क्रिया होय सकै, सो सम्भवै नाहीं। पाप प्रकृतिका अनुभाग अत्यन्त मंद भया है। ऐसा मन्द अनुभाग अन्य कोईकैं नाही। तातैं अन्यजीवनिकै पापउदयतैं जो क्रिया होती देखिए है, सो केवलीकै न होय। ऐसें केवली भगवानकै सामान्य मनुष्यकीसी क्रिया का सद्भाव कहिए देवका स्वरूपकों अन्यथा प्ररूपै हैं।

मुनि के वस्त्रादि उपकरणों का प्रतिषेध

बहुरि गुरुका स्वरूपकों अन्यथा प्ररूपै हैं। मुनिके वस्त्रादिक

चौदह उपकरण* कहे हैं। सो हम पूछै हैं, मुनिकों निर्ग्रंथ कहैं अर मुनिपद लेते नवप्रकार सर्वपरिग्रहका त्यागकरि महाव्रत अंगीकार करैं, सो वे वस्त्रादिक परिग्रह हैं कि नाहीं। जो हैं तो त्याग किए पीछें काहेकों राखैं अर नाहीं हैं तो वस्त्रादिक गृहस्थ राखैं ताको भी परिग्रह मति कहो। सुवर्णादिकहीकों परिग्रह कहो। बहुरि जो कहोगे, जैसें क्षुधाके अर्थि आहार ग्रहण कीजिए है, तैसें शीत उष्णादिकके अर्थि वस्त्रादिक ग्रहण कीजिए है। सो मुनिपद अंगीकार करतें आहारका त्याग किया नाहीं, परिग्रह का त्याग किया है। बहुरि अन्नादिकका तो संग्रह करना परिग्रह है, भोजन करने जाइये सो परिग्रह नाहीं। अर वस्त्रादिका संग्रह करना वा पहरना सर्व ही परिग्रह है, सो लोकविषैं प्रसिद्ध हैं। बहुरि कहोगे, शरीरकी स्थितिके अर्थि वस्त्रादिक राखिए है—ममत्व नाहीं है, तातैं इनिकों परिग्रह न कहिए है। सो श्रद्धानविषैं तो जब सम्यग्दृष्टि भया तबहीं समस्त परद्रव्यविषैं ममत्वका अभाव भया। तिस अपेक्षातै चौथा गुणस्थानही परिग्रह रहित कहो। अर प्रवृत्तिविषैं ममत्व नाहीं तो कैसें ग्रहण करै है। तातैं वस्त्रादिक ग्रहण धारण छूटेगा, तब ही निःपरिग्रह होगा। बहुरि कहोगे—वस्त्रादिककों कोई लेय जाय तो क्रोध न करैं वा क्षुधादिक लागै तो वेचैं नाहीं वा वस्त्रादिक पहरि प्रमाद करैं नाहीं, परिणामनिकी थिरता करि धर्म ही साधै हैं तातैं ममत्व नाहीं। सो बाह्य क्रोध मति करो परंतु जाका ग्रहण विषैं इष्ट बुद्धि होय तो ताका वियोगविषैं अनिष्टबुद्धि होय ही होय। जो अनिष्टबुद्धि न भई तो ताके अर्थि याचना काहेकों करिए है? बहुरि बेचते नाहीं, सो धातु राखनेतैं अपनी हीनता जानि नाहीं बेचिए हैं। जैसें धनादि राखने तैसें ही वस्त्रादि राखने। लोकविषैं परि-

---

* पात्र १ पात्रबन्ध २ पात्र केसरिकर ३ पटलिकाएँ ४-५ रजस्त्राण ६ गोच्छक ७ रजोहरण ८ मुखवस्त्रिका ९ दो सूती कपड़े १०-११ एक ऊनी कपड़ा १२ मात्रक १३ चोलपट्ट १४ देखो बृहत्क० सु० उ० ३ भा० गा० ३९६२ से ३९६५ तक।

ग्रहके चाहक जीवनिकै दोउनिकी इच्छा है। तातैं चोरादिकके भयादिके कारन दोऊ समान हैं। बहुरि परिणामनिकी स्थिरताकरि धर्मसाधन ही तैं परिग्रहपना न होय। जो काहूकों बहुत शीत लागेगा सो सोड़ि राखि परिणामनिकी थिरता करेगा अर धर्मसाधेगा तो वाकों भी निःपरिग्रह कहो। ऐसें गृहस्थधर्म मुनिधर्म विषें विशेष कहा रहेगा। जाकै परीषह सहनेकी शक्ति न होय सो परिग्रह राखि धर्म साधै ताका नाम गृहस्थधर्म अर जाकै परिणाम निर्मल भए परीषहकरि व्याकुल न होय सो परिग्रह न राखै अर धर्म साधै ताका नाम मुनि-धर्म, इतना ही विशेष है। बहुरि कहोगे, शीतादिकी परीषहकरि व्याकुल कैसें न होय। सो व्याकुलता तो मोहके उदयके निमित्ततैं है। सो मुनिकै षष्ठादि गुणस्थाननिविषें तीन चौकड़ीका उदय नाहीं अर संज्वलनके सर्वघाती स्पर्द्धकनिका उदय नाहीं, देशघाती स्पर्द्धकनिका उदय है सो तिनका किछू बल नाहीं। जैसे वेदक सम्यग्दृष्टिकै सम्यक् मोहनीय का उदय है सो सम्यक्त्वको घात न करि सकै तैसे देशघाती संज्वलनका उदय परिणामनिकों व्याकुल करि सकै नाहीं। अहो मुनि-निकै अर औरनिकै परिणामनिकी समानता है नाहीं। और सबनिकै सर्वघातीका उदय है, इनिकै देशघाती का उदय है। तातैं औरनिकै जैसे परिणाम होंय तैसे उनकै कदाचित् न होंय। तातैं जिनकै सर्व-घातीकषायनिका उदय हो ते गृहस्थ ही रहैं अर जिनकै देशघाती का उदय होय ते मुनिधर्म अंगीकार करैं। ताकै शीतादिककरि परिणाम व्याकुल न होय तातैं वस्त्रादिक राखैं नाहीं। बहुरि कहोगे—जैन शास्त्रनिविषें चौदह उपकरणमुनि राखै, ऐसा कह्या है। सो तुम्हारेही शास्त्रनिविषें कह्या है, दिगम्बर जैनशास्त्रनिविषें तो कहे नाहीं। तहाँ तो लंगोटमात्र परिग्रह रहें भी ग्यारहीं प्रतिमा का धारकको श्रावक ही कह्या। सो अब यहां विचारो, दोऊनिमें कल्पित वचन कौन है? प्रथम तो कल्पित रचना कषायी होय सो करै। बहुरि कषायी होय सोही नीचापदविषै उच्चपनों प्रगट करै। सो यहाँ दिगम्बर

विषें वस्त्रादि राखें धर्म होय ही नाहीं, ऐसा तो न कह्या परन्तु तहाँ श्रावकधर्म कह्या। श्वेताम्बर विषें मुनिधर्म कह्या। सो यहाँ जानें नीची क्रिया होतें उच्चत्व पद प्रगट किया सो ही कषायी है। इस कल्पित कहनेकरि आपकों वस्त्रादि राखतें भी लोक मुनि मानने लागें, तातें मानकषाय पोष्या गया। अर औरनिको सुगमक्रियाविषें उच्चपद का होना दिखाया, तातें घनें लोक लागि गए। जे कल्पित मत भए हैं, ते ऐसें ही भए हैं। तातें कषायी होइ वस्त्रादि होतें मुनिपना कह्या है, सो पूर्वोक्त युक्तिकरि विरुद्ध भासै हैं। तातें ए कल्पितवचन हैं, ऐसा जानना।

बहुरि कहोगे—दिगम्बरविषें भी शास्त्र पीछी आदि उपकरण मुनिके कहे है, तैसें हमारै चौदह उपकरण कहे हैं।

ताका समाधान—जाकरि उपकार होय ताका नाम उपकरण है। सो यहां शीतादिककी वेदना दूर करनतें उपकरण ठहराइए, तो सर्वपरिग्रह सामग्री उपकरण नाम पावै। सो धर्मविषें इनिका कहा प्रयोजन ? ए तो पापके कारण है। धर्मविषें तो धर्मका उपकारी जे होंय तिनका नाम उपकरण है। सो शास्त्र ज्ञानको कारण, पीछी दयाकों कारण, कमंडलु शोचकों कारण, सो ए तो धर्मके उपकारी भये, वस्त्रादिक कैसें धर्मके उपकारी होय ? वे तो शरीरका सुखहीके अर्थि धारिए है। बहुरि सुनो जो शास्त्र राखि महंतता दिखावैं, पीछी-करि बुहारी दें, कमंडलुकरि जलादिक पीवें वा मैल उतारें, तो शास्त्रादिक भी परिग्रह ही हैं। सो मुनि ऐसे कार्य करें नाहीं। तातें धर्मके साधनकों परिग्रह संज्ञा नाहीं। भोगके साधनकों परिग्रह संज्ञा हो है, ऐसा जानना। बहुरि कहोगे—कमंडलुतें तो शरीरहीका मल दूरि करिए है, सो मुनि मल दूर करनेकी इच्छाकरि कमंडलु नाहीं राखें हैं। शास्त्र बांचना आदि कार्य करैं अर मललिप्त होंय तो तिनका अविनय होय, लोकनिंद्य होय, तातें इस धर्मके अर्थि कमंडलु राखिए हैं। ऐसें पीछी आदि उपकरण सम्भवें, वस्त्रादिकों उपकरण

संज्ञा सम्भवै नाहीं। काम अरति आदि मोहका उदयतैं विकार बाह्य प्रगट होय अर शीतादिक सहे न जांय तातैं विकार ढांकनेकौं वा शीतादि मिटावनेकौं वस्त्रादिक राखें अर मानके उदयतें अपनी महंतता भी चाहैं तातैं कल्पित युक्तिकरि उपकरण ठहराए हैं। बहुरि घरि घरि याचनाकरि आहार ल्यावना ठहरावें हैं। सो प्रथम तो यह पूछिए है, याचना धर्म का अंग है कि पाप का अंग है। जो धर्मका अंग है तो मांगने वाले सर्व धर्मात्मा भए। अर पापका अंग है तो मुनिकं कैसें सम्भवै ?

बहुरि जो तू कहेगा, लोभकरि किछू धनादिक याचै तो पाप होय, यहु तो धर्म साधन अर्थि शरीरकी स्थिरता किया चाहै हैं तातैं आहारादिक याचें हैं।

ताका समाधान—आहारादिकरि धर्म होता नाहीं, शरीरका सुख हो है। सो शरीरका सुखके अर्थि अति लोभ भए याचना करिए है। जो अति लोभ न होता तो आप काहेको मांगता। वे ही देते तो देते, न देते तो न देते। बहुरि अतिलोभ भये इहाँ ही पाप भया, तब मुनिधर्म नष्ट भया, और धर्म कहा साधेगा। अब वह कहै है—मनविषें तो आहारकी इच्छा होय अर याचें नाहीं तो मायाकषाय भया अर याचनेमें हीनता आवै है सो गर्वकरि याचें नाहीं तब मानकषाय भया। आहार लेना था सो मांगि लिया। यामें अति लोभ कहा भया अर यातें मुनिधर्म कैसैं नष्ट भया सो कहो। याको कहिये है—

जैसें काहू व्यापारीकै कुमावनेकी इच्छा मन्द है सो हाटि (दुकान) ऊपरि तो बैठै अर मनविषें व्यापार करनेकी इच्छा भी है परन्तु काहूकों वस्तु लेनेदेनेरूप व्यापारके अर्थि प्रार्थना नाहीं करै है। स्वयमेव कोई आवै तो अपनी विधि मिले व्यापार करै है तो ताकै लोभकी मंदता है, माया वा मान नाहीं है। माया मानकषाय तो तब होय, जब छलकरनेके अर्थि वा अपनी महंतता के अर्थि ऐसा स्वांग करै। सो भले व्यापारीकै ऐसा प्रयोजन नाहीं तातैं वाकै माया मान

न कहिए। तैसें मुनिनिकैं आहारादिककी इच्छा मन्द है सो आहार लेनेको आवैं अर मनविषै आहार लेनेकी इच्छा भी है परन्तु आहारके अर्थि प्रार्थना नाहीं करें हैं। स्वयमेव कोई दे तो अपनी विधि मिले आहार ले हैं तो उनकै लोभकी मन्दता है, माया वा मान नाहीं है। माया मान तो तब होय जब छल करनेके अर्थि वा महंतताके अर्थि ऐसा स्वांग करें। सो मुनिनकै ऐसे प्रयोजन हैं नाहीं तातैं इनिकै माया मान नाहीं है। जो ऐसें ही माया मान होय तो जे मनहीकरि पाप करें वचनकायकरि न करें, तिन सबनिकै माया ठहरै। अर जे उच्च-पदवीके धारक नीचवृत्ति अङ्गीकार नाहीं करें हैं, तिन सबनिकै मान ठहरै। ऐसें अनर्थ होय! बहुरि तैं कह्या—"आहार मांगनेमें अति-लोभ कहा भया? अतिकषाय होय तब लोकनिंद्य कार्य अंगीकार-करिकै भी मनोरथ पूर्ण किया चाहै। सो मांगना लोकनिंद्य है, ताकों भी अंगोकारकरि आहारकी इच्छा पूर्ण करनेकी चाहि भई। तातैं यहां अति लोभ भया। बहुरि तैं कह्या—"मुनि धर्म कैसें नष्ट भया" सो मुनि धर्म विषें ऐसी तीव्र कषाय सम्भवै नाहीं। बहुरि काहूका आहार देनेका परिणाम न था, यानैं वाका घर में जाय याचना करी। तहां वाकै सकुचना भया वा न दिए लोकनिंद्य होनेका भय भया तातैं वाकों आहार दिया। सो वाका अन्तरंग प्राण पीड़नेतै हिंसाका सद्भाव आया। जो आप वाका घरमें न जाते, उसही कै देने का उपाय होता तो देता, वाकै हर्ष होता। यहु तो दबाय करि कार्य करावना भया। बहुरि अपना कार्यके अर्थि याचनारूप वचन है सो पापरूप है। सो यहां असत्य वचन भी भया। बहुरि वाकै देनेकी इच्छा न थी, यानै याच्या, तब वानै अपनी इच्छातै दिया नाहीं—सकुचिकरि दिया। तातैं अदत्त-ग्रहण भी भया। बहुरि गृहस्थके घर में स्त्री जैसैं तैसैं तिष्ठैं थी, यहु चल्या गया। तहां ब्रह्मचर्यकी बाड़िका भंग भया। बहुरि आहार ल्याय केतेक काल राख्या। आहारादि के राखनेकों पात्रादिक राखे सो परिग्रह भया। ऐसें पांच महाव्रतनिका भंग होनेतैं

मुनिधर्म नष्ट हो है तातैं याचनाकरि आहार लेना मुनिका युक्त नाहीं।

बहुरि वह कहै है—मुनिकै बाईस परीषहनिविषै याचना परीषह कही है, सो मांगे बिना तिस परीषहका सहना कैसैं होय ?

ताका समाधान—याचना करनेका नाम याचना परीषह नाहीं है। याचना न करनी, ताका नाम याचना परीषह है। जातैं अरति करनेका नाम अरति परीषह नाहीं, अरति न करने का नाम अरति परीषह है, तैसें जानना। जो याचना करना परीषह ठहरै, तो रंकादि घनी याचना करें हैं, तिनकै घना धर्म होय। अर कहोगे, मान घटावनेतें याकों परीषह कहैं हैं तो कोई कषायी कार्यके अर्थि कोई कषाय छोरे भी पापी ही होय। जैसें कोई लोभके अर्थि अपना अपमानको भी न गिनै, तो वाकै लोभकी तीव्रता है। उस अपमान करावनेतें भी महापाप होय है। अर आपकै इच्छा किछू नाही, कोई स्वयमेव अपमान करै है तो वाकै महाधर्म है। सो यहाँ तो भोजनका लोभके अर्थि याचना करि अपमान कराया तातैं पाप ही है, धर्म नाहीं। बहुरि वस्त्रादिकके भी अर्थि याचना करै है सो वस्त्रादिक कोई धर्मका अङ्ग नाहीं है, शरीर सुखका कारण है। तातैं पूर्वोक्त प्रकार ताका निषेध जानना। देखो अपना धर्मरूप उच्चपदकों याचना करि नीचा करें हैं सो यामैं धर्मकी हीनता हो है। इत्यादि अनेक प्रकार करि मुनि धर्म विषैं याचना आदि नाहीं सम्भवै है। सो ऐसी असम्भवती क्रियाके धारक साधु गुरु कहै हैं। तातैं गुरुका स्वरूप अन्यथा कहै हैं।

धर्मका अन्यथा स्वरूप

बहुरि धर्मका स्वरूप अन्यथा कहै हैं। सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र इनकी एकता मोक्षमार्ग है, सो ही धर्म है, सो इनिका स्वरूप अन्यथा प्ररूपैं हैं। सो ही कहिए है—

तत्त्वार्थश्रद्धान सम्यग्दर्शन है, ताकी तो प्रधानता नाहीं। आप जैसें अरहंत देव साधु गुरु दया धर्मकों निरूपै हैं, तिनका श्रद्धानकों

सम्यग्दर्शन कहै हैं। सो प्रथम तो अरहंतादिकका स्वरूप अन्यथा कहैं। बहुरि इतने ही श्रद्धानतैं तत्त्व श्रद्धान भए बिना सम्यक्त्व कैसैं होय, तातैं मिथ्या कहै हैं। बहुरि तत्त्वनिका भी श्रद्धानकों सम्यक्त्व कहै हैं प्रयोजन लिए तत्त्वनिका श्रद्धान नाहीं कहै हैं। गुणस्थान मार्गणादिरूप जीव का, अणुस्कन्धादिरूप अजीवका, पाप पुण्यके स्थाननिका, अविरति आदि आस्रवनिका, व्रतादिरूप संवरका, तपश्चरणादिरूप निर्जराका, सिद्ध होने के लिंगादिके भेदनिकरि मोक्षका स्वरूप जैसें उनके शास्त्रविषैं कह्या है, तैसैं सीख लीजिए अर केवलीका वचन प्रमाण है, ऐसैं तत्त्वार्थश्रद्धानकरि सम्यक्त्व भया मानै हैं। सो हम पूछैं हैं, ग्रैवेयिक जानवाला द्रव्यलिंगी मुनिकै ऐसा श्रद्धान हो है कि नाहीं। जो हो है, तो वाकों मिथ्यादृष्टी काहेको कहिए। अर न हो है तो वानै तो जैनलिंग धर्मं बुद्धि करि धर्या है, ताकै देवादिकी प्रतीति कैसैं नाहीं भई ? अर वाकै बहुत शास्त्राभ्यास है, सो वानै जीवादिके भेद कैसैं न जाने। अर अन्यमतका लवलेश भी अभिप्रायमें नाहीं, ताकै अरहंत वचनकी कैसैं प्रतीति नाहीं भई। तातैं वाकै ऐसा श्रद्धान तो होय परन्तु सम्यक्त्व न भया। बहुरि नारकी भोगभूमियाँ तिर्यंच आदिकै ऐसा श्रद्धान होनेका निमित्त नाहीं अर तिनिकै बहुत कालपर्यन्त सम्यक्त्व रहै है। तातैं वाकै ऐसा श्रद्धान नाहीं हों है, तो भी सम्यक्त्व भया। तातैं सम्यक्श्रद्धानका स्वरूप यहु नाहीं। साँचा स्वरूप है, सो आगैं वर्णन करेंगे, सो जानना।

बहुरि जो उनके शास्त्रनिका अभ्यास करना ताकों सम्यग्ज्ञान कहै हैं। सो द्रव्यलिंगी मुनिकै शास्त्राभ्यास होतें भी मिथ्याज्ञान कह्या, असंयत सम्यग्दृष्टिकै विषयादिरूप जानना ताकों सम्यग्ज्ञान कह्या। तातैं यहु स्वरूप नाहीं, सांचा स्वरूप आगे कहेंगे सो जानना। बहुरि उनकरि निरूपित अणुव्रत महाव्रतादिरूप श्रावक यतीका धर्म धारनेकरि सम्यक्चारित्र भया मानै। सो प्रथम तो व्रतादिका स्वरूप अन्यथा कहैं, सो किछू पूर्वे वर्णन विषैं कह्या है। बहुरि द्रव्यलिंगीकै महाव्रत

होतें भी सम्यक्चारित्र न हो है। अर उनका मतके अनुसारि गृहस्था-दिकके महाव्रत आदि अंगीकार किए भी सम्यक्चारित्र हो है, तातै यहु स्वरूप है नाहीं। सांचा स्वरूप अन्य है, सो आगे कहेंगे।

यहां वे कहै हैं—द्रव्यादिलिंगीकै अन्तरंग विषैं पूर्वोक्त श्रद्धा-नादिक न भए, बाह्य ही भए, तातैं सम्यक्त्वादि न भए।

ताका उत्तर—जो अन्तरंग नाहीं अर बाह्य धारै, सो तो कपटकरि धारै। सो वाकै कपट होय तो ग्रैवेयक कैसैं जाय, नरकादि विषैं जाय। बंध तो अन्तरंग परिणामनितैं हो है। सो अन्तरंग जिन-धर्मरूप परिणाम भए बिना ग्रैवेयक जाना सम्भवै नाहीं। बहुरि व्रतादिरूप शुभोपयोगहीतैं देवका बन्ध मानै अर याहीकों मोक्षमार्ग मानै, सो बंधमार्ग मोक्षमार्गकों एक किया; सो यहु मिथ्या है। बहुरि व्यवहार धर्म विषै अनेक विपरीत निरूपैं हैं। निंदकको मारनेमें पाप नाहीं, ऐसा कहै हैं। सो अन्यमती निंदक तीर्थंकरादिकके होतें भी भए, तिनकों इन्द्रादिक मारै नाहीं। सो पाप न होता, तो इन्द्रादिक क्यों न मारे। बहुरि प्रतिमाजीकै आभरणादि बनावैं हैं, सो प्रतिबिम्ब तो वीतराग भाव बधावनेकों कारण स्थापन किया था। आभरणादि बनाए, अन्य मतकी मूर्तिवत् यहु भी भए। इत्यादि कहाँ तांई कहिए, अनेक अन्यथा निरूपण करैं हैं। यौं प्रकार श्वेताम्बर मत कल्पित जानना। यहाँ सम्यग्दर्शन आदिका अन्यथा निरूपणतैं मिथ्या-दर्शनादिकहीकी पुष्टता हो है तातैं याका श्रद्धानादि न करना।

ढूंढकमत निराकरण

बहुरि इन श्वेताम्बरनिविषैं ही ढूंढ़िए प्रगट भए हैं, ते आपकों सांचे धर्मात्मा मानै हैं, सो भ्रम है। काहेतैं सो कहिए है—

केई तो भेष धारि साधु कहावै हैं, सो उनके ग्रन्थनिके अनुसार भी व्रत समिति गुप्ति आदिका साधन नाहीं भासै है। बहुरि देखो मन वचन काय कृत कारित अनुमोदनाकरि सर्व सावद्ययोग त्याग करनेकी प्रतिज्ञा करैं, पीछैं पालैं नाहीं। बालककों वा भोलाकों वा

शूद्रादिकनिकों ही दीक्षा दें। सो ऐसें त्याग करें अर त्याग करतें ही किछू विचार न करें, जो कहा त्याग करूं हूं ? पीछें पालें भी नाहीं अर ताकों सर्व साधु मानें। बहुरि यह कहै—पीछें धर्म बुद्धि हो जाय, तब तो याका भला हो है। सो पहले ही दीक्षा देनेवालेने प्रतिज्ञा भंग होती जानि प्रतिज्ञा कराई, बहुरि याने प्रतिज्ञा अंगीकार करि भंग करी, सो यहु पाप कौनकों लाग्या। पीछें धर्मात्मा होनेका निश्चय कहा। बहुरि जो साधुका धर्म अंगीकार करि यथार्थ न पालै, ताकों साधु मानिए कै न मानिए। जो मानिए, तो जे साधु मुनि नाम धरावै हैं अर भ्रष्ट हैं, तिन सबनिकों साधु मानों। न मानिए, तो इनकै साधुपना न रह्या। तुम जैसे आचरणतें साधु मानो हो, ताका भी पालना कोऊ विरलाकै पाईए है। सबनिकों साधु काहेकों मानो हो।

यहाँ कोऊ कहै—हम तो जाकै यथार्थ आचरण देखेंगे, ताकों साधु मानेंगे, औरकों न मानेंगे। ताकों पूछिए है—

एक संघ विषें बहुत भेषी हैं। तहां जाकै यथार्थ आचरण मानो हो सो वह औरनिकों साधु मानै है कि न मानै है। जो मानै है, तो तुमतें भी अश्रद्धानी भया, ताकों पूज्य कैसें मानों हो। अर न मानै है, तो उन सेती साधुका व्यवहार काहेकों वर्त्तै है। बहुरि आप तो उनकों साधु न मानै अर अपने संघविषें राखि औरनि पासि साधु मनाय औरनिकों अश्रद्धानी करै, ऐसा कपट काहेकों करै। बहुरि तुम जाकों साधु न मानोगे तब अन्य जीवनिकों भी ऐसा ही उपदेश करोगे, इनकों साधु मति मानों, ऐसें धर्म्मपद्धति विषें विरुद्ध होय। अर जाकों तुम साधु मानो हो तिसतें भी तुम्हारा विरुद्ध भया, जातें वह वाकों साधु मानै है। बहुरि तुम जाकै यथार्थ आचरण मानो हो, सो विचारकरि देखो, वह भी यथार्थ मुनि धर्म्म नाहीं पालै है।

कोऊ कहै—अन्य भेषधारीनितें तो घनें अच्छे हैं तातें हम मानें हैं। सो अन्यमतीनि विषें तो नाना प्रकार भेष सम्भवैं, जातें तहाँ

रागभावका निषेध नाहीं। इस जैनमतविषें तो जैसा कह्या, तैसा ही भए साधु संज्ञा होय।

यहाँ कोऊ कहै—शील संयमादि पालें हैं, तपश्चरणादि करें हैं, सो जेता करैं तितना ही भला है।

ताका समाधान—यहु सत्य है, धर्म थोरा भी पाल्या हुआ भला ही है। परन्तु प्रतिज्ञा तो बड़े धर्मकी करिए अर पालिए थोरा, तो तहाँ प्रतिज्ञाभंगतें महापाप हो है। जैसें कोऊ उपवासकी प्रतिज्ञाकरि एकबार भोजन करै तो वाकै बहुत बार भोजनका संयम होतें भी प्रतिज्ञाभंगतें पापी कहिए। तैसें मुनिधर्मकी प्रतिज्ञाकरि कोई किंचित् धर्म्म न पालै, तो वाकों शीलसंयमादि होतें भीं पापी ही कहिए। अर जैसें एकंतकी (एकासनकी) प्रतिज्ञाकरि एक बार भोजन करै, तो धर्मात्मा ही है तैसें अपना श्रावकपद धारि थोरा भी धर्म साधन करै तो धर्मात्मा ही है। यहाँ तो ऊँचा नाम धराय नीची क्रिया करनेतें पापीपना सम्भवै है। यथायोग्य नाम धराय धर्मक्रिया करतें तो पापीपना होता नाहीं। जेता धर्म्म साधै, तितना ही भला है।

यहाँ कोऊ कहै—पंचमकालका अन्तपर्यन्त चतुर्विधि संघका सद्भाव कह्या है। इनिकों साधु न मानिए, तो किसको मानिए ?

ताका उत्तर—जैसें इस कालविषें हंसका सद्भाव कह्या है अर गम्यक्षेत्रविषें हंस नाहीं दीसै हैं, तो औरनिकों तो हंस माने जाते नाहीं, हंसका लक्षण मिलें ही हंस मानें जाँय। तैसें इस कालविषें साधुका सद्भाव है अर गम्यक्षेत्रविषें साधु न दीसै हैं, तो औरनिकों तो साधु माने जाते नाहीं, साधु लक्षण मिलें ही साधु माने जांय। बहुरि इनका भी प्रचार थोरे ही क्षेत्रविषें दीसै है, तहांतें परे क्षेत्रविषें साधुका सद्भाव कैसें मानैं ? जो लक्षण मिलें मानैं, तो तहाँ भी ऐसें ही मानों। अर बिना लक्षण मिले ही मानैं, तो यहाँ अन्य कुलिंगी हैं तिनहोकों साधु मानों। ऐसें विपरीति होय, तातैं बनैं नाहीं। कोऊ कहै—इस पंचमकालमें ऐसें भी साधुपद हो है; तो ऐसा सिद्धांतका

वचन बताओ। बिना ही सिद्धांत तुम मानो हो, तो पापी होगा। ऐसें अनेक युक्तिकरि इनिकै साधुपना बनैं नाहीं है। अर साधुपना बिना साधु मानि गुरु मानें मिथ्यादर्शन हो है, जातें भले साधुकों गुरू मानें ही सम्यग्दर्शन हो है।

प्रतिमाधारी श्रावक न होनेकी मान्यता का निषेध

बहुरि श्रावक धर्मकी अन्यथा प्रवृत्ति करावै हैं। त्रसकी हिंसा स्थूल मृषादिक होतें भी जाका किछू प्रयोजन नाहीं, ऐसा किंचित् त्याग कराय वाकों देशव्रती भया कहैं। सो वह त्रसघातादिक जामें होय ऐसा कार्य करै। सो देशव्रत गुणस्थानविषै तो ग्यारह अविरति कहे हैं, तहां त्रसघात कैसे सम्भवै ? बहुरि ग्यारह प्रतिमा भेद श्रावक के हैं, तिन विषै दशमी ग्यारमी प्रतिमाधारक श्रावक तो कोई होता ही नाहीं अर साधु होय। पूछै, तब कहैं—पडिमाधारी श्रावक अबार होय सकता नाहीं। सो देखो, श्रावकधर्म्म तो कठिन अर मुनिधर्म्म सुगम—ऐसा विरुद्ध भाषै हैं। बहुरि ग्यारमी प्रतिमा धारककै थोरा परिग्रह, मुनिकै बहुतपरिग्रह बतावैं, सो सम्भवता वचन नाहीं। बहुरि कहैं, ए प्रतिमा तो थोरे ही काल पाल छोड़ि दीजिए हैं। सो ए कार्य उत्तम हैं तो धर्म्म बुद्धि ऊँची क्रियाकों काहेकों छोरै अर नीचे कार्य हैं तो काहेकों अंगीकार करै। यहु सम्भवै ही नाहीं। बहुरि कुदेव कुगुरुकों नमस्कारादिक करतें भी श्रावकपना बतावैं। कहैं, धर्म्मबुद्धि करि तो नाहीं बन्दै हैं, लौकिक व्यवहार है। सो सिद्धांत तो तिनि-की प्रशंसा स्तवनकों भी सम्यक्त्वका अतिचार कहैं अर गृहस्थनिका भला मनावनेके अर्थि बन्दना करतें भी किछू न कहैं। बहुरि कहोगे—भय लज्जा कुतूहलादिकरि बन्दैं हैं; तो इनिही कारणनिकरि कुशीलादि सेवन करतें भी पाप मति कहो, अन्तरंग विषै पापजान्या चाहिए। ऐसैं सर्व आचारनविर्षैविरुद्ध होगा। देखो मिथ्यात्वसारिखे महापाप की प्रवृत्ति छुड़ावनेकी तो मुख्यता नाहीं अर पवनकायकी हिंसा ठह-राय उघारे मुख बोलना छुड़ावनेकी मुख्यता पाइए। सो क्रमभंग

उपदेश है। बहुरि धर्मके अंग अनेक हैं, तिनविषै एक परजीवकी दया ताकों मुख्य कहैं हैं, ताका भी विवेक नाहीं। जलका छानना, अन्नका शोधना, सदोष वस्तुका भक्षण न करना, हिंसादिकरूप व्यापार न करना इत्यादि याके अंगनिकी तो मुख्यता नाहीं।

मुँहपत्तिका निषेध

बहुरि पाटोका बाँधना, शौचादिक थोरा करना, इत्यादि कार्यनि की मुख्यता करै हैं। सो मैलयुक्त पाटोकैथूकका सम्बन्धतैं जोव उपजै तिनका तो यत्न नाहीं अर पवनकी हिंसाका यत्न बतावै। सो नासिकाकरि बहुत पवन निकसै, ताका तो यत्न करते ही नाहीं। बहुरि जो उनका शास्त्रके अनुसारि बोलनेहीका यत्न किया, तो सर्वदा काहेको राखिए। बोलिए, तब यत्न कर लीजिए। बहुरि जो कहैं— भूलि जाइए। तो इतना भी याद न रहै, तो अन्य धर्मसाधन कैसै होगा? बहुरि शौचादिक थोरे करिए, सो सम्भवता शौच तो मुनि भी करै हैं। तातै गृहस्थकों अपने योग्य शौच करना। स्त्रीसंगमादिकरि शौच किए बिना सामायिकादि क्रिया करनेतै अविनय, विक्षिप्तता-आदि करि पाप उपजै। ऐसैं जिनकी मुख्यता करै, तिनका भी ठिकाना नाहीं अर केई दयाके अंग योग्य पालैं हैं, हरितकायका त्याग आदि करैं, जल थोरा नाखैं, इनका हम निषेध करते नाहीं।

मूर्तिपूजा निषेध का निराकरण

बहुरि इस अहिंसाका एकान्त पकड़ि प्रतिमा चैत्यालयपूजनादि क्रियाका उत्थापन करै हैं। सो उनहीके शास्त्रनिविषैं प्रतिमाआदिका निरूपण है, ताकों आग्रहकरि लोपै हैं. भगवती सूत्रविषैं ऋद्धिधारी मुनिका निरूपण है तहां मेरुगिरि आदिविषैं जाय। "तत्थ चेययाइं वंदई" ऐसा पाठ है। याका अर्थ यहु—तहाँ चैत्यनिकों वंदै हैं। सो चैत्य नाम प्रतिमाका प्रसिद्ध है। बहुरि वे हठकरि कहै हैं—चैत्य शब्दके ज्ञानादिक अनेक अर्थ निपजै हैं, सो अन्य अर्थ हैं, प्रतिमाका

अर्थ नाहीं। याकों पूछिए है—मेरुगिरि नन्दीश्वरद्वीपविषैं जाय तहाँ चैत्यवंदना करी, सो वहाँ ज्ञानादिककी वंदना करने का अर्थ कैसे सम्भवै ? ज्ञानादिककी वंदना तो सर्वत्र सम्भवै। जो वंदनें योग्य चैत्य वहां सम्भवै अर सर्वत्र न सम्भवैं, ताकों तहाँ बंदनाकरनेका विशेष सम्भवै, तो ऐसा सम्भवता अर्थ प्रतिमा ही है अर चैत्यशब्दका मुख्य अर्थप्रतिमा ही है, सो प्रसिद्ध है। इस ही अर्थकरि चैत्यालय नाम संभवै है। याकों हठकरि काहेकों लीजिए।

बहुरि नन्दीश्वर द्वीपादिकविषैं जाय, देवादिक पूजनादि क्रिया करें हैं, ताका व्याख्यान उनकैं जहां तहाँ पाइए हैं। बहुरि लोकविषैं जहाँ तहाँ अकृत्रिम प्रतिमाका निरूपण है। सो या रचना अनादि है सों यह रचना भोग कुतूहलादिकके अर्थ तो है नाहीं। अर इन्द्रादिक-निके स्थाननिविषैं निःप्रयोजन रचना सम्भवै नाहीं। सो इन्द्रादिक तिनको देखि कहा करें हैं। कै तो अपने मंदिरनिविषैं निःप्रयोजन रचना देखि उसतें उदासीन होते होंगे, तहां दुःखी होते होंगे, सो सम्भवै नाहीं। कै आछी रचना देखि विषय पोषते होंगे, सो अर्हंत मूर्त्तिकरि सम्यग्दृष्टी अपना विषय पोषै, यह भी संभवै नाहीं। तातें तहाँ तिनकी भक्तिआदिक ही करें हैं, यह ही संभवै है। सो उनकै सूर्याभदेवका व्याख्यान है। तहां प्रतिमाजीके पूजनेका विशेष वर्णन किया है। याको गोपनेके अर्थि कहै हैं, देवनिका ऐसा ही कर्त्तव्य है। सो सांच, परन्तु कर्त्तव्य का तो फल होय ही होय। सो तहां धर्म हो है कि पाप हो है। जो धर्म हो है, तो अन्यत्र पाप होता था, यहाँ धर्म भया। याकां औरनिके सदृश कैसें कहिए ? यहु तो योग्य कार्य भया। अर पाप हो है तो तहाँ 'णमोत्थुणं' का पाठ पढ़्या, सो पापके ठिकानैं ऐसा पाठ काहेकों पढ़्या। बहुरि एक विचार यहां यहु आया, जो 'णमोत्थुणं' के पाठ विषैं तो अरहंतकी भक्ति है। सो प्रतिमाजीके आगें जाय यहु पाठ पढ़्या, तातैं प्रतिमाजीके आगें जो अरहंतभक्तिकी क्रिया है सो करनी युक्त भई। बहुरि जो वे ऐसा कहैं—देवनिकै ऐसा

कार्य है, मनुष्यनिकै नाहीं; जातै मनुष्यनिके प्रतिमा आदि बनावनै विषें हिंसा हो है। तो उन्हीके शास्त्रनिविषें ऐसा कथन है, द्रोपदी राणी प्रतिमाजीका पूजनादिक जैसें सूर्याभदेव किया, तैसें करती भई। तातैं मनुष्यादिकै भी ऐसा कार्य कर्त्तव्य है। यहां एक यहु विचार आया—चैत्यालय प्रतिमा बनावनेकी प्रवृत्ति न थी, तो द्रोपदी कैसें प्रतिमाका पूजन किया। बहुरि प्रवृत्ति थी, तो बनावनेवाले धर्मात्मा थे कि पापी थे। जो धर्मात्मा थे तो गृहस्थनिकों ऐसा कार्य करना योग्य भया अर पापी भी थे तो तहां भोगादिकका प्रयोजन तो था नाहीं, काहेकों बनाया। बहुरि द्रोपदी तहां 'णमोत्थुणं' का पाठ किया वा पूजनादि किया, सो कुतूहल किया कि धर्म किया। जो कुतूहल किया तो महापापिणी भई। धर्मविषें कुतूहल कहा। अर धर्म किया तो औरनिकों भी प्रतिमाजीकी स्तुति पूजा करनी युक्त है। बहुरि वे ऐसी मिथ्यायुक्ति बनावैं हैं—जैसें इन्द्रकी स्थापनातैं इन्द्रका कार्य सिद्ध नाहीं, तैसें अरहंत प्रतिमा करि कार्य सिद्ध नाहीं। सो अरहंत आप काहूकों भक्त मानि भला करते होंय तौ तो ऐसें भी मानैं। सो वे वीतराग हैं। यहु जीव भक्ति रूप अपने भावनितैं शुभफल पावै है। जैसें स्त्री का आकार रूप काष्ठ पाषाणकी मूर्ति देखि, तहां विकाररूप होय अनुराग करैं, तो ताकै पाप बन्ध होय। तैसें अरहंत का आकाररूप धातु पाषाणादिक की मूर्ति देखि धर्म बुद्धितैं तहां अनुराग करैं, तो शुभकी प्राप्ति कैसें न होइ। तहां वे कहैं हैं, बिना प्रतिमा ही हम अरहंत विषें अनुरागकरि शुभ उपजावेंगे। तो इनिकों कहिए है—आकार देखें जैसा भाव होय, तैसा परोक्ष स्मरण किए होय नाहीं। याहीतैं लोकविषें भी स्त्रीका अनुरागी स्त्रीका चित्र बनावैं हैं। तातैं प्रतिमाका आलंबनिकरि भक्ति विशेष होनेतैं विशेष शुभकी प्राप्ति हो है।

बहुरि कोऊ कहै—प्रतिमाकों देखो, परन्तु पूजनादिक करने का कहा प्रयोजन है?

ताका उत्तर—जैसें कोऊ किसी जीव का आकार बनाय घात करै तो वाकै उस जीवकी हिंसा किए का सा पाप निपजै वा कोऊ काहूका आकार बनाय द्वेष बुद्धितें वाकी बुरी अवस्था करै तो जाका आकार बनाया वाकी बुरी अवस्था किए का सा फल निपजै। तैसें अरहंतका आकार बनाय राग बुद्धितें पूजनादि करै तो अरहंतके पूजनादि किए का सा शुभ (भाव) निपजै वा तैसा ही फल होय। अति अनुराग भए प्रत्यक्ष दर्शन न होतें आकार बनाय पूजनादि करिये है। इस धर्मानुरागतें महापुण्य उपजै है।

बहुरि ऐसा कुतर्क करै हैं—जो जाकै जिस वस्तुका त्याग होय ताके आगें तिस वस्तुका धरना हास्य करना है। तातैं बंदनादिकरि अरहंतका पूजन युक्त नाहीं।

ताका समाधान—मुनिपद लेतें ही सर्व परिग्रह त्याग किया था, केवलज्ञान भए पीछें तीर्थंकरदेवकै समवशरणादि बनाए, छत्र चामरादि किए, सो हास्य करी कि भक्ति करी। हास्य करी तो इन्द्र महापापी भया, सो बनै नाहीं। भक्ति करी तो पूजनादिविषैं भी भक्ति ही करिए है। छद्मस्थके आगें त्याग करी वस्तुका धरना हास्य करना है, जातैं वाकै विक्षिप्तता होय आवै है। केवलीकै वा प्रतिमाके आगें अनुरागकरि उत्तम वस्तु धरने का दोष नाहीं। उनकै विक्षिप्तता होय नाहीं। धर्मानुरागतें जीवका भला होय।

वहुरि वे कहै हैं—प्रतिमा बनावने विषैं, चैत्यालयादि करावने विषैं, पूजनादि करावने विषैं हिंसा होय अर धर्म अहिंसा है। तातैं हिंसाकरि धर्म माननेतें महापाप हो है, तातैं हम इन कार्यनिकों निषेधैं हैं।

ताका उत्तर—उनही के शास्त्रविषैं ऐसा वचन है—

सुच्चा जाणइ कल्लाणं सुच्चा जाणइ पावगं।
उभयं पि जाणए सुच्चा जं सेय तं समायर ॥१॥

यहाँ कल्याण पाप उभय ए तीन शास्त्र सुनिकरि जाणें; ऐसा कह्या। सो उभय तो पाप अर कल्याण मिलें होय सो ऐसा कार्यका भी होना ठहरया। तहाँ पूछिए है—केवल धर्म्मतें तो उभय घाटि है ही अर केवल पापतें उभय बुरा है कि भला है। जो बुरा है तो यामें तो किछू कल्याणका अंश मिल्या, पापतें बुरा कैसे कहिए। भला है तो केवल पाप छांड़ ऐसा कार्य करना ठहर्‌या। बहुरि युक्तिकरि भी ऐसें ही संभवै है। कोऊ त्यागी होय, मन्दिरादिक नाहीं करावे है वा सामायिकादिक निरवद्य कार्यनिविषै प्रवर्तै है। ताकों तो छोरि प्रतिमादि करावना वा पूजनादि करना उचित नाहीं। परन्तु कोई अपने रहनेके वास्ते मन्दिर बनावें, तिसतें तो चैत्यालयादि करावनेवाला हीन नाहीं। हिंसा तो भई परन्तु वाकै तो लोभ पापानुरागकी वृद्धि भई; याकै लोभ छूट्या, धर्म्मानुराग भया। बहुरि कोई व्यापारादि कार्य करै, तिसतें तो पूजनादि कार्य करना हीन नाहीं। वहाँ तो हिंसादि बहुत हो है, लोभादि बधै है, पापहीकी प्रवृत्ति है। यहाँ हिंसादिक भी किंचित् हो है, लोभादिक घटै है, धर्म्मानुराग बधै है। ऐसें जो त्यागी न होय, अपने धनकों पापविषें खरचते होंय तिनको चैत्यालयादि करावना। अर जे निरवद्य सामायिकादि कार्यनिविषैं उपयोगकों नाहीं लगाय सकैं, तिनकों पूजनादि करना निषेध नाहीं।

बहुरि तुम कहोगे, निरवद्य सामायिक आदि कार्य ही क्यों न करै, धर्म विषैं काल गमावना तहां ऐसे कार्य काहेकों करै ?

ताका उत्तर—जो शरीरकरि पाप छोरै ही निरवद्यपना होय, तो ऐसें ही करैं परन्तु परिणामनिविषैं पाप छूटैं निरवद्यपना हो है। सो बिना अवलम्बन सामायिकादिविषै जाका परिणाम लागै नाहीं सो पूजनादिकरि तहां अपना उपयोग लगावै है। तहां नानाप्रकार आलम्बनकरि उपयोग लगि जाय है। जो तहां उपयोग को न लगावै, तो पापकार्यनिविषैं उपयोग भटकै तब बुरा होय। तातैं तहाँ प्रवृत्ति करनी युक्त है। बहुरि तुम कहो हो--धर्म्मके अर्थ हिंसा किए तो

महां पाप हो है, अन्यत्र हिंसा किए थोरा पाप हो है। सो यह प्रथम तो सिद्धान्तका वचन नाहीं अर युक्तितैं भी मिलै नाहीं। जातैं ऐसैं मानें इन्द्र जन्मकल्याणकविषैं बहुत जलकरि अभिषेक करै है, समवसरणविषैं देव पुष्पवृष्टि चमर ढालना इत्यादि कार्य करै हैं; सो ये महापापी होंय। जो तुम कहोगे, उनका ऐसा ही व्यवहार है, तो क्रियाका फल तो भए बिना रहता नाहीं। जो पाप है तो इन्द्रादिक सम्यग्दृष्टी हैं, ऐसा कार्य काहेकों करैं अर धर्म्म है तो काहेकों निषेध करो हो। बहुरि भला तुमहीकों पूछें हैं—तीर्थंकरकी वन्दनाकों राजादिक गए, साधुकी वंदनाकों दूरि भी जाईये है, सिद्धान्त सुनने आदि कार्य करनेकों गमनादि करिये है, तहां मार्गविषैं हिंसा भई। बहुरि साधर्म्मी जिमाइए है, साधुका मरण भये ताका संस्कार करिये है, साधु होते उत्सव करिये है, इत्यादि प्रवृत्ति अब भी दीसै है। सो यहां भी हिंसा हो है। सो ये कार्य्य तो धर्म्महीके अर्थ हैं, अन्य कोई प्रयोजन नाहीं। जो यहां महापाप उपजै है, तो पूर्वै ऐसे कार्य किए तिनका निषेध करो। अर अब भी गृहस्थ ऐसा कार्य करैं हैं, तिनका त्याग करो। बहुरि जो धर्म्म उपजै है तो धर्मके अर्थि हिंसाविषैं महापाप बताय काहेकों भ्रमावो हो। तातैं ऐसैं मानना युक्त है—जैसे थोरा धन ठिगाएं बहुत धनका लाभ होय तो कार्य करना, तैसें थोरा हिंसादिक पाप भए बहुत धर्म्म निपजै तो वह कार्य करना। जो थोरा धनका लोभकरि कार्य बिगारै तो मूर्ख है। तैसें थोरी हिंसाका भयतैं बड़ा धर्म छोरै तो पापी ही होय। बहुरि कोऊ बहुत धन छिपावै अर स्तोक धन उपजावै वा न उपजावै तो वह मूर्ख ही है। तैसैं बहुत हिंसादिकरि बहुतपाप उपजावै अर भक्ति आदि धर्म्मविषैं थोरा प्रवर्तै वा न प्रवर्तै तो वह पापी हो है। बहुरि जैसैं बिना ठिगाये ही धनका लाभ होतैं ठिगावै तो मूर्ख है। तैसें निरवद्य धर्म्मरूप उपयोग होतैं सावद्य धर्मविषैं उपयोग लगावना युक्त नाहीं। ऐसैं अपने परिणामनिकी अवस्था देखि भला होय सो करना। एकान्तपक्ष कार्यकारी

नाहीं। बहुरि अहिंसा ही केवल धर्म्मका अंग नाहीं है। रागादिक-निका घटना धर्म्मका अंग मुख्य है। तातैं जैसैं परिणामनिविषैं रागादिक घटैं सो कार्य करना।

बहुरि गृहस्थनिकों अणुव्रतादिका साधन भए बिना ही सामायिक, पडिकमणो, पोसह आदि क्रियानिका मुख्य आचरण करावैं हैं। सो सामायिक तो रागद्वेषरहित साम्यभाव भये होय, पाठ मात्र पढ़े वा उठना बैठना किए ही तो होइ नाहीं। बहुरि कहोगे—अन्य कार्य करता तातैं तो भला है। सो सत्य, परन्तु सामायिकपाठ विषैं प्रतिज्ञा तो ऐसी करै, जो मनवचनकायकरि सावद्यकों न करूँगा, न कराऊँगा अर मनविषैं तो विकल्प हुआ करै। अर वचनकायविषैं भी कदाचित् अन्यथा प्रवृत्ति होय तहाँ प्रतिज्ञाभंग होय। सो प्रतिज्ञाभंग करनेतैं न करनी भली। जातैं प्रतिज्ञाभंगका महापाप है।

बहुरि हम पूछैं हैं—कोऊ प्रतिज्ञा भी न करै है अर भाषापाठ पढ़ै है, ताका अर्थ जानि तिसविषैं उपयोग राखै है। कोऊ प्रतिज्ञा करै, ताकों तो नीके पालै नाहीं अर प्राकृतादिकका पाठ पढ़ै, ताके अर्थका आपकों ज्ञान नाहीं, बिना अर्थ जाने तहाँ उपयोग रहै नाहीं, तब उपयोग अन्यत्र भटकै। ऐसैं इन दोऊनिविषैं विशेष धर्मात्मा कौन? जो पहलेकों कहोगे, तो ऐसा ही उपदेश क्यों न दीजिए। दूसरेकों कहोगे तो प्रतिज्ञा भंगका पाप भया वा परिणामनिके अनुसार धर्मात्मापना न ठहर्‌या। पाठादि करनेके अनुसारि ठहर्‌या। तातैं अपना उपयोग जैसैं निर्मल होय सो कार्य करना। सधै सो प्रतिज्ञा करनी। जाका अर्थ जानिए सो पाठ पढ़ना। पद्धति करि नाम धरावनेमें नफा नाहीं। बहुरि पडिकमणो नाम पूर्वदोष निराकरण करने का है। सो 'मिच्छामि दुक्कडं' इतना कहे ही तो दुष्कृत मिथ्या न होय, किया दुःकृत मिथ्या होनें योग्य परिणाम भये दुःकृत मिथ्या होय। तातें पाठ ही कार्यकारी नाहीं। बहुरि पडिकमणाका पाठ विषैं ऐसा अर्थ है, जो बारह व्रतादिकविषैं जो दुष्कृत लाग्या होय सो मिथ्या होय। सो व्रत

धारै बिना ही तिनका पडिकमणा करना कैसें सम्भवै ? जाकै उपवास न होय, सो उपवासविषैं लाग्या दोषका निराकरण करै तो असंभवपना होय। तातैं यह पाठ पढ़ना कौन प्रकार बनै ? बहुरि पोसहविषैं भी सामायिकवत् प्रतिज्ञाकरि नाहीं पालै हैं। तातैं पूर्वोक्त ही दोष है। बहुरि पोसह नाम तो पर्वका है। सो पर्वके दिन भी केतायक कालपर्यन्त पापक्रिया करै पीछें पोसहधारी होय। सो जेतें काल बनै तेते काल साधन करनेका तो दोष नाहीं। परन्तु पोषहका नाम करिए सो युक्त नाहीं। सम्पूर्ण पर्वविषैं निरवद्य रहैं ही पोसह होय। जो थोरा भी कालतैं पोसह नाम होय तो सामायिककों भी पोसह कहो, नाहीं शास्त्र विषैं प्रमाण बतावो, जघन्य पोसहका इतना काल है। सो बड़ा नाम धराय लोगनिकों भ्रमावना, यहु प्रयोजन भासै है। बहुरि आखड़ी लेनेका पाठ तो और पढ़ै, अंगीकार और करै। सो पाठविषैं तो "मेरे त्याग है" ऐसा वचन है, तातैं जो त्याग करै सो ही पाठ पढ़ै, यह चाहिये। जो पाठ न आवै तो भाषा हीतैं कहै। परन्तु पद्धतिके अर्थ यह रीति है। बहुरि प्रतिज्ञा ग्रहण करने करावनेकी तो मुख्यता अर यथाविधि पालनेकी शिथिलता वा भाव निर्मल होने का विवेक नाहीं। आर्त्तपरिणामनिकरि वा लोभादिककरि भी उपवास करै, तहाँ धर्म्म मानै। सो फल तो परिणामनितैं हो है। इत्यादि अनेक कल्पित बातैं करै हैं, सो जैनधर्म्मविषैं सम्भवै नाहीं। ऐसैं यहु जैनविषै श्वेताम्बरमत है, सो भी देवादिकका वा तत्त्वनिका वा मोक्षमार्गादिकका अन्यथा निरूपण करै है। तातैं मिथ्यादर्शनादिकका पोषक है, सो त्याज्य है। सांचा जिन धर्म्म का स्वरूप आगैं कहैं हैं। ताकरि मोक्षमार्गविषै प्रवर्त्तना योग्य है। तहाँ प्रवर्त्तै तुम्हारा कल्याण होगा।

इति श्री मोक्षमार्गप्रकाशक शास्त्रविषैं अन्यमत निरूपण पाचवां अधिकार समाप्त भया ॥ ५ ॥

ॐ नमः

छठा अधिकार

कुदेव, कुगुरु और कुधर्म का प्रतिषेध

दोहा

मिथ्या देवादिक भजें, हो है मिथ्याभाव।
तज तिनकों सांचे भजौ, यह हितहेतु उपाव ॥१॥

अर्थ—अनादितें जीवनिकै मिथ्यादर्शनादिक भाव पाइए है, तिनिकी पुष्टताकों कारण कुदेव कुगुरु कुधर्म्म सेवन है। ताका त्याग भए मोक्षमार्गविषैं प्रवृति होय। तातैं इनका निरूपण कीजिए है।

कुदेव का निरूपण और उसके श्रद्धानादिक का निषेध

तहां जे हितका कर्त्ता नाहीं अर तिनकों भ्रमतें हितका कर्त्ता जानि सेइए सो कुदेव हैं। तिनका सेवन तीन प्रकार प्रयोजन लिए करिए है। कहीं तो मोक्षका प्रयोजन है। कहीं परलोकका प्रयोजन है। कहीं इस लोकका प्रयोजन है। सो ये प्रयोजन सो सिद्ध होंय नाहीं। किछू विशेष हानि होय। तातैं तिनका सेवन मिथ्याभाव है। सोई दिखाईए है—

अन्यमतनिविषैं जिनके सेवनतैं मुक्ति होनी कही है, तिनकों केई जीव मोक्षके अर्थ सेवन करें हैं, सो मोक्ष होय नाहीं। तिनका वर्णन पूर्वें अन्यमत अधिकारविषैं कह्या ही है, बहुरि अन्यमत विषैं कहे देव, तिनकों केई परलोकविषैं सुख होय, दुःख न होय ऐसे प्रयोजन लिए सेवैं हैं। सो ऐसी सिद्धि तो पुण्य उपजाए अर पाप न उपजाए हो है। सो आप तो पाप उपजावै है अर कहै ईश्वर हमारा भला करेगा, तो तहां अन्याय ठहर्या। काहूकों पापका फल दे, काहूकों न

है सो ऐसें तो है नाहीं। जैसा अपना परिणाम करेगा, तैसा ही फल पावेगा। काहूका बुरा भला करने वाला ईश्वर है नाहीं। बहुरि तिन देवनिका सेवन करतें तिन देवनिका तो नाम करै अर अन्य जीवनिकी हिंसा करै वा भोजन नृत्यादिकरि अपनी इन्द्रियनिका विषय पोषैं, सो पाप परिणामनिका फल तो लागे बिना रहने का नाहीं। हिंसा विषय कषायनिकों सर्व पाप कहैं हैं। अर पाप का फल भी खोटा ही सर्व मानैं हैं। बहुरि कुदेवनिका सेवन विषैं हिंसा विषयादिकही का अधिकार है। तातैं कुदेवनिका सेवनतैं परलोकविषैं भला न हो है।

बहुरि घने जीव इस पर्याय सम्बन्धी शत्रुनाशादिक वा रोगादिक मिटवाना वा धनादिककी प्राप्ति वा पुत्रादिककी प्राप्ति इत्यादि दुःख मेटने का वा सुख पावनेका अनेक प्रयोजन लिए कुदेवनिका सेवन करें हैं। बहुरि हनुमानादिकों पूजें हैं. बहुरि देवीनिकों पूजें हैं। बहुरि गणगौर सांझी आदि बनाय पूजें हैं। चौथि शीतला दिहाड़ी आदिकों पूजें हैं। बहुरि अऊत पितर व्यंतरादिककों पूजें हैं। बहुरि सूर्य चन्द्रमा शनिश्चरादि ज्योतिषीनिकों पूजें हैं। बहुरि पीर पैगम्बरादिकनिकों पूजें हैं। बहुरि गऊ घोटकादिक तिर्यंचनिकों पूजें हैं। अग्नि जलादिककों पूजें हैं शस्त्रादिककों पूजें हैं। बहुत का कहा कहिए, रोड़ी इत्यादिककों भी पूजें हैं। सो ऐसें कुदेवनिका सेवन मिथ्यादृष्टितें हो है। काहेतें, प्रथम तो जिनका सेवन करै सो केइ तो कल्पना मात्र ही देव हैं। सो तिनका सेवन कार्यकारी कैसें होय। बहुरि केई व्यन्तरादिक हैं, सो ए काहूका भला बुरा करनेकों समर्थ नाहीं। जो वे ही समर्थ होंय, तो वे ही कर्त्ता ठहरैं। सो तो उनका किया किछू होता दीसता नाहीं। प्रसन्न होय धनादिक देय सकैं नाहीं। द्वेषी होय बुरा कर सकते नाहीं।

इहां कोऊ कहै—दुःख तो देते देखिए हैं, मानेतैं दुःख देते रहि जाय हैं।

ताका उत्तर—याकैं पापका उदय होय, तब ऐसी ही उनकै

कुतूहल बुद्धि होय, ताकरि वे चेष्टा करैं, चेष्टा करतें यहु दुःखी होय। बहुरि वे कुतूहलतें किछू कहैं, यहु कह्या करै तब वे चेष्टा करनेतें रहि जांय। बहुरि याकों शिथिल जानि कुतूहल किया करैं। बहुरि जो याकै पुण्यका उदय होय तो किछू कर सकते नाहीं। सो भी देखिए हैं—कोऊ जीव उनकों पूजैं नाहीं वा उनको निन्दा करैं वा वे भी उसतै द्वेष करैं परन्तु ताकों दुःख देई सकैं नाहीं। वा ऐसे भी कहते देखिए है, जो फलाना हमकों मानें नाहीं परन्तु उसतैं किछू हमारा वश नाहीं। तातैं व्यन्तरादिक किछ करनेकों समर्थ नाहीं। याका पुण्य पापहीतैं सुख दुःख हो है। उनके मानें पूजें उलटा लागै है, किछू कार्य सिद्धि नाहीं। बहुरि ऐसा जानना—जे कल्पित देव हैं, तिनका भी कहीं अतिशय चमत्कार होता देखिए है सो व्यन्तरादिक करि किया हो है। कोई पूर्व पर्यायविषैं उनका सेवक था, पीछें मरि व्यन्तरादि भया, तहां ही कोई निमित्ततैं ऐसी बुद्धि भई, तब वह लोकविषैं तिनिके सेवनें की प्रवृत्ति कराने के अर्थि कोई चमत्कार दिखावै है। जगत् भोला, किंचित् चमत्कार देखि तिस कार्य विषैं लग जाय है। जैसें जिन प्रतिमादिकका भी अतिशय होता सुनिए वा देखिए है सो जिनकृत नाहीं, जैनो व्यन्तरादिकृत हो है। तैसें ही कुदेवनिका कोई चमत्कार होय, सो उनके अनुचरी व्यन्तरादिकनिकरि किया हो है, ऐसा जानना। बहुरि अन्यमतविषैं भक्तनिकी सहाय परमेश्वर करी वा प्रत्यक्ष दर्शन दिए इत्यादि कहैं हैं। तहां केई तो कल्पित बातें कही हैं। केई उनके अनुचरी व्यन्तरादिककरि किए कार्यनिकों परमेश्वरके किए कहै हैं। जो परमेश्वरके किए होंय तो परमेश्वर तो त्रिकालज्ञ छै। सर्व प्रकार समर्थ छै। भक्तकों दुःख काहेकों होनें दे। बहुरि अबहू देखिए है। म्लेच्छ आय भक्तनिकों उपद्रव करैं हैं, धर्म विध्वंस करैं हैं, मूर्तिको विघ्न करैं हैं, सो परमेश्वरकों ऐसे कार्यका ज्ञान न होय तो सर्वज्ञपनों रहै नाहीं। जाने पीछें सहाय न करै तो भक्त वत्सलता गई वा सामर्थ्यहीन भया। बहुरि साक्षीभूत रहै है तो आगैं

भक्तनिकी सहाय करी कहिए है सो झूंठ है। उनकी तो एकसी वृत्ति है। बहुरि जो कहोगे—वैसी भक्ति नाहीं है। तो म्लेच्छनितैं तो भले हैं वा मूर्ति आदि तो उनही की स्थापना थी, तिनिका विघ्न तो न होने देना था। बहुरि म्लेच्छपापोनिका उदय हो है, सो परमेश्वर का किया है कि नाहीं। जो परमेश्वरका किया है, तो निन्दकनिकों सुखी करै, भक्तनिकों दुखदायक करै, तहाँ भक्तवत्सलपना कैसे रह्या? अर परमेश्वरका किया न हो है, तो परमेश्वर सामर्थ्यहीन भया। तातैं परमेश्वरकृत कार्य नाहीं। कोई अनुचरी व्यन्तरादिक ही चमत्कार दिखावै है। ऐसा ही निश्चय करना।

बहुरि इहाँ कोऊ पूछै कि कोई व्यंतर अपना प्रभुत्व कहै वा अप्रत्यक्षकों बताय दे, कोऊ कुस्थानवासादिक बताय अपनी हीनता कहै, पूछिए सो न बतावै, भ्रमरूप वचन कहै वा औरनिकों अन्यथा परिणमावै, औरनिकों दुःखदे, इत्यादि विचित्रता कैसे है?

ताका उत्तर—व्यंतरनिविषैं प्रभुत्व की अधिक हीनता तो है परन्तु जो कुस्थान विषैं वासादिक बताय हीनता दिखावैं हैं सो तो कुतूहलतैं वचन कहै हैं। व्यन्तर बालकवत् कुतूहल किया करैं। सो जैसैं बालक कुतूहलकरि आपकों हीन दिखाव, चिड़ावै, गाली सुनै, बार पाड़ै (ऊँचे स्वरसे रोवै) पीछे हँसने लगि जाय, तैसैं ही व्यंतर चेष्टा करैं हैं। जो कुस्थानहीके वासी होंय, तो उत्तम स्थानविषैं आवैं हैं तहाँ कौनके ल्याए आवैं हैं। आपहीतैं आवैं हैं, तो अपनी शक्ति होतें कुस्थानविषैं काहेकों रहैं? तातैं इनिका ठिकाना तो जहाँ उपजै हैं, तहां इस पृथ्वीके नीचे वा ऊपरि है सो मनोज्ञ है। कुतूहलके लिए चाहै सो कहै हैं। बहुरि जो इनकों पीड़ा होती होय तो रोवते-रोवते हँसने कैसैं लगि जांय हैं। इतना है, मन्त्रादिकको अचिन्त्य-शक्ति है सो कोई सांचा मन्त्रके निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध होय तो वाकैं किंचित् गमनादि न होय सकै वा किंचित् दुःख उपजै वा कोई प्रबल वाको मनै करै तब रहि जाय वा आप ही रहि जाय। इत्यादि

मन्त्रकी शक्ति है परन्तु जलावना आदि नहीं है। मन्त्र वाला जलाया कहै, बहुरि वह प्रगट होय जाय, जातैं वैक्रियिक शरीरका जलावना आदि सम्भवै नाहीं। बहुरि व्यंतरनिकै अवधिज्ञान काहूकै स्तोक क्षेत्र काल जाननेका है, काहूकै बहुत है। तहाँ वाकै इच्छा होय अर आपकै बहुत ज्ञान होय तो अप्रत्यक्षकों पूछै ताका उत्तर दें तथा आपकैं स्तोक ज्ञान होय तो अन्य महत्ज्ञानीकों पूछि आय करि जबाब दें। बहुरि आपके स्तोक ज्ञान होय वा इच्छा न होय, तो पूछैं ताका उत्तर न दें, ऐसा जानना। बहुरि स्तोकज्ञानवाला व्यंतरादिककैं उपजता केतेक काल ही पूर्व जन्मका ज्ञान होय सकै, पीछैं ताका स्मरण मात्र रहै है तातैं तहाँ कोई इच्छाकरि आप किछू चेष्टा करैं तो करै। बहुरि पूर्व-जन्मकी बातैं कहै। कोऊ अन्य वार्ता पूछै तो अवधि तो थोरा, बिना जानें कैसें कहै। बहुरि जाका उत्तर आप न देय सकै वा इच्छा न होय, तहाँ मान कुतूहलादिकतैं उत्तर न दे वा झूंठ बोलै, ऐसा जानना। बहुरि देवनिमें ऐसी शक्ति है, जो अपने वा अन्यके शरीरकों वा पुद्गल स्कन्धकों जैसी इच्छा होय तैसैं परिणमावै। तातैं नाना आकारादिरूप आप होय वा अन्य नाना चरित्र दिखावै। बहुरि अन्य जीवके शरीरकों रोगादियुक्त करै। यहाँ इतना है—अपने शरीरकों वा अन्य स्कन्धनिकों तो जेती शक्ति होय जितनें परिणमाय सकैं; तातैं सर्व कार्य करने की शक्ति नाहीं। बहुरि अन्य जीवके शरीरा-दिककों वाका पुण्य पापके अनुसारि परिणमाय सकैं। वाकै पुण्य उदय होय तो आप रोगादिरूप न परिणमाय सकै अर पाप उदय होय तो वाका इष्टकार्य न करि सकै। ऐसैं व्यंतरादिकनिकी शक्ति जाननी।

यहाँ कोऊ कहै—इतनी जिनकी शक्ति पाईए, तिनके माननें पूजने में दोष कहा?

ताका उत्तर—आपकै पाप उदय होतें सुख न देय सकै, पुण्य उदय होतें दुःख न देय सकै; बहुरि तिनके पूजनेतें कोई पुण्यबन्ध होय नाहीं, रागादिकको वृद्धि होतें पाप हो हो है। तातैं तिनका मानना

पूजना कार्यकारी नाहीं—बुरा करने वाला है। बहुरि व्यन्तरादिक मनावें हैं, पुजावें हैं, सो कुतूहल करें हैं, किछू विशेष प्रयोजन नाहीं राखें हैं। जो उनकों मानै पूजे, तिस सेती कौतूहल किया करें। जो न मानै पूजें, तासों किछू न कहें। जो उनकै प्रयोजन ही होय, तो न मानने पूजननेवालेकों घना दुःखी करे। सो तो जिनकै न मानने पूजनेका अवगाढ़ है, तासों किछू भी न कहते दीसते नाहीं। बहुरि प्रयोजन तो क्षुधादिककी पीड़ा होय तो होय, सो उनकै व्यक्त होय नाहीं। जो होय, तो उनके अर्थि नैवेद्यादिक दीजिए ताकों ग्रहण क्यों न करें वा औरनिके जिमाने आदि करनेहीकों काहेकों कहैं। तातें उनकै कुतूहल मात्र क्रिया है। सो आपकों उनके कुतूहलका ठिकाना भए दुःख होय, हीनता होय तातें उनको मानना पूजना योग्य नाहीं।

बहुरि कोऊ पूछै कि व्यन्तर ऐसें कहैं हैं—गया आदि विषें पिंडप्रदान करो तो हमारी गति होय, हम बहुरि न आवें, सो कहा हो है।

ताका उत्तर—जीवनिकै पूर्वभवका संस्कार तो रहै ही है। व्यन्तरनिकै पूर्व-भवका स्मरणादिकतें विशेष संस्कार है। तातें पूर्व-भवके विषें ऐसी ही वासना थी, गयादिकविषें पिंडप्रदानादि किए गति हो है तातें ऐसे कार्य करनेको कहैं हैं। जो मुसलमान आदि मरि व्यन्तर हो हैं, ते तो ऐसें कहैं नाहीं, वे तो अपने संस्कार रूप ही वचन कहैं। तातें सर्व व्यन्तरनिकी गति तैसें ही होती होय तो सर्व ही समान प्रार्थना करें सो है नाहीं, ऐसें जानना। ऐसें व्यन्तरादिकनिका स्वरूप जानना।

सूर्य चन्द्रमादि ग्रह पूजा प्रतिषेध

बहुरि सूर्य चन्द्रमा ग्रहादिक ज्योतिषी हैं, तिनकों पूजें हैं सो भी भ्रम है। सूर्यादिककों परमेश्वरका अंश मानि पूजें हैं। सो वाकै तो एक प्रकाशका ही आधिक्य भासै है। सो प्रकाशवान् अन्यरत्नादिकभी

हो हैं। अन्य कोई ऐसा लक्षण नाहीं, जातैं वाकों परमेश्वरका अंश मानिए। बहुरि चन्द्रमादिककों धनादिककी प्राप्तिके अर्थ पूजें हैं। सो उसके पूजनेतैं ही धन होता होय, तो सर्व दरिद्री इस कार्यको करें। तातैं ए मिथ्याभाव हैं। बहुरि ज्योतिषके विचारतैं खोटा ग्रहादिक आए तिनिका पूजनादिक करें हैं, वाके अर्थ दानादिक दे हैं। सो जैसें हिरणादिक स्वयमेव गमनादि करै है, पुरुषके दाहिणें बायें आए सुख दुःख होनेका आगामी ज्ञानकों कारण हो हैं, किछू सुख दुःख देनेकों समर्थ नाहीं। तैसें ग्रहादिक स्वयमेव गमनादि करें हैं। प्राणीकै यथा-सम्भव योगकों प्राप्त होतें सुख दुःख होनेका आगामी ज्ञानकों कारण हो हैं, किछू सुख दुख देनेको समर्थ नाहीं। कोई तो उनका पूजनादि करै, ताकै भी इष्ट न होय, कोई न करै ताकै भी इष्ट होय, तातैं तिनका पूजनादि करना मिथ्याभाव है।

यहां कोऊ कहै—देना तो पुण्य है, सो भला ही है।

ताका उत्तर—धर्म्मके अर्थि देना पुण्य है। यहु तो दुःखका भय करि वा सुखका लोभकरि दे हैं, तातैं पाप ही है। इत्यादि अनेक प्रकार ज्योतिषी देवनिकों पूजें हैं, सो मिथ्या है।

बहुरि देवी दिहाड़ी आदि हैं, ते केई तो व्यन्तरी वा ज्योतिषिणी हैं, तिनका अन्यथा स्वरूप मानि पूजनादि करें हैं। केई कल्पित हैं, सो तिनकी कल्पनाकरि पूजनादि करें हैं। ऐसें व्यंतरादिकके पूजनेका निषेध किया।

यहां कोऊ कहै—क्षेत्रपाल दिहाड़ी पद्मावती आदि देवी यक्ष यक्षिणी आदि जे जिनमतकों अनुसरें हैं, तिनके पूजनादि करने में तो दोष नाहीं।

ताका उत्तर—जिनमतविषें संयम धारे पूज्यपनों हो है। सो देवनिकैं संयम होता ही नाहीं। बहुरि इनको सम्यक्त्वी मानि पूजिए है, सो भवनत्रिकमें सम्यक्त्वकी भी मुख्यता नाहीं। जो सम्यक्त्वकरिही पूजिये तो सर्वार्थसिद्धिके देव, लोकांतिकदेव तिनकोंही क्यों न पूजिए।

बहुरि कहोगे—इनकै जिनभक्ति विशेष है। सो भक्ति की विशेषता भी सौधर्म्म इन्द्रके है, वह सम्यग्दृष्टी भी है। वाकों छोरि इनकों काहेकों पूजिए। बहुरि जो कहोगे, जैसें राजाके प्रतीहारादिक हैं, तैसें तीर्थंकरकै क्षेत्रपालादिक हैं। सो समवसरणादिविषैं इनिका अधिकार नाहीं। यह झूंठ मानि हैं। बहुरि जैसें प्रतीहारादिकका मिलाया राजास्यों मिलिए, तैसें ये तीर्थंकरकों मिलावते नाहीं। वहां तो जाकै भक्ति होय सोई तीर्थंकरका दर्शनादिक करो, किछू किसीके आधीन नाहीं। बहुरि देखो अज्ञानता, आयुधादिक लिएं रौद्रस्वरूप जिनका, तिनकी गाय गाय भक्ति करें। सो जिनमतविषें भी रौद्ररूप पूज्य भया, तो यह भी अन्यमत ही के समान भया। तीव्र मिथ्यात्वभावकरि जिनमतविषें ऐसी ही विपरीत प्रवृत्तिका मानना हो है। ऐसें क्षेत्रपालादिकको भी पूजना योग्य नाहीं।

गौ सर्पादिककी पूजा का निराकरण

बहुरि गऊ सर्प्पादि तिर्यंच हैं, ते प्रत्यक्ष ही आपतें हीन भासैं हैं। इनिका तिरस्कारादिक करि सकिए हैं। इनकीं निंद्यदशा प्रत्यक्ष देखिये है। बहुरि वृक्ष अग्नि जलादिक स्थावर हैं, ते तिर्यंचनिहूतें अत्यन्त हीन अवस्थाकों प्राप्त देखिये हैं। बहुरि शस्त्र दवात आदि अचेतन हैं, सो सर्वशक्तिकरि हीन प्रत्यक्ष भासै हैं; पूज्यपनेका उपचार भी सम्भवै नाहीं। तातैं इनका पूजना महा मिथ्याभाव है। इनकों पूजें प्रत्यक्ष वा अनुमानकरि किछू भी फल प्राप्ति नाहीं भासै है तातैं इनकों पूजना योग्य नाहीं। या प्रकार सर्व ही कुदेवनिका पूजना मानना निषेध है। देखो मिथ्यात्व की महिमा, लोक विषें तो आपतैं नीचेकों नमतें आपकों निंद्य मानैं अर मोहित होय रोड़ी पर्यंतकों पूजता भी निंद्यपनों न मानैं। बहुरि लोकविषैं तो जातैं प्रयोजन सिद्ध होता जानै, ताहीको सेवा करैं अर मोहित होय कुदेवनितैं मेरा प्रयोजन कैसें सिद्ध होगा; ऐसा बिना विचारें ही कुदेवनिका सेवन करैं। बहुरि

कुदेवनिका सेवन करते हजारों विघ्न होंय ताकों कहैं, इसके सेवनतें यहु कार्य भया। बहुरि कुदेवादिकका सेवन किए बिना जे इष्ट कार्य होंय, तिनकों तो गिनें नाहीं अर कोई अनिष्ट होय तो कहैं, याका सेवन न किया तातें अनिष्ट भया। इतना नाहीं विचारै है, जो इनिही के आधीन इष्ट अनिष्ट करना होय, तो जे पूजें तिनकें इष्ट होइ, न पूजें तिनकै अनिष्ट होय। सो तो दीसता नाहीं। जैसें काहूकै शीतलाकों बहुत मानें भी पुत्रादि मरते देखिए है। काहूकै बिना माने भी जीवते देखिए है। तातें शीतला का मानना किछू कार्यकारी नाहीं। ऐसें ही सर्व कुदेवनिका मानना किछू कार्यकारी नाहीं।

इहां कोऊ कहै—कार्यकारी नाहीं तो मति होहु, किछू तिनके माननेतें बिगारि भी तो होता नाहीं।

ताका उत्तर—जो बिगार न होय, तो हम काहेको निषेध करें। परन्तु एक तो मिथ्यात्वादि दृढ़ होनेतें मोक्षमार्ग दुर्लभ होय जाय है, सो यहु बड़ा बिगार है। एक पापबन्ध होनेतें आगामी दुःख पाइए है, यहु बिगार है।

यहां पूछे कि मिथ्यात्वादिभाव तो अतत्त्व श्रद्धानादि भए होय है अर पापबन्ध खोटे कार्य किए है, सो तिनके माननेतें मिथ्यात्वादिक वा पापबन्ध कैसें होय?

ताका उत्तर—प्रथम तो परद्रव्यनिकों इष्ट अनिष्ट मानना ही मिथ्या है, जातें कोऊ द्रव्य काहूका मित्र शत्रु है नाहीं। बहुरि जो इष्ट अनिष्ट बुद्धि पाइए है, तो ताका कारण पुण्य पाप है। तातें जैसें पुण्यबन्ध होय, पापबन्ध न होय सो करै। बहुरि जो कर्मउदयका भी निश्चय न होय, इष्ट अनिष्टके बाह्य कारण तिनके संयोग वियोग का उपाय करै; सो कुदेवके माननेतें इष्ट अनिष्ट बुद्धि दूरि होती नाहीं; केवल वृद्धिकों प्राप्त हो है। बहुरि पुण्यबन्ध भी होता नाहीं, पापबन्ध हो है। बहुरि कुदेवकाहूकों धनादिक देते खोसते देखे नाहीं। तातैं ए बाह्य कारण भी नाहीं। इनका मानना किस अर्थि

कीजिए है। जब अत्यन्त भ्रमबुद्धि होय, जीवादि तत्त्वनिका अर्थात् ज्ञानका अंश भी न होय अर रागद्वेषकी अति तीव्रता होय तब जे कारण नाहीं तिनकों भी इष्ट अनिष्टका कारण मानें। तब कुदेवादिकका मानना हो है। ऐसा तीव्र मिथ्यात्वादि भाव भए मोक्षमार्ग अति दुर्लभ हो है।

कुगुरु का निरूपण और उसके श्रद्धानादिक का निषेध

आगें कुगुरुके श्रद्धानादिकको निषेधिए है—

जे जीव विषयकषायादि अधर्म्मरूप तो परिणमैं अर मानादिकतें आपकों धर्म्मात्मा मनावें, धर्म्मात्मा योग्य नमस्कारादि क्रिया करावें अथवा किंचित् धर्मका कोई अंग धारि बड़े धर्म्मात्मा कहावें, बड़े धर्म्मात्मा योग्य क्रिया करावें; ऐसें धर्म्मका आश्रयकरि आपकों बड़ा मनावें, ते सर्व कुगुरु जानने। जातें धर्म्मपद्धतिविषैं तो विषयकषायादि छूटें जैसा धर्म्मकों धारै तैसा ही अपना पद मानना योग्य ही है।

कुल अपेक्षा गुरुपनेका निषेध

तहां केई तो कुलकरि आपकों गुरु मानै हैं। तिनविषैं केई ब्राह्मणादिक तो कहै हैं, हमारा कुल ही ऊँचा है तातें हम सर्वके गुरु हैं। सो उस कुलकी उच्चता तो धर्म्म साधनतें है। जो उच्च कुलविषैं उपजि हीन आचरन करै, तो वाकों उच्च कैसें मानिए। जो कुलविषैं उपजनेहीतें उच्चपना रहै, तो मांसभक्षणादि किए भी वाकों उच्च ही मानों सो बनें नाहीं। भारतविषैं भी अनेक प्रकार ब्राह्मण कहे हैं। तहां "जो ब्राह्मण होय चांडाल का कार्य करै, ताकों चांडाल ब्राह्मण कहिए" ऐसा कह्या है। सो कुलहीतें उच्चपना होय तो ऐसी हीनसंज्ञा काहेकों दई है।

बहुरि वैष्णवशास्त्रनिविषैं ऐसा भी कहैं—वेदव्यासादिक मछली आदिकतें उपजे। तहां कुलका अनुक्रम कैसें रह्या? बहुरि मलउत्पत्ति

सो ब्रह्मातें कहै हैं। तातें सबंका एक कुल है, भिन्न कुल कैसें रह्या ? बहुरि उच्चकुलकी स्त्रीके नीचकुलके पुरुषतें वा नीचकुलकी स्त्रीकै उच्चकुलके पुरुषतें संगम होतें संतति होती देखिए है। तहाँ कुलका प्रमाण कैसें रह्या ? जो कदाचित् कहोगे, ऐसे हैं, तो उच्च नीच कुल का विभाग काहेकों मानो हो। सो लौकिक कार्यनिविषैं असत्य भी प्रवृत्तिसंभवै, धर्म्मकार्यविषें तो असत्यता संभवै नाहीं। तातें धर्म्म-पद्धतिविषें कुलअपेक्षा महन्तपना नाहीं सम्भवै है। धर्म्मसाधनहोतें महन्तपना होय। ब्राह्मणादि कुलनिविषै महन्तता है, सो धर्म्मप्रवृत्तितें है। सो धर्म्मकी प्रवृत्ति कों छोड़ि हिंसादिक पापविषें प्रवर्तें महन्तपना कैसें रहै ? बहुरि केई कहैं—जो हमारे बड़े भक्त भए हैं, सिद्ध भए हैं, धर्म्मात्मा भए हैं। हम उनको सन्ततिविषें हैं, तातें हम गुरु हैं। उन बड़ेनिके बड़े तो ऐसे उत्तम थे नाहीं। तिनकी संततिविषें उत्तम-कार्य किए उत्तम मानो हो तो उत्तमपुरुषको सन्ततिविषै जो उत्तम-कार्य न करै, ताकों उत्तम काहेकों मानो हो। बहुरि शास्त्रनिविषें वा लोकविषें यहु प्रसिद्ध है कि पिता शुभ कार्यकरि उच्चपदकों पावै, पुत्र अशुभकार्यकरि नीच पदकों पावै वा पिता अशुभ कार्यकरि नीच पदको पावै, पुत्र शुभ कार्यकरि उच्चपदकों पावै। तातें बड़ेनिकी अपेक्षा महन्त मानना योग्य नाहीं। ऐसें कुलकरि गुरुपना मानना मिथ्याभाव जानना। बहुरि केई पट्टकरि गुरुपनों मानें हैं। कोई पूर्वें महन्त पुरुष भया होय, ताके पाटि जे शिष्य प्रतिशिष्य होते आए, तहाँ तिन विषें तिस महतपुरुष केसे गुण न होते भी गुरुपनो मानिए, सो जो ऐसें ही होय तो उस पाटविषें कोई परस्त्रीगमनादि महापाप-कार्य करेगा, सो भी धर्मात्मा होगा, सुगतिकों प्राप्त होगा, सो संभवै नाहीं। अर वह पापी है, तो पाटका अधिकार कहाँ रह्या ? जो गुरुपद योग्य कार्य करै सो ही गुरु है। बहुरि केई पहलें तो स्त्री आदिके त्यागी थे, पीछें भ्रष्ट होय विवाहादिक कार्यकरि गृहस्थ भए, तिनकी सन्तति आपकों गुरु मानै है। सो भ्रष्ट भए पोछें गुरुपना कैसें रह्या ?

और गृहस्थवत् ए भी भए। इतना विशेष भया, जो भ्रष्ट होइ गृहस्थ भए। इसकों मूल गृहस्थधर्मी गुरु कैसें मानें? बहुरि केई अन्य तौ सर्व पाप कार्य करैं, एक स्त्री परणै नाही, इसही अंगकरि गुरुपनौ मानै हैं। सो एक अब्रह्म ही तो पाप नाहीं, हिंसा परिग्रहादिक भी पाप है, तिनिकूं करतें धर्मात्मा गुरु कैसें मानिए। बहुरि वह धर्म-बुद्धितें विवाहादिकका त्यागी नाहीं भया है। कोई आजीविका वा लज्जा आदि प्रयोजनकों लिए विवाह न करै है। जो धर्मबुद्धि होती, हिंसादिककों काहेकों बधावता। बहुरि जाकै धर्मबुद्धि नाहीं, ताकै शीलकी भी दृढ़ता रहै नाहीं। अर विवाह करै नाहीं तब परस्त्रीगम-नादि महापापकों उपजावै। ऐसी क्रिया होतें गुरुपना मानना महा भ्रष्टबुद्धि है। बहुरि केई काहूप्रकार का भेषधारनेतें गुरुपनो मानै हैं। सो भेष धारें कौन धर्म्म भया, जातैं धर्मात्मा गुरु मानें। तहाँ केई टोपी दे हैं, केई गूदरी राखै हैं, कोई चोला पहरै हैं, केई चादर ओढ़ै हैं, केई लाल वस्त्र राखै हैं, केई श्वेत वस्त्र राखै हैं, केई भगवां राखै हैं, केई टाट पहरै हैं, केई मृगछाला राखै हैं, केई राख लगावै हैं इत्यादि अनेक स्वांग बनावै हैं। सो जो शीत उष्णादिक सहे न जाते थे, लज्जा न छूटे थी, तो पागजामा इत्यादि प्रवृत्तिरूप वस्त्रादिक त्याग काहेकों किया? उनको छोरि ऐसे स्वाँग बनावने में कौन धर्म का अङ्ग भया। गृहस्थनिकों ठिगनेके अर्थि ऐसें भेष जानने। जो गृहस्थ सारिखा अपना स्वाँग राखै, तो गृहस्थ कैसें ठिगावै। अर याकों उनकरि आजीविका वा धनादिका वा मानादिका प्रयोजन साधना, तातैं ऐसे स्वांग बनावै हैं। जगत भोला, तिस स्वांगकों देखि ठिगावै अर धर्म्म मानै, सो यहु भ्रम है। सोई कह्या है—

जह कुवि वेस्सारत्तो मुसिज्जमाणो विमण्णए हरिसं।
तहमिच्छवेसमुसिया गयं पि ण मुणंति धम्म-णिहिं ॥१॥
(उपदेश सि० र० ५)

याका अर्थ—जैसें कोई वेश्यासक्त पुरुष धनादिककों मुसावता

ठगनेवाला जो हर्ष मानै है, तैसें मिथ्याभेषकरि ठिगे गए जीव ते नष्ट होतां धर्म धन कों नाहीं जानें हैं। भावार्थ—यहु मिथ्या भेष वाले जीवनिकी शुश्रूषा आदितें अपना धर्म धन नष्ट हो ताका विषाद नाहीं, मिथ्याबुद्धि तें हर्ष करें हैं। तहां केई तो मिथ्याशास्त्रनिविषें भेष निरूपण किये हैं, तिनकों धारें हैं। सो उन शास्त्रनिका करणहारा पापी सुगम क्रिया कियेतें उच्चपद प्ररूपणतें मेरी मानि होइ वा अन्य जीव इस मार्ग विषें बहुत लागें, इस अभिप्रायतें मिथ्या उपदेश दिया। ताकी परंपराकरि विचार रहित जीव इतना तो विचारै नाहीं, जो सुगम क्रियातें उच्चपद होना बतावें हैं, सो इहां किछू दगा है, भ्रमकरि तिनिका कह्या मार्गविषें प्रवर्तें हैं। बहुरि केई शास्त्रनिविषें तो मार्ग कठिन निरूपण किया सो तो सधै है नाहीं, अर अपना ऊंचा नाम धराए बिना लोक मानै नाहीं, इस अभिप्रायतें यति मुनि आचार्य उपाध्याय साधु भट्टारक संन्यासी योगी तपस्वी नग्न इत्यादि नाम तो ऊंचा धरावें है अर इनिका आचारनिको नाहीं साधि सकें हैं तातें इच्छानुसारि नाना भेष बनावें हैं। बहुरि केई अपनी इच्छाअनुसारि ही तो नवीन नाम धरावें हैं अर इच्छानुसारि ही भेष बनावें हैं। ऐसें अनेक भेष धारनेतें गुरुपनों मानै हैं, सो यहु मिथ्या है।

इहां कोऊ पूछै कि भेष तो बहुत प्रकारके दीसैं, तिन विषै सांचे झूठे भेषकी पहचानि कैसें होय ?

ताका समाधान—जिन भेषनिविषें विषयकषायका किछू लगाव नाहीं, ते भेष सांचे हैं। सो सांचे भेष तीन प्रकार हैं, अन्य सर्व भेष मिथ्या हैं। सो षट्पाहुड़विषें कुन्दकुन्दाचार्य करि कह्या है—

एगं जिणस्स रूवं विदियं उक्किट्ठ सावयाणं तु।
अवरट्ठियाण तइयं चउत्थं पुण लिंग दंसणं णत्थि।

(द० पा० १८)

याका अर्थ—एक तो जिनका स्वरूप निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुनिलिंग अर दूसरा उत्कृष्ट श्रावकनिका रूप दसईं ग्यारहीं प्रतिमाका धारक

श्रावकका लिंग अर तीसरा आर्यकानिका रूप यहु स्त्रीनिकालिंग, ऐसें ए तीन लिंग तो श्रद्धानपूर्वक हैं। बहुरि चौथा लिंग सम्यग्दर्शन स्वरूप नाहीं है। भावार्थ—यहु इन तीनलिंग बिना अन्यलिंगको मानैं सो श्रद्धानी नाहीं, मिथ्यादृष्टी है। बहुरि इन भेषीनिविषैं केई भेषी अपने भेष की प्रतीति करावनेके अर्थि किंचित् धर्मका अङ्गकों भी पालैं हैं। जैसें खोटा रुपैया चलानेवाला तिस विषैं किछू रूपा का अंश राखै है, तैसें धर्म्मका कोऊ अङ्ग दिखाय अपना उच्चपद मनावै हैं।

इहां कोऊ कहै कि जो धर्म साधन किया, ताका तो फल होगा।

ताका उत्तर—जैसें उपवासका नाम धराय कणमात्र भी भक्षण करै तो पापी है अर एकांत का (एकासनका) नाम धराय किंचित् ऊन भोजन करै तो भी धर्मात्मा है। तैसें उच्चपदवीका नाम धराय तामें किंचित् भी अन्यथा प्रवर्तै, तो महापापी है। अर नीचोपदवीका नाम धराय किछू भी धर्म्म साधन करै तो धर्मात्मा है। तातैं धर्म्म-साधन तो जेता बनै तेता ही कीजिए, किछू दोष नाहीं। परन्तु ऊँचा धर्म्मात्मा नाम धराय नीची क्रिया किएं महापाप ही हो है। सोई षट्पाहुड़विषैं कुन्दकुन्दाचार्यकरि कह्या है—

जह जायरूवसरिसो तिलतुसमित्तं ण गहदि अत्थेसु।
जइ लेइ अप्प-बहुयं तत्तो पुण जाइ णिग्गोयं ॥१॥
(सूत्र पा० १८)

याका अर्थ—मुनि पद है, सो यथाजातरूप सदृश है। जैसा जन्म होतें था, तैसा नग्न है। सो वह मुनि अर्थ जे धन वस्त्रादिक वस्तु तिनविषैं तिलका तुषमात्र भी ग्रहण करै। बहुरि जो कदाचित् अल्प वा बहुत वस्तु ग्रहै, तौं तिसतैं निगोद जाय। सो इहाँ देखो, गृहस्थपनेमें बहुत परिग्रह राखि किछू प्रमाण करै तो भी स्वर्ग मोक्षका अधिकारी है अर मुनिपनेमें किंचित् परिग्रह अङ्गीकार किएं भी निगोद जाने वाला हो है। तातैं ऊँचा नाम धराय नीची प्रवृत्ति युक्त

नाहीं। देखो, हुंडावसर्प्पिणी कालविषैं यहु कलिकाल प्रवर्तै है। ताकौ दोषकरि जिनमतविषैं मुनिका स्वरूप तो ऐसा जहां बाह्य अभ्यन्तर परिग्रहका लगाव नाहीं, केवल अपने आत्माकों आपो अनुभवते शुभाशुभभावनितैं उदासीन रहै हैं अर अब विषय कषायासक्त जीव मुनिपद धारैं तहां सर्वसावद्यका त्यागी होय पंचमहाव्रतादि अङ्गीकार करैं। बहुरि श्वेत रक्तादि वस्त्रनिकों ग्रहैं वा भोजनादिविषैं लोलुपी होय वा अपनी पद्धति बधावनेके उद्यमी होय वा केई धनादिक भी राखैं वा हिंसादिक करैं वा नाना आरम्भ करैं। सो स्तोक परिग्रह ग्रहणेका फल निगोद कह्या है, सो ऐसे पापनिका फल तो अनन्त संसार होय ही होय। बहुरि लोकनिकी अज्ञानता देखो, कोई एक छोटी भी प्रतिज्ञा भंग करै, ताकों तो पापी कहैं अर ऐसी बड़ी प्रतिज्ञाभंग करते देखैं बहुरि तिनको गुरु मानैं मुनिवत् तिनका सन्मानादि करैं। सो शास्त्रविषैं कृतकारित अनुमोदनका फल कह्या है तातैं इनकों भी वैसा ही फल लागै है। मुनिपद लेनेका तो क्रम यह है— पहले तत्त्वज्ञान होय, पीछैं उदासीन परिणाम होय, परिषहादि सहने की शक्ति होय, तब वह स्वयमेव मुनि भया चाहै। तब श्रीगुरु मुनिधर्म्म अङ्गीकार करावैं। यहु कौन विपरीत जे तत्त्वज्ञानरहित विषयकषायासक्त जीव तिनकों मायाकरि वा लोभ दिखाय मुनिपद देना, पीछैं अन्यथा प्रवृत्ति करावनी, सो यहु बड़ा अन्याय है। ऐसैं कुगुरुका वा तिननके सेवनका निषेध किया। अब इस कथन के दृढ़ करनेकों शास्त्रनिको साखि दीजिए है। तहां उपदेश सिद्धान्त रत्नमाला विषैं ऐसा कह्या है—

गुरुणो भट्टा जाया सद्दे थुणिए ऊण लिंति दाणाइं
दोण्णवि अमुणियसारा दूसमिसयम्मि बुड्ढंति ॥३१॥

कालदोषतैं गुरु जे हैं, ते भाट भए। भाटवत् शब्दकरि दातारकी स्तुति करिकैं दानादि ग्रहै हैं। सो इस दुखमा कालविषैं दोऊ ही दातार वा पात्र संसारविषैं डूबैं हैं। बहुरि तहां कह्या है—

सप्पे दिट्ठे रणासइ लोओ रणहि कोवि किंपि अक्खेइ ।
जो चयइ कुगुरु सप्पं हा मूढा भणइ तं दुट्ठं ॥३६॥

याका अर्थ—सर्पकों देखि कोऊ भागै, ताकों तो लोक किछू भी कहै नाहीं । हाय हाय देखो, जो कुगुरु सर्पकों छोरै है, ताहि मूढ दुष्ट कहैं, बुरा बोलैं।

सप्पो इक्कं मरणं कुगुरु अणंताइ देइ मरणाइं ।
तो वर सप्पं गहियं मा कुगुरुसेवणं भद्दं ॥३७॥

अहो सर्पकरि तो एक ही बार मरण होय अर कुगुरु अनंतमरण दे है—अनंतबार जन्ममरण करावै है। तातैं हे भद्र, सांपका ग्रहण तो भला अर कुगुरुका सेवन भला नाहीं । और भी गाथा तहाँ इस श्रद्धान दृढ़ करनेकों कारण बहुत कही हैं सो तिस ग्रन्थतैं जानि लेनी । बहुरि संघपट्टविषैं ऐसा कह्या है—

क्षुत्क्षामः किल कोपि रंकशिशुकः प्रव्रज्य चैत्ये क्वचित्
कृत्वा किंचनपक्षमक्षतकलिः प्राप्तस्तदाचार्यकम् ।
चित्रं चैत्यगृहे गृहीयति निजे गच्छे कुटुम्बीयति
स्वं शक्रीयति बालिशीयति बुधान् विश्वं वराकीयति ॥

याका अर्थ—देखो, क्षुधाकरि कृश कोई रंकका बालक सो कहीं चैत्यालयादिविषैं दीक्षा धारि कोई पक्षकरि पापरहित न होता संता आचार्य पदकों प्राप्त भया । बहुरि वह चैत्यालयविषैं अपने गृहवत् प्रवर्त्तै है, निजगच्छविषैं कुटुम्बवत् प्रवर्त्तैं है, आपकों इन्द्रवत् महान् मानै है, ज्ञानीनिकों बालकवत् अज्ञानी मानै है, सर्वगृहस्थनिकों रंकवत् मानै है, सो यहु बड़ा आश्चर्य भया है । बहुरि 'यैर्जातो न च वर्द्धितो न च न च क्रीतो' इत्यादि काव्य है । ताका अर्थ ऐसा है—जिनकरि जन्म न भया, वध्या नाहीं, मोल लिया नाहीं, देणदार भया नाहीं, इत्यादि कोई प्रकार संबंध नाहीं अर गृहस्थनिकों वृषभवत

बहावें, जोरावरी दानादिक लें; सो हाय हाय यहु जगत् राजाकरि रहित है, कोई न्याय पूछनेवाला नाहीं। ऐसे ही इस श्रद्धान के पोषक तहाँ काव्य हैं सो तिस ग्रंथ तैं जानना।

यहाँ कोऊ कहै, ए तो श्वेतांबरविरचित उपदेश है तिनकी साक्षी काहेकों दई।

ताका उत्तर—जैसें नीचा पुरुष जाका निषेध करै ताका उत्तम-पुरुषकै तो सहज ही निषेध भया। तैसें जिनकै वस्त्रादि उपकरण कहे, वे हू जाका निषेध करैं तो दिगंबर धर्म्म विषैं तो ऐसी विपरीतिका सहज निषेध भया। बहुरि दिगंबर ग्रन्थनिविषैं भी इस श्रद्धान के पोषक वचन हैं। तहाँ श्री कुन्दकुन्दाचार्यकृत षट्पाहुड़विषैं (दर्शन-पाहुडमें) ऐसा कह्या है—

दंसणमूलो धम्मो उवइट्ठं जिणवरेहिं सिस्साणं।
तं सोऊण सकण्णे दंसणहीणो ण वंदिव्वो।२।

याका अर्थ—जिनवरकरि सम्यग्दर्शन है मूल जाका ऐसा धर्म्म उपदेश्या है। ताकों सुनकरि हे कर्णसहित हो, यहु मानों—सम्यक्त्व-रहित जीव वंदनेयोग्य नाहीं। जे आप कुगुरु, ते कुगुरुका श्रद्धानसहित सम्यक्ती कैसें होय? बिना सम्यक्त अन्य धर्म भी न होय। धर्म्म बिना वन्दने योग्य कैसें होंय। बहुरि कहै हैं—

जे दंसणेसु भट्टा णाणे भट्टा चरित्तभट्टा य।
एदे भट्टविभट्टा सेसंपि जणं विणासंति ॥८॥

जे दर्शनविषैं भ्रष्ट हैं, ज्ञानविषैं भ्रष्ट हैं, चारित्रभ्रष्ट हैं, ते जीव भ्रष्टतैं भ्रष्ट हैं; और भी जीव जो उनका उपदेश मानैं हैं, तिस जीव का नाश करैं हैं, बुरा करैं हैं। बहुरि कहै हैं—

जे दंसणेसु भट्टा पाए पाडंति दंसणधराणं।
ते हुंति लुल्लमूया बोही पुण दुल्लहा तेसिं ॥१२॥

जे आप तो सम्यक्ततैं भ्रष्ट हैं अर सम्यक्त्वधारकनिकों अपने

पगों पड़ाया चाहे हैं, ते लूले गूंगे हो हैं; भाव यहु स्थावर हो हैं। बहुरि तिनकै बोधि को प्राप्ति महादुर्लभ हो है।

जेवि पडंति च तेसिं जाणंता लज्जगारवभएण।
तेसिं पि णत्थि बोही पावं अणुमोयमाणाणं ।१३।
—(द० पा०)

जो जानता हुआ भी लज्जागारव भयकरि तिनके पगां पड़ै हैं, तिनकै भी बोधी जो सम्यक्त सो नाहीं है। कैसे हैं ए जीव, पापकी अनुमोदना करते हैं। पापीनिका सन्मानादि किएं तिस पापको अनुमोदनाका फल लागै है। बहुरि (सूत्र पाहुड में) कहैं हैं—

जस्स परिग्गहगहणं अप्पं बहुयं च हवइ लिंगस्स।
सो गरहिउ जिणवयणे परिगहरहिओ णिरायारो ।१९।
—(सूत्र पा०)

जिस लिंगकै थोरा वा बहुत परिग्रहका अङ्गीकार होय सो जिन वचनविषैं निंदा योग्य है। परिग्रह रहित हो अनगार हो है। बहुरि (भावपाहुड़में) कहै हैं—

धम्मम्मि णिप्पिवासो दोसावासो य उच्छुफुल्ल समो।
णिप्फलणिग्गुणयारो णडसवणो णग्गरूवेण ॥७१।
(भाव पा०)

याका अर्थ—जो धर्मविषैं निरुद्यमी हैं, दोषनिका घर है, इक्षुफूल समान निष्फल है, गुणका आचरणकरि रहित है, सो नग्नरूपकरि नट श्रमण है, भांडवत् भेषधारी है। सो नग्न भए भांडका दृष्टांत संभवै है। परिग्रह राखै तो यहु भी दृष्टांत बनैं नाहीं।

जे पावमोहियमई लिंगं घत्तूण जिणवरिंदाणं।
पावं कुणंति पावा ते चत्ता मोक्खमग्गम्मि ॥७८॥
—(मो० पा०)

याका अर्थ—पापकरि मोहित भई है बुद्धि जिनकी ऐसे जे जीव जिनवरनिका लिंग धारि पाप करें हैं, ते पापमूर्ति मोक्षमार्गविषें भ्रष्ट जानने। बहुरि ऐसा कह्या है—

जे पंचचेलसत्ता गंथग्गाहीय जायणासीला।
आधाकम्मम्मिरया ते चत्ता मोक्खमग्गम्मि ॥७६॥

—(मो० पा०)

याका अर्थ—जे पंचप्रकार वस्त्रविषें आसक्त हैं, परिग्रहके ग्रहणहारे हैं याचनासहित हैं, अधःकर्म दोषनिविषें रत हैं, ते मोक्षमार्गविषें भ्रष्ट जाननें। और भी गाथा सूत्र तहाँ तिस श्रद्धानके दृढ़ करनेकों कारण कहे हैं ते तहाँतें जाननें हैं। बहुरि कुन्दकुन्दाचार्यकृत लिंगपाहुड़ है; तिसविसैं मुनिलिंगधारि जो हिंसा आरंभ यंत्रमंत्रादि करे हैं, ताका निषेध बहुत किया है। बहुरि गुणभद्राचार्यकृत आत्मानुशासन विषें ऐसा कह्या है—

इतस्ततश्च त्रस्यन्तो विभावर्य्यां यथा मृगाः।
वनाद्विसन्त्युपग्रामं कलौ कष्टं तपस्विनः ॥१९७॥

याका अर्थ—कलिकालविषें तपस्वी मृगवत् इधर उधरतें भयवान् होय बनतें नगर के समीप बसै हैं, यहु महाखेदकारी कार्य भया है। यहाँ नगर-समीप ही रहना निषेध्या, तो नगरविषें रहना तो निषिद्ध भया ही।

वरं गार्हस्थ्यमेवाद्य तपसो भाविजन्मनः।
सुस्त्रीकटाक्षलुण्टाकलुप्तवैराग्यसम्पदः ॥२००॥

याका अर्थ—अबार होनहार है अनंतसंसार जातैं ऐसे तपतैं गृहस्थपना ही भला है। कैसा है वह तप, प्रभात ही स्त्रीनिके कटाक्षरूपी लुटेरेनिकरि लूटी है वैराग्य संपदा जाकी, ऐसा है। बहुरि योगीन्द्रदेवकृत परमात्मप्रकाशविषें ऐसा कह्या है—

दोहा—

चिल्ला चिल्ली पुत्थयहिं, तूसइ मूढ णिभंतु ।
एयहिं लज्जइ णाणियउ, बंधहवेउ मुणंतु ॥२१४॥

चेला चेली पुस्तकनिकरि मूढ संतुष्ट हो है। भ्रान्ति रहित ऐसा ज्ञानी उसे बंधका कारण जानता संता इनिकरि लज्जायमान हो है।

केणवि अप्पउ वंचियउ, सिर लुंचि वि छारेण ।
सयलुविसंग ण परहरिय, जिणवरलिंगधरेण ॥२१६॥

किसी जीवकरि अपना आत्मा ठिग्या। सो कौन? जिहिं जीव जिनवरिका लिंग धारया अर राखकरि माथाका लोंचकरि समस्तपरिग्रह छांडया नाहीं।

जे जिणलिंग धरेवि मुणिइट्ठपरिग्गह लिंति ।
छद्दिकरेविणु ते वि जिय, सो पुण छद्दि गिलंति ॥२१७॥

याका अर्थ—हे जीव! जे मुनि जिनलिंग धारि इष्ट परिग्रहकों ग्रहैं हैं, ते छर्दि करि तिसही छर्दिकूं बहुरि भखैं हैं। भाव यहु—निंदनीय हैं इत्यादि तहाँ कहे हैं। ऐसैं शास्त्रनिविषैं कुगुरुका वा तिनके आचरनका वा तिनकी सुश्रूषाका निषेध किया है, सो जानना। बहुरि जहाँ मुनिकै धात्रीदूत आदि छयालीस दोष आहारादिविषैं कहे हैं, तहाँ गृहस्थनिके बालकनिकों प्रसन्न करना, समाचार कहना, मंत्र औषधि ज्योतिषादि कार्य बतावना इत्यादि, बहुरि किया कराया अनुमोद्या भोजन लेना इत्यादि क्रिया का निषेध किया है। सो अब काल दोषतें इनही दोषनिकों लगाय आहारादि ग्रहै हैं। बहुरि पासत्थ कुशीलादि भ्रष्टाचारी मुनिनका निषेध किया है, तिनहीका लक्षणनिकों धरैं हैं। इतना विशेष—वे द्रव्यां तो नग्न रहै हैं, ए नाना परिग्रह राखै हैं। बहुरि तहाँ मुनिनकै भ्रमरी आदि आहार लेनेकी विधि कही हैं। ये आसक्त होय दातारके प्राण पीड़ि आहारादि ग्रहैं

हैं। बहुरि गृहस्थधर्मविषैं भी उचित नाहीं वा अन्याय लोकनिंद्य पाप-रूप कार्य तिनकों करते प्रत्यक्ष देखिए है। बहुरि जिनबिम्ब शास्त्रादिक सर्वोत्कृष्ट पूज्य तिनका तो अविनय करै हैं। बहुरि आप तिनतैं भी महंतता राखि ऊँचा बैठना आदि प्रवृत्तिकों धारै हैं। इत्यादि अनेक विपरीतता प्रत्यक्ष भासै अर आपकों मुनि मानैं, मूलगुणादिकके धारक कहावें। ऐसैं ही अपनी महिमा करावैं। बहुरि गृहस्थ भोले उनकरि प्रशंसादिककरि ठिगे हुए धर्मका विचार करैं नाहीं। उनकी भक्तिविषैं तत्पर हो हैं। सो बड़े पापकों बड़ा धर्म मानना, इस मिथ्यात्वका फल कैसैं अनंत संसार न होय। एक जिनवचनकों अन्यथा मानैं महापापी होना शास्त्रविषैं कह्या है। यहां तो जिनवचनको किछू बात ही राखी नाहीं। इस समान और पाप कौन है ?

अब यहाँ कुयुक्तिकरि जे तिनि कुगुरुनिका स्थापन करै हैं, तिनका निराकरण कीजिए है। तहाँ वह कहै है—गुरु विना तो निगुरा होय अर वैसे गुरु अबार दोसै नाहीं। तातैं इनहीकों गुरु मानना।

ताका उत्तर—निगुरा तो वाका नाम है, जो गुरु मानैं ही नाहीं। बहुरि जो गुरु को तो मानैं अर इस क्षेत्रविषैं गुरुका लक्षण न देखि काहूकों गुरु न मानैं, तो इस श्रद्धानतैं तो निगुरा होता नाहीं। जैसैं नास्तिक्य तो वाका नाम है, जो परमेश्वरको मानैं ही नाहीं। बहुरि जो परमेश्वरकों तो मानैं अर इस क्षेत्रविषैं परमेश्वरका लक्षण न देखि काहूकों परमेश्वर न मानैं, तो नास्तिक्य तो होता नाहीं। तैसैं ही यह जानना।

बहुरि वह कहै है, जैन शास्त्रनिविषैं अबार केवलीका तो अभाव कह्या है, मुनिका तो अभाव कह्या नाहीं।

ताका उत्तर—ऐसा तो कह्या नाहीं, इनि देशनिविषैं सद्भाव रहेगा। भरत क्षेत्रविषैं कहै हैं, सो भरतक्षेत्र तो बहुत बड़ा है। कहीं सद्भाव होगा, तातैं अभाव न कह्या है। जो तुम कहो हो तिसही क्षेत्र विषैं सद्भाव मानोगे, तो जहाँ ऐसे भी गुरु न पावोगे, तहाँ जावोगे तब

तिसको गुरु मानोगे। जैसें हंसनिका सद्भाव अबार कह्या है अर हंस दीसते नाहीं, तो और पक्षीनिकों तो हंस मान्या जाता नाहीं। तैसें मुनिनिका सद्भाव अबार कह्या है अर मुनि दीसते नाहीं, तो औरनिकों तो मुनि मान्या जाय नाहीं।

बहुरि कहै है, एक अक्षर के दाताकों गुरु मानैं हैं। जे शास्त्र सिखावैं वा सुनावैं, तिनकों गुरु कैसें न मानिए ?

ताका उत्तर—गुरु नाम बड़ेका है। तो जिस प्रकार की महंतता जाकै संभवै, तिस प्रकार ताकों गुरुसंज्ञा संभवै। जैसें कुल अपेक्षा मातापिताकों गुरु संज्ञा है, तैसें ही विद्या पढ़ावनेवालेकों विद्या अपेक्षा गुरु संज्ञा है। यहां तो धर्म्मका अधिकार है। तातैं जाकै धर्म्म अपेक्षा महंतता संभवै, सो गुरु जानना। सो धर्म्म नाम चारित्रका है। 'चारित्तं खलु धम्मो'* ऐसा शास्त्रविषें कह्या है। तातैं चारित्रका धारकहीकों गुरु संज्ञा है। बहुरि जैसें भूतादिका भी नाम देव है, तथापि यहां देवका श्रद्धानविषें अरहंतदेवहीका ग्रहण है तैसें औरनिका भी नाम गुरु है, तथापि इहां श्रद्धानविषें निर्ग्रन्थही का ग्रहण है। सो जिनधर्म्म विषें अरहंत देव निर्ग्रन्थ गुरु ऐसा प्रसिद्ध वचन है।

यहाँ प्रश्न—जो निर्ग्रंथबिना और गुरु न मानिए सो कारण कहा ?

ताका उत्तर—निर्ग्रन्थबिना अन्य जीव सर्वप्रकारकरि महंतता नाहीं धरै हैं। जैसें लोभी शास्त्रव्याख्यान करै, तहाँ वह वाकों शास्त्र सुनावनेतैं महंत भया। वह वाकों धनवस्त्रादि देनेतैं महंत भया। यद्यपि बाह्य शास्त्र सुनावनेवाला महंत रहै तथापि अन्तरंग लोभी होय सो सर्वथा महंतता न भई।

यहाँ कोऊ कहै, निर्ग्रन्थ भी तो आहार ले है।

ताका उत्तर—लोभी होय दातारको सुश्रूषाकरि दीनतातैं आहार न ले हैं। तातैं महंतता घटै नाहीं। जो लोभी होय सो ही हीनता पावै है। ऐसें ही अन्य जीव जाननें। तातैं निर्ग्रन्थ ही सर्व-

* प्रवचनसार १–७

प्रकार महंतायुक्त हैं। बहुरि निर्ग्रन्थ बिना अन्य जीव सर्वप्रकार गुणवान नाहीं। तातैं गुरुनिकी अपेक्षा महंतता अर दोषनिकी अपेक्षा हीनता भासै, तब निःशंक स्तुति करी जाय नाहीं। बहुरि निर्ग्रंथ बिना अन्य जीव जैसा धर्म्म साधन करैं, तैसा वा तिसतैं अधिक गृहस्थ भी धर्म्म साधन करि सकैं। तहाँ गुरु संज्ञा किसकों होय ? तातैं बाह्य आभ्यन्तर परिग्रह रहित निर्ग्रन्थ मुनि हैं, सोई गुरु जानना।

यहां कोऊ कहै, ऐसे गुरु अबार यहाँ नाहीं, तातैं जैसें अरहंत की स्थापना प्रतिमा है, तैसें गुरुनिकी स्थापना ए भेषधारी हैं—

ताका उत्तर—जैसें राजाकी स्थापना चित्रामादिककरि करै तो राजा का प्रतिपक्षी नाहीं अर कोई सामान्य मनुष्य आपकों राजा मनावै तो राजाका प्रतिपक्षी हो है। तैसें अरहंतादिकको पाषाणादि विषैं स्थापना बनावै तो तिनका प्रतिपक्षी नाहीं अर कोई सामान्य मनुष्य आपकों मुनि मनावै तो वह मुनिनका प्रतिपक्षी भया। ऐसें भी स्थापना होती होय तो आपकों अरहंत भी मनावो। बहुरि जो उनकी स्थापना भए है तो बाह्य तो वैसें हो भए चाहिए। वे निर्ग्रन्थ ए बहुत परिग्रहके धारी, यह कैसें बनें ?

बहुरि कोई कहै—अब श्रावक भी तो जैसे सम्भवै तैसे नाहीं। तातैं जैसे श्रावक तैसे मुनि।

ताका उत्तर—श्रावक संज्ञा तो शास्त्रविषैं सर्व गृहस्थ जैनीकों है। श्रेणिक भी असंयमी था, ताकों उत्तरपुराणविषैं श्रावकोत्तम कह्या। बारहसभाविषैं श्रावक कहे, तहाँ सर्व व्रतधारी न थे जो सर्वव्रतधारी होते, तो असंयत मनुष्यको जुदी संख्या कहते, सो कही नाहीं। तातैं गृहस्थ जैनी श्रावक नाम पावै है। अर मुनिसंज्ञा तो निर्ग्रन्थ बिना कहीं कही नाहीं। बहुरि श्रावककै तो आठ मूलगुण कहे हैं। सो मद्य मांस मधु पंचउदंबरादि फलनिका भक्षण श्रावनिकै है नाहीं, तातैं काहू प्रकारकरि श्रावकपना तो सम्भवै भी है। अर मुनिकै अट्ठाईस मूलगुण हैं, सो भेषोनिकै दोसते हो नाहीं। तातैं मुनिपनों काहू प्रकार

सम्भवै नाहीं। बहुरि गृहस्थ अवस्थाविषैं तो पूर्वे जम्बूकुमारादिक बहुत हिंसादि कार्य किए सुनिए हैं। मुनि होयकरि तो काहूने हिंसादिक कार्य किए नाहीं, परिग्रह राखे नाहीं, तातैं ऐसी युक्ति कारजकारी नाहीं। बहुरि देख, आदिनाथजीके साथ च्यारि हजार राजा दीक्षा लेय बहुरि भ्रष्ट भए, तब देव उनकों कहते भए, जिनलिंगी होय अन्यथा प्रवर्तोगे तो हम दण्ड देंगे। जिनलिंग छोरि तुम्हारी इच्छा होय, सो तुम जानो। तातैं जिनलिंगी कहाय अन्यथा प्रवर्ते, ते तो दण्ड योग्य हैं। वन्दनादि योग्य कैसें होय? अब बहुत कहा कहिए, जिनमत विषैं कुभेष धारैं हैं ते महापाप उपजावैं हैं। अन्य जीव उनकी सुश्रषा आदि करैं हैं, सो पापी हो हैं। पद्मपुराणविषैं यह कथा है— जो श्रेष्ठी धर्मात्मा चारण मुनिनकों भ्रमतैं भ्रष्ट जानि आहार न दिया, तो प्रत्यक्ष भ्रष्ट तिनकों दानादिक देना कैसे संभवै?

यहां कोऊ कहै, हमारै अन्तरंग विषै श्रद्धान तो सत्य है परन्तु बाह्य लज्जाकरि शिष्टाचार करैं हैं, सो फल तो अन्तरंग का होगा?

ताका उत्तर—षट्पाहुडविषैं लज्जादिकरि वन्दनादिकका निषेध दिखाया था, सो पूर्वे ही कह्या था। बहुरि कोऊ जोरावरी मस्तक नमाय हाथ जुड़ावै, तब तो यह संभवै जो हमारा अन्तरंग न था। अर आप ही मानादिकतैं नमस्कारादि करै, तहां अन्तरंग कैसें न कहिए। जैसें कोई अन्तरंग तो मांसकों बुरा जानै अर राजादिकके भला मनावनेकों मांस भक्षण करै, तो वाकों व्रती कैसें मानिए? तैसें अन्तरंगविषैं तो कुगुरुसेवनकों बुरा जानै अर तिनका वा लोकनिका भला मनावनेकों सेवन करै, तो श्रद्धानी कैसें कहिए। तातैं बाह्यत्याग किए ही अन्तरंग त्याग संभवै है। तातैं जे श्रद्धानी जीव हैं, तिनकों काहू प्रकारकरि भी कुगुरुनिकी सुश्रूषाआदि करनी योग्य नाहीं। या प्रकार कुगुरुसेवन का निषेध किया।

यहां कोऊ कहै—काहू तत्त्वश्रद्धानीकों कुगुरुसेवनतैं मिथ्यात्व कैसें भया?

ताका उत्तर—जैसे शीलवती स्त्री परपुरुषसहित भर्तारवत् रमण क्रिया सर्वथा करै नाहीं, तैसे तत्त्व श्रद्धानी पुरुष कुगुरु सहित सुगुरुवत् नमस्कारादिक्रिया सर्वथा करै नाहीं। काहेतैं, यह तौ जीवादि तत्त्वनिका श्रद्धानी भया है। तहाँ रागादिककों निषिद्ध श्रद्दहै है, वीतरागभाव को श्रेष्ठ मानै है। तातैं जिनकै वीतरागता पाईए, वैसेही गुरुको उत्तम जानि नमस्कारादि करै है। जिनकै रागादिक पाईए, तिनकों निषिद्ध जानि नमस्कारादि कदाचित् करै नाहीं।

कोऊ कहै—जैसें राजादिककों करै, तैसें इनकों भी करै है।

ताका उत्तर—राजादिक धर्मपद्धति विषें नाहीं। गुरुका सेवन धर्म पद्धतिविषैं है। सो राजादिकका सेवन तो लोभादिकतैं हो है। तहां चारित्रमोह ही का उदय संभवै है। अर गुरुनिकी जायगा कुगुरुनिकों सेए, वहां तत्त्व श्रद्धान के कारण गुरु थे, तिनतै प्रतिकूली भया। सो लज्जादिकतैं जानै कारणविषैं विपरीतता निपजाई, ताकै कार्यभूत तत्त्व श्रद्धानविषैं दृढ़ता कैसें सम्भवै? तातैं तहां दर्शनमोहका उदय संभवै है। ऐसें कुगुरुनिका निरूपण किया।

कुधर्म का निरूपण और उसके श्रद्धानादिक का निषेध

अब कुधर्मका निरूपण कीजिए है—

जहां हिंसादि पाप उपजै वा विषयकषायनिकी वृद्धि होय, तहाँ धर्म मानिए, सो कुधर्म जानना। तहां यज्ञादिक क्रियानिविषैं महा हिंसादिक उपजावैं, बड़े जीवनिका घात करै अर तहाँ इन्द्रियनिके विषय पोषै। तिन जीवनिविषैं दुष्ट बुद्धिकरि रौद्रध्यानी होय तीव्र-लोभतैं औरनिका बुरा करि अपना कोई प्रयोजन साध्या चाहै, ऐसा कार्य करि तहां धर्म मानै सो कुधर्म है। बहुरि तीर्थनिविषैं वा अन्यत्र स्नानादि कार्य करै, तहां बड़े छोटे घनें जीवनिकी हिंसा होय, शरीरकों चैन उपजै, तातैं विषयपोषण होय, तातैं कामादिक बधैं, कुतूहलादिक करि तहां कषाय भाव बधावै, बहुरि तहाँ धर्म मानै सो यह कुधर्म है। बहुरि संक्रांति, ग्रहण, व्यतीपातादिक विषैं दान दे वा खोटा ग्रहादिक

के अर्थि दान दे, बहुरि पात्र जानि लोभी पुरुषनिकों दान दे, बहुरि दान देनेविषैं सुवर्ण हस्ती घोड़ा तिल आदि वस्तुनिकों दे, सो संक्रांति आदि पर्व धर्मरूप नाहीं। ज्योतिषी संचारादिककरि संक्रांति आदि हो है। बहुरि दुष्टग्रहादिकके अर्थि दिया, तहां भय लोभादिकका आधिक्य भया। तातैं तहां दान देने में धर्म नाहीं। बहुरि लोभी पुरुष देने योग्य पात्र नहीं। जातैं लोभी नाना असत्ययुक्ति करि ठिगै हैं। किछू भला करते नाहीं। भला तो तब होय, जब याका दान का सहाय करि वह धर्म साधै। सो वह तो उलटा पापरूप प्रवर्तै। पापका सहाईका भला कैसें होय? सो ही रयणसार शास्त्रविषैं कह्या है—

सप्पुरिसाणं दाणं कप्पतरूणं फलाण सोहं वा।
लोहीणं दाणं जइ विमाणसोहा सवस्स जाणेह ॥२६॥

याका अर्थ—सत्पुरुषनिकों दान देना कल्पवृक्षनिके फलनिकी शोभा समान है, शोभा भी है अर सुखदायक भी है बहुरि लोभी पुरुषनिकों दान देना जो होय, सो शव जो मरया ताका विमान जो चकडोल ताकी शोभा समान जानहु। शोभा तो होय परन्तु धनीकों परम दुःखदायक हो है: तातैं लोभी पुरुषनिकों दान देनेमें धर्म नाहीं बहुरि द्रव्य तो ऐसा दीजिए, जाकरि वाकै धर्म वधै। सुवर्ण हस्ती-आदि दीजिए, तिनिकरि हिंसादिक उपजैं वा मान लोभादि बधै। ताकरि महापाप होय। ऐसी वस्तुनिका देने वाला कों पुन्य कैसें होय। बहुरि विषयासक्त जीव रतिदानादिकविषैं पुन्य ठहरावैं हैं। सो प्रत्यक्ष कुशीलादिक पाप जहां होय, तहां पुण्य कैसें होय। अर युक्ति मिलानेकों कहै जो वह स्त्री सन्तोष पावै है। तो स्त्री तो विषय सेवन किये सुख पावै ही पावै, शीलका उपदेश काहेकों दिया। रतिसमय बिना भी वाका मनोरथ अनुसार न प्रवर्त्ते दुःख पावै। सो ऐसी असत्य युक्ति बनाय विषयपोषनेका उपदेश दे हैं। ऐसें ही दयादान वा पात्र-दान बिना अन्य दान देय धर्म मानना सर्व कुधर्म है।

बहुरि व्रतादिककरिकैं तहाँ हिंसादिक वा विषयादिक बधावै

है। सो व्रतादिक तो तिनकों घटावनेके अर्थि कीजिए है। बहुरि जहाँ अन्नका तो त्याग करै अर कंदमूलादिकनिका भक्षण करै, तहाँ हिंसा विशेष भई—स्वादादिकविषय विशेष भए। बहुरि दिवस विषैं तो भोजन करै नाहीं अर रात्रिविषैं करै। सो प्रत्यक्ष दिवस भोजनतैं रात्रि भोजनविषैं हिंसा विशेष भासै, प्रमाद विशेष होय। बहुरि व्रतादिककरि नाना शृङ्गार बनावै, कुतूहल करै, जूवा आदि रूप प्रवर्तै, इत्यादि पापक्रिया करै। बहुरि व्रतादिकका फल लौकिक इष्टकी प्राप्ति अनिष्टका नाशकों चाहै, तहां कषायनिको तीव्रता विशेष भई। ऐसैं व्रतादिककरि धर्म मानैं हैं, सो कुधर्म है।

बहुरि भक्त्यादिकार्यनिविषै हिंसादिक पाप बधावैं वा गीत नृत्यगानादिक वा इष्ट भोजनादिक वा अन्य सामग्रीनिकरि विषयनिकों पोषैं, कुतूहल प्रमादादिरूप प्रवर्तें। तहाँ पाप तो बहुत उपजावै अर धर्मका किछू साधन नाहीं, तहाँ धर्म मानें सो सब कुधर्म है।

बहुरि केई शरीरकों तो क्लेश उपजावैं अर तहाँ हिंसादिक निपजावैं वा कषायादिरूप प्रवर्त्तै। जैसें पंचाग्नि तापैं सो अग्निकरि बड़े छोटे जीव जलैं, हिंसादिक बधै यामैं धर्म कहा भया। बहुरि औंधेमुख झूलैं, ऊर्ध्व बाहु राखैं, इत्यादि साधन करैं तहां क्लेश ही होय; किछू ये धर्म के अंग नाहीं। बहुरि पवन साधन करैं, तहां नेती धोती इत्यादि कार्यनिविषैं जलादिक करि हिंसादिक उपजै, चमत्कार कोई उपजै तातैं मानादिक बधै, किछू तहाँ धर्मसाधन नाहीं। इत्यादि क्लेश करैं, विषयकषाय घटावनेका कोई साधन करैं नाहीं। अंतरंग विषैं क्रोध मान माया लोभ का अभिप्राय है, वृथा क्लेशकरि धर्म मानै हैं, सो कुधर्म है।

बहुरि केई इस लोक विषैं दुःख सह्या न जाय वा परलोकविषैं इष्ट की इच्छा वा अपनी पूजा बढ़ावने के अर्थि वा कोई क्रोधादिकरि अपघात करैं। जैसें पतिवियोगतैं अग्निविषैं जलकरि सती कहावै है वा हिमालय गलै है, काशीकरोत ले है, जीवित मांहीं ले है, इत्यादि

कार्यकरि धर्म मानै हैं। सो अपघातका तो बड़ा पाप है। जो शरीरा-दिकतैं अनुराग घटचा था तो तपश्चरणादि किया होता, मरि जाने मैं कौन धर्मका अंग भया। तातैं अपघात करना कुधर्म है। ऐसैं ही अन्य भी घने कुधर्मके अंग हैं। कहां ताईं कहिए, जहां विषय कषाय बधै अर धर्म मानिए, सो सर्व कुधर्म जानने।

देखो कालका दोष, जैनधर्म विषैं भी कुधर्मकी प्रवृत्ति भई। जैनमतविषैं जे धर्मपर्व कहे हैं, तहां तो विषय कषाय छोरि संयमरूप प्रवर्त्तना योग्य है। ताकों तो आदरै नाहीं अर व्रतादिकका नाम धराय तहाँ नाना श्रृङ्गार बनावैं वा इष्ट भोजनादि करैं वा कुतूह-लादि करैं वा कषाय बधावनेके कार्य करैं, जुवा इत्यादि महापापरूप प्रवर्त्तैं।

बहुरि पूजनादि कार्यनिविषैं उपदेश तो यहु था—'सावद्यलेशो बहुपुण्यराशो दोषाय नालं'* पापका अंश बहुत पुण्य समूहविषैं दोषके अर्थ नाहीं। इस छलकरि पूजाप्रभावनादि कार्यनिविषैं रात्रि विषैं दीपकादिकरि वा अनन्तकायादिकका संग्रहकरि वा अयत्नाचार प्रवृत्तिकरि हिंसादिरूप पाप तो बहुत उपजावैं अर स्तुति भक्ति आदि शुभपरिणामनिविषै प्रवर्त्तैं नाहीं वा थोरे प्रवर्त्तैं, सो टोटा घना नफा थोरा वा नफा किछू नाहीं। ऐसा कार्य करने में तो बुरा ही दीखना होय।

बहुरि जिनमन्दिर तो धर्मका ठिकाना है। तहाँ नाना कुकथा करनी, सोवना इत्यादिक प्रमादरूप प्रवर्त्तैं वा तहाँ बाग बाड़ी इत्यादि बनाय विषयकषाय पोषैं। बहुरि लोभी पुरुषनिकों गुरु मानि दाना-दिक दें वा तिनकी असत्य स्तुतिकरि महंतपनों मानैं, इत्यादि प्रकार करि विषयकषायनिकों तो बधावै अर धर्म मानैं। सो जिनधर्म तो

* "पूज्यं जिनं त्वार्चयतोजनस्य, सावद्यलेशोबहुपुण्यराशौ।
दोषायनालं कणिका विषस्य, न दूषिका शीतशिवाम्बुराशौ"
—बृहत्स्वयंभूस्तोत्र ॥५८॥

वीतरागभावरूप है। तिस विषैं ऐसी विपरीत प्रवृत्ति काल दोषतैं ही देखिए है। या प्रकार कुधर्म सेवन का निषेध किया।

कुधर्म सेवनसे मिथ्यात्वभाव–

अब इस विषैं मिथ्यात्वभाव कैसें भया, सो कहिए है—

तत्वश्रद्धान करनेविषैं प्रयोजनभूत एक यह है, रागादिक छोड़ना। इस ही भावका नाम धर्म है। जो रागादिक भावनिकों बधाय धर्म मानें, तहाँ तत्त्व श्रद्धान कैसें रह्या? बहुरि जिन आज्ञातैं प्रतिकूली भया। बहुरि रागादिक भाव तो पाप है तिनकों धर्म मान्या, सो यह झूंठ श्रद्धान भया। तातैं कुधर्म सेवनविषैं मिथ्यात्व भाव है। ऐसें कुदेव कुगुरु कुशास्त्र सेवन विषैं मिथ्यात्व भावकी पुष्टता होती जानि याका निरूपण किया। सोई षट्पाहुड़ (मोक्खपा०) विषैं कह्या है—

कुच्छियदेवं धम्मं कुच्छियलिंगं च वंदए जो दु।
लज्जाभयगारवदो मिच्छादिट्ठी हवे सो दु।९२।

याका अर्थ—जो लज्जातैं वा भयतैं वा बड़ाईतैं भी कुत्सित् देवकों वा कुत्सित् धर्म्मकों वा कुत्सित् लिंगकों वन्दे हैं सो मिथ्यादृष्टी हो है। तातैं जो मिथ्यात्वका त्याग किया चाहै, सो पहलैं कुदेव कुगुरु कुधर्म्मका त्यागी होय। सम्यक्त्व के पच्चीस मलनिके त्याग विषैं भी अमूढ़दृष्टि विषैं वा षडायतनविषैं इनहीका त्याग कराया है। तातैं इनका अवश्य त्याग करना। बहुरि कुदेवादिकके सेवनतै जो मिथ्यात्वभाव हो है, सो यह हिंसादिक पापनितैं बड़ा पाप है। याके फलतैं निगोद नरकादि पर्याय पाईए है। तहाँ अनन्तकाल पर्यन्त महासंकट पाईए है। सम्यग्ज्ञानकी प्राप्ति महादुर्लभ होय जाय है। सो ही षट्पाहुड़विषैं (भाव पाहुड़में) में कह्या है—

कुच्छियधम्मम्मि-रओ, कुच्छिय पासंडि भत्तिसंजुत्तो।
कुच्छियतवं कुणंतो कुच्छिय गइभायणो होइ ॥१४०॥

याका अर्थ—जो कुत्सितधर्म्मं विषै रत है, कुत्सित पाखंडीनिकी

भक्तिकरि संयुक्त है, कुत्सित तपकों करता है, सो जीव कुत्सित जो खोटी गति ताकों भोगनहारा हो है। सो हे भव्य हो, किंचिन्मात्र लोभतैं वा भयतैं कुदेवादिकका सेवनकरि जातैं अनन्तकालपर्यन्त महा-दुःख सहना होय ऐसा मिथ्यात्वभाव करना योग्य नाहीं। जिनधर्म्में विषैं यह तो आम्नाय है, पहलें बड़ा पाप छुड़ाय पीछैं छोटा पाप छुड़ाया। सो इस मिथ्यात्वकों सप्तव्यसनादिकतैं भी बड़ा पाप जानि पहलैं छुड़ाया है। तातैं जे पापके फलतैं डरैं हैं, अपने आत्माकों दुःख समुद्रमें न डुबाया चाहैं हैं, ते जीव इस मिथ्यात्वकों अवश्य छोड़ो। निन्दा प्रशंसादिकके विचारतैं शिथिल होना योग्य नाहीं। जातैं नीति विषैं भी ऐसा कह्या है—

> निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु
> लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
> अद्यैव वास्तु मरणं तु युगान्तरे वा
> न्यायात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥१॥
>
> (नीतिशतक ८४)

जे निन्द हैं ते निन्दो अर स्तवै हैं तो स्तवो, बहुरि लक्ष्मी आवो वा जहाँ तहां जावो, बहुरि अब ही मरण होहु वा युगान्तर विषैं होहु परन्तु नीतिविषैं निपुण पुरुष न्यायमार्गतैं पैंडहू चलै नाहीं। ऐसा न्याय विचारि निन्दा प्रशंसादिकका भयतैं लोभादिकतैं अन्यायरूप मिथ्यात्व प्रवृत्ति करनी युक्त नाहीं। अहो ! देव गुरु धर्म्म तो सर्वोत्कृष्ट पदार्थ हैं। इनके आधारि धर्म है इन विषैं शिथिलता राखें अन्य धर्म कैसैं होइ तातैं बहुत कहनेकरि कहा, सर्वथा प्रकार कुदेव कुगुरु कुधर्म्म त्यागी होना योग्य है। कुदेवादिकका त्याग न किए मिथ्यात्वभाव बहुत पुष्ट हो है। अर अबार इहां इनकी प्रवृत्ति विशेष पाईए है। तातैं इनिका निषेधरूप निरूपण किया है। ताकों जानि मिथ्यात्वभाव छोड़ि अपना कल्याण करो।

इति मोक्षमार्गप्रकाशक शास्त्रविषैं कुदेव कुगुरु कुधर्म्म-निषेध वर्णन रूप छठा अधिकार समाप्त भया ॥६॥

ॐ नमः

सातवां अधिकार

जैन मतानुयायी मिथ्यादृष्टिका स्वरूप

दोहा

इस भव तरुका मूल इक, जानहु मिथ्या भाव।
ताकों करि निर्मूल अब, करिए मोक्ष उपाय ॥

अर्थ—जे जीव जैनी हैं, जिन आज्ञाकों मानें हैं अर तिनके भी मिथ्यात्व रहै है ताका वर्णन कीजिए है जातैं इस मिथ्यात्व वैरी का अंश भी बुरा है, तातैं सूक्ष्ममिथ्यात्व भी त्यागने योग्य है। तहां जिन आगम विषैं निश्चय व्यवहाररूप वर्णन है। तिन विषैं यथार्थका नाम निश्चय है, उपचार का नाम व्यवहार है। सो इनका स्वरूपकों न जानते अन्यथा प्रवर्तें हैं, सोई कहिए है—

केवल निश्चयावलम्बी जैनाभासका मत

केई जीव निश्चयकों न जानते निश्चयाभासके श्रद्धानी होइ आपकों मोक्षमार्गी मानें हैं। अपने आत्माकों सिद्ध समान अनुभवैं हैं। सो आप प्रत्यक्ष संसारी हैं। भ्रमकरि आपकों सिद्ध मानें सोई मिथ्यादृष्टी है। शास्त्रनिविषैं जो सिद्ध समान आत्माकों कह्या है सो द्रव्यदृष्टि करि कह्या है, पर्याय अपेक्षा समान नाहीं हैं। जैसें राजा अर रंक मनुष्यपनेकी अपेक्षा समान हैं, राजापना रंकपनाकी अपेक्षा तो समान नाहीं। तैसें सिद्ध अर संसारी जीवत्वपनेको अपेक्षा समान है, सिद्धपना संसारीपनाकी अपेक्षा तो समान नाहीं। यहु जैसें सिद्ध शुद्ध हैं, तैसें ही आपको शुद्ध मानें। तो शुद्ध अशुद्ध अवस्था पर्याय है। इस पर्याय अपेक्षा समानता मानिए, सो यहु मिथ्यादृष्टि है। बहुरि आपके

केवलज्ञानादिकका सद्भाव मानैं सो आपकै तो क्षयोपशमरूप मति-श्रुतादि ज्ञानका सद्भाव है। क्षायिकभाव तो कर्मका क्षय भए होइ है। यह भ्रमतें कर्मका क्षय भए बिना ही क्षायिकभाव मानें। सो यहु मिथ्यादृष्टी है। शास्त्रविषैं सर्वजीवनिका केवलज्ञानस्वभाव कह्या है, सो शक्ति अपेक्षा कह्या है। सर्वजीवनिविषैं केवलज्ञानादिरूप होनेकी शक्ति है। वर्तमान व्यक्तता तो व्यक्त भए ही कहिए।

कोऊ ऐसा मानै है—आत्माके प्रदेशनिविषैं तो केवलज्ञान ही है, ऊपरि आवरण तैं प्रगट न हो है सो यहु भ्रम है। जो केवलज्ञान होइ तो वज्रपटलादि आड़े होतें भी वस्तुकों जानें। कर्मको आड़े आए कैसें अटकै। तातें कर्मके निमित्ततें केवलज्ञानका अभाव ही है। जो याका सर्वदा सद्भाव रहैं है तो याकों पारिणामिकभाव कहते, सो यहु तो क्षायिक भाव है। जो सर्वभेद जामैं गर्भित ऐसा चैतन्यभाव सो पारिणामिक भाव है। याकी अनेक अवस्था मतिज्ञानादिरूप वा केवलज्ञानादिकरूप हैं, सो ए पारिणामिकभाव नाहीं। तातें केवलज्ञानका सर्वदा सद्भाव न मानना। बहुरि जो शास्त्रनिविषैं सूर्यका दृष्टान्त दिया है, ताका इतना ही भाव लेना, जैसे मेघपटल होतें सूर्य प्रकाश प्रगट न हो है, तैसें कर्मउदय होतें केवलज्ञान न हो है। बहुरि ऐसा भाव न लेना, जैसें सूर्यविषैं प्रकाश रहै है, तैसें आत्मा विषैं केवलज्ञान रहै है। जातें दृष्टांत सर्व प्रकार मिलै नाहीं। जैसें पुद्गल विषैं वर्ण गुण है, ताको हरित पीतादि अवस्था है। सो वर्तमान विषैं कोई अवस्था होतें अन्य अवस्थाका अभाव ही है। तैसें आत्मा विषैं चैतन्य-गुण है, ताकी मतिज्ञानादिरूप अवस्था है। सो वर्तमान कोई अवस्था होतें अन्य अवस्थाका अभाव ही है।

बहुरि कोऊ कहै कि आवरण नाम तो वस्तु के आच्छादनेका है, केवलज्ञानका सद्भाव नाहीं है तो केवलज्ञानावरण काहेकों कहो हो ?

ताका उत्तर—यहां शक्ति है ताकों व्यक्त न होने दे, इस अपेक्षा

आवरण कह्या है। जैसें देशचारित्रका अभाव होतें शक्ति घातनेकी अपेक्षा अप्रत्याख्यानावरण कषाय कह्या तैसें जानना। बहुरि ऐसें जानों—वस्तु विषें जो परनिमित्ततै भाव होय ताका नाम औपाधिक-भाव है अर परनिमित्त बिना जो भाव होय ताका नाम स्वभाव भाव है। जैसें जलकै अग्निका निमित्त होतें उष्णपनों भयो, तहां शीतल-पनाका अभाव हो है। परन्तु अग्निका निमित्त मिटें शीतलता ही होय जाय तातें सदाकाल जलका स्वभाव शीतल कहिए, जातें ऐसी शक्ति सदा पाइए है। बहुरि व्यक्त भए स्वभाव व्यक्त भया कहिए। कदाचित् व्यक्तरूप हो है। तैसें आत्माकै कर्म्मका निमित्त होतें अन्य रूप भयो, तहां केवलज्ञानका अभाव ही है। परन्तु कर्म्म का निमित्त मिटें सर्वदा केवलज्ञान होय जाय। तातें सदा काल आत्माका स्वभाव केवलज्ञान कहिए है। जातें ऐसी शक्ति सदा पाईए है। व्यक्त भए स्वभाव व्यक्त भया कहिए। बहुरि जैसें शीतल स्वभावकरि उष्णजल कों शीतल मानि पानादि करै तो दाझना ही होय। तैसें केवल ज्ञानस्वभावकरि अशुद्ध आत्माकों केवलज्ञानी मानि अनुभवै, तो दुःखो ही होय। ऐसें ज केवलज्ञानादिकरूप आत्माकों अनुभवै हैं, ते मिथ्यादृष्टी हैं। बहुरि रागादिक भाव आपकें प्रत्यक्ष होतें भ्रमकरि आत्माकों रागादिरहित मानै। सो पूछिए हैं—ए रागादि होते देखिए हैं, ए किस द्रव्य के अस्तित्वविषें हैं। जो शरीर वा कर्मरूपपुद्गलके अस्तित्वविषें होंय तो ए भाव अचेतन वा मूर्तीक होय। सो तो ए रागादिक प्रत्यक्ष चेतना लिए अमूर्तीक भाव भासें हैं। तातें ए भाव आत्माहीके हैं। सोई समयसारके कलशविषें कह्या है—

> कार्यत्वादकृतं न कर्म्म न च तज्जीवप्रकृत्योर्द्वयो-
> रज्ञायाः प्रकृतेःस्वकार्यफलभुग्भावानुषंगात् कृतिः।
> नैकस्याःप्रकृतेरचित्वल सनाज्जीवऽस्य कर्त्ता ततो
> जीवस्यैव च कर्म तच्चिदनुगं ज्ञाता न यत् पुद्गलः॥
>
> (सर्वंवि० अधिकार कलश २०३)

याका अर्थ यहु—रागादिरूप भावकर्म है, काहूकरि न किया, ऐसा नाहीं है, जातैं यहु कार्यभूत है। बहुरि जीव अर कर्मप्रकृति इन दोऊनिका भी कर्त्तव्य नाहीं जातैं ऐसैं होय. तो अचेतन कर्मप्रकृतिकै भी तिस भावकर्मका फल सुख दुःख ताका भोगना होइ, सो असम्भव है। बहुरि एकली कर्म्मप्रकृतिका भी यहु कर्तव्य नाहीं, जातैं वाकै अचेतनपनो प्रगट है। तातैं इस रागादिका जीवही कर्त्ता है अर सो रागादिक जीवहीका कर्म्म है। जातैं भावकर्म्म तो चेतना का अनुसारी है, चेतना बिना न होइ। अर पुद्गल ज्ञाता है नाहीं। ऐसे रागादिक-भाव जीव के अस्तित्वविषैं हैं। अब जो रागादिक भावनिका निमित्त कर्म्मही को मानि आपकों रागादिकका अकर्त्ता मानैं हैं, सो कर्त्ता तो आप अर आपकों निरुद्यमी होय प्रमादी रहना, तातैं कर्म्म हीका दोष ठहरावैं हैं। सो यहु दुःखदायक भ्रम है। सोई समयसारका कलशा विषैं कह्या है—

रागजन्मनि निमित्ततां परद्रव्यमेव कलयन्ति ये तु ते।
उत्तरन्ति न हि मोहवाहिनींशुद्ध बोधविधुरान्धबुद्धयः ॥

(सर्व वि० अधिकार कलश २२१)

याका अर्थ—जे जीव रागादिकको उत्पत्तिविषैं परद्रव्यहीकों निमित्तपनो मानैं हैं, ते जीव शुद्ध ज्ञानकरि रहित हैं अन्धबुद्धि जिनकी ऐसे होत सन्ते मोहनदीकों नाहीं उतरैं हैं। बहुरि समयसारका 'सर्व-विशुद्धिअधिकार' विषैं जो आत्मा कों अकर्त्ता मानै है अरयहु कहै है—कर्म ही जगावै है, परघात कर्मतैं हिंसा है, वेदकर्मतैं अब्रह्म है, तातैं कर्म ही कर्त्ता है; तिस जैनीको सांख्यमती कह्या है। जैसें सांख्यमती आत्माकों शुद्ध मानि स्वच्छन्द हो है, तैसें ही यहु भया। बहुरि इस श्रद्धानतैं यहु दोष भया, जो रागादिक अपने न जानैं आपकों अकर्त्ता मान्या, तब रागादिक होने का भय रह्या नाहीं वा रागादिक मेटने का उपाय करना रह्या नाहीं, तब स्वच्छन्द होय खोटे कर्म बांधि अनन्तसंसारविषैं रुलै है।

यहां प्रश्न—जो समयसारविषैं ही ऐसा कह्या है—

वर्णाद्या वा रागमोहादयो वा
भिन्नाभावाः सर्व एवास्य पुंसः ।
तेनैवान्तस्तत्त्वतः पश्यतोऽमीनो
दृष्टाः स्युर्दृष्टमेकं परं स्यात् ॥
(जीवाजी० कलश ३७)

याका अर्थ—वर्णादिक वा रागादिकभाव हैं, ते सर्व ही इस आत्मातैं भिन्न हैं। बहुरि तहां ही रागादिकों पुद्गलमय कहे हैं। बहुरि अन्य शास्त्रनिविषैं भी रागादिकतैं भिन्न आत्माकों कह्या है, सो यहु कैसे है ?

ताका उत्तर—रागादिकभाव परद्रव्य के निमित्ततैं औपाधिक-भाव हो हैं अर यहु जीव तिनिकों स्वभाव जानै है। जाकों स्वभाव जानैं, ताकों बुरा कैसें मानैं वा ताके नाशका उद्यम काहेकों करै। सो यहु श्रद्धान भी विपरीत है। ताके छुड़ावनेकों स्वभाव की अपेक्षा रागादिककों भिन्न कहे हैं अर निमित्तकी मुख्यताकरि पुद्गलमय कहे हैं। जैसें वैद्य रोग मेटया चाहै है; जो शीतका आधिक्य देखै तो उष्ण औषधि बतावै अर आतापका आधिक्य देखै तो शीतल औषधि बतावै तैसें श्रीगुरु रागादिक छुड़ाया चाहै हैं। जो रागादिक परका मानि स्वच्छन्द होय निरुद्यमी होय, ताकों उपादान कारणकी मुख्यताकरि रागादिक आत्माका है, ऐसा श्रद्धान कराया। बहुरि जो रागादिक आपका स्वभावमानि तिनिका नाशका उद्यम नाहीं करै है ताकों निमित्तकारण की मुख्यताकरि रागादिक परभाव हैं, ऐसा श्रद्धान कराया है। दोऊ विपरीत श्रद्धानतैं रहित भए सत्य श्रद्धान होय तब ऐसा मानैं—ए रागादिक भाव आत्मा का स्वभाव तो नाहीं, कर्म के निमित्ततैं आत्मा के अस्तित्वविषैं विभावपर्याय निपजै हैं। निमित्त मिटै इनका नाश होतैं स्वभावभाव रहि जाय है। तातैं इनिके नाशका उद्यम करना।

यहां प्रश्न—जो कर्मका निमित्त तैं ए हो हैं, तो कर्मका उदय रहै तावत् ये विभाव दूरि कैसें होंय ? तातैं याका उद्यम करना तो निरर्थक है।

ताका उत्तर—एक कार्य होनेविषैं अनेक कारण चाहिए हैं। तिनविषैं जे कारण बुद्धि पूर्वक होंय, तिनकों तो उद्यम करि मिलावै अर अबुद्धिपूर्वक कारण स्वयमेव मिलैं तब कार्यसिद्धि होय। जैसें पुत्र होनेका कारण बुद्धिपूर्वक तो विवाहादिक करना है अर अबुद्धि पूर्वक भवितव्य है। तहां पुत्रका अर्थी विवाहादिकका तो उद्यम करै अर भवितव्य स्वयमेव होय, तब पुत्र होय। तैसें विभाव दूरि करनेके कारण बुद्धि पूर्वक तो तत्त्वविचारादिक हैं अर अबुद्धिपूर्वक मोहकर्म का उपशमादिक हैं। सो ताका अर्थी तत्त्वविचारादिकका तो उद्यम करै अर मोहकर्मका उपशमादिक स्वयमेव होय, तब रागादिक दूरि होंय।

यहां ऐसा कहै हैं कि जैसें विवाहादिक भी भवितव्य आधीन हैं तैसें तत्त्वविचारादिक भी कर्मका क्षयोपशमादिकके आधीन हैं, तातैं उद्यम करना निरर्थक है।

ताका उत्तर—ज्ञानावरणका तो क्षयोपशम तत्त्वविचारादिक करने योग्य तेरे भया है। याहीतैं उपयोगकों यहां लगावनेका उद्यम कराइए हैं। असंज्ञी जीवनिकै क्षयोपशम नाहीं है, तो उनकों काहेकों उपदेश दीजिए है।

बहुरि वह कहै है—होनहार होय तो तहां उपयोग लागै, बिना होनहार कैसे लागै ?

ताका उत्तर—जो ऐसा श्रद्धान है तो सर्वत्र कोई ही कार्य का उद्यम मति करै। तू खान पान व्यापारादिकका तो उद्यम करै अर यहां होनहार बतावै। सो जानिए है, तेरा अनुराग यहां नाहीं। मानादिक करि ऐसी झूंठी बातें बनावै है। या प्रकार जे रागादिक होतें तिन करि रहित आत्माकों मानें हैं, ते मिथ्यादृष्टी जानवें।

बहुरि कर्म नोकर्मका सम्बन्ध होतें आत्माकों निर्बन्ध मानें, सो प्रत्यक्ष इनिका बन्धन देखिए है। ज्ञानावरणादिकतें ज्ञानादिकका घात देखिए है। शरीरकरि ताके अनुसारि अवस्था होती देखिए है। बन्धन कैसें नाहीं। जो बन्धन न होय तो मोक्षमार्गी इनके नाशका उद्यम काहेकों करै।

यहाँ कोऊ कहै—शास्त्रनिविषें आत्माकों कर्म नोकर्मतें भिन्न अबद्धस्पष्ट कैसें कह्या है।

ताका उत्तर—सम्बन्ध अनेक प्रकार हैं। तहाँ तादात्म्य संबंध अपेक्षा आत्माकों कर्म नोकर्मतें भिन्न कह्या है। जातें द्रव्य पलटकरि एक नाहीं होय जाय है अर इस ही अपेक्षा अबद्ध स्पष्ट कह्या है। बहुरि निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध अपेक्षा बन्धन है ही। उनके निमित्ततें आत्मा अनेक अवस्था धरै ही है। तातें सर्वथा निर्बन्ध आपकों मानना मिथ्यादृष्टि है।

यहाँ कोऊ कहै—हमकों तो बंध मुक्तिका विकल्प करना नाहीं जातें शास्त्रविषें ऐसा कह्या है—

"जो बंधउ मुक्कउ मुणइ, सो बंधइ णिभंतु।"

याका अर्थ—जो जीव बंध्या अर मुक्त भया मानै है, सो निःसन्देह बंधै है ताकों कहिए है—

जे जीव केवल पर्यायदृष्टि होय बंध मुक्त अवस्था ही कों मानैं हैं, द्रव्य स्वभावका ग्रहण नाहीं करैं हैं, तिनकों ऐसा उपदेश दिया है; जो द्रव्य स्वभावकों न जानता जीव बंध्या मुक्त भया मानैं, सो बंधै है। बहुरि जो सर्वथा ही बंध मुक्ति न होय, तो सो जीव बंधै है; ऐसा काहेकों कहैं। अर बन्ध के नाश का, मुक्त होनेका उद्यम काहेकों करिए है। काहेकों आत्मानुभव करिए है। तातें द्रव्यदृष्टि करि एक दशा है, पर्यायदृष्टिकरि अनेक अवस्था हो है, ऐसा मानना योग्य है।

ऐसें ही अनेक प्रकारकरि केवल निश्चयनयका अभिप्रायतें विरुद्ध श्रद्धानादिक करै है। जिनवाणीविषें तो नाना नय अपेक्षा कहीं

कैसा कहीं कैसा निरूपण किया है। यह अपनें अभिप्रायतें निश्चयनय की मुख्यताकरि जो कथन किया होय, ताहीकों ग्रहिकरि मिथ्यादृष्टिकों धारै है। बहुरि जिनवाणीविषैं तो सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रकी एकता भए मोक्षमार्ग कह्या है। सो याकै सम्यग्दर्शन ज्ञान विषैं सप्ततत्त्वनिका श्रद्धान वा जानना भया चाहिए, सो तिनका विचार नाहीं। अर चारित्रविषैं रागादिक दूर किया चाहिए, ताका उद्यम नाहीं। एक अपने आत्माकों शुद्ध अनुभवना इसहीको मोक्षमार्ग जानि सन्तुष्ट भया है। ताका अभ्यास करनेकों अन्तरंगविषैं ऐसा चिंतवन किया करै है—मैं सिद्ध समान शुद्ध हूं; केवलज्ञानादि सहित हूं, द्रव्यकर्म नोकर्म रहित हूं, परमानन्दमय हूं, जन्म मरणादि दुःख मेरै नाहीं, इत्यादि चिंतवन करै है। सो यहां पूछिए है—यहु चिंतवन जो द्रव्यदृष्टिकरि करो हो, तो द्रव्य तो शुद्ध अशुद्ध सर्वपर्यायनिका समुदाय है। तुम शुद्ध ही अनुभवन काहेकों करो हो। अर पर्यायदृष्टि करि करो हो, तो तुम्हारै तो वर्त्तमान अशुद्ध पर्याय है। तुम आपकों शुद्ध कैसें मानो हो? बहुरि जो शक्ति अपेक्षा शुद्ध मानो हो, तो मैं ऐसा होने योग्य हूं ऐसा मानो। मैं ऐसा हूं ऐसे काहेकों मानो हो। तातैं आपकों शुद्धरूप चिंतवन करना भ्रम है। काहेतें—तुम आपकों सिद्धसमान मान्या, तो यहु संसार अवस्था कौनकी है। अर तुम्हारै केवलज्ञानादि हैं, तो ये मतिज्ञानादिक कौनके हैं। अर द्रव्यकर्म नोकर्मरहित हो, तो ज्ञानादिककी व्यक्तता क्यों नहीं? परमानन्दमय हो, तो अब कर्तव्य कहा रह्या? जन्म मरणादि दुःख ही नाहीं, तो दुःखी कैसें होते हो? तातैं अन्य अवस्थाविषैं अन्य अवस्था मानना भ्रम है।

यहां कोऊ कहै—शास्त्रविषैं शुद्ध चिंतवन करनेका उपदेश कैसें दिया है।

ताका उत्तर—एक तो द्रव्य अपेक्षा शुद्धपना है, एक पर्याय अपेक्षाशुद्धपना है। तहां द्रव्यअपेक्षा तो परद्रव्यतै भिन्नपनौं वा अपने भावनितें अभिन्नपनौं ताका नाम शुद्धपना है। अर पर्याय अपेक्षा

औपाधिकभावनिका अभाव होना, ताका नाम शुद्धपना है। सो शुद्ध चिंतवनिविषैं द्रव्य अपेक्षा शुद्धपना ग्रहण किया है। सोई समयसार-व्याख्याविषैं कह्या है—

एष एवाशेषद्रव्यान्तरभावेभ्यो भिन्नत्वेनोपास्यमानः शुद्ध इत्यभिलप्यते।

(समयसार आत्मख्याति टीका गाथा० ६)

याका अर्थ—जो आत्मा प्रमत्त अप्रमत्त नाहीं है। सो यहु ही समस्त परद्रव्यनिके भावनितैं भिन्नपनेकरि सेया हुआ शुद्ध ऐसा कहिए है। बहुरि तहां ही ऐसा कह्या है।

सकलकारकचक्रप्रक्रियोत्तीर्णनिर्मलानुभूतिमात्रत्वाच्छुद्धः।

(समयसार आत्मख्याति टीका गाथा० ७३)

याका अर्थ—समस्त ही कर्त्ता कर्म आदि कारकनिका समूहकी प्रक्रियातैं पारंगत ऐसो जो निर्मल अनुभूति जो अभेद ज्ञान तन्मात्र है, तातैं शुद्ध है। तातैं ऐसे शुद्ध शब्द का अर्थ जानना। बहुरि ऐसैं ही केवल शब्द का अर्थ जानना। जो परभावतैं भिन्न निःकेवल आप ही ताका नाम केवल है। ऐसैं ही अन्य यथार्थ अर्थ अवधारना। पर्याय अपेक्षा शुद्धपनों मानें वा केवली आपकों मानें महाविपरीत होय। तातैं आपकों द्रव्यपर्यायरूप अवलोकना। द्रव्यकरि सामान्यस्वरूप अवलोकना, पर्यायकरि अवस्था विशेष अवधारना। ऐसैं ही चिंतवन किएं सम्यग्दृष्टी हो है। जातैं सांचा अवलोके बिना सम्यग्दृष्टी कैसैं नाम पावै।

बहुरि मोक्षमार्गविषैं तो रागादिक मेटनेका श्रद्धान ज्ञान आचरण करना है सो तो विचार नाहीं। आपका शुद्ध अनुभवनतैं ही आपकों सम्यग्दृष्टी मानि अन्य सर्व साधननिका निषेध करै है; शास्त्र अभ्यास करना निरर्थक बतावै है, द्रव्यादिकका गुणस्थान मार्गणा त्रिलोकादिका विचारकों विकल्प ठहरावै है, तपश्चरण करना वृथा क्लेश करना मानै है, व्रतादिकका धारना बन्धन में परना ठहरावै है,

पूजनादि कार्यनिकों शुभास्रव जानि हेय प्ररूपै है; इत्यादि सर्व साधन कों उठाय प्रमादी होय परिणमैं है। सो शास्त्राभ्यास निरर्थक होय तो मुनिनकै भी तो ध्यान अध्ययन दोय ही कार्य मुख्य हैं। ध्यानविषैं उपयोग न लागै, तब अध्ययनही विषैं उपयोगकूं लगावै है, अन्य ठिकाना बीच में उपयोग लगावने योग्य है नाहीं। बहुरि शास्त्र अभ्यासकरि तत्त्वनिका विशेष जाननेतें सम्यग्दर्शन ज्ञान निर्मल होय है। बहुरि तहाँ यावत् उपयोग रहै, तावत् कषाय मन्द रहै। बहुरि आगामी वीतरागभावनिकी वृद्धि होय। ऐसें कार्यकों निरर्थक कैसें मानिए ?

बहुरि वह कहै—जो जिनशास्त्रनिविषैं अध्यात्म उपदेश है, तिनि का अभ्यास करना, अन्य शास्त्रनिका अभ्यासकरि किछू सिद्धि नाहीं।

ताकों कहिए है—जो तेरैं साँची दृष्टि भई है, तो सर्व ही जैन शास्त्र कार्यकारी हैं। तहां भी मुख्यपनें अध्यात्म शास्त्रनिविषैं तो आत्मस्वरूपका मुख्य कथन है सो सम्यग्दृष्टी भए आत्मस्वरूपका तो निर्णय होय चुकै, तब तो ज्ञान की निर्मलता के अर्थि वा उपयोग को मन्द-कषायरूप राखनेके अर्थि अन्य शास्त्रनिका अभ्यास मुख्य चाहिए। अर आत्मस्वरूपका निर्णय भया है, ताका स्पष्ट राखनेके अर्थि अध्यात्मशास्त्रनिका भी अभ्यास चाहिए परन्तु अन्य शास्त्रनिविषैं अरुचि तो न चाहिए। जाकै अन्य शास्त्रनिकै अरुचि है, ताकै अध्यात्मकी रुचि सांची नाहीं। जैसे जाकै विषयासक्तपना होय, सो विषयासक्त पुरुषनिकी कथा भी रुचितें सुनै वा विषयके विशेषकों भी जानै वा विषयके आचरनविषैं जो साधन होय ताकों भी हितरूप मानैं वा विषयका स्वरूपकों भी पहिचानैं। तैसें जाकै आत्मरुचिभई होय, सो आत्मरुचिके धारक तीर्थंकरादिक तिनका पुराण भी जानैं। बहुरि आत्माके विशेष जाननेकों गुणस्थानादिककों भी जानैं। बहुरि आत्मा-चरणविषै जे व्रतादिक साधन हैं, तिनकों भी हितरूप मानैं। बहुरि

आत्माके स्वरूपकों भी पहिचानें। तातें च्यारयों ही अनुयोग कार्यकारी हैं। बहुरि तिनका नीका ज्ञान होनेके अर्थि शब्द न्यायशास्त्रादिकको भी जानना चाहिए। सो अपनी शक्तिके अनुसार सबनिका थोरा वा बहुत अभ्यास करना योग्य है।

बहुरि वह कहै है, 'पद्मनन्दिपच्चीसी' विषें ऐसा कह्या है—जो आत्मस्वरूपतें निकसि बाह्य शास्त्रनिविषें बुद्धि विचरै है, सो वह बुद्धि व्यभिचारिणी है।

ताका उत्तर—यहु सत्य कह्या है। बुद्धि तो आत्माकी है, ताकों छोरि परद्रव्य शास्त्रनिविषें अनुरागिणी भई, ताकों व्यभिचारिणी ही कहिए। परन्तु जैसें स्त्री शीलवती रहै तो योग्य ही है अर न रह्या जाय तो उत्तम पुरुषकों छोरि चांडालादिकका सेवन किए तो अत्यन्त निन्दनीक होइ। तैसें बुद्धि आत्मस्वरूपविषें प्रवर्तै तो योग्य ही है अर न रह्या जाय तो प्रशस्त शास्त्रादि परद्रव्यकों छोरि अप्रशस्त विषयादिविषें लगै तो महानिंदनीय ही होइ। सो मुनिनिकैं भी स्वरूपविषें बहुत काल बुद्धि रहे नाहीं तो तेरी कैसें रह्या करै? तातें शास्त्राभ्यासविषें उपयोग लगावना युक्त है। बहुरि जो द्रव्यादिकका वा गुणस्थानादिकका विचारकों विकल्प ठहरावै है, सो विकल्प तो है परन्तु निर्विकल्प उपयोग न रहै तब इनिविकल्पनिकों न करें तो अन्य विकल्प होइ, ते बहुत रागादि गर्भित हो हैं। बहुरि निर्विकल्प दशा सदा रहै नाहीं। जातैं छद्मस्थका उपयोग एक रूप उत्कृष्ट रहै तो अन्तर्मुहूर्त रहै। बहुरि तू कहैगा—मैं आत्मस्वरूप ही का चिंतवन अनेक प्रकार किया करूँगा, सो सामान्य चिंतवनविषें तो अनेक प्रकार बनें नाहीं। अर विशेष करेगा, तब द्रव्य गुण पर्याय गुणस्थान मार्गणा शुद्ध अशुद्ध अवस्था इत्यादि विचार होयगा। बहुरि सुनि, केवल आत्मज्ञानहीतें तो मोक्षमार्ग होइ नाहीं। सप्ततत्त्वनिका श्रद्धान ज्ञान भए वा रागादिक दूरि किए मोक्षमार्ग होगा। सो सप्त तत्त्वनिका विशेष जाननेकों जीव अजीवके विशेष वा कर्मके आस्रव बन्धादिका विशेष

अवश्य जानना योग्य है, जातैं सम्यग्दर्शन ज्ञानकी प्राप्ति होय। बहुरि तहाँ पीछैं रागादिक दूरि करने। सो जे रागादिक बधावने के कारण तिनकों छोड़ि जे रागादिक घटावनेके कारण होय तहाँ उपयोगकों लगावना। सो द्रव्यादिकका गुणस्थानादिकका विचार रागादिक घटावनेकों कारण है। इन विषैं कोई रागादिकका निमित्त नाहीं। तातैं सम्यग्दृष्टी भए पीछैंभी इहांही उपयोग लगावना।

बहुरि वह कहै है —रागादि मिटावनेकों कारण होंय तिनविषैं तो उपयोग लगावना परन्तु त्रिलोकवर्ती जीवनिका गति आदि विचार करना वा कर्म्मका बन्ध उदयसत्तादिकका घणा विशेष जानना वा त्रिलोकका आकार प्रमाणादिक जानना इत्यादि विचार कौन कार्यकारी है।

ताका उत्तर—इनिकों भी विचारतें रागादिक बधते नाहीं। जातैं ए ज्ञेय याकै इष्ट अनिष्ट हैं नाहीं। तातैं वर्तमान रागादिककों कारण नाहीं। बहुरि इनको विशेष जानें तत्त्वज्ञान निर्मल होय, तातैं आगामी रागादिक घटावनेकों ही कारण हैं। तातैं कार्यकारी हैं।

बहुरि वह कहै है- स्वर्ग नरकादिककों जानें तहां रागद्वेष हो है।

ताका समाधान—ज्ञानीकै तो ऐसी बुद्धि नाहीं, अज्ञानीकै होय। तहाँ पाप छोरि पुण्यकार्यविषैं लागै तहाँ किछू रागादिक घटै ही हैं।

बहुरि वह कहै है—शास्त्रविषैं ऐसा उपदेश है, प्रयोजनभूत थोरा ही जानना कार्यकारी है तातैं बहुत विकल्प काहेकों कीजिए।

ताका उत्तर—जे जीव अन्य बहुत जानै अर प्रयोजनभूतकों न जानैं अथवा जिनकी बहुत जानने की शक्ति नाहीं, तिनकों यहु उपदेश दिया है। बहुरि जाकी बहुत जाननेकी शक्ति होय, ताकों तो यहु कह्या नाहीं जो बहुत जाने बुरा होगा। जेता बहुत जानेगा, तितना प्रयोजनभूत निर्मल होगा। जातैं शास्त्रविषैं ऐसा कह्या है—

सामान्यशास्त्रतो नूनं विशेषो बलवान भवेत्

याका अर्थ यहु—सामान्य शास्त्रतैं विशेष बलवान है। विशेषतैं नीके निर्णय हो है। तातैं विशेष जानना योग्य है। बहुरि वह तपश्चरणकों वृथा क्लेश ठहरावै है। सो मोक्षमार्गी भए तो संसारी जीवनितैं उलटी परणति चाहिए। संसारीनिकै इष्ट अनिष्ट सामग्रीतैं रागद्वेष हो है, याकै रागद्वेष न चाहिए। तहाँ राग छोड़नेके अर्थि इष्ट सामग्री भोजनादिकका त्यागी हो है अर द्वेष छोड़नेके अर्थि अनिष्ट सामग्री अनशनादिक ताका अंगीकार करैं है। स्वाधीनपनें ऐसा साधन होंय तो पराधीन इष्ट अनिष्ट सामग्री मिलें भी राग द्वेष न होय। सो चाहिए तो ऐसें अर तेरै अनशनादितैं द्वेष भया, तातैं ताकों क्लेश ठहराया। जब यहु क्लेश भया, तब भोजन करना सुख स्वमेव ठहरया, तहाँ राग आया; तो ऐसी परिणति तो संसारीनिकै पाईएही है, तैं मोक्षमार्गी होय कहा किया।

बहुरि जो तू कहेगा, केई सम्यग्दृष्टी भी तपश्चरण नाहीं करैं हैं।

ताका उत्तर—यहु कारण विशेषतैं तप न होय सकै है परन्तु श्रद्धानविषैं तो तपको भला जानैं हैं। ताके साधनका उद्यम राखैं हैं। तेरै तो श्रद्धान यहु है, तप करना क्लेश है। बहुरि तपका तेरै उद्यम नाहीं, तातैं तेरै सम्यग्दृष्टीपना कैंसे होय ?

बहुरि वह कहै—शास्त्रविषैं ऐसा कह्या है—तप आदिका क्लेश करै है तो करो ज्ञान बिना सिद्धि नाहीं।

ताका उत्तर—यहु जे जीव तत्त्वज्ञानतैं तो परान्मुख हैं, तपहीतैं मोक्ष मानैं हैं, तिनकों ऐसा उपदेश दिया है, तत्त्वज्ञान बिना केवल तपहीतैं मोक्षमार्ग न होय। बहुरि तत्त्वज्ञान भए रागादिक मेटनेके अर्थि तप करनेका तो निषेध है नाहीं। जो निषेध होय तो गणधरादिक तप काहेकों करैं। तातैं अपनी शक्ति अनुसारि तप करना योग्य है। बहुरि वह व्रतादिककों बन्धन मानै है। सो स्वच्छन्दवृत्तितो

अज्ञान अवस्थाही विषै थी, ज्ञान पाएं तो परिणतिकों रोकै ही है। बहुरि तिस परिणति रोकने के अर्थि बाह्य हिंसादिक कारणनिका त्यागी अवश्य भया चाहिए।

बहुरि वह कहै है—हमारे परिणाम तो शुद्ध हैं, बाह्य त्याग न किया तो न किया।

ताका उत्तर—जे ये हिंसादि कार्य तेरे परिणाम बिना स्वयमेव होते होंय, तो हम ऐसें नानैं। बहुरि जो तू अपना परिणामकरि कार्य करै, तहां तेरे परिणाम शुद्ध कैसे कहिए। विषय सेवनादि क्रिया वा प्रमादरूप गमनादि क्रिया परिणाम बिना कैसें होय। सो क्रिया तो आपउद्यमी होय तू करै अर तहाँ हिंसादिक होय ताकों तू गिनै नाहीं, परिणाम शुद्ध मानै। सो ऐसो मानितैं तेरे परिणाम अशुद्ध ही होते रहेंगे।

बहुरि वह कहै है—परिणामनिकों रोकिए वा बाह्य हिंसादिक भी घटाईए परन्तु प्रतिज्ञा करने में बन्धन हो है, तातैं प्रतिज्ञारूप व्रत नाहीं अंगीकार करना।

ताका समाधान—जिस कार्य करनेकी आशा रहै है, ताकी प्रतिज्ञा न लीजिए है। अर आशा रहै तिसतैं राग रहै है। तिस राग-भावतैं बिना कार्य किएं भी अविरतितैं कर्मका बन्ध हुवा करै। तातैं प्रतिज्ञा अवश्य करनी युक्त है। अर कार्य करनेका बन्धन भए बिना परिणाम कैसें रुकेंगें, प्रयोजन पड़े तद्रूप परिणाम होंय ही होंय वा बिना प्रयोजन पड़े ताकी आशा रहै। तातैं प्रतिज्ञा करनी युक्त है।

बहुरि वह कहै है—न जानिए कैसा उदय आवै, पीछें प्रतिज्ञा-भंग होय तो महापाप लागै। तातैं प्रारब्ध अनुसार कार्य बनैं सो बनों प्रतिज्ञाका विकल्प न करना।

ताका समाधान—प्रतिज्ञा ग्रहण करते जाका निर्वाह होता न जानैं, तिस प्रतिज्ञाकों तो करै नाहीं। प्रतिज्ञा लेतें ही यहु अभिप्राय रहै, प्रयोजन पड़े छोड़िदूंगा, तो वह प्रतिज्ञा कौन कार्यकारी भई।

अर प्रतिज्ञा ग्रहण करतें तो यहु परिणाम है, मरणांत भए भी न छोड़ूंगा तो ऐसी प्रतिज्ञा करनी युक्त ही है। बिना प्रतिज्ञा किए अविरत सम्बन्धी बन्ध मिटै नाहीं। बहुरि आगामी उदयका भयकरि प्रतिज्ञा न लीजिए सो उदयकों विचारैं सर्व ही कर्त्तव्यका नाश होय। जैसैं आपकों पचाता जानैं, तितना भोजन करै, कदाचित् काहूकै भोजनतें अजीर्ण भया होय तो तिस भयतैं भोजन करना छांडै तो मरण ही होय। तैसें आपकै निर्वाह होता जानै तितनी प्रतिज्ञा करै, कदाचित् काहूकै प्रतिज्ञातैं भ्रष्टपना भया होय, तो तिस भयतैं प्रतिज्ञा करनी छांड़ै तो असंयम ही होय। तातैं बनैं सो प्रतिज्ञा लेनी युक्त है। बहुरि प्रारब्ध अनुसारि तो कार्य बनै ही है, तू उद्यमी होय भोजनादि काहेकों करै है। जो तहाँ उद्यम करै है, तो त्याग करने का भी उद्यम करना युक्त ही है। जब प्रतिमावत् तेरी दशा होय जायगी, तब हम प्रारब्ध ही मानेंगे, तेरा कर्त्तव्य न मानेंगे। तातैं काहे-कों स्वच्छन्द होनेंकी युक्ति बनावै है। बनै सो प्रतिज्ञाकरि व्रत धारना योग्य ही है।

बहुरि वह पूजनादि कार्यकों शुभास्रव जानि हेय मानै है सो यहु सत्य ही है। परन्तु जो इनि कार्यनिकों छोरि शुद्धोपयोगरूप होय तो भले ही है अर विषय कषायरूप अशुभरूप प्रवर्तै तो अपना बुरा ही किया। शुभोपयोगतैं स्वर्गादि होय वा भली वासनातैं वा भला निमित्ततें कर्मका स्थिति अनुभाग घटि जाय तो सम्यक्त्वादिककी भी प्राप्ति होय जाय। बहुरि अशुभोपयोगतैं नरक निगोदादि होय वा बुरी वासनातैं वा बुरा निमित्ततें कर्मका स्थिति अनुभाग बधि जाय, तो सम्यक्त्वादि महा दुर्लभ होय जाय। बहुरि शुभोपयोग होतें कषाय मन्द हो है, अशुभोपयोगहोतें तीव्र हो है। सो मंदकषायका कार्य छोरि तीव्रकषाय का कार्य करना तो ऐसा है, जैसें कड़वी वस्तु न खानी अर विष खाना। सो यहु अज्ञानता है।

बहुरि वह कहै है—शास्त्र विषैं शुभ अशुभकों समान कह्या है, तातैं हमकों तो विशेष जानना युक्त नाहीं।

ताका समाधान—जे जीव शुभोपयोगकों मोक्षका कारण मानि उपादेय मानैं हैं, शुद्धोपयोगकों नाहीं पहिचानैं हैं, तिनकों शुभ अशुभ दोऊनिकों अशुद्धताकी अपेक्षा वा बन्धकारणकी अपेक्षा समान दिखाये हैं। बहुरि शुभ अशुभनिका परस्पर विचार कीजिए, तो शुभ भावनि विषैं कषायमन्द हो है, तातैं बन्ध हीन हो है। अशुभभावनिविषैं कषायतीव्र हो है, तातैं बन्ध बहुत हो है। ऐसें विचार किए अशुभकी अपेक्षा सिद्धान्तविषैं शुभकों भला भी कहिए है। ऐसें रोग तो थोरा वा बहुत बुरा ही है परन्तु बहुत रोगकी अपेक्षा थोरा रोगकों भला भी कहिए है। तातैं शुद्धोपयोग नाहीं होय, तब अशुभतैं छूटि शुभविषैं प्रवर्त्तनायुक्त है। शुभकों छोरि अशुभविषैं प्रवर्त्तना युक्त नाहीं।

बहुरि वह कहै है—जो कामादिक वा क्षुधादिक मिटावनेकों अशुभरूप प्रवृत्ति तो भए बिना रहती नाहीं अर शुभप्रवृत्ति चाहिकरि करनी परै है, ज्ञानीकै चाह चाहिए नाहीं; तातैं शुभका उद्यम नाहीं करना।

ताका उत्तर—शुभप्रवृत्तिविषैं उपयोग लगानेकरि वा ताके निमित्ततैं विरागता बधनेकरि कामादिक हीन हो हैं अर क्षुधादिकविषैं भी संक्लेश थोरा हो है। तातैं शुभोपयोगका अभ्यास करना। उद्यम किए भी जो कामादिक वा क्षुधादिक पीडै हैं तो ताके अर्थि जैसें थोरा पाप लागै सो करना। बहुरि शुभोपयोगकों छोड़ि निश्शंक पापरूप प्रवर्त्तना तो युक्त नाहीं। बहुरि तू कहै—ज्ञानीकै चाहि नाहीं अर शुभोपयोग चाहि किएं हो है सो जैसें पुरुष किंचिन्मात्र भी अपना धन दिया चाहै नाहीं परन्तु जहाँ बहुत द्रव्य जाता जानैं, तहाँ चाहिकरि स्तोक द्रव्य देनेका उपाय करै है। तैसें ज्ञानी किंचिन्मात्र भी कषायरूप कार्य किया चाहै नाहीं परन्तु जहां बहुत कषायरूप अशुभ कार्य होता जानैं तहां चाहिकरि स्तोक कषायरूप शुभ कार्य करनेका उद्यम करै

है। ऐसें यहु बात सिद्ध भई—जहाँ शुद्धोपयोग होता जानैं, तहाँ तौ शुभकों उपायकरि अंगीकार करना युक्त है। या प्रकार अनेक व्यवहारकार्यंकों उथापि स्वछन्दपनाकों स्थापै हैं, ताका निषेध किया।

अब तिस ही केवल निश्यावलम्बी जीवकी प्रवृत्ति दिखाइए है—एक शुद्धात्माकों जानें ज्ञानी हो है, अन्य किछू चाहिए नाहीं। ऐसा जानि कबहूं एकांत तिष्ठिकरि ध्यान मुद्रा धारि मैं सर्वकर्म उपाधिरहित सिद्ध समान आत्मा हूँ, इत्यादि विचारकरि सन्तुष्ट हो है। सो ए विशेषण कैसें संभवै, ऐसा विचार नाहीं। अथवा अचल अखंड अनौपम्यादि विशेषण करि आत्माकों ध्यावै है, सो ए विशेषण अन्य द्रव्यनिविषैं भी सम्भवैं हैं। बहुरि ए विशेषण किस अपेक्षा हैं, सो विचार नाहीं। बहुरि कदाचित् सूता बैठ्या जिस तिस अवस्थाविषैं ऐसा विचार राखि आपकों ज्ञानी मानें है। बहुरि ज्ञानी कै आस्रव बंध नाहीं ऐसा आगमविषैं कह्या है तातैं कदाचित् विषय-कषायरूप हो है। तहाँ बंध होने का भय नाहीं है, स्वच्छ भया रागादिरूप प्रवर्तै है। सो आपा परकों जाननेका तो चिन्ह वैराग्यभाव है सो समयसारविषैं कह्या है—

"सम्यग्दृष्टेर्भवति नियतं ज्ञानवैराग्यशक्तिः।"*

याका अर्थ—यहु सम्यग्दृष्टीकै निश्चयसों ज्ञानवैराग्य शक्ति होय। बहुरि कह्या है—

सम्यग्दृष्टिः स्वयमयमहं जातु बन्धो न मे स्या-
दित्युत्तानोत्पुलकवदना रागिणोऽप्याचरन्तु।
आलम्बन्तां समिति परतां ते यतोऽद्यापि पापा
आत्मानात्मावगमविरहात्सन्ति सम्यक्त्वरिक्ताः।१३७।

---

* सम्यग्दृष्टेर्भवति नियतं ज्ञानवैराग्यशक्तिः; स्वं वस्तुत्वं कलयितुमयं स्वान्य रूपाप्ति मुक्त्या। यस्माज्ज्ञात्वा व्यतिकरमिदं तत्त्वतः स्वं परं च, स्वस्मिन्नास्ते विरमति परात्सर्वतो रागयोगात् ॥ निर्जरा० कलश १३६॥

याका अर्थ—स्वयमेव यहु मैं सम्यग्दृष्टी हूं, मेरै कदाचित् बंध नाहीं, ऐसैं ऊँचा फुलाया है मुख जिनने ऐसैं रागी वैराग्य शक्ति रहित भी आचरण करै हैं तो करो, बहुरि पंचसमितिकी सावधानीकों अवलम्बै हैं तो अवलम्बो, जातैं वे ज्ञान शक्ति बिना आजहूं पापी ही हैं। ए दोऊ आत्मा अनात्माका ज्ञानरहितपनातैं सम्यक्त्वरहित ही हैं।

बहुरि पूछिए है—परकों पर जान्या, तो परद्रव्यनिविषैं रागादि करनेका कहा प्रयोजन रहा ? तहां वह कहै है—मोहके उदयतैं रागादि हो हैं। पूर्वैं भरतादिक ज्ञानी भये, तिनकै भी विषय कषाय रूप कार्य भया सुनिए है।

ताका उत्तर—ज्ञानीकै भी मोहके उदयतैं रागादिक हो हैं—यहु सत्य परन्तु बुद्धि पूर्वक रागादिक होते नाहीं। सो विशेष वर्णन आगैं करैंगे। बहुरि जाकै होनेका किछू विषाद नाहीं, तिनके नाशका उपाय नाहीं, ताकै रागादिक बुरे हैं ऐसा श्रद्धान भी नाहीं सम्भवै है। ऐसैं श्रद्धान बिना सम्यग्दृष्टि कैसें होय ? जीवाजीवादि तत्त्वनिके श्रद्धान करनेका प्रयोजन तो इतना ही श्रद्धान है। बहुरि भरतादिक सम्यग्दृष्टीनिकै विषय कषायका प्रवृत्ति जैसें हो है, सो भी विशेष आगे कहेंगे। तू उनका उदाहरणकरि स्वच्छन्द होगा तो तेरे तीव्र आस्रव बंध होगा। सोई कह्या है—

मग्नाः ज्ञाननयैषिणोपि यदि ते स्वच्छन्दोद्यमाः*।

याका अर्थ—यहु ज्ञाननयके अवलोकनहारे भी जे स्वच्छन्द मंद उद्यमी हो हैं, ते संसारविषैं डूबैं और भी तहां "ज्ञानिन कर्म्म न जातु कर्त्तु मुचितं"—इत्यादि कलशाविषैं वा "तथापि न निर्गलं चरितु-

* मग्नाः कर्मनयावलम्बनपरा ज्ञानं न जानन्ति यत्।
मग्नाः ज्ञाननयैषिणोपि यदिति स्वच्छन्दमन्दोद्यमाः॥
विश्वस्योपरि ते तरन्ति सततं ज्ञानं भवन्तः स्वयं।
ये कुर्वन्ति न कर्म जातु न वशं यान्ति प्रमादस्य च॥
—समयसार कलश १११

मिष्यते ज्ञानिनः''—इत्यादि कलशा विषैं स्वच्छन्द होना निषेध्या है। बिना चाहि जो कार्य होय सो कर्मबन्धका कारण नाहीं। अभिप्रायतैं कर्त्ता होय करै अर ज्ञाता रहै, यहु तो बनै नाही; इत्यादि निरूपण किया है। तातैं रागादिक बुरे अहितकारी जानि तिनका नाशके अर्थि उद्यम राखना। तहाँ अनुक्रमविषैं पहलैं तीव्ररागादिक छोड़ने अर्थि अशुभ कार्य छोरि शुभ विषैं लागना, पीछैं मन्दरागादि भी छोड़नेके अर्थि शुभकों भी छोरि शुद्धोपयोगरूप होना।

बहुरि केई जीव अशुभविषैं क्लेश मानि व्यापारादि कार्य वा स्त्रीसेवनादि कार्यनिकों भी घटावै हैं। बहुरि शुभकों हेय जानि शास्त्राभ्यसादि कार्यनिविषैं नाहीं प्रवर्तै हैं। वीतराग भावरूप शुद्धोपयोगकों प्राप्त भए नाहीं, ते जीव अर्थ काम धर्म्म मोक्षरूप पुरुषार्थतैं रहित होते सते आलसी निरुद्यमी हो हैं। तिनकी निन्दा पंचास्तिकायकी व्याख्या विषैं कीनी है। तिनकों दृष्टान्त दिया है—जैसें बहुत खीर खांड खाय पुरुष आलसी हो है वा जैसें वृक्ष निरुद्यमी हैं, तैसें ते जीव आलसी निरुद्यमी भए हैं।

अब इनकों पूछिये है—तुम बाह्य तो शुभ अशुभकार्यनिकों घटाया परन्तु उपयोग तो आलम्बन बिना रहता नाहीं, सो तुम्हारा उपयोग कहाँ रहै है, सो कहो। जो वह कहै—आत्माका चिंतवन करै है, तो शास्त्रादि करि अनेक प्रकारके आत्माका विचारकों तो तुम विकल्प ठहराया अर कोई विशेषण आत्माका जाननेमें बहुतकाल लागै नाहीं। बारम्बार एकरूप चिंतवनविषैं छद्मस्थका उपयोग लगता नाहीं। गणधरादिकका भी उपयोग ऐसें न रहि सकै, तातैं वे भी शास्त्रादि कार्यनिविषैं प्रवर्त्तैं हैं। तेरा उपयोग गणधरादिकतैं भी कैसैं शुद्ध भया मानिये। तातैं तेरा कहना प्रमाण नाहीं। जैसें कोऊ व्यापारादिविषैं निरुद्यमी होय ठाला जैसें तैसें काल गुमावै, तैसें तू धर्म्म विषैं निरुद्यमी होइ प्रमादी यूँ ही काल गमावै है। कबहूं किछू चिंतवनसा करै, कबहूं बातै बनावै, कबहूं भोजनादि करै, अपना उपयोग निर्मल

करनेकों शास्त्राभ्यास तपश्चरण भक्ति आदि कार्यनिविषें प्रवर्त्तता नाहीं। सूनासा होय प्रमादी होनेंका नाम शुद्धोपयोग ठहराय, तहाँ क्लेश थोरा होनेतें जैसे कोई आलसी होय परथा रहने में सुख मानै, तैसें आनन्द मानै है। अथवा जैसें सुपने विषें आपकों राजा मानि सुखी होय, तैसें आपकों भ्रमतें सिद्ध समान शुद्ध मानि आप ही आनन्दित हो है। अथवा जैसें कहीं रति मानि सुखी हो है, तैसें किछू विचार करने विषें रति मानि सुखी होय, ताकों अनुभवजनित आनन्द कहै है। बहुरि जैसें कहीं अरति मानि उदास होय, तैसें व्यापारिक पुत्रादिककों खेदका कारण जानि तिनतें उदास रहै है, ताकों वैराग्य मानै है। सो ऐसा ज्ञान वैराग्य तो कषायगर्भित है। जो वीतरागरूप उदासीन दशाविषें निराकुलता होय, सो सांचा आनन्द ज्ञान वैराग्य ज्ञानी जीवनिकै चारित्र मोहकी हीनता भए प्रगट हो है। बहुरि वह व्यापारादि क्लेश छोड़ि यथेष्ट भोजनादिकरि सुखी हुवा प्रवर्त्तै है। आपको तहां कषायरहित मानैं है, सो ऐसैं आनन्दरूप भये तो रौद्र-ध्यान हो है। जहाँ सुख सामग्री छोड़ि दुख सामग्री का संयोग भए संक्लेश न होय, रागद्वेष न उपजै तब निःकषाय भाव हो हैं। ऐसें भ्रमरूप तिनकी प्रवृत्ति पाइये है। या प्रकार जे जीव केवल निश्चया-भासके अवलम्बी हैं, ते मिथ्यादृष्टी जाननें। जैसें वेदान्ती वा सांख्य-मतवाले जीव केवल शुद्धात्माके श्रद्धानी हैं, तैसें ए भी जानवें, जातें श्रद्धानकी समानताकरि उनका उपदेश इनकों इष्ट लागै है, इनका उपदेश उनकों इष्ट लागै नाहीं।

बहुरि तिन जीवनिकै ऐसा श्रद्धान है—जो केवल शुद्धात्मा का चिंतवनतें तो संवर निर्जरा हो है वा मुक्तात्माका सुखका अंश तहां प्रगट हो है। बहुरि जीवके गुणस्थानादि अशुद्ध भावनिका वा आप बिना अन्य जीव पुद्गलादिकका चिंतवन किए आस्रव बन्ध हो है। तातें अन्य विचारतें परांमुख रहै हैं। सो यह भी सत्य श्रद्धान नाहीं, जातें शुद्ध स्वद्रव्यका चिंतवन करो वा अन्य चिंतवन करो; जो

वीतरागता लिए भाव होय, तो तहां संवर निर्जरा हो है अर जहाँ रागादिरूप भाव होय, तहाँ आस्रव बन्ध ही है। जो परद्रव्यके जानने-हीतें आस्रव बन्ध होय तो केवली तो समस्त परद्रव्यकों जानै हैं, तिनकै भी आस्रव बन्ध होय। बहुरि वह कहै है—जो छद्मस्थकै पर-द्रव्य चितवन होतें आस्रव बन्ध हो है। सो भी नाहीं, जातें शुक्ल ध्यानविषें भी मुनिनिकै छहों द्रव्यनिका द्रव्यगुण पर्यायका चितवन होना निरूपण किया है वा अवधिमन: पर्यायादिविषें परद्रव्यके जाननेही की विशेषता हो है। बहुरि चौथा गुणस्थानविषें कोई अपने स्वरूपका चितवन करै हैं, ताकै भी आस्रव बन्ध अधिक है वा गुण श्रेणी निर्जरा नाहीं है। पंचम षष्टम गुणस्थानविषें आहार विहारादि क्रिया होतें परद्रव्य चितवनतें भी आस्रव बन्ध थोरा हो है वा गुण-श्रेणी निर्जरा हुवा करै है। तातें स्वद्रव्य परद्रव्यका चितवनतें निर्जरा बन्ध नाहीं। रागादिकके घटे निर्जरा है, तातें अन्यथा मानै है।

तहाँ वह पूछै है कि ऐसें है तो निर्विकल्प अनुभव दशा विषें नयप्रमाण निक्षेपादिकका वा दर्शन ज्ञानादिकका भी विकल्प का निषेध किया है, सो कैसें है ?

ताका उत्तर—जे जीव इनही विकल्पनिविषें लगि रहै हैं, अभेदरूप एक आपकों अनुभवै नाहीं हैं, तिनकों ऐसा उपदेश दिया है जो ए सर्व विकल्प वस्तुका निश्चय करनेकों कारण हैं। वस्तु का निश्चय भये इनका प्रयोजन किछू रहता नाहीं। तातें इन विकल्प-निकों भी छोड़ि अभेदरूप एक आत्माका अनुभव करना। इनिके विचाररूप विकल्पनिही विषै फँसि रहना योग्य नाहीं। बहुरि वस्तुका निश्चय भए पीछें ऐसा नाहीं, जो सामान्यरूप स्वद्रव्यही चितवन रह्या करै। स्वद्रव्यका वा परद्रव्यका सामान्यरूप वा विशेषरूप जानना होय परन्तु वीतरागता लिएं होय, तिसहीका नाम निर्विकल्प दशा है।

तहाँ वह पूछै है—यहाँ तो बहुत विकल्प भए, निर्विकल्पसंज्ञा कैसें सम्भवै ?

ताका उत्तर—निर्विचार होनेका नाम निर्विकल्प नाहीं है। जातें छद्मस्थकै जानना विचार लिए है। ताका अभाव मानें ज्ञानका अभाव होय, तब जड़पना भया सो आत्माकै होता नाहीं। तातैं विचार तो रहै। बहुरि जो कहिए, एक सामान्यका ही विचार रहता है, विशेषका नाहीं। तो सामान्यका विचार तो बहुत काल रहता नाहीं वा विशेष की अपेक्षा बिना सामान्यका स्वरूप भासता नाहीं। बहुरि कहिए—आपहीका विचार रहता है परका नाहीं, तो परविषैं पर बुद्धि भए बिना आपविषें निजबुद्धि कैसं आवै ? तहां वह कहै है, समयसारविषें ऐसा कह्या है—

भावयेद्भेदविज्ञानमिदमच्छिन्नधारया।
तावद्यावत्पराच्च्युत्वा ज्ञानं ज्ञाने प्रतिष्ठितं ॥

(कलश १३०-संवर अधिकार)

याका अर्थ यहु—भेद विज्ञान तावत् निरन्तर भावना, यावत् परतें छूटें ज्ञान है सो ज्ञानविषें स्थित होय। तातैं भेद विज्ञान छूटै पर का जानना मिटि जाय है। केवल आपहीकों आप जान्या करै है।

सो यहां तो यहु कह्या है—पूर्वं आपा परकों एक जान था, पीछै जुदा जाननेकों भेद विज्ञानकों तावत् भावना ही योग्य है, यावत् ज्ञान पररूपकों भिन्न जानि अपनें ज्ञानस्वरूपही विषें निश्चित होय। पीछैं भेदविज्ञान करनेंका प्रयोजन रह्या नाहीं। स्वयमेव परकों पररूप आपकों आपरूप जान्या करै है। ऐसा नाहीं, जो परद्रव्यका जानना ही मिटि जाय है। तातें परद्रव्यका जानना वा स्वद्रव्यका विशेष जाननेका नाम विकल्प नाहीं है। सो कैसें है ? सो कहिए है—राग द्वेषके वशतें किसी ज्ञेयके जाननें विषें उपयोग लगावना, किसी ज्ञेयके जाननेतें छुड़ावना, ऐसें बार बार उपयोगकी भ्रमावना, ताका नाम विकल्प है। बहुरि जहां वीतरागरूप होय जाकों जानै है, ताकों

यथार्थ जानै है। अन्य अन्य ज्ञेयके जाननेके अर्थि उपयोगकों नाहीं भ्रमावै है, तहाँ निर्विकल्पदशा जाननी।

यहां कोऊ कहै-छद्मस्थका उपयोग तो नाना ज्ञेय विषैं भ्रमै ही भ्रमै। तहां निर्विकल्पता कैसें सम्भवै है ?

ताका उत्तर-जेते काल एक जाननें रूप रहै, तावत् निर्विकल्प नाम पावै। सिद्धान्तविषैं ध्यानका लक्षण ऐसा ही किया है-"एकाग्रचिंतानिरोधो ध्यानम्।"*

एकका मुख्य चितवन होय अर अन्य चिन्ता रुकै, ताका नाम है। सर्वार्थसिद्धि सूत्रकी टीका विषैं यहु विशेष कह्या है-जो सर्व चिंता रुकनेका नाम ध्यान होय तो अचेतनपनों होय जाय। बहुरि ऐसी भी विविक्षा है जो सन्तान अपेक्षा नाना ज्ञेयका भी जानना होय। परन्तु यावत् वीतरागता रहै, रागादिककरि आप उपयोगकों भ्रमावै नाहीं, तावत् निर्विकल्पदशा कहिए है।

बहुरि वह कहै-ऐसें है तो परद्रव्यतैं छुड़ाय स्वरूपविषैं उपयोग लगावने का उपदेश काहेकों दिया है ?

ताका समाधान-जो शुभ अशुभ भावनिकों कारण पर द्रव्य हैं, तिनविषैं उपयोग लगे जिनकै राग द्वेष होइ आवैं हैं अर स्वरूप-चितवन करै तो राग द्वेष घटै हैं, ऐसें नीचली अवस्थावारे जीवनिकों पूर्वोक्त उपदेश है। जैसें कोऊ स्त्री विकारभावकरि पर घर जाती थी, ताकों मनै करी-पर घर मति जाय, घर में बैठि रहो। बहुरि जो स्त्री निर्विकार भावकरि काहूके घर जाय यथायोग्य प्रवर्त्तै तो किछू दोष है नाहीं। तैसें उपयोगरूप परणति राग-द्वेष भावकरि पर द्रव्यनिविषैं प्रवर्तै थी, ताकों मनै करी-परद्रव्यनिविषैं मति प्रवर्त्तै, स्वरूपविषैं मग्न रहो। बहुरि जो उपयोगरूप परणति वीत-रागभावकरि परद्रव्यकों जानि यथायोग प्रवर्तै, तो किछू दोष है नाहीं।

* "उत्तम संहननस्यैकाग्रचिन्ता निरोधो ध्यानमान्तर्मुहूर्तात्।"
(तत्त्वार्थसूत्र ९-२७)

बहुरि वह कहै—ऐसैं है तो महामुनि परिग्रहादि चिंतवनका त्याग काहेकों करैं हैं।

ताका समाधान—जैसें विकाररहित स्त्री कुशीलके कारण परघरनिका त्याग करै, तैसें वीतराग परणति रागद्वेषके कारण परद्रव्यनिका त्याग करै है। बहुरि जे व्यभिचारके कारण नाहीं, ऐसे परघर जानेंका त्याग है नाहीं। तैसें जे राग द्वेषकों कारण नाहीं, ऐसे परद्रव्य जाननेंका त्याग है नाहीं।

बहुरि वह कहै है—जैसैं जो स्त्री प्रयोजन जानि पितादिकके घरि जाय तो जावो, बिना प्रयोजन जिस तिसके घर जाना तो योग्य नाहीं। तैसें परणतिकों प्रयोजन जानि सप्ततत्त्वनिका विचार करना, बिना प्रयोजन गुणस्थानादिकका विचार करना योग्य नाहीं।

ताका समाधान—जैसें स्त्री प्रयोजन जानि पितादिक वा मित्रादिकके भी घर जाय तैसें परणति तत्त्वनिका विशेष जाननें कों कारण गुणस्थानादिक वा कर्म्मादिककों भी जानै। बहुरि तहां ऐसा जानना—जैसें शीलवती स्त्री उद्यमकरि तो विटपुरुषनिके स्थान न जाय, जो परवश तहां जाना बनि जाय, तहां कुशील न सेवै तो स्त्री शीलवती ही है। तैसें वीतराग परिणति उपायकरि तो रागादिकके कारण परद्रव्यनिविषैं न लागै, जो स्वयमेव तिनका जानना होय जाय, तहां रागादिक न करै तो परणति शुद्ध ही है। तातैं स्त्री आदिकी परीषह मुनिनकै होय, तिनिकों जानैं ही नाहीं, अपने स्वरूप ही का जानना रहै है, ऐसा मानना मिथ्या है। उनको जानै तो है परन्तु रागादिक नाहीं करै है। या प्रकार परद्रव्यकों जानतें भी वीतरागभाव हो है, ऐसा श्रद्धान करना।

बहुरि वह कहै—ऐसैं है तो शास्त्रविषैं ऐसैं कैसें कह्या है, जो आत्माका श्रद्धान ज्ञान आचरण सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र है।

ताका समाधान—अनादितें परद्रव्यविषैं आपका श्रद्धान ज्ञान आचरण था, ताके छुड़ावनेकों यहु उपदेश है। आपही विषैं आपका

श्रद्धान ज्ञान आचरण भए परद्रव्यविषैं रागद्वेषादि परणति करनेका श्रद्धान वा ज्ञान वा आचरन मिटि जाय, तब सम्यग्दर्शनादि हो है। जो परद्रव्यका परद्रव्यरूप श्रद्धानादि करनेतें सम्यग्दर्शनादि न होते होंय, तो केवलीकै भी तिनका अभाव होय। जहाँ परद्रव्यकों बुरा जानना, निज द्रव्यकों भला जानना, तहां तो रागद्वेष सहज ही भया। जहाँ आपकों आपरूप परकों पररूप यथार्थ जान्या करै, तैसैं ही श्रद्धानादिरूप प्रवर्तै, तब ही सम्यग्दर्शनादि हो हैं, ऐसैं जानना। तातैं बहुत कहा कहिए, जैसैं रागादि मिटावनेका श्रद्धान होय सो ही श्रद्धान सम्यग्दर्शन है। बहुरि जैसैं रागादि मिटावनेका जानना होय सोही जानना सम्यग्ज्ञान है। बहुरि जैसैं रागादि मिटैं सोही आचरण सम्यक्चारित्र है। ऐसा ही मोक्षमार्ग मानना योग्य है। या प्रकार निश्चयनयका आभास लिए एकान्तपक्षके धारी जैनाभास तिनके मिथ्यात्व का निरूपण किया।

केवल व्यवहारावलम्बी जैनाभास का निरूपण

अब व्यवहाराभास पक्षके धारक जैनाभासनिके मिथ्यात्वका निरूपण कीजिए है—जिन आगम विषैं जहां व्यवहारकी मुख्यताकरि उपदेश है, ताकों मानि बाह्यसाधनादिकहीका श्रद्धानादिक करै है, तिनके सर्व धर्मके अंग अन्यथारूप होय मिथ्याभावकों प्राप्त होय हैं सो विशेष कहिए हैं। यहां ऐसा जानि लेना; व्यवहारधर्मकी प्रवृत्तितैं पुण्यबन्ध होय है, तातैं पापप्रवृत्ति अपेक्षा तो याका निषेध है नाहीं। परन्तु इहाँ जो जीव व्यवहार प्रवृत्ति ही करि सन्तुष्ट होय, सांचा मोक्षमार्गविषैं उद्यमी न होय है, ताकों मोक्षमार्गविषैं सन्मुख करनेकों तिस शुभरूप मिथ्याप्रवृत्तिका भी निषेधरूप निरूपण कीजिए है। जो यहु कथन कीजिए है, ताकों सुनि जो शुभ प्रवृत्ति छोड़ि अशुभविषैं प्रवृत्ति करोगे तो तुम्हारा बुरा होगा और जो यथार्थ श्रद्धान करि मोक्षमार्गविषैं प्रवर्तोगे तो तुम्हारा भला होगा। जैसैं कोऊ रोगी निर्गुन औषधिका निषेध सुनि औषधि साधन छोड़ि कुपथ्य करेगा

तो वह मरेगा, वैद्यका किछू दोष नाहीं। तैसें कोउ संसारी पुण्यरूप-धर्मका निषेध सुनि धर्मसाधन छोड़ि विषयकषायरूप प्रवर्त्तेगा, तो वह ही नरकादिविषें दुःख पावेगा। उपदेश दाताका तो दोष है नाहीं। उपदेश देनेवालेका तो अभिप्राय असत्य श्रद्धानादि छुड़ाय मोक्षमार्ग-विषें लगावनेका जानना। सो ऐसा अभिप्रायतें इहां निरूपण कीजिए है।

कुल अपेक्षा धर्म मानने का निषेध

तहां कोई जीव तो कुलक्रमकरि ही जैनी हैं, जैनधर्मका स्वरूप जानते नाहीं। परन्तु कुलविषें जैसी प्रवृत्ति चली आई, तैसें प्रवर्त्तै हैं। सो जैसें अन्यमती अपने कुलधर्मविषें प्रवर्त्तै हैं, तैसें ही यहु प्रवर्त्तै है। जो कुलक्रमहीतें धर्म होय, तो मुसलमान आदि सर्व ही धर्मात्मा होंय। जैनधर्मका विशेष कहा रह्या ? सोई कह्या है।

लोयम्मि रायणीई णायं ण कुलकम्मि कइयावि।
किं पुण तिलोयपहुणो जिणंदधम्माहिगारम्मि ॥१॥

(उप. सि. र. गा, ७)

याका अर्थ—लोकविषें यहु राजनीति है-कदाचित् कुलक्रम-करि न्याय नाहीं होय है। जाका कुल चोर होय, ताकों चोरी करता पकरै तो वाका कुलक्रम जानि छोड़ै नाहीं, दण्ड ही दे। तो त्रिलोक प्रभु जिनेन्द्रदेवके धर्मका अधिकारविषें कहा कुलक्रम अनुसारि न्याय सम्भवै। बहुरि जो पिता दरिद्री होय आप धनवान् होय, तहां तो कुलक्रम विचारि आप दरिद्री रहता ही नाहीं, तो धर्मविषें कुलका कहा प्रयोजन है। बहुरि पिता नरक जाय पुत्र मोक्ष जाय, तहां कुल-क्रम कैसें रह्या ? जो कुल ऊपरि दृष्टि होय, तो पुत्र भी नरकगामी होय। तातें धर्मविषें कुलक्रमका किछू प्रयोजन नाहीं। शास्त्रनिका अर्थ विचारि जो कालदोष तें जिनधर्म विषें भी पापी पुरुषनिकरि कुदेव कुगुरु कुधर्म सेवनादिरूप वा विषय कषाय पोषणादिरूप

विपरीत प्रवृत्ति चलाई होय, ताका त्यागकरि जिनआज्ञा अनुसार प्रवर्त्तना योग्य है।

इहां कोऊ कहै—परम्परा छोड़ि नवीन मार्गविषैं प्रवर्तना युक्त नाहीं। ताकों कहिए है—

जो अपनीं बुद्धिकरि नवीन मार्ग पकरै तो युक्त नाहीं। जो परम्परा अनादिनिधन जैनधर्मका स्वरूप शास्त्रनिविषैं लिख्या है ताकी प्रवृत्ति मेटि बीचिमैं पापी पुरुषा अन्यथा प्रवृत्ति चलाई, तो ताकों परम्परा मार्ग कैसे कहिए। बहुरि ताकों छोड़ि पुरातन जैनशास्त्रनिविषैं जैसा धर्म लिख्या था तैंसें प्रवर्त्तै, तो ताकों नवीन मार्ग कैसें कहिए। बहुरि जो कुलविषैं जैसें जिनदेवकी आज्ञा है, तैसें ही धर्म्म की प्रवृत्ति है, तो आपकों भी तैसें ही प्रवर्त्तना योग्य है। परन्तु ताकों कुलाचार न जानना, धर्म जानि ताके स्वरूप फलादिकका निश्चय करि अंगीकार करना। जो सांचा भी धर्मको कुलाचार जानि प्रवर्तै है तो वाकों धर्मात्मा न कहिए, जातैं सर्व कुलके उस आचरणको छोड़ैं तो आप भी छोड़ि दे। बहुरि जो वह आचरण करै है सो कुल का भयकरि करै है, किछू धर्म बुद्धितैं नाहीं करै है; तातैं वह धर्मात्मा नाहीं। तातैं विवाहादि कुल सम्बन्धी कार्यनिविषैं तो कुलक्रम का विचार करना अर धर्मसम्बन्धी कार्यविषैं कुलका विचार न करना। जैसें धर्ममार्ग सांचा है, तैसें प्रवर्त्तना योग्य है।

परीक्षा रहित आज्ञानुसारी जैनत्व का प्रतिषेध

बहुरि केई आज्ञानुसारि जैनी हो हैं। जैसें शास्त्रविषैं आज्ञा है तैसे मानैं हैं; परन्तु आज्ञाकी परीक्षा करते नाहीं। सो आज्ञा ही मानना धर्म होय तो सर्व मतवाले अपने अपने शास्त्रकी आज्ञा मानि धर्मात्मा होंय। तातैं परीक्षाकरि जिनवचननिकों सत्यपनो पहिचानि जिन आज्ञा माननी योग्य है। बिना परीक्षा किए जैसें अन्यमती अपने शास्त्रनिकी आज्ञा मानैं हैं, तैसें यानैं जैनशास्त्रनिकी आज्ञा मानी। यहु तो पक्षकरि आज्ञा मानना है।

कोउ कहै, शास्त्रविषैं दश प्रकार सम्यक्त्वविषैं आज्ञा सम्यक्त्व कह्या है वा आज्ञाविचय धर्म ध्यानका भेद कह्या है वा निःशंकित अंगविषैं जिनवचनविषैं संशय करना निषेध्या है, सो कैसें है ?

ताका समाधान—शास्त्रनिविषैं कथन केई तो ऐसे हैं, जिनकी प्रत्यक्ष अनुमानादिकरि परीक्षा करि सकिए है। बहुरि केई कथन ऐसे है, जो प्रत्यक्ष अनुमानादिकरि गोचर नाहीं। तातैं आज्ञा ही करि प्रमाण होय हैं। तहां नाना शास्त्रनिविषैं जे कथन समान होंय, तिनकी तो परीक्षा करनेका प्रयोजन ही नाहीं। बहुरि जो कथन परस्पर विरुद्ध होई, तिनिविषैं जो कथन प्रत्यक्ष अनुमानादि गोचर होय तिनकी तो परीक्षा करनी। तहां जिनशास्त्र के कथन की प्रमाणता ठहरे, तिनि शास्त्रनिविषैं जे प्रत्यक्ष अनुमान गोचर नाहीं ऐसे कथन किए होंय, तिनकी भी प्रमाणता करनी। बहुरि जिनशास्त्रनिके कथन की प्रमाणता न ठहरै, तिनके सर्वहू कथनकी अप्रमाणता माननी।

इहां कोऊ कहै—परीक्षा किए कोई कथन कोई शास्त्रविषैं प्रमाण भासै, कोई कथन कोई शास्त्रविषैं अप्रमाण भासै तो कहा करिए ?

ताका समाधान—जे आप्तके भासे शास्त्र हैं, तिनिविषैं कोई ही कथन प्रमाण-विरुद्ध न होय। जातैं कै तो जानपना ही न होय, कै राग द्वेष होय तो असत्य कहै। सो आप्त ऐसा होय नाहीं, तातैं परीक्षा नीकी नाहीं करी है, तातैं भ्रम है।

बहुरि वह कहै है—छद्मस्थकै अन्यथा परीक्षा होय जाय तो कहा करै ?

ताका समाधान—सांची झूंठी दोऊ वस्तुनिकों मीड़े अर प्रमाद छोड़ि परीक्षा किए तो सांची ही परीक्षा होय। जहां पक्षपातकरि नीके परीक्षा न करै, तहां ही अन्यथा परीक्षा हो है।

बहुरि वह कहै है, जो शास्त्रनिविषैं परस्पर विरुद्ध कथन तो घने, कौन-कौनकी परीक्षा करिए।

ताका समाधान—मोक्षमार्गविषैं देव गुरु धर्म वा जीवादि तत्त्व वा बन्धमोक्षमार्ग प्रयोजनभूत हैं, सो इनिकी परीक्षा करि लेनी। जिन शास्त्रनिविषैं ए सांचे कहे, तिनकी सर्व आज्ञा माननी। जिनविषैं ए अन्यथा प्ररूपे, तिनकी आज्ञा न माननी। जैसें लोकविषैं जो पुरुष प्रयोजनभूत कार्यनिविषैं झूठ न बोलै, सो प्रयोजनरहित कार्यनिविषैं कैसें झूठ बोलेगा। तैसें जिस शास्त्रविषैं प्रयोजनभूत देवादिकका स्वरूप अन्यथा न कह्या, तिस विषैं प्रयोजनरहित द्वीप समुद्रादिकका कथन अन्यथा कैसें होय? जातैं देवादिकका कथन अन्यथा किए वक्ताके विषय कषाय पोषे जांय हैं।

इहां प्रश्न—देवादिकका कथन तो अन्यथा विषयकषायतैं किया, तिनि ही शास्त्रनिविषैं अन्य कथन अन्यथा काहेकों किया।

ताका समाधान—जो एक ही कथन अन्यथा कहै, वाका अन्यथापना शीघ्र ही प्रगट होय जाय। जुदी पद्धति ठहरै नाहीं। तातैं घने कथन अन्यथा करनेतैं जुदी पद्धति ठहरै। तहां तुच्छ बुद्धि भ्रममें पड़ि जाय—यहु भी मत है। तातैं प्रयोजनभूतका अन्यथापना का भेलनेके अर्थि अप्रयोजनभूत भी अन्यथा कथन घनें किए। बहुरि प्रतीति अनावनेके अर्थि कोई-कोई सांचाभी कथन किया। परन्तु स्याना होय सो भ्रम में परै नाहीं। प्रयोजनभूत कथनकी परीक्षा किए जैनमत ही सांचा भासै है, अन्य नाहीं। जातैं याका वक्ता सर्वज्ञ वीतराग है, सो झूंठ काहेकों कहै। ऐसें जिन आज्ञा माने जो सांचा श्रद्धान होय, ताका नाम आज्ञा सम्यक्त्व है। बहुरि तहाँ एकाग्र चिन्तवन होय, ताहीका नाम आज्ञाविचय धर्मध्यान है। जो ऐसें न मानिए अर बिना परीक्षा किए ही आज्ञा माने सम्यक्त्व वा धर्म ध्यान होय जाय, तो जो द्रव्यलिंगी आज्ञा मानि मुनि भया, आज्ञा अनुसारि साधनकरि ग्रैवेयिक पर्यन्त प्राप्त होय, ताकै मिथ्यादृष्टिपना कैसें रह्या? तातैं किछू परीक्षाकरि आज्ञा माने ही सम्यक्त्व वा धर्म ध्यान होय है। लोकविषैं भी कोई प्रकार परीक्षा भए ही पुरुषकी प्रतीति कीजिए

है। बहुरि तैं कह्या—जिनवचनविषैं संशय करनेतैं सम्यक्त्वका शंका नामा दोष हो है, सो 'न जानैं यहु कैसें हैं', ऐसा मानि निर्णय न कीजिए, तहाँ शंका नाम दोष लागै, तो अष्टसहस्रीविषैं आज्ञाप्रधानतैं परीक्षा प्रधानको उत्तम काहेकों कह्या ? पृच्छना आदि स्वाध्यायके अंग कैसें कहे। प्रमाण नयतैं पदार्थनिका निर्णय करनेका उपदेश काहेकों दिया। तातैं परीक्षा करि आज्ञा मानना योग्य है। बहुरि केई पापी पुरुषां अपना कल्पित कथन किया है अर तिनकों जिनवचन ठहराया है, तिनकों जैनमतका शास्त्र जानि प्रमाण न करना। तहाँ भी प्रमाणादिकतैं परीक्षाकरि वा परस्पर शास्त्रनितैं विधि मिलाय वा ऐसैं सम्भवै है कि नाहीं, ऐसा विचारकरि विरुद्ध अर्थकों मिथ्या ही जानना। जैसे ठिग आप पत्र लिखि तामें लिखनेवालेका नाम किसी साहूकार का धरया, तिस नामके भ्रमतें धनको ठिगावै तो दरिद्री ही होय। तैसें पापी आप ग्रन्थादि बनाय, तहाँ कर्त्ताका नाम जिन गणधर आचार्यनिका धरया, तिस नामके भ्रमतैं झूंठा श्रद्धान करै तो मिथ्या-दृष्टी ही होय।

बहुरि अब कहै है—गोम्मटसार* विषैं ऐसा कह्या है—सम्यग्-दृष्टि जीव अज्ञान गुरुके निमित्ततैं झूंठ भी श्रद्धान करै तो आज्ञा माननेतैं सम्यग्दृष्टि हो है। सो यहु कथन कैसें किया है ?

ताका उत्तर—जे प्रत्यक्ष अनुमानादिगोचर नाहीं, सूक्ष्मपनेतैं जिनका निर्णय न होय सकै, तिनिकी अपेक्षा यहु कथन है। मूलभूत देव गुरु धर्मादि वा तत्त्वादिकका अन्यथा श्रद्धान भए तो सर्वथा सम्यक्त्व रहै नाहीं, यहु निश्चय करना। तातैं बिना परीक्षा किए केवल आज्ञा ही करि जैनी हैं, ते भी मिथ्यादृष्टि जानने। बहुरि केई परीक्षा भी करि जैनी हो हैं परन्तु मूल परीक्षा नाहीं करै हैं। दया शील, तप, संयमादि क्रियानिकरि वा पूजा प्रभावनादि कार्यनिकरि वा

---

* सम्माइट्ठी जीवो उवइट्ठं पवयणं तु सद्दहदि।
सद्दहदि असब्भावं अजाणमाणो गुरुणियोगा ॥२७॥

अतिशय चमत्कारादिककरि वा जिनधर्मतैं इष्ट प्राप्ति होनेकरि जिन-मतकों उत्तम जानि प्रीतिवंत होय जैनी होय है। सो अन्यमतविषैं भी ऐसा तो कार्य पाइए है, तातैं इन लक्षणनिविषैं अतिव्याप्ति पाइए है।

कोऊ कहै—जैसें जिनधर्मविषैं ये कार्य हैं, तैसें अन्यमतविषैं नाहीं पाइए हैं। तातैं अतिव्याप्ति नाहीं।

ताका समाधान—यहु तो सत्य है, ऐसें ही है। परन्तु जैसें तू दयादिक मानैं है, तैसें तो वे भी निरूपै हैं। परजीवनिकी रक्षाकों दया तू कहै है, सोई वे कहै हैं। ऐसे ही अन्य जाननें।

बहुरि वह कहै है—उनकै ठीक नाहीं। कबहूं दया प्ररूपै, कबहूं हिंसा प्ररूपै।

ताका उत्तर—तहाँ दयादिकका अंशमात्र तो आया। तातैं अतिव्याप्तपना इन लक्षणनिकै पाइए है। इनकरि सांची परीक्षा होय नाहीं। तो कैसें होय। जिनधर्मविषैं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र मोक्षमार्ग कह्या है। तहाँ सांचे देवादिकका वा जीवादिकका श्रद्धान किए सम्यक्त्व होय वा तिनकों जानें सम्यग्ज्ञान होय वा सांचा रागादिक मिटें सम्यक्चारित्र होय, सो इनका स्वरूप जैसें जिनमतविषैं निरूपण किया है, तैसें कहीं निरूपण किया नाहीं वा जैनी बिना अन्यमती ऐसा कार्य करि सकते नाहीं। तातैं यहु जिनमतका सांचा लक्षण है। इस लक्षणकों पहचानि जे परीक्षा करैं, तेई श्रद्धानी हैं। इस बिना अन्य प्रकार करि परीक्षा करै हैं, ते मिथ्यादृष्टी ही रहै हैं।

बहुरि केई संगतिकरि जैनधर्म धारै हैं। केई महान् पुरुषको जिनधर्मविषैं प्रवर्त्तता देखि आप भी प्रवर्त्तै हैं। केई देखा देखी जिन-धर्मकी शुद्ध वा अशुद्ध क्रियानिविषैं प्रवर्त्तै हैं। इत्यादि अनेक प्रकारके जीव आप विचारकरि जिनधर्मका रहस्य नाहीं पहिचानै हैं अर जैनी नाम धरावै हैं, ते सर्व मिथ्यादृष्टी ही जाननें। इतना तो है, जिनमत-विषैं पापकी प्रवृत्तिविशेष नहीं होय सकै है अर पुण्यके निमित्त घने हैं

अब सांचा मोक्षमार्गके भी कारण तहाँ बनि रहे हैं। तातैं जे कुलादिकरि भी जैनी हैं, ते भी औरनितैं तो भले ही हैं।

आजीविकादि प्रयोजनार्थधर्मसाधनका प्रतिषेध

बहुरि जे जीव कपटकरि आजीविकाके अर्थि वा बड़ाईके अर्थि वा किछु विषयकषाय सम्बन्धी प्रयोजन विचारि जैनी हो हैं, ते तो पापी ही हैं। अति तीव्रकषाय भए ऐसी बुद्धि आवै है। उनका सुलझना भी कठिन है। जैनधर्म तो संसारका नाशके अर्थि सेइए है। ताकरि जो संसारीक प्रयोजन साध्या चाहै सो बड़ा अन्याय करै है। तातैं ते तो मिथ्यादृष्टि हैं ही।

इहाँ कोऊ कहै—हिंसादिकरि जिन कार्यकों करिए, ते कार्य धर्मसाधनकरि सिद्ध कीजिए तो बुरा कहा भया। दोऊ प्रयोजन सधे।

ताकों कहिए है—पापकार्य अर धर्मकार्यका एक साधन किए पापही होय। जैसें कोऊ धर्मका साधन चैत्यालय बनाय, तिसहीकों स्त्रीसेवनादि पापनिका भी साधन करै, तो पापीही होय। हिंसादिकरि भोगादिकके अर्थि जुदा मन्दिर बनावै तो बनावो। परन्तु चैत्यालयविषैं भोगादि करना युक्त नाहीं। तैसें धर्मका साधन पूजा शास्त्रादि कार्य हैं, तिनहीकों आजीविका आदि पापका भी साधन करै, तो पापी ही होय। हिंसादि करि आजीविकादि के अर्थि व्यापारादि करै तो करो परन्तु पूजादि कार्यनिविषैं तो आजीविका आदिका प्रयोजन विचारना युक्त नाहीं।

इहां प्रश्न—जो ऐसें है तो मुनि भी धर्म साधि पर घर भोजन करें हैं वा साधर्मी, साधर्मीका उपकार करैं करावैं हैं, सो कैसें बनै?

ताका उत्तर—जो आप तो किछू आजीविका आदिका प्रयोजन विचारि धर्म नाहीं साधैं हैं, आपकों धर्मात्मा जानि केई स्वयमेव भोजन उपकारादि करैं हैं तो किछू दोष है नाहीं। बहुरि जो आप ही भोजनादिका प्रयोजन विचारि धर्मसाधैं हैं, तो पापी है ही। जे विरागी शरीरकी स्थिति के अर्थि स्वयमेव भोजनादि कोई दे तो लें, नाहीं

समता राखें। संक्लेशरूप होय नाहीं। बहुरि आप हितके अर्थि धर्म साधै हैं, उपकार करवानेका अभिप्राय नाहीं है। अर आपकै आका त्याग नाहीं, ऐसा उपकार करावें। कोई साधर्मी स्वयमेव उपकार करै तो करो अर न करै तो आपके किछू संक्लेश होता नाहीं। सो ऐसें तो योग्य है। अर आपही आजीविका आदिका प्रयोजन विचारि बाह्य धर्मका साधन करै, जहां भोजनादि उपकार कोई न करै तहाँ संक्लेश करै, याचना करै, उपाय करै वा धर्मसाधनविषें शिथिल होय जाय सो पापी ही जानना। ऐसें संसारीक प्रयोजन लिए जे धर्म साधै हैं ते पापी भी हैं अर मिथ्यादृष्टि हैं ही। या प्रकार जिनमतवाले भी मिथ्यादृष्टि जानने। अब इनकै धर्मका साधन कैसे पाइए है, सो विशेष दिखाइए है—

जैनाभासी मिथ्यादृष्टि की धर्म साधना

तहाँ केई जीव कुलप्रवृत्तिकरि वा देख्यां देखी लोभादिका अभिप्रायकरि धर्म साधै हैं, तिनिकै तो धर्मदृष्टि नाहीं। जो भक्ति करै है तो चित्त तो कहीं है, दृष्टि फिरथा करै है। अर मुखतैं पाठादि करै है वा नमस्कारादि करै है परन्तु यहु ठीक नाहीं—मैं कौन हूँ, किसकी स्तुति करूं हूं, किस प्रयोजनके अर्थि स्तुति करूं हूं, पाठविषें कहा अर्थ है, सो किछू ठीक नाहीं। बहुरि कदाचित कुदेवादिककी भी सेवा करने लगि जाय। तहाँ सुदेवसुगुरुसुशास्त्रादि वा कुदेवकुगुरु-कुशास्त्रादि विषें विशेष पहिचान नाहीं। बहुरि जो दान दे है तो पात्र अपात्र का विचाररहित जैसें अपनी प्रशंसा होय तैसें दान दे है। बहुरि तप करै है तो भूखा रहनेकरि महंतपनो होय सो कार्य करै है। परिणामनिकी पहिचान नाहीं। बहुरि व्रतादिक धारै है, तहाँ बाह्य क्रिया ऊपर दृष्टि है। सो भी कोई सांची क्रिया करै है, कोई झूठी करै है। अर अंतरंग रागादि भाव पाइए है, तिनिका विचार ही नाहीं वा बाह्य भी रागादि पोषने का साधन करै है। बहुरि पूजा प्रभावना आदि कार्य करै है, तहां जैसें लोकविषें बड़ाई होय वा विषय कषाय पोषे

जाय तैसें कार्य करै है। बहुरि बहुत हिंसादिक निपजावै है। सो ए कार्य तो अपना वा अन्य जीवनिका परिणाम सुधारनेके अर्थि कहे हैं। बहुरि तहां किंचित् हिंसादिक भी निपजै है तो थोरा अपराध होय, गुण बहुत होय सो कार्य करना कह्या है। सो परिणामनिकी पहचान नाहीं। अर यहां अपराध केता लागै है, गुण केता हो है सो नफा टोटा का ज्ञान नाहीं वा विधि अविधिका ज्ञान नाहीं। बहुरि शास्त्राभ्यास करै है, तहां पद्धतिरूप प्रवर्तै है। जो वांचै है तो औरनिको सुनाय दे हे। पढ़ै है तो आप पढ़ि जाय है। सुनै है तो कहै है सो सुनि ले है। जो शास्त्राभ्यासका प्रयोजन है, ताकों आप अन्तरंग विषें नाहीं अवधारै है। इत्यादि धर्मकार्यनिका मर्मकों नाहीं पहिचानै। केई तो कुलविषें जैसें बड़े प्रवर्तें तैसें हमकों भी करना अथवा और करें हैं तैसें हमको भी करना वा ऐसें किए हमारा लोभादिककी सिद्धि होसी इत्यादि विचार लिए अभूतार्थ धर्म कों साधै हैं। बहुरि केई जीव ऐसे हैं जिनकै किछू तो कुलादिरूप बुद्धि है, किछू धर्मबुद्धि भी है, तातें पूर्वोक्त प्रकार भी धर्मका साधन करै हैं अर किछू आगें कहिए है, तिस प्रकार करि अपने परिणामनिकों भी सुधारै हैं। मिश्रपनो पाइए है। बहुरि केई धर्म्मबुद्धिकरि धर्म साधै हैं परन्तु निश्चय धर्म्मकों न जानें हैं। तातें अभूतार्थ रूप धर्मकों साधै हैं। तहां व्यवहार सम्यग्दर्शन ज्ञान चरित्रकों मोक्षमार्ग जानि तिनिका साधन करै हैं। तहां शास्त्रविषें देव गुरु धर्मकी प्रतीति किये सम्यक्त्व होना कह्या है। ऐसी आज्ञा मानि अरहन्तदेव, निर्ग्रन्थगुरु, जैनशास्त्र बिना औरनिकों नमस्कारादि करने का त्याग किया है परन्तु तिनिका गुण अवगुणकी परीक्षा नाहीं करै हैं। अथवा परीक्षा भी करै हैं तो तत्त्वज्ञान पूर्वक सांची परीक्षा नाहीं करै हैं, बाह्य लक्षणनिकरि परीक्षा करै हैं। ऐसें प्रतीतिकरि सुदेव सुगुरु सुशास्त्रनिकी भक्तिविषें प्रवर्त्त हैं।

अरहंतभक्तिका अन्यथा रूप

तहां अरहन्त देव हैं, सो इन्द्रादिककरि पूज्य हैं, अनेक अतिशय-सहित हैं, क्षुधादि दोषरहित हैं, शरीरकी सुन्दरताको धरै हैं, स्त्री-संगमादि रहित हैं, दिव्यध्वनिकरि उपदेश दे हैं, केवलज्ञानकरि लोकालोक जानै हैं, काम क्रोधादिक नष्ट किए हैं, इत्यादि विशेषण कहे हैं। तहां इनविषैं केई विशेषण पुद्गलके आश्रय हैं, तिनकों भिन्न-भिन्न नाहीं पहिचानै है। जैसें असमानजातीय मनुष्यादि पर्यायनिविषैं जीव पुद्गलके विशेषणकों भिन्न न जानि मिथ्यादृष्टि धरै है तैसें यह असमान जातीय अरहन्तपर्यायविषैं जीव पुद्गलके विशेषणनिकों भिन्न न जानि मिथ्यादृष्टि धरै है। बहुरि जे बाह्य विशेषण हैं, तिनकों तो जानि तिनकरि अरहन्तदेवकों महन्तपनो विशेष मानै है अर जे जीवके विशेषण हैं, तिनकों यथावत् न जानि तिनकरि अरहन्तदेवको महन्त-पनो आज्ञा अनुसार मानै है अथवा अन्यथा मानै है। जातैं यथावत् जीवका विशेषण जानें मिथ्यादृष्टी रहै नाहीं। बहुरि तिनि अरहन्त-निकों स्वर्गमोक्षका दाता दीनदयाल अधमउधारक पतितपावन मानै है सो अन्यमती कर्तृत्वबुद्धितैं ईश्वरकों जैसें मानैं है तैसें ही यहु अरहन्तकों मानै है। ऐसा नाहीं जानै है—फलतो अपने परिणामनिका लागै है अरहन्त तिनिकों निमित्तमात्र है, तातैं उपचारकरि वे विशेषण सम्भवैं हैं। अपने परिणाम शुद्ध भए बिना अरहन्त ही स्वर्गमोक्षादिका दाता नाहीं। बहुरि अरहन्तादिकके नामादिकतैं श्वानादिक स्वर्ग पाया तहां नामादिकका ही अतिशय मानै है। बिना परिणाम नाम लेने वालोंके भी स्वर्गकी प्राप्ति न होय तो सुननेवालेकै कैसें होय। श्वानादिककैं नाम सुननेके निमित्ततैं कोई मन्दकषायरूप भाव भए हैं, तिनका फल स्वर्ग भया है। उपचारकरि नामहीकी मुख्यता करी है। बहुरि अरहन्तादिकके नाम पूजनादिकतैं अनिष्ट सामग्रीका नाश, इष्ट सामग्रीकी प्राप्ति मानि रोगादि मेटनेके अर्थि वा धनादिकी प्राप्तिके अर्थि नाम ले है वा पूजनादि करै है। सो इष्ट अनिष्टका तो कारण

पूर्वकर्मका उदय है। अरहन्त तो कर्त्ता है नाहीं। अरहन्तादिककी भक्तिरूप शुभोपयोग परिणामनितें पूर्व पापका संक्रमणादिक होय जाय है। तातैं उपचारकरि अनिष्टका नाशकों वा इष्टको प्राप्तिकों कारण अरहन्तादिककी भक्ति कहिए है। अर जे जीव पहलेंही संसारी प्रयोजन लिए भक्ति करे, ताके तो पापहीका अभिप्राय भया। कांक्षा विचिकित्सारूप भाव भए तिनिकरि पूर्वपापका संक्रमणादि कैसें होय ? बहुरि तिनिका कार्यसिद्ध न भया।

बहुरि केई जीव भक्तिकों मुक्तिका कारण जानि तहाँ अति अनुरागी होय प्रवर्तें हैं सो अन्यमती जैसे भक्ति तैं मुक्ति मानें हैं तैसे याकै भी श्रद्धान भया। सो भक्ति तो रागरूप है। रागतें बन्ध है। तातें मोक्ष का कारण नाहीं। जब राग उदय आवै, तब भक्ति न करै तो पापानुराग होय। तातें अशुभ राग छोड़नेको ज्ञानी भक्ति विषै प्रवर्त्ते है वा मोक्षमार्ग कों बाह्य निमित्तमात्र भी जानें है। परन्तु यहाँ ही उपादेयपना मानि सन्तुष्ट न हो है, शुद्धोपयोगका उद्यमी रहै है। सो ही पंचास्तिकायव्याख्याविषै कह्या है* :—

इयं भक्तिःकेवलभक्तिप्रधानस्याज्ञानिनो भवति। तीव्ररागज्वरविनोदार्थमस्थानरागनिषेधार्थं क्वचित् ज्ञानिनोपि भवति।

याका अर्थ—यहु भक्ति केवल भक्ति ही है प्रधान जाकै ऐसा अज्ञानी जीवकै हो है। बहुरि तीव्ररागज्वर मेटनेके अर्थि वा कुठिकानें रागनिषेधनेके अर्थि कदाचित् ज्ञानीकै भी हो है।

तहां वह पूछै है, ऐसे है तो ज्ञानी तैं अज्ञानीकै भक्तिकी अधिकता होगी।

---

* अयं हि स्थूल लक्ष्यतया केवलभक्तिप्रधानस्याज्ञानिनो भवति। उपरितनभूमिकायामलब्धास्पदस्यास्थानराग निषेधार्थं तीव्ररागज्वरविनोदार्थं वा कदाचिज्ज्ञानिनोऽपि भवतीति ॥स० टीका गा० १३६॥

ताका उत्तर—यथार्थपनेंको अपेक्षा तो ज्ञानोकै सांचो भक्ति है अज्ञानीकै नाहीं है। अर रागभावकी अपेक्षा अज्ञानीकै श्रद्धानविषैं भी मुक्तिका कारण जाननेतैं अति अनुराग है। ज्ञानीकै श्रद्धानविषैं शुभबन्धका कारण जाननेतैं अति अनुराग है नाहीं। बाह्य कदाचित् ज्ञानीकं अनुराग घना हो है, कदाचित् अज्ञानीकै हो है, ऐसा जानना। ऐसें देवभक्तिका स्वरूप दिखाया।

अब गुरुभक्तिका स्वरूप वाकै कैसें हैं, सो कहिए है :—

गुरुभक्तिका अन्यथा रूप

केई जोव आज्ञानुसारी हैं। ते तो ए जैनके साधु हैं, हमारे गुरु हैं, तातें इनिकी भक्ती करनी, ऐसें विचारि तिनकी भक्ति करें हैं। बहुरि केई जीव परीक्षा भो करें हैं। तहां ए मुनि दया पालैं हैं, शील पालैं हैं, धनादि नाहीं राखैं हैं, उपवासादि तप करै हैं, क्षुधादि परीषह सहैं हैं, किसीसों क्रोधादि नाहीं करें हैं, उपदेश देय औरनिकों धर्मविषैं लगावैं हैं, इत्यादि गुण विचारि तिनविषैं भक्तिभाव करें हैं। सो ऐसे गुण तो परमहंसादिक अन्यमती हैं, तिनविषें वा जैनो मिथ्यादृष्टीनिविषें भी पाइए हैं। तातें इनविषैं अतिव्याप्तपनो है। इनिकरि सांची परीक्षा होय नाहीं। बहुरि इनि गुणनिको विचारै है, तिनविषैं केई जीवाश्रित हैं, केई पुद्गलाश्रित हैं, तिनका विशेष न जानता असमानजातीय मुनिपर्यायविषैं एकत्व बुद्धितें मिथ्यादृष्टि हो रहै है। बहुरि सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रकी एकतारूप मोक्षमार्ग सोई मुनिनका सांचा लक्षण है, ताकों पहिचानैं नाहीं। जातैं यहु पहिचानि भए मिथ्यादृष्टी रहता नाहीं। ऐसें मुनिनका सांचा स्वरूप ही न जानैं तो सांची भक्ति कैसें होय ? पुण्यबंधकों कारणभूत शुभक्रियारूप गुणनिकों पहचानि तिनको सेवातैं अपना भला होना जानि तिनविषैं अनुरागी होय भक्ति करै है। ऐसें गुरुभक्तिका स्वरूप कह्या।

अब शास्त्रभक्तिका स्वरूप कहिये है :—

शास्त्रभक्तिका अन्यथा रूप

केई जीव तो यहु केवली भगवान्‌को वाणी है, तातैं केवलीके पूज्यपनातैं यहु भी पूज्य है, ऐसा जानि भक्ति करैं हैं। बहुरि केई ऐसें परीक्षा करैं हैं—इन शास्त्रनिविषैं विरागता दया क्षमा शील संतोषादिकका निरूपण है तातैं ए उत्कृष्ट हैं, ऐसा जानि भक्ति करैं हैं। सो ऐसा कथन तो अन्य शास्त्र वेदांतादि तिनविषैं भी पाइए है। बहुरि इन शास्त्रविषैं त्रिलोकादिकका गम्भीर निरूपण है, तातैं उत्कृष्टता जानि भक्ति करैं हैं। सो इहां अनुमानादिकका तो प्रवेश नाहीं। सत्य असत्यका निर्णयकरि महिमा कैसें जानिये। तातैं ऐसैं साँची परीक्षा होय नाहीं। इहां अनेकान्तरूप साँचा जीवादितत्त्वनिका निरूपण है अर सांचा रत्नत्रयरूप मोक्षमार्ग दिखाया है। ताकरि जैनशास्त्रनिकी उत्कृष्टता है, ताकों नाहीं पहिचानैं हैं। जातैं यहु पहचानि भये मिथ्यादृष्टि रहै नाहीं। ऐसैं शास्त्रभक्तिका स्वरूप कह्या।

या प्रकार याकैं देव गुरु शास्त्रकी प्रतीति भई, तातैं व्यवहार-सम्यक्त्व भया मानै है। परन्तु उनका साँचा स्वरूप भास्या नाहीं। तातैं प्रतीति भी सांची भई नाहीं। सांची प्रतीति बिना सम्यक्तको प्राप्ति नाहीं। तातैं मिथ्यादृष्टी ही है।

तत्त्वार्थ श्रद्धानका अयथार्थपना

बहुरि शास्त्रविषैं 'तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्' (तत्त्वार्थ सू० १-२) ऐसा वचन कह्या है। तातैं जैसें शास्त्रनिविषैं जीवादि तत्त्व लिखे हैं, तैसें आप सोखिले है। तहां उपयोग लगावै है। औरनिकौं उपदेशै है परन्तु तिन तत्त्वनिका भाव भासता नाहीं। अर इहां तिस वस्तुके भावहीका नाम तत्त्व कह्या। सो भाव भासे बिना तत्त्वार्थ-श्रद्धान कैसें होय ? भावभासना कहा सो कहिए है :—

जैसें कोऊ पुरुष चतुर होनेके अर्थि शास्त्रकरि स्वर ग्राम मूर्छना रागनिका रूप ताल तानके भेद तिनिकौं सीखैं हैं परन्तु स्वरादिकका स्वरूप नाहीं पहिचानै है। स्वरूप पहिचान भए बिना अन्य स्वरादिक

को अन्य स्वरादिकरूप मानै है वा सत्य भी मानै है तो निर्णय करि नाहीं मानै है। तातैं वाकै चतुरपनों होय नाहीं। तैसें कोऊ जीव सम्यक्ती होनेके अर्थि शास्त्रकरि जीवादिक तत्वनिका स्वरूपकों सीखै है परन्तु तिनके स्वरूपकों नाहीं पहिचानै है। स्वरूप पहिचानें बिना अन्य तत्त्वनिकों अन्य तत्त्वरूप मानि ले है वा सत्य भी मानै है तो निर्णयकरि नाहीं मानै है। तातैं वाकै सम्यक्त्व होय नाहीं। बहुरि जैसे कोई शास्त्रादि पढ़्या है वा न पढ़्या है, जो स्वरादिकका स्वरूपकों पहिचानै है तो वह चतुर ही है। तैसें शास्त्र पढ़्या है वा न पढ़्या है, जो जीवादिकका स्वरूप पहिचानै है तो वह सम्यग्दृष्टी ही है। जैसें हिरण स्वर रागादिकका नाम न जानैं है अर ताका स्वरूपकों पहिचानै है तैसें तुच्छ बुद्धि जीवादिकका नाम न जानै है अर तिनका स्वरूपकों पहिचानै है। यहु मैं हूं, ए पर हैं; ए भाव बुरे हैं, ए भले हैं, ऐसें स्वरूप पहिचानै ताका नाम भावभासना है। शिवभूति* मुनि जीवादिकका नाम न जानैं था अर "तुषमाषभिन्न" ऐसा घोषने लगा, सो यहु सिद्धान्तका शब्द था नाहीं परन्तु आपा परका भावरूप ध्यान किया, तातैं केवली भया। अर ग्यारह अंगके पाठी जीवादि तत्वनिका विशेषभेद जानैं परन्तु भाव भासै नाहीं, तातैं मिथ्यादृष्टी ही रहै हैं। अब याकै तत्वश्रद्धान किस प्रकार हो है सो कहिए है—

जीव अजीव तत्त्वके श्रद्धानका अन्यथा रूप

जिनशास्त्रनितैं जीवके त्रस स्थावरादिरूप वा गुणस्थान मार्गणादिरूप भेदनिकों जानै है, अजीवके पुद्गलादि भेदनिकों वा तिनके वर्णादि विशेषनिकों जानै है परन्तु अध्यात्मशास्त्रनिविषैं भेदविज्ञानकों कारणभूत वा वीतरागदशा होनेकों कारणभूत जैसें निरूपण किया है तैसें न जानै है। बहुरि किसी प्रसंगतें तैसें भी जानना होय तो शास्त्र

---

* तुसमासं घोसंतो भावविसुद्धो महाणुभावोय।
णामेण य सिवभूई केवलणाणी फुडो जाओ ॥—भावपा० ५३ ॥

अनुसारि जानि तो ले है परन्तु आपकों आप जानि परका अंश भी आप विषें न मिलावना अर आपका अंश भी पर विषें न मिलावना ऐसा सांचा श्रद्धान नाहीं करै है। जैसें अन्य मिथ्यादृष्टी निर्धार बिना पर्यायबुद्धिकरि जानपना विषें वा वर्णादिविषें अहंबुद्धि धारै है, तैसें यहु भी आत्माश्रित ज्ञानादिविषें वा शरीराश्रित उपदेश उपवासादि क्रियानिविषें आपो मानै है। बहुरि शास्त्रके अनुसार कबहूं सांची बात भी बनावै परन्तु अंतरंग निर्धाररूप श्रद्धान नाहीं। तातें जैसें मतवाला माताकों माता भी कहै है तो स्याना नाहीं तैसें याकों सम्यक्ती न कहिए। बहुरि जैसे कोई औरहीकी बातें करता होय तैसें आत्माका कथन करै परन्तु यहु आत्मा मैं हूं, ऐसा भाव नाहीं भासै। बहुरि जैसें कोई औरकूं औरतें भिन्न बतावता होय तैसें आत्मा शरीर को भिन्नता प्ररूपै परन्तु मैं इस शरीरादिकतें भिन्न हूं, ऐसा भाव भासै नाहीं। बहुरि पर्यायविषें जीव पुद्गलके परस्पर निमित्ततें अनेक क्रिया हो हैं, तिनकों दोय द्रव्यका मिलापकरि निपजी जानै। यहु जीव की क्रिया है ताका पुद्गल निमित्त है, यहु पुद्गलकी क्रिया है ताका जीव निमित्त है, ऐसा भिन्न-भिन्न भाव भासै नाहीं। इत्यादि भाव भासे विना जीव अजीवका सांचा श्रद्धानी न कहिए। तातें जीव अजीव जाननेका तो यह ही प्रयोजन था सो भया नाहीं।

आस्रवतत्त्वके श्रद्धानका अन्यथा रूप

बहुरि आस्रव तत्त्वविषें जे हिंसादिरूप पापास्रव हैं, तिनकों हेय जानै है। अहिंसादिरूप पुण्य आस्रव हैं, तिनकों उपादेय मानै है। सो ए तो दोऊ ही कर्मबंधके कारण हैं इन विषें उपादेयपनों माननों सोई मिथ्यादृष्टि है। सोही समयसारका बंधाधिकारविषें कह्या है*—

सर्व जीवनिकै जीवन मरण सुख दुःख अपने कर्मके निमित्ततें हो हैं। जहां अन्य जीव अन्य जीवके इन कार्यनिका कर्त्ता होय सोई

* समयसार गा० २५४ से २५६

मिथ्याध्यवसाय बंधका कारण है+। तहां अन्य जीवनिकों जिवाव-नेको वा सुखी करनेका अध्यवसाय होय सो तो पुण्यबंधका कारण है अर मारनेका वा दुःखी करने का अध्यवसाय होय सो पापबंधका कारण है। ऐसें अहिंसावत् सत्यादिक तो पुण्यबंधकों कारण हैं अर हिंसावत् असत्यादिक पापबंधकों कारण हैं। ए सर्व मिथ्याध्यवसाय हैं ते त्याज्य हैं। तातैं हिंसादिवत् अहिंसादिककों भी बंधका कारण जानि हेय ही मानना। हिंसादिविषैं मारनेकी बुद्धि होय सो वाका आयु पूरा हुवा बिना मरै नाहीं, अपनी द्वेषपरिणतिकरि आप ही पाप बाँधै है। अहिंसाविषैं रक्षा करनेकी बुद्धि होय सो वाका आयु अवशेष बिना जीवै नाहीं, अपनी प्रशस्त रागपरणतिकरि आप ही पुण्य बांधै है। ऐसें ए दोऊ हेय हैं। जहां वीतराग होय ज्ञाता दृष्टा प्रवर्त्तै, तहां निर्बन्ध है सो उपादेय है। सो ऐसी दशा न होय, तावत् प्रशस्त राग-रूप प्रवर्त्तौ। परन्तु श्रद्धान तो ऐसा राखो—यहु भी बंधका कारण है, हेय है। श्रद्धानविषैं याकों मोक्षमार्ग जानैं मिथ्यादृष्टी ही हो है।

बहुरि मिथ्यात्व अविरति कषाय योग ए आस्रवनके भेद हैं, तिनकों बाह्यरूप तो मानै, अन्तरंग इन भावनिकी जातिकों पहिचानै नाहीं तहां अन्य देवादिकके सेवनेरूप गृहीतमिथ्यात्वकों मिथ्यात्व जानै अर अनादि अगृहीत मिथ्यात्व है ताकों न पहिचाने। बहुरि बाह्य त्रसस्थावरकी हिंसा वा इन्द्रिय मनके विषयनिविषैं प्रवृत्ति ताकों अविरति जानै। हिंसाविषैं प्रमादपरणति मूल है अर विषय सेवनविषैं अभिलाषा मूल है ताकों न अवलोकै। बहुरि बाह्य क्रोधादि करना ताकों कषाय जानैं, अभिप्रायविषै रागद्वेष बसै ताकों न पहिचानै।

+ सर्वं सदैव नियतं भवति स्वकीय, कर्मोदयान्मरणजीवितदुःखसौख्यम्।
अज्ञानमेतदिह यत्तु परःपरस्य, कुर्यात्पुमान् मरणजीवितदुःखसौख्यम्।।१६८।
अज्ञानमेतदधिगम्य परात्परस्य, पश्यन्ति ये मरणजीवितदुःखसौख्यम्।
कर्माण्यहंकृतिरसेन चिकीर्षवस्ते, मिथ्यादृशो नियतमात्महनो भवन्ति।।१६९।
—समयसार बंधाधिकार कलश

बहुरि बाह्य चेष्टा होय ताकों योग जानै, शक्तिभूत योगनिकों न जानैं। ऐसैं आस्रवनिका स्वरूप अन्यथा जानै।

बहुरि रागद्वेष मोहरूप जे आस्रवभाव हैं, तिनका तो नाश करनेकी चिंता नाहीं अर बाह्यक्रिया वा बाह्य निमित्त मेटनेका उपाय राखै सो तिनके मेटैं आस्रव मिटता नाहीं। द्रव्यलिंगी मुनि अन्य देवादिककी सेवा न करै है, हिंसा वा विषयनिविषैं न प्रवर्त्तै है, क्रोधादि न करै है, मन वचन कायकों रोकै है; तो भी वाकै मिथ्यात्वादि च्यारों आस्रव पाईए हैं। बहुरि कपटकरि भी ए कार्य न करै है। कपटकरि करै तो ग्रैवेयक पर्यन्त कैसें पहुँचै। तातैं जो अन्तरंग अभिप्राय विषैं मिथ्यात्वादिरूप रागादिभाव हैं सोही आस्रव हैं। ताकों न पहिचानैं, तातैं याकै आस्रवतत्त्वका भी सत्य श्रद्धान नाहीं।

बंध तत्त्वके श्रद्धानका अन्यथा रूप

बहुरि बंधतत्त्वविषैं जे अशुभभावनिकरि नरकादिरूप पापका बंध होय, ताकों तो बुरा जानै अर शुभभावनिकरि देवादि रूप पुण्यका बंध होय, ताकों भला जानै। सो सर्व ही जीवनिकै दुःखसामग्रीविषैं द्वेष सुख सामग्रीविषैं राग पाईए है, सो ही याकै राग द्वेष करनेका श्रद्धान भया। जैसा इस पर्यायसम्बन्धी सुखदुःख सामग्रीविषैं राग द्वेष करना तैसा ही आगामी पर्यायसंबंधी सुखदुःख सामग्रीविषैं राग द्वेष करना। बहुरि शुभअशुभभावनिकरि पुण्यपापका विशेष तो अघाति कर्मनिविषैं हो है। सो अघातिकर्म आत्मगुणके घातक नाहीं। बहुरि शुभ अशुभ भावनिविषैं घातिकर्मनिका तो निरन्तर बंध होय, ते सर्व पापरूप ही हैं अर तेई आत्मगुणके घातक हैं। तातैं अशुद्ध भावनिकरि कर्मबंध होय, तिसविषैं भला बुरा जानना सोई मिथ्याश्रद्धान है। सो ऐसैं श्रद्धानतैं बंधका भी याकै सत्य श्रद्धान नाहीं।

संवर तत्त्वके श्रद्धानका अन्यथा रूप

बहुरि संवरतत्त्वविषैं अहिंसादिरूप शुभास्रव भाव तिनको

संवर आनें है। सो एक कारणतें पुण्यबंध भी मानै अर संवर भी मानै सो बनै नाहीं।

यहां प्रश्न—जो मुनिनकैं एक काल एकभाव हो है, तहां उनके बंध भी हो है अर संवर निर्जरा भी हो है, सो कैसे है?

ताका समाधान—वह भाव मिश्ररूप है। किछू वीतराग भया है, किछू सराग रह्या है। जे अंश वीतराग भए तिनकरि संवर है अर जे अंश सराग रहे तिनकरि बंध है। सो एक भावतें तो दोय कार्य बनें परन्तु एक प्रशस्तरागहीतें पुण्यास्रव भी मानना अर संवर निर्जरा भी मानना सो भ्रम है। मिश्रभावविषें भी यहु सरागता है, यहु विरागता है; ऐसो पहिचान सम्यग्दृष्टीहीकै होय। तातैं अवशेष सरागताकों हेय श्रद्धै है। मिथ्यादृष्टीकै ऐसो पहिचान नाहीं तातैं सरागभाव विषैं संवरका भ्रमकरि प्रशस्त रागरूप कार्यनिकों उपादेय श्रद्धै है।

बहुरि सिद्धांतविषैं गुप्ति, समिति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परीषहजय, चारित्र इनकरि संवर हो है, ऐसा कह्या है*, सो इनको भी यथार्थ न श्रद्धै है। कैसें सो कहिए है :—

बाह्य मन वचन कायको चेष्टा मेटै, पापचिंतवन न करै, मौन धरै, गमनादि न करै सो गुप्ति मानै है। सो यहां तो मनविषैं भक्ति आदि रूप प्रशस्त रागकरि नाना विकल्प हो हैं, वचन कायकी चेष्टा आप रोकि राखी है तहां शुभप्रवृत्ति है अर प्रवृत्तिविषैं गुप्तिपनो बनैं नाहीं। तातैं वीतरागभाव भए जहां मन वचन कायकी चेष्टा न होय सो ही सांचीं गुप्ति है।

बहुरि परजीवनिकी रक्षाके अर्थ यत्नाचार प्रवृत्ति ताकौं समिति मानै है। सो हिंसाके परिणामनितैं तो पाप हो है अर रक्षाके परिणामनितैं संवर कहोगे तो पुण्यबन्धका कारण कौन ठहरेगा। बहुरि एषणासमितिविषैं दोष टालै है। तहां रक्षाका प्रयोजन है नाहीं।

* स गुप्ति समितिधर्मानुप्रेक्षा परीषहजयचारित्रैः। तत्त्वा० सू० ९-२

तातें रक्षाहीके अर्थ समिति नाहीं है। तो समिति कैसें हो है—मुनिनकै किंचित् राग भए गमनादि क्रिया हो हैं तहां तिन क्रियानिविषें अति आसक्तताके अभावतें प्रमादरूप प्रवृत्ति न हो है। बहुरि और जीवनिकों दुःखीकरि अपना गमनादि प्रयोजन न साधै हैं तातें स्वयमेव ही दया पलै है। ऐसें सांची समिति है।

बहुरि बन्धादिकके भयतें स्वर्गमोक्षकी चाहतें क्रोधादि न करै है, सो यहां क्रोधादि करनेका अभिप्राय तो गया नाहीं। जैसें कोई राजादिकका भयतें वा महंतपनाका लोभतें परस्त्री न सेवें है, तो बाकों त्यागी न कहिए। तैसें ही यहु क्रोधादिका त्यागी नाहीं। तो कैसें त्यागी होय ? पदार्थ अनिष्ट इष्ट भासें क्रोधादि हो है। जब तत्वज्ञानके अभ्यासतें कोई इष्ट अनिष्ट न भासे, तब स्वयमेव ही क्रोधादिक न उपजें, तब सांचा धर्म हो है।

बहुरि अनित्यादि चितवनतें शरीरादिककों बुरा जानि हितकारी न जानि तिनतें उदास होना ताका नाम अनुप्रेक्षा कहै है। सो यहु तो जैसें कोऊ मित्र था, तब उसतें राग था, पीछें वाका अवगुण देखि उदासीन भया। तैसें शरीरादिकतें राग था, पीछें अनित्यादि अवगुण अवलोकि उदासीन भया। सो ऐसी उदासीनता तो द्वेषरूप है। जहां जैसा अपना वा शरीरादिकका स्वभाव है, तैसा पहिचान भ्रमकों मेटि भला जानि राग न करना, बुरा जानि द्वेष न करना, ऐसी सांची उदासीनता के अर्थि यथार्थ अनित्यत्वादिकका चितवन सोई सांची अनुप्रेक्षा है।

बहुरि क्षुधादिक भए तिनके नाशका उपाय न करना, ताकों परीषह सहना कहै है। सो उपाय तो न किया अर अन्तरंग क्षुधादि अनिष्ट सामग्री मिले दुःखी भया, रति आदिका कारण मिले सुखी भया तो सो दुःख-सुखरूप परिणाम हैं, सोई आर्त्तध्यान रौद्रध्यान हैं। ऐसे भावनितें संवर कैसें होय ? तातें दुःखका कारण मिले दुःखी न होय, सुखका कारण मिले सुखी न होय, ज्ञेयरूपकरि तिनिका जानन-

हारा हो रहै, सोई सांची परीषहका सहना है।

बहुरि हिंसादि सावद्ययोगका त्यागकों चारित्र मानै है। तहां महाव्रतादिरूप शुभयोगकों उपादेयपनेंकरि ग्रहणरूप मानै है। सो तत्वार्थसूत्रविषैं आस्रव-पदार्थका निरूपण करतें महाव्रत अणुव्रत भी आस्रवरूप कहे हैं। ये उपादेय कैसें होय? अर आस्रव तो बन्धका साधक है, चारित्र मोक्षका साधक है तातैं महाव्रतादिरूप आस्रवभावनिकों चारित्रपनों सम्भवै नाहीं, सकल कषायरहित जो उदासीनभाव ताहीका नाम चारित्र है। जो चारित्रमोहके देशघाती स्पर्द्धकनिके उदयतें महामन्द प्रशस्त राग हो है, सो चारित्रका मल है। याकों छूटता न जानि याका त्याग न करै है, सावद्ययोगहीका त्याग करै है। परन्तु जैसें कोई पुरुष कन्दमूलादि बहुत दोषीक हरितकायका त्याग करै है अर केई हरितकायनिको भखै है परन्तु ताकों धर्म न मानै है। तैसें मुनि हिंसादि तीव्रकषायरूप भावनिका त्याग करें हैं अर केई मन्दकषायरूप महाव्रतादिकों पालैं हैं परन्तु ताकों मोक्षमार्ग न मानैं हैं।

यहां प्रश्न—जो ऐसें है तो चारित्रके तेरह भेदनिविषैं महाव्रतादि कैसें कहे हैं?

ताका समाधान—यहु व्यवहारचारित्र कह्या है। व्यवहार नाम उपचारका है। सो महाव्रतादिविषैं भए ही वीतरागचारित्र हो है। ऐसा सम्बन्ध जानि महाव्रतादिविषैं चारित्रका उपचार किया है। निश्चयकरि निःकषाय भाव है सोई सांचा चारित्र है। या प्रकार संवरके कारणनिकों अन्यथा जानता संवरका सांचा श्रद्धानी न हो है।

निर्जरा तत्वके श्रद्धानकी अयथार्थता

बहुरि यहु अनशनादि तपतें निर्जरा मानै है। सो केवल बाह्यतप ही तो किए निर्जरा होय नाहीं। बाह्यतप तो शुद्धोपयोग बधावने के अर्थि कीजिए है। शुद्धोपयोग निर्जराका कारण है तातैं उपचारकरि तपकों भी निर्जराका कारण कह्या है। जो बाह्य दुःख सहना ही

निर्जराका कारण होय तो तिर्यंचादि भी भूख तृषादि सहैं हैं।

तब वह कहै है—वे तो पराधीन सहैं हैं, स्वाधीनपनें धर्मबुद्धितें उपवासादिरूप तप करै, ताकैं निर्जरा हो है।

ताका समाधान—धर्मबुद्धितें बाह्य उपवासादि तो किए, बहुरि तहां उपयोग अशुभ शुभ शुद्धरूप जैसें परिणमै तैसें परिणमो। घनें उपवासादि किएं, घनी निर्जरा होय, थोरे किए थोरी निर्जरा होय जो ऐसें नियम ठहरं तौ तो उपवासादिकही मुख्य निर्जराका कारण ठहरं, सो तो बनें नाहीं। परिणाम दुष्ट भए उपवासादिकतें निर्जरा होनी कैसें सम्भवै ? बहुरि जो कहिए—जैसा अशुभ शुभ शुद्ध रूप उपयोग परिणमं ताके अनुसार बन्ध निर्जरा है। तो उपवासादि तप मुख्य निर्जराका कारण कैसें रह्या ? अशुभ शुभ परिणाम बन्धके कारण ठहरे, शुद्ध परिणाम निर्जराके कारण ठहरे।

यहां प्रश्न—जो तत्त्वार्थसूत्रविषें "तपसा निर्जरा च" [९-३] ऐसा कैसें कह्या है ?

ताका समाधान—शास्त्रविषै "इच्छानिरोधस्तपः" ऐसा कह्या है। इच्छाका रोकना ताका नाम तप है। सो शुभ अशुभ इच्छा मिटे उपयोग शुद्ध होय, तहां निर्जरा हो है। तातैं तपकरि निर्जरा कही है।

यहां कोऊ कहै; आहारादिरूप अशुभकी तो इच्छा दूरि भए ही तप होय परन्तु उपवासादिक वा प्रायश्चित्तादि शुभ कार्य हैं तिनकी इच्छा तो रहै ?

ताका समाधान—ज्ञानी जननिकै उपवासादि की इच्छा नाहीं है, एक शुद्धोपयोग की इच्छा है। उपवासादि किए शुद्धोपयोग बधै है, तातैं उपवासादि करैं हैं। बहुरि जो उपवासादिकतें शरीर वा परिणामनिकी शिथिलताकरि शुद्धोपयोग शिथिल होता जानैं, तहां आहारादिक ग्रहै हैं। जो उपवासादिकहीतें सिद्धि होय, तो अजित-नाथादिक तेईस तीर्थंकर दीक्षा लेय दोय उपवास ही कैसें धरते ? उनकी तो शक्ति भी बहुत थी। परन्तु जैसें परिणाम भये तैसें बाह्य साधनकरि एक वीतराग शुद्धोपयोगका अभ्यास किया।

यहां प्रश्न—जो ऐसें है तो अनशनादिकको तपसंज्ञा कैसें भई ?

ताका समाधान—इनिको बाह्यतप कहै हैं। सो बाह्यका अर्थ यहुजो बाह्य औरनिकों दीसैं यहु तपस्वी है। बहुरि आप तो फल जैसा अन्तरंग परिणाम होगा तैसा ही पावेगा। जातैं परिणामशून्य शरीर की क्रिया फलदाता नाहीं है।

बहुरि इहां प्रश्न—जो शास्त्रविषैं तो अकामनिर्जरा कही है। तहां बिना चाहि भूख तृषादि सहे निर्जरा हो है तो उपवासादिकरि कष्ट सहें कैसें निर्जरा न होय ?

ताका समाधान—अकामनिर्जराविषैं भी बाह्य निमित्त तो बिना चाह भूख तृषाका सहना भया है। अर तहां मन्द कषायरूप भाव होय तो पापकी निर्जरा होय, देवादि पुण्यका बन्ध होय। अर जो तीव्रकषाय भए भी कष्ट सहे पुण्यबन्ध होय, तो सर्व तिर्यंचादिक देव ही होंय सो बनैं नाहीं। तैसें ही चाहकरि उपवासादि किए तहां भूख तृषादि कष्ट सहिए है। सो यहु बाह्य निमित्त है। यहां जैसा परिणाम होय तैसा फल पावै है। जैसें अन्नको प्राण कह्या। बहुरि ऐसें बाह्यसाधन भए अन्तरंगतपकी वृद्धि हो है तातैं उपचारकरि इनकों तप कहे हैं। जो बाह्य तप तो करै अर अन्तरंग तप न होय तो उपचारतैं भी वाको तपसंज्ञा नाहीं। सोई कह्या है—

कषायविषयाहारो त्यागो यत्र विधीयते।
उपवासः स विज्ञेयः शेषं लंघनकं विदुः॥

जहां कषाय विषय आहारका त्याग कीजिए सो उपवास जानना। अवशेषकों श्रीगुरु लंघन कहैं हैं।

यहां कहेगा—जो ऐसें है तो हम उपवासादि न करेंगे ?

ताकों कहिए है—उपदेश तो ऊँचा चढ़नेको दीजिए है। तू उलटा नीचा पड़ेगा तो हम कहा करेंगे। जो तू मानादिकतैं उपवासादि करै है तो करि वा मति करै; किछू सिद्धि नाहीं। अर जो धर्मबुद्धितैं आहारादिकका अनुराग छोड़ै है, तो जेता राग छूटया तेता ही

छूटया परन्तु इसहीको तप जानि इसतैं निर्जरामानि सन्तुष्ट मति होहु। बहुरि अन्तरंग तपनिविषैं प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, त्याग, ध्यानरूप जो क्रिया तिविषैं बाह्य प्रवर्त्तन सो बाह्य तपवत् ही जानना। जैसें अनशनादि बाह्य क्रिया हैं, तैसें ए भी बाह्य क्रिया हैं। तातैं प्रायश्चित्तादि बाह्य साधन अन्तरंग तप नाहीं हैं। ऐसा बाह्य प्रवर्त्तन होतें जो अन्तरंग परिणामनिकी शुद्धता होय, ताका नाम अन्तरंग तप जानना। तहाँ भी इतना विशेष है, बहुत शुद्धता भए शुद्धोपयोगरूप परणति होइ; तहां तो निर्जरा ही है, बन्ध नाहीं हो है। अर स्तोक शुद्धता भये शुभोपयोगका भी अंश रहै, तो जेती शुद्धता भई ताकरि तो निर्जरा है अर जेता शुभ भाव है ताकरि बन्ध है। ऐसा मिश्रभाव युगपत् हो है, तहां बन्ध वा निर्जरा दोऊ हो हैं।

यहाँ कोऊ कहै—शुभ भावनितैं पापकी निर्जरा हो है, पुण्यका बन्ध हो है, शुद्ध भावनितैं दोऊनिकी निर्जरा हो है, ऐसा क्यों न कहो?

ताका उत्तर—मोक्षमार्गविषैं स्थितिका तो घटना सर्वही प्रकृतीनिका होय। तहाँ पुण्य पापका विशेष है ही नाहीं। अर अनुभागका घटना पुण्यप्रकृतीनिका शुद्धोपयोगतैं भी होता नाहीं। ऊपरि ऊपरि पुण्यप्रकृतीनिके अनुभागका तीव्रबंध उदय हो है अर पापप्रकृतिके परमाणु पलटि शुभप्रकृतिरूप होंय, ऐसा संक्रमण शुभ व शुद्ध दोऊ भाव होतें होय। तातैं पूर्वोक्त नियम सम्भवै नाहीं। विशुद्धताहीके अनुसारि नियम सम्भवै है। देखो, चतुर्थगुणस्थानवाला शास्त्राभ्यास आत्मचिंतवनादि कार्य करै, तहाँ भी निर्जरा नाहीं, बंध भी घना होय। अर पंचमगुणस्थानवाला विषय सेवनादि कार्यकरै, तहाँ भी वाकै गुणश्रेणिनिर्जरा हुआ करै, बंध भी थोरा होय। बहुरि पंचमगुणस्थानवाला उपवासादि वा प्रायश्चित्तादि तप करै, तिस कालविषैं भी वाकै निर्जरा थोरी अर छठागुणस्थानवाला आहार विहारादि क्रिया करै, तिस कालविषैं भी वाकै निर्जरा घनी, उसतैं भी बंध थोरा होय।

तातैं बाह्य प्रवृत्तिके अनुसारि निर्जरा नाहीं है। अंतरंग कषायशक्ति घटें विशुद्धता भए निर्जरा हो है। सो इसका प्रगट स्वरूप आगै निरूपण करेंगे, तहाँ जानना। ऐसें अनशनादि क्रियाकों तपसंज्ञा उपचारतें जाननी। याहीतें इनकों व्यवहार तप कह्या है। व्यवहार उपचारका एक अर्थ है। बहुरि ऐसा साधनतें जो वीतरागभावरूप विशुद्धता होय सो साँचा तप निर्जराका कारण जानना। यहाँ दृष्टांत—जैसें धनको वा अन्नकों प्राण कह्या सो धनतें अन्न ल्याय भक्षण किए प्राण पोषे जाँय, तातैं उपचार करि धन अन्नकों प्राण कह्या। कोई इन्द्रियादिक प्राणको न जानें अर इनहीकों प्राण जानि संग्रह करै, तो मरणही पावै। तैसें अनशनादिककों वा प्रायश्चित्तादिककों तप कह्या, सो अनशनादि साधनतें प्रायश्चित्तादिरूप प्रवर्त्ते वीतरागभावरूप सत्य तप पोष्या जाय। तातैं उपचारकरि अनशनादिककों वा प्रायश्चित्तादिकों तप कह्या। कोई वीतरागभावरूप तपकों न जानें अर इनिहीकों तप जानि संग्रह करै तो संसारहीमें भ्रमै। बहुत कहा, इतना समझि लेना, निश्चय धर्म तो वीतरागभाव है। अन्य नाना विशेष बाह्य साधन अपेक्षा उपचारतें किए हैं, तिनकों व्यवहारमात्र धर्मसंज्ञा जाननी इस रहस्यकों न जानैं, तातैं वाकै निर्जराका भी सांचा श्रद्धान नाहीं है।

मोक्ष तत्वके श्रद्धानकी अयथार्थता

बहुरि सिद्ध होना ताकों मोक्ष मानै है। बहुरि जन्म जरा मरण रोग क्लेशादि दुःख दूरि भए अनन्तज्ञान करि लोकालोकका जानना भया, त्रिलोकपूज्यपना भया, इत्यदि रूपकरि ताकी महिमा जानै है। सो सर्व जीवनिकै दुःख दूर करनेकी वा ज्ञेय जाननेकी वा पूज्य होनेकी चाह है। इनिहीके अर्थ मोक्षकी चाह कीनो तो याकै और जीवनिका श्रद्धानतें कहा विशेषता भई।

बहुरि याकै ऐसा भी अभिप्राय है—स्वर्गविषैं सुख है, तिनितैं अनन्तगुणे मोक्षविषैं सुख है। सो इस गुणकारविषैं स्वर्ग मोक्ष सुखकी एक जाति जानै है। वहाँ स्वर्गविषैं तो विषयादि सामग्रीजनित सुख

हो है, ताकी जाति याकों भासै है अर मोक्षविषें विषयादि सामग्री है नाहीं, सो वहांका सुखकी जाति याको भासै तो नाहीं परन्तु स्वर्गतें भी मोक्षकों उत्तम महानपुरुष कहै हैं, तातें यहु भी उत्तम हो मानै है। जैसे कोऊ गानका स्वरूप न पहिचानै परन्तु सर्व सभाके सराहैं, तातें आप भी सराहै है। तैसे यहु मोक्षको उत्तम मानें हैं।

यहाँ वह कहै है—शास्त्रविषेंभी तो इन्द्रादिकतें अनंत गुणा सुख सिद्धनिके प्ररूपै हैं।

ताका उत्तर—जैसे तीर्थंकरके शरीरकी प्रभाको सूर्य प्रभातैं कोटयां गुणी कही तहां तिनकी एक जाति नाहीं। परन्तु लोकविषें सूर्य प्रभाकी महिमा है, तातें भी बहुत महिमा जनावनेको उपमालंकार कोजिए है। तैसे सिद्ध सुखको इन्द्रादिसुखतें अनन्त गुणा कह्या। तहाँ किनकी एक जाति नाहीं। परन्तु लोकविषें इन्द्रादिसुखकी महिमा है, तातें भी बहुत महिमा जनावनेकों उपमालंकार कोजिए है।

बहुरि प्रश्न—जो सिद्ध सुख अर इन्द्रादिसुखकी एक जाति वह जानै है, ऐसा निश्चय तुम कैसें किया ?

ताका समाधान—जिस धर्मसाधनाका फल स्वर्ग मानै है, तिस धर्मसाधनहीका फल मोक्ष मानै है। कोई जीव इन्द्रादिपद पावै, कोई मोक्ष पावै, तहां तिनि दोऊनिकै एक जाति धर्मका फल भया मानें। ऐसा तो मानै जो जाकै साधन थोरा हो है सो इन्द्रादिपद पावै है, जाकै सम्पूर्ण साधन होय सो मोक्ष पावै है परन्तु तहाँ धर्मकी जाति एक जानै है। सो जो कारणकी एक जाति जानै, ताकों कार्यकी भी एक जातिका श्रद्धान अवश्य होय। जातें कारणविशेष भए ही कार्य विशेष हो है। तातैं हम यहु निश्चय किया, वाकै अभिप्राय विषें इन्द्रादिसुख अर सिद्धसुखकी एक जातिका श्रद्धान है। बहुरि कर्म-निमित्ततें आत्माकै औपाधिक भाव थे, तिनका अभाव होतें शुद्ध स्वभावरूप केवल आत्मा आप भया। जैसें परमाणु स्कंधतें बिछुरें शुद्ध हो है, तैसें यहु कर्मादिकतें भिन्न होय शुद्ध हो है। विशेष

इतना—वह दोऊ अवस्थाविषें दुखी सुखी नाहीं, आत्मा अशुद्ध अवस्थाविषें दुखी था, अब ताके अभाव होनेतें निराकुल लक्षण अनंतसुख की प्राप्ति भई। बहुरि इन्द्रादिकनिके जो सुख है, सो कषायभावनिकरि आकुलता रूप है। सो वह परमार्थतें दुःख ही है। तातैं वाकी याकी एक जाति नाहीं। बहुरि स्वर्गसुखका कारण प्रशस्तराग है, मोक्षसुखका कारण वीतरागभाव है, तातैं कारणविषें भी विशेष है। सो ऐसा भाव याकों भासै नाहीं। तातैं मोक्षका भी याकै सांचा श्रद्धान नाहीं है।

या प्रकार याकै सांचा तत्वश्रद्धान नाहीं है। इसही वास्ते समयसारविषें* कह्या है—"अभव्यकै तत्वश्रद्धान भए भी मिथ्यादर्शन ही रहै है।" वा प्रवचनसारविषें+ कह्या है—"आत्मज्ञानशून्य तत्त्वार्थश्रद्धान कार्यकारी नाहीं।" बहुरि यहु व्यवहारदृष्टिकरि सम्यग्दर्शनके आठ अंग कहे हैं तिनिकों पालै हैं। पच्चीस दोष कहे हैं, तिनिको टालै है। संवेगादिक गुण कहे हैं, तिनिकों धारै है। परन्तु जैसें बीज बोए बिना खेतका सब साधन किए भी अन्न होता नाहीं, तैसें सांचा तत्वश्रद्धान भए बिना सम्यक्त्व होता नाहीं। सो पंचास्तिकाय व्याख्याविषें जहाँ अन्तविषें व्यवहाराभासवालेका वर्णन किया है, तहां ऐसा ही कथन किया है। या प्रकार याकै सम्यग्दर्शनके अर्थि साधन करते भी सम्यग्दर्शन न हो है।

सम्यग्ज्ञानके अर्थि साधनमें अयथार्थता

अब यहु सम्यग्ज्ञानके अर्थि शास्त्रविषें शास्त्राभ्यास किए सम्यग्ज्ञान होना कह्या है, तातैं शास्त्राभ्यासविषें तत्पर रहै है। तहां

---

* सद्दहदि य पत्तेदि य रोचेदि य तह पुणो य फासेदि।
धम्मं भोगणिमित्तं ण दु सो कम्मक्खयणिमित्तं ॥ गाथा २७५ ॥

+ अतः आत्मज्ञानशून्यमागमज्ञान तत्वार्थश्रद्धान-संयतत्वयोगपद्यमप्य-किंचित्करमेव ॥ सं० टीका अ० ३ गाथा ३९ ॥

सीखना, सिखावना, याद करना, बांचना, पढ़ना आदि क्रियाविषैं तो उपयोगको रमावै है परन्तु याके प्रयोजन ऊपरि दृष्टि नाहीं है। इस उपदेशविषैं मुझको कार्यकारी कहा, सो अभिप्राय नाहीं। आप शास्त्राभ्यासकरि औरनिको सम्बोधन देनेका अभिप्राय राखै है। घने जीव उपदेश मानैं तहां सन्तुष्ट हो है। सो ज्ञानाभ्यास तो आपके अर्थि कीजिए है, प्रसंग पायपरका भी भला होय तो परका भी भला करै। बहुरि कोई उपदेश न सुनै तो मति सुनो, आप काहेकों विषाद कीजिए। शास्त्रार्थका भाव जानि आपका भला करना। बहुरि शास्त्राभ्यासविषैं भी केई तो व्याकरण न्याय काव्य आदि शास्त्रनिकों बहुत अभ्यासै हैं। सो ये तो लोकविषैं पंडितता प्रगट करनेके कारण हैं। इन विषैं आत्महित निरूपण तो है नाहीं। इनका तो प्रयोजन इतना ही है, अपनी बुद्धि बहुत होय तो थोरा बहुत इनका अभ्यासकरि पीछें आत्महितके साधक शास्त्र तिनिका अभ्यास करना। जो बुद्धि थोरी होय, तो आत्महितके साधक सुगम शास्त्र तिनहीका अभ्यास करै। ऐसा न करना, जो व्याकरणादिकका ही अभ्यास करतें करतें आयु पूरी होय जाय अर तत्वज्ञानकी प्राप्ति न बनैं।

यहां कोऊ कहै—ऐसें है तो व्याकरणादिकका अभ्यास न करना। ताकों कहिए है—

तिनका अभ्यास बिना महान् ग्रन्थनिका अर्थ खुलै नाहीं। तातैं तिनका भी अभ्यास करना योग्य है।

बहुरि यहां प्रश्न—महान् ग्रन्थ ऐसे क्यों किए, जिनका अर्थ व्याकरणादि बिना न खुलै। भाषाकरि सुगमरूप हितोपदेश क्यों न लिख्या। उनकै किछू प्रयोजन तो था नाहीं?

ताका समाधान—भाषाविषैं भी प्राकृत संस्कृतादिकके ही शब्द हैं परन्तु अपभ्रंश लिए हैं। बहुरि देश देशविषैं भाषा अन्य अन्य प्रकार है सो महंत पुरुष शास्त्रनिविषैं अपभ्रंश शब्द कैसें लिखैं। बालक तोतला बोलै तो बड़े तो न बोलैं। बहुरि एकदेशकी भाषारूप शास्त्र

दूसरे देशविषैं जाय तो तहां ताका अर्थ कैसें भासै। तातैं प्राकृत संस्कृतादि शुद्ध शब्दरूप ग्रन्थ जोड़े। बहुरि व्याकरण बिना शब्दका अर्थ यथावत् न भासै। न्याय बिना लक्षण परीक्षा आदि यथावत् न होय सकै। इत्यादि वचनद्वारि वस्तुका स्वरूप निर्णय व्याकरणादि बिना नीके न होता जानि तिनकी आम्नाय अनुसार कथन किया। भाषाविषैं भी तिनकी थोरी बहुत आम्नाय आए ही उपदेश होय सकै है। तिनकी बहुत आम्नायतैं नीकें निर्णय होय सकै है।

बहुरि जो कहोगे—ऐसें है, तो अब भाषारूप ग्रन्थ काहेकों बनाइए है।

ताका समाधान—कालदोषतैं जीवनिकी मंद बुद्धि जानि केई जीवनिकै जेता ज्ञान होगा तेता ही होगा, ऐसा अभिप्राय विचारि भाषाग्रन्थ कीजिए है। सो जे जीव व्याकरणादिका अभ्यास न करि सकैं, तिनकों ऐसे ग्रन्थनिकरि ही अभ्यास करना। बहुरि जे जीव शब्दनिकी नाना युक्ति लिएं अर्थ करनेकों ही व्याकरण अवगाहैं हैं, वादादिकरि महन्त होनेकों न्याय अवगाहैं हैं, चतुरपना प्रगट करनेके अर्थि काव्य अवगाहैं हैं, इत्यादि लौकिक प्रयोजन लिएं इनिका अभ्यास करैं हैं ते धर्मात्मा नाहीं। बनैं जेता थोरा बहुत अभ्यास इनका करि आत्महितके अर्थि तत्वादिकका निर्णय करैं हैं, सोई धर्मात्मा पण्डित जानना।

बहुरि केई जीव पुण्य पापादिक फलके निरूपक पुराणादि शास्त्र वा पुण्य पापक्रियाके निरूपक आचारादि शास्त्र वा गुणस्थान मार्गणा कर्मप्रकृति त्रिलोकादिकके निरूपक करणानुयोगके शास्त्र तिनका अभ्यास करैं हैं। सो जो इनिका प्रयोजन आप न विचारैं, तब तो सूवाकासा ही पढ़ना भया। बहुरि जो इनका प्रयोजन विचारैं है तहां पापकों बुरा जानना, पुण्यकों भला जानना, गुणस्थानादिकका स्वरूप जानि लेना, इनका अभ्यास करेंगे तितना हमारा भला है, इत्यादि प्रयोजन विचारथा सो इसतैं इतना तो होसी—नरकादिक न होसी,

स्वर्गादिक होसी परन्तु मोक्षमार्गको तो प्राप्ति होय नाहीं। पहलैं साँचा तत्वज्ञान होय, तहाँ पीछैं पुण्यपापका फलकों संसार जानैं, शुद्धोपयोगतैं मोक्ष मानैं, गुणस्थानादिरूप जीवका व्यवहार निरूपण जानैं, इत्यादि जैसाका तैसा श्रद्धान करता सन्ता इनिका अभ्यास करै तो सम्यग्ज्ञान होय। सो तत्वज्ञानकों कारण अध्यात्मरूप द्रव्यानुयोगके शास्त्र हैं। बहुरि केई जीव तिन शास्त्रनिका भी अभ्यास करें हैं। परन्तु जहां जैसें लिख्या है, तैसें आप निर्णय करि आपकों आपरूप, परकों पररूप, आस्रवादिककों आस्रवादिरूप न श्रद्धान करें हैं। मुखतें तो यथावत् निरूपण ऐसा भी करें, जाके उपदेशतें और जीव सम्यग्दृष्टी होय जांय। परन्तु जैसें लड़का स्त्रीका स्वांगकरि ऐसा गान करै, जाकों सुनतें अन्य पुरुष स्त्री कामरूप होय जांय परन्तु वह जैसें सीख्या तैसें कहै है, वाकों किछू भाव भासै नाहीं, तातैं आप कामासक्त न हो है। तैसें यहु जैसे लिख्या तैसैं उपदेश दे परन्तु आप अनुभव नाहीं करै है। जो आपकै श्रद्धान भया होता तो और तत्वका अंश और तत्वविषें न मिलावता। सो याकै बल नाहीं, तातैं सम्यग्ज्ञान होता नाहीं। ऐसें यहु ग्यारह अंगपर्यंत पढ़ै तो भी सिद्धि होती नाहीं। सो समयसारादिविषें मिथ्यादृष्टीकै ग्यारह अंगनिका ज्ञान होना लिख्या है।

यहाँ कोऊ कहै—ज्ञान तो इतना हो है परन्तु जैसें अभव्यसेनकै श्रद्धानरहित ज्ञान भया, तैसें हो है ?

ताका समाधान—वह तो पापी था, जाकै हिंसादिकी प्रवृत्तिका भय नाहीं। परन्तु जो जीव ग्रैवेयिक आदिविषें जाय है, ताकै ऐसा ज्ञान हो है सो तो श्रद्धानरहित नाहीं; वाकै तो ऐसा ही श्रद्धान है, ए ग्रन्थ साँचे हैं परन्तु तत्वश्रद्धान सांचा न भया। समयसारविषें* एकही

---

* मोक्खं असद्दहन्तो अभवियसत्तो दु जो अधीएज्ज।
पाठो ण करेदि गुणं असद्दहंतस्स णाणं तु ॥ गाथा २७४ ॥

मोक्षंहि न तावदभव्यः श्रद्धत्ते शुद्धज्ञानमयात्मज्ञानशून्यत्वात्। ततो ज्ञानमपि नासौ श्रद्धत्ते। ज्ञानमश्रद्दधानश्चाचाराद्येकादशांगं श्रुतमधीयानोऽपि

जीवकै धर्मका श्रद्धान, एकदशांगका ज्ञान, महाव्रतादिकका पालना लिख्या है। प्रवचनसारविषं* ऐसा लिख्या है—आगमज्ञान ऐसा भया जाकरि सर्वपदार्थनिको हस्तामलकवत् जानें है। यह भी जानै है, इनका जाननहारा मैं हूं। परन्तु मैं ज्ञानस्वरूप हूं, ऐसा आपकों परद्रव्यतें भिन्न केवल चैतन्यद्रव्य नाहीं अनुभवै है। तातें आत्मज्ञान-शून्य आगमज्ञान भी कार्यकारी नाहीं। या प्रकार सम्यग्ज्ञानके अर्थि जैनशास्त्रनिका अभ्यास करै है, तो भी याकै सम्यग्ज्ञान नाहीं।

सम्यक्चारित्रके अर्थि साधनमें अयथार्थता

बहुरि इनकै सम्यक्चारित्रके अर्थि कैसें प्रवृत्ति है सो कहिए है—बाह्यक्रिया ऊपरि तो इनकै दृष्टि है अर परिणाम सुधरने बिगरनेका विचार नाहीं। बहुरि जो परिणामनिका भी विचार होय, तो जैसा अपना परिणामनिकी परम्परा विचारें अभिप्रायविषें जो वासना है, ताकों न विचारै है। अर फल लागै है सो अभिप्रायविषें वासना है ताका लागै है। सो इसका विशेष व्याख्यान आगै करेंगे, तहां स्वरूप नीकै भासैगा। ऐसी पहिचान बिना बाह्य आचारणका ही उद्यम है।

तहां केई जीव तो कुलक्रमकरि वा देखादेखी वा क्रोध मान माया लोभादिकतै आचरण आचरै हैं। सो इनकैं तो धर्मबुद्धि ही नाहीं, सम्यक्चारित्र कहांतैं होय। ये जीव कोई तो भोले हैं वा कषायी हैं, सो अज्ञानभाव वा कषाय होतें सम्यक्चारित्र होता नाहीं। बहुरि केई जीव ऐसा मानें हैं, जो जाननेमें कहा है (अर माननेमें कहा है) किछू

श्रुताध्ययनगुणाभावान्न ज्ञानी स्यात्। स किल गुणःश्रुताध्ययनस्य यद्विविक्त-वस्तुभूतज्ञानमयात्मज्ञानं, तच्च विविक्तवस्तुभूतं ज्ञानमश्रद्दधानस्याभव्यस्य श्रुताध्ययनेन न विधातुं शक्येत ततस्तस्य तद्गुणाभावः। ततश्च ज्ञानश्रद्धाना-भावात् सोऽज्ञानीति प्रतिनियतः।

* परमाणुपमाणं वा मुच्छा देहादिएसु जस्स पुणो।
विज्जदि जदि सो सिद्धिं ण लहदि सव्वागमधरो वि॥ अ० ३ गाथा ३९

करैगा तो फल लागैगा। ऐसैं विचारि व्रत तप आदि क्रियाहीके उद्यमी रहै हैं अर तत्वज्ञानका उपाय न करै हैं। सो तत्वज्ञान बिना महाव्रतादिका आचरण भी मिथ्याचारित्र ही नाम पावै है। अर तत्वज्ञान भए किछू भी व्रतादिक नाहीं हैं, तो भी असंयतसम्यग्दृष्टी नाम पावै है। तातैं पहलें तत्वज्ञानका उपाय करना, पीछैं कषाय घटावनेकौं बाह्य साधन करना। सो ही योगीन्द्रदेवकृत श्रावकाचारविषैं कह्या है—

"दंसणभूमिहं बाहिरा जिय वयरुक्ख ण हुंति"

याका अर्थ—यहु सम्यग्दर्शनभूमिका बिना हे जीव व्रतरूपी वृक्ष न होय। बहुरि जिन जीवनिकै तत्वज्ञान नाहीं, ते यथार्थ आचरण न आचरैं हैं। सोई विशेष दिखाइए है—

केई जीव पहलैं तो बड़ी प्रतिज्ञा धरि बैठें अर अन्तरंग विषय कषायवासना मिटी नाहीं। तब जैसैं तैसैं प्रतिज्ञा पूरी किया चाहै, तहां तिस प्रतिज्ञाकरि परिणाम दुःखी हो हैं। जैसैं बहुत उपवासकरि बैठे, पीछैं पीड़ातैं दुःखी हुवा रोगीवत् काल गमावै, धर्मसाधन न करै। सो पहलैं ही सधती जानिए तितनी ही प्रतिज्ञा क्यों न लीजिए। दुःखी होनेमें आर्तध्यान होय, ताका फल भला कैसैं लागैगा। अथवा उस प्रतिज्ञाका दुःख न सह्या जाय, तब ताकी एवज विषय पोषनेकौं अन्य उपाय करै। जैसैं तृषा लागै तब पानी तो न पीवै अर अन्य शीतल उपचार अनेक प्रकार करै वा घृत तो छोड़ै अर अन्य स्निग्ध वस्तुकौं उपायकरि भखै। ऐसैं ही अन्य जानना। सो परीषह न सही जाय थी, विषयवासना न छूटै थी, तो ऐसी प्रतिज्ञा काहेकौं करी। सुगम विषय छोड़ि पीछैं विषम विषयनिका उपाय करना पड़ै, ऐसा कार्य काहेकौं कीजिए। यहां तो उलटा रागभाव तीव्र हो है अथवा प्रतिज्ञाविषैं दुःख होय तब परिणाम लगावनेकौं कोई आलम्बन विचारै। जैसैं उपवासकरि पीछैं क्रीड़ा करैं। केई पापी जूआ आदि कुविसनविषैं लगै हैं अथवा सोय रह्या चाहैं। यहु जानैं, किसी प्रकारकरि काल पूरा

करना। ऐसें ही अन्य प्रतिज्ञाविषें जानना। अथवा केई पापी ऐसे भी हैं, पहलें प्रतिज्ञा करें, पीछें तिसतें दुःखी होंय तब प्रतिज्ञा छोड़ि दें। प्रतिज्ञा लेना छोड़ना तिनके ख्यालमात्र है। सो प्रतिज्ञा भंग करनेका महापाप है। इसतें तो प्रतिज्ञा न लेनी ही भली है। या प्रकार पहलें तो निर्विचार होय प्रतिज्ञा करें, पीछें ऐसी दशा होय। सो जैनधर्मविषें प्रतिज्ञा न लेनेका दण्ड तो है नाहीं। जैनधर्मविषें तो यहु उपदेश है, पहलें तो तत्वज्ञानी होय। पीछें जाका त्याग करै, ताका दोष पहिचानैं। त्याग किए गुण होय, ताकों जानैं। बहुरि अपने परिणामनिको ठीक करै। वर्तमान परिणामनिहीके भरोसे प्रतिज्ञा न करि बैठे। आगामी निर्वाह होता जानैं, तो प्रतिज्ञा करै। बहुरि शरीरकी शक्ति वा द्रव्य क्षेत्र काल भावादिकका विचार करै। ऐसें विचारि पीछें प्रतिज्ञा करनी, सो भी ऐसी करनी, जिस प्रतिज्ञातें निरादरपना न होय, परिणाम चढ़ते रहैं। ऐसो जैनधर्मकी आम्नाय है।

यहाँ कोऊ कहै—चांडालादिकों नें प्रतिज्ञा करी, तिनकै इतना विचार कहाँ हो है।

ताका समाधान—मरणपर्यन्त कष्ट होय तो होहु परन्तु प्रतिज्ञा न छोड़नी, ऐसा विचारिकरि प्रतिज्ञा करै हैं, प्रतिज्ञाविषें निरादरपना नाहीं। अर सम्यग्दृष्टी प्रतिज्ञा करै है, सो तत्वज्ञानादिपूर्वक ही करैं हैं। बहुरि जिनकै अंतरंग विरक्तता न भई अर बाह्य प्रतिज्ञा धरैं हैं, ते प्रतिज्ञाके पहलें वा पीछें जाकी प्रतिज्ञा करैं, ताविषें अति आसक्त होय लागै हैं। जैसें उपवास के धारने पारनें भोजनविषें अति लोभी होय गरिष्ठादि भोजन करैं, शीघ्रता घनी करैं। सो जैसें जलको मूंदि राख्या था, छूटघा तब ही बहुत प्रवाह चलने लागा। तैसें प्रतिज्ञाकरि विषय प्रवत्ति मूंदि, अंतरंग आसक्तता बधती गई। प्रतिज्ञा पूरी होतें ही अत्यन्त विषयप्रवृत्ति होनें लागी। सो प्रतिज्ञाका कालविषें विषयवासना मिटो नाहीं। आगै पीछै ताकी एवज अधिक राग किया, तो फल तो रागभाव मिटें होगा। तातें जेती विरक्तता भई होय, तितनी

ही प्रतिज्ञा करनी। महामुनि भी थोरी प्रतिज्ञा करैं, पीछैं आहारादि-विषैं उछटि करैं। अर बड़ी प्रतिज्ञा करैं हैं, सो अपनी शक्ति देखकरि करैं हैं। जैसें परिणाम चढ़ते रहैं सो करैं हैं, प्रमाद भी न होय अर आकुलता भी न उपजै। ऐसी प्रवृत्ति कार्यकारी जाननी।

बहुरि जिनकैं धर्म ऊपरि दृष्टि नाहीं, ते कबहूं तो बड़ा धर्म आचरैं, कबहूं अधिक स्वच्छन्द होय प्रवर्त्तै। जैसें कोई धर्म पर्वविषैं तो बहुत उपवासादि करैं, कोई धर्मपर्वविषै बारम्बार भोजनादि करैं। सो धर्म बुद्धि होय तो यथायोग्य सर्व धर्मपर्वनिविषैं यथायोग्य संयमादि धरैं। बहुरि कबहुं तो कोई धर्मकार्यविषैं बहुत धन खरचैं, कबहूं कोई धर्मकार्य आनि प्राप्त भया होय, तो भी तहाँ थोरा भी धन न खरचैं। सो धर्मबुद्धि होय, तो यथाशक्ति यथायोग्य सर्व ही धर्मकार्यनिविषैं धन खरच्या करै। ऐसें ही अन्य जानना।

बहुरि जिनकै सांचा धर्मसाधन नाहीं, ते कोई क्रिया तो बहुत बड़ी अंगीकार करैं अर कोई हीनक्रिया किया करैं। जैसें धनादिकका तो त्याग किया अर चोखा भोजन चोखा वस्त्र इत्यादि विषयनिविषैं विशेष प्रवर्त्तै। बहुरि कोई जामा पहरना, स्त्रीसेवन करना, इत्यादि कार्यनिका तो त्यागकरि धर्मात्मापना प्रगट करैं अर पीछे खोटे व्यापारादि कार्य करैं, लोकनिंद्य पापक्रियाविषैं प्रवर्त्तैं; ऐसें ही कोई क्रिया अति ऊंची, कोई क्रिया अति नीची करैं। तहाँ लोकनिंद्य होय धर्मकी हास्य करावैं। देखो अमुक धर्मात्मा ऐसे कार्य करै हैं। जैसें कोई पुरुष एक वस्त्र तो अति उत्तम पहरै, एक वस्त्र अति हीन पहरै तो हास्य ही होय। तैसें यहु हास्य पावै है। सांचा धर्मकी तो यहु आम्नाय है, जेता अपना रागादि दूर भया होय, ताके अनुसार जिस पदविषैं जो धर्मक्रिया सम्भवै, सो सर्व अंगीकार करै। जो थोरा रागादि मिटया होय तो नीचा ही पदविषैं प्रवर्त्तै परन्तु ऊँचा पद धराय नीची क्रिया न करै।

यहाँ प्रश्न—जो स्त्रीसेवनादिकका त्याग ऊपरकी प्रतिमाविषैं कह्या है, सो नीचली अवस्थावाला तिनिका त्याग करै कि न करै।

ताका समाधान—सर्वथा तिनका त्याग नीचली अवस्थावाला कर सकता नाहीं। कोई दोष लागै है, तातैं ऊपरकी प्रतिमाविषैं त्याग कह्या है। नीचली अवस्थाविषैं जिस प्रकार त्याग सम्भवै, तैसा नीचली अवस्थावाला भी करै। परन्तु जिस नीचली अवस्थाविषैं जो कार्य सम्भवै ही नाहीं ताका करना तो कषायभावनिहीतैं हो है, जैसैं कोऊ सप्तव्यसन सेवै, स्वस्त्री त्याग करै, तो कैसैं बनै? यद्यपि स्वस्त्रीका त्याग करना धर्म है, तथापि पहलैं सप्तव्यसनका त्याग होय, तब ही स्वस्त्रीका त्याग करना योग्य है। ऐसैं ही अन्य जाननैं।

बहुरि सर्व प्रकार धर्मकों न जानैं, ऐसा जीव कोई धर्मका अंगकों मुख्यकरि अन्य धर्मनिकों गौण करै है। जैसैं केई जीव दयाधर्मको मुख्य करि पूजा प्रभावनादि कार्यकों उथापैं हैं, केई पूजा प्रभावनादि धर्मकों मुख्यकरि हिंसादिक का भय न राखैं हैं, केई तपकी मुख्यताकरि आर्त्त ध्यानादिककरिकैं भी उपवासादि करैं वा आपकों तपस्वी मानि निःशंक क्रोधादि करैं, केई दानकी मुख्यता करि बहुत पाप करिकैं भी धन उपजाय दान दे हैं, केई आरम्भ त्यागकी मुख्यताकरि याचना आदि करैं हैं* [केईजीव हिंसा मुख्यकरि स्नानशौचादि नाहीं करै हैं वा लौकिक कार्यआए धर्म छोड़ि तहाँ लगि जांय इत्यादि करै हैं।] इत्यादि प्रकार करि कोई धर्मकों मुख्यकरि अन्य धर्मकों न गिनै हैं वा वाके आसरैं पाप प्रचारैं हैं। सो जैसैं अविवेकी व्यापारीकों कोई व्यापारका नफेके अर्थि अन्य प्रकारकरि बहुत टोटा पाड़ै तैसैं यहु कार्य भया। चाहिए तो ऐसैं, जैसैं व्यापारीका प्रयोजन नफा है, सर्व विचारकरि जैसैं नफा

* यहां खरड़ा प्रति में अन्य कुछ और लिखने के लिए संकेत किया है। यह संकेत निम्न प्रकार है :—

'इहां स्नानादि शौच धर्म का कथन तथा लौकिक कार्य आए धर्म छोड़ि तहां लगि जाय है, तिनिका कथन लिखना है, किन्तु पं० जी लिख नहीं पाए।'

घना होय तैसें करै। तैसें ज्ञानीका प्रयोजन वीतरागभाव है। सर्व विचारकरि जैसें वीतरागभाव घना होय तैसें करै। जातैं मूलधर्म वीतरागभाव है। याही प्रकार अविवेकी जीव अन्यथा धर्म अंगीकार करै हैं, तिनकै तो सम्यक्चारित्रका आभास भी न होय।

बहुरि केई जीव अणुव्रत महाव्रतादि रूप यथार्थ आचरण करै हैं। बहुरि आचरणके अनुसार ही परिणाम हैं। कोई माया लोभादिकका अभिप्राय नाहीं हैं। इनिको धर्म जानि मोक्षके अर्थि इनिका साधन करै हैं। कोई स्वर्गादिक भोगनिकी भी इच्छा न राखैं हैं परन्तु तत्त्वज्ञान पहलैं न भया, तातैं आप तो जानैं मैं मोक्षका साधन करूं हूं अर मोक्षका साधन जो है ताकों जानैं भी नाहीं। केवल स्वर्गादिकहीका साधन करैं। सो मिश्रीकों अमृतका गुण तो न होय। आपकी प्रतीतिके अनुसार फल होता नाहीं। फल जैसा साधन करै, तैसा ही लागै है। शास्त्रविषैं ऐसा कह्या है—चारित्रविषैं 'सम्यक्' पद है, सो अज्ञानपूर्वक आचरणकी निवृत्तिके अर्थि है। तातैं पहलैं तत्त्वज्ञान होय, तहाँ पीछैं चारित्र होय सो सम्यक्चारित्र नाम पावै है। जैसैं कोई खेतीवाला बीज तो बोवै नाहीं अर अन्य साधन करैं तो अन्नप्राप्ति कैसें होय। घास फूस ही होय। तैसें अज्ञानी तत्त्वज्ञानका तो अभ्यास करै नाहीं अर अन्य साधन करै तो मोक्षप्राप्ति कैसें होय, देवपदादिक ही होय। तहाँ केई जीव तो ऐसे हैं, तत्वादिकका नीकें नाम भी न जानैं, केवल व्रतादिकविषैं ही प्रवर्तैं हैं। केई जीव ऐसे हैं, पूर्वोक्त प्रकार सम्यग्दर्शन ज्ञानका अयथार्थ साधनकरि व्रतादि विषैं प्रवर्तैं हैं। सो यद्यपि व्रतादिक यथार्थ आचरैं तथापि यथार्थ श्रद्धान ज्ञान बिना सर्व आचरण मिथ्याचारित्र ही है। सोई समयसारका कलशाविषैं कह्या है—

क्लिश्यन्तां स्वयमेव दुष्करतरैर्मोक्षोन्मुखैः कर्मभिः
क्लिश्यन्तां च परे महाव्रततपोभारेण भग्नाश्चिरम्।

साक्षान्मोक्षइदं निरामयपदं संवेद्यमानं स्वयं
ज्ञानं ज्ञानगुणं विना कथमपि प्राप्तुं क्षमन्ते न हि ॥
—निर्जराधिकार ॥१४२॥

याका अर्थ—मोक्षतें परांमुख ऐसे अतिदुस्तर पंचाग्नि तपनादि कार्य तिनकरि आपही क्लेश करै है तो करो। बहुरि अन्य केई जीव महाव्रत अर तपका भारकरि चिरकालपर्यन्त क्षीण होते क्लेश करै हैं तो करो। परन्तु यहु साक्षात् मोक्षस्वरूप सर्वरोगरहित पद जो आपै आप अनुभवमें आवै, ऐसा ज्ञान स्वभाव सो तो ज्ञानगुण बिना अन्य कोई भी प्रकारकरि पावनेकों समर्थ नाहीं है। बहुरि पंचास्तिकायविषें जहाँ अंतविषें व्यवहाराभास वालेका कथन किया है तहाँ तेरह प्रकार चारित्र होतें भी ताका मोक्षमार्गविषें निषेध किया है। बहुरि प्रवचनसारविषें आत्मज्ञानशून्य संयमभाव अकार्यकारी कह्या है। बहुरि इनही ग्रन्थनिविषै वा अन्य परमात्मप्रकाशादि शास्त्रनिविषें इस प्रयोजन लिए जहां तहाँ निरूपण है। तातें पहलें तत्वज्ञान भए ही आचरण कार्यकारी है।

यहाँ कोऊ जानेगा, बाह्य तो अणुव्रत महाव्रतादि साधें हैं, अंतरंग परिणाम नाहीं वा स्वर्गादिकको वांछाकरि साधे हैं, सो ऐसें साधे तो पापबन्ध होय। द्रव्यलिंगी मुनि ऊपरिम ग्रैवेयकपर्यन्त जाय है। परावर्तनिविषै इकतीस सागर पर्यन्त देवायुकी प्राप्ति अनन्तबार होनी लिखी है। सो ऐसे ऊंचेपद तो तब ही पावै जब अन्तरंग परिणामपूर्वक महाव्रत पालै, महामन्दकषायी होय, इस लोक परलोकके भोगादिकको चाह न होय, केवल धर्मबुद्धितें मोक्षाभिलाषी हुवा साधन साधै। तातें द्रव्यलिंगीकै स्थूल तो अन्यथापनों है नाहीं, सूक्ष्म अन्यथापनों है सो सम्यग्दृष्टीकों भासै है। अब इनकै धर्मसाधन कैसें है अर तामें अन्यथापनों कैसें सो कहिए हैं—

द्रव्य लिंगी के धर्म साधन में अन्यथापना

प्रथम तो संसारविषें नरकादिकका दुःख जानि वा स्वर्गादिविषें

भी जन्म मरणादिकका दुःख जानि संसारतें उदास होय मोक्षकों चाहै हैं। सो इन दुःखनिकों तो दुःख सब ही जानें हैं। इन्द्र अहमिन्द्रादिक विषयानुरागतै इन्द्रियजनित सुख भोगवैं हैं ताकों भी दुःख जानि निराकुल सुख अवस्थाको पहचानि मोक्ष चाहैं हैं, सोई सम्यग्दृष्टि जानना। बहुरि विषयसुखादिकका फल नरकादिक है, शरीर अशुचि विनाशीक है—पोषने योग्य नाहीं, कुटुम्बादिक स्वार्थके सगे हैं, इत्यादि परद्रव्यनिका दोष विचारि तिनिका तो त्याग करै है। व्रतादिकका फल स्वर्गमोक्ष है, तपश्चरणादि पवित्र अविनाशी फलके दाताहैं, तिन-करि शरीर सोखने योग्य है, देव गुरु शास्त्रादि हितकारी हैं, इत्यादि परद्रव्यनिका गुण विचारि तिनहीकों अंगीकार करै है। इत्यादि प्रकारकरि कोई परद्रव्यको बुरा जानि अनिष्ट श्रद्धै है, कोई परद्रव्य कों भला जानि इष्ट श्रद्धै है। सो परद्रव्यविषैं इष्ट अनिष्टरूप श्रद्धान सो मिथ्या है। बहुरि इसही श्रद्धानतें याकै उदासीनता भी द्वेषबुद्धि रूप हो है। जातैं काहूकों बुरा जानना, ताहीका नाम द्वेष है।

कोऊ कहेगा, सम्यग्दृष्टी भी तो बुरा जानि परद्रव्यकों त्यागै है।

ताका समाधान—सम्यग्दृष्टी परद्रव्यनिकों बुरा न जानै है। अपना रागभावकों बुरा जानै है। आप रागभावकों छोरै, तातैं ताका कारणका भी त्याग हो है। वस्तु विचारैं कोई परद्रव्य तो बुरा भला है नाहीं।

कोऊ कहेगा, निमित्तमात्र तो है।

ताका उत्तर—परद्रव्य जोरावरी तो कोई बिगारता नाहीं। अपने भाव बिगरैं तब वह भी बाह्यनिमित्त है। बहुरि वाका निमित्त विना भी भाव बिगरैं हैं। तातैं नियमरूप निमित्त भी नाहीं। ऐसें परद्रव्यका तो दोष देखना मिथ्याभाव है। रागादिभाव ही बुरे हैं सो याकै ऐसी समझि नाहीं। यहु परद्रव्यनिका दोष देखि तिनविषैं द्वेष-रूप उदासीनता करै है। सांची उदासीनता तो ताका नाम है, कोई

ही द्रव्यका दोष वा गुण न भासै, तातैं काहूकों बुरा भला न जानैं। आपकों आप जानै, परकों पर जानै, परतें किछू भी प्रयोजन मेरा नाहीं ऐसा मानि साक्षीभूत रहै। सो ऐसी उदासीनता ज्ञानीहीकै होय। बहुरि यह उदासीन होय शास्त्रविषैं व्यवहारचारित्र अणुव्रत महाव्रत-रूप कह्या है ताकों अंगीकार करै है, एकदेश हिंसादि पापकों छांड़ै है, तिनकी जायगा अहिंसादि पुण्यरूप कार्यनिषैं प्रवर्त्तै है। बहुरि जैसें पर्यायाश्रित पापकार्यनिविषैं कर्त्तापना अपना मानैं था तैसें ही और पर्यायाश्रित पुण्यकार्यनिविषैं कर्त्तापना अपना माननैं लागा, ऐसें पर्यायाश्रित कार्यनिविषैं अहंबुद्धि माननेकी समानता भई। जैसें मैं जीव मारूं हूं, मैं परिग्रहधारी हूं, इत्यादिरूपमानि थी, तैसें ही मैं जीवनिकी रक्षा करूं हूं, मैं नग्न परिग्रह रहित हूं, ऐसी मानि भई। सो पर्यायाश्रित कार्यविषैं अहंबुद्धि सो ही मिथ्यादृष्टि है। सोई समय-सारविषैं कह्या है—

ये तु कर्त्तारमात्मानं पश्यन्ति तमसातताः।
सामान्यजनवत्तेषां न मोक्षोपि मुमुक्षुतां ॥१॥

(सर्व वि० अधिकार १६६)

याका अर्थ—जे जीव मिथ्या अन्धकारव्याप्त होते संते आपकों पर्यायाश्रित क्रियाका कर्त्ता मानैं हैं, ते जीव मोक्षाभिलाषी हैं, तोऊ तिनकै जैसें अन्यमती सामान्य मनुष्यनिकैं मोक्ष न होय तैसें मोक्ष न हो है। जातैं कर्त्तापनाका श्रद्धानकी समानता है। बहुरि ऐसें आप कर्त्ता होय श्रावकधर्म वा मुनिधर्मको क्रियाविषैं मन वचन कायकी प्रवृत्ति निरन्तर राखै हैं। जैसें उन क्रियानिविषैं भंग न होय तैसें प्रवर्त्तै हैं। सो ऐसे भाव तो सराग हैं। चारित्र है सो वीतरागभावरूप है। तातैं ऐसे साधनकों मोक्षमार्ग मानना मिथ्याबुद्धि है।

यहां प्रश्न—जो सराग वीतराग भेदकरि दोय प्रकार चारित्र कह्या है सो कैसें है?

ताका उत्तर—जैसें तन्दुल दोय प्रकारके हैं—एक तुषसहित हैं

एक तुषरहित हैं, तहां ऐसा जानना—तुष है सो तन्दुलका स्वरूप नाहीं, तन्दुलविषैं दोष है। अर कोई स्याना तुषसहित तन्दुलका संग्रह करै था, ताकों देखि कोई भोला तुषनिहीकों तन्दुल मानि संग्रह करै तो वृथा खेद खिन्न ही होय। तैसें चारित्र दोय प्रकारका है—एक सराग है एक वीतराग है। तहां ऐसा जानना—राग है सो चारित्रका स्वरूप नाहीं, चारित्रविषैं दोष है। अर केई ज्ञानी प्रशस्तरागसहित चारित्र धरै हैं, तिनकों देखि कोई अज्ञानी प्रशस्तरागहीकों चारित्र मानि संग्रह करै तो वृथा खेदखिन्न ही होय।

यहां कोऊ कहेगा—पापक्रिया करतें तीव्ररागादिक होते थे, अब इनि क्रियानिकों करते मंदराग भया। तातैं जेता अंश रागभाव घट्या, तितना अंश तो चारित्र कहो। जेता अंश राग रह्या, तेता अंश राग कहो। ऐसें याकै सरागचारित्र सम्भवै है।

ताका समाधान—जो तत्त्वज्ञानपूर्वक ऐसें होय तो कहो हो तैसें ही है। तत्वज्ञान बिना उत्कृष्ट आचरण होतें भी असंयम ही नाम पावै है। जातैं रागभाव करनेका अभिप्राय नाहीं मिटै है। सोई दिखाइए है—

द्रव्य लिंगी के अभिप्राय में अयथार्थता

द्रव्यलिंगी मुनि राज्यादिकको छोड़ि निर्ग्रन्थ हो है, अठाईस मुल गुणनिकों पालै है, उग्रोग्र अनशनादि घना तप करै है, क्षुधादिक बाईस परीषह सहै है, शरीरका खंड खंड भए भी व्यग्र न हो है, व्रत भंगके कारण अनेक मिलैं तो भी दृढ़ रहै है, कोई सेती क्रोध न करै है, ऐसा साधनका मान न करै है, ऐसे साधनविषैं कोई कपटाई नाहीं है, इस साधनकरि इस लोक परलोकके विषय सुखकों न चाहै है, ऐसी याकी दशा भई है। जो ऐसी दशा न होय तो ग्रैवेयकपर्यन्त कैसें पहुंचै परन्तु याकों मिथ्यादृष्टि असंयमी ही शास्त्रविषैं कह्या। सो ताका कारण यहु है—याकै तत्वनिका श्रद्धान ज्ञान सांचा भया नाहीं। पूर्वै

वर्णन किया, तैसें तत्वनिका श्रद्धान ज्ञान भया है। तिसही अभिप्रायतें सब साधन करै है। सो इन साधननिका अभिप्रायकी परम्पराकों विचारें कषायनिका अभिप्राय आवै है। कैसें? सो सुनहु—यहु पापका कारण रागादिककों तो हेय जानि छोरै है परन्तु पुण्यका कारण प्रशस्तरागकों उपादेय मानै है। ताके बंधनेका उपाय करै है। सो प्रशस्तराग भी तो कषाय है। कषायकों उपादेय मान्या, तब कषाय करनेका ही श्रद्धान रह्या। अप्रशस्त परद्रव्यनिस्यों द्वेषकरि प्रशस्त परद्रव्यनिविषें राग करनेका अभिप्राय भया। किछू परद्रव्यनिविषें साम्यभावरूप अभिप्राय न भया।

यहां प्रश्न—जो सम्यग्दृष्टी भी तो प्रशस्तरागका उपाय राखै है।

ताका उत्तर यहु—जेसें काहूकै बहुत दंड होता था, सो वह थोरा दंड देनेका उपाय राखै है अर थोरा दंड दिए हर्ष भी मानै है परन्तु श्रद्धानविषें दंड देना अनिष्ट ही मानै है। तैसें सम्यग्दृष्टीकै पापरूप बहुत कषाय होता था, सो यहु पुण्यरूप थोरा कषाय करनेका उपाय राखै है अर थोरा कषाय भए हर्षभी मानै है परन्तु श्रद्धान विषें कषाय कों हेय ही मानै है। बहुरि जैसें कोऊ कमाईका कारण जानि व्यापार आदि का उपाय राखै है, उपाय बनि आए हर्ष मानै है तैसें द्रव्यलिंगी मोक्षका कारण जानि प्रशस्त रागका उपाय राखै है, उपाय बनिआए हर्ष मानै है। ऐसें प्रशस्तरागका उपायविषें वा हर्षविषें समानता होतें भी सम्यग्दृष्टीकै तो दण्डसमान मिथ्यादृष्टिकै व्यापारसमान श्रद्धान पाइए है। तातें अभिप्रायविषें विशेष भया।

बहुरि याकै परीषह तपश्चरणादिकके निमित्ततें दुःख होय, ताका इलाज तो न करै है परन्तु दुःख वेदै है। सो दुःखका वेदना कषाय ही है। जहां वीतरागता हो है, तहां तो जैसें अन्य ज्ञेयकों जानें है तैसें ही दुःखका कारण ज्ञेयकों जानें है। सो ऐसी दशा याकी न हो है। बहुरि उनकों सहै है, सो भी कषायका अभिप्रायरूप विचारतें सहै है। सो विचार ऐसा हो है—जो परवशपनें नरकादिगतिविषें बहुत दुःख

सहै, ये परीषहादिका दुःख तो थोरा है। याकों स्ववश सहे स्वर्ग मोक्षसुखकी प्राप्ति हो है। इनकों न सहिए अर विषयसुख सेइए तो नरकादिककी प्राप्ति होसी, तहां बहुत दुःख होगा। इत्यादि विचार- विषैं परीषहनिविषैं अनिष्टबुद्धि रहै है। केवल नरकादिकके भयतैं वा सुखके लोभतैं तिनकों सहै है। सो ए सर्व कषायभाव ही हैं। बहुरि ऐसा विचार हो है—जे कर्म बांधे थे, ते भोगे बिना छूटते नाहीं, तातैं मोकों सहनें आए। सो ऐसे विचारतें कर्मफल चेतनारूप प्रवर्त्ते है। बहुरि पर्यायदृष्टितें जे परीषहादिकरूप अवस्था हो है, ताकों आपकै भई मानै है। द्रव्यदृष्टितें अपनी वा शरीरादिककी अवस्थाकों भिन्न न पहिचानै है। ऐसें ही नाना प्रकार व्यवहार विचारतें परीषहादिक सहै है।

बहुरि यानें राज्यादि विषयसामग्रीका त्याग किया है वा इष्ट भोजनादिकका त्याग किया करै है। सो जैसें कोऊ दाहज्वरवाला वायु होनेके भयतें शीतलवस्तु सेवनका त्याग करै है परन्तु यावत् शीतल वस्तुका सेवन रुचै तावत् वाकै दाहका अभाव न कहिए। तैसें राग सहित जीव नरकादिके भयतें विषयसेवनका त्याग करै है परन्तु यावत् विषयसेवन रुचै तावत् रागका अभाव न करिए। बहुरि जैसें अमृत का आस्वादी देवकों अन्य भोजन स्वयमेव न रुचै, तैसें स्वरसको आस्वादकरि विषयसेवनकी रुचि याकै न हो है। या प्रकार फलादिक की अपेक्षा परीषह सहनादिकों सुखका कारण जानें हैं अर विषय- सेवनादिकों दुःखका कारण जानें है। बहुरि तत्कालविषें परीषह सहनादिकतें दुःख होना मानें है, विषयसेवनादिकतें सुख मानें है। बहुरि जिनतें सुख दुःख होना मानिए, तिनविषें इष्ट अनिष्ट बुद्धितें रागद्वेष रूप अभिप्रायका अभाव होय नाहीं। बहुरि जहाँ रागद्वेष है, तहाँ चारित्र होय नाहीं। तातें यहु द्रव्यलिंगी विषयसेवन छोरि तप- श्चरणादि करै है तथापि असंयमी ही है। सिद्धांतविषें असंयत देश- संयतसम्यग्दृष्टीतें भी याकों हीन कह्या है। जातें उनकै चौथा पाँचवाँ

गुणस्थान है, याकैं पहला ही गुणस्थान है।

यहाँ कोऊ कहै कि—असंयत देशसंयत सम्यग्दृष्टीकै कषायनिकी प्रवृत्ति विशेष है अर द्रव्यलिंगी मुनिकैं थोरी है, याहीतैं असंयत देशसंयत सम्यग्दृष्टि तो सोलहवां स्वर्ग पर्यन्त ही जाय अर द्रव्यलिंगी उपरिम ग्रैवेयकपर्यन्त जाय। तातैं भावलिंगी मुनितैं तो द्रव्यलिंगीकौं हीन कहो, असंयत देशसंयत सम्यग्दृष्टीतैं याकों हीन कैसैं कहिए?

ताका समाधान—असंयत देशसंयत सम्यदृष्टीकै कषायनिकी प्रवृत्ति तो है परन्तु श्रद्धानविषै किसी ही कषायके करनेका अभिप्राय नाहीं। बहुरि द्रव्यलिंगीकै शुभ कषाय करनेंका अभिप्राय पाइए है। श्रद्धानविषैं तिनकों भले जानैं है। तातैं श्रद्धान अपेक्षा असंयत सम्यग्दृष्टितैं भी याकै अधिक कषाय है। बहुरि द्रव्यलिंगीकै योगनिकर प्रवृत्तिशुभ रूप घनी हो है अर अघातिकर्मनिविषैं पुण्य पापबंधका विशेष शुभ अशुभ योगनिके अनुसार है। तातैं उपरिम ग्रैवेयकपर्यन्त पहुंचै है, सो किछू कार्यकारी नाहीं। जातैं अघातिया कर्म आत्मगुणके घातक नाहीं। इनके उदयतैं ऊँचे नीचे पद पाए तो कहा भया। ए तो बाह्य संयोगमात्र संसार दशाके स्वांग हैं। आप तो आत्मा है, तातैं आत्मगुणके घातक घातिया कर्म हैं तिनका हीनपना कार्यकारी है. सो घातियाकर्मनिका बन्ध बाह्य प्रवृत्ति के अनुसार नाहीं। अन्तरंग कषाय शक्ति अनुसार है। याहीतैं द्रव्यलिंगीतैं असंयत देशसंयत सम्यग्दृष्टिकै घातिकर्मनिका बन्ध थोरा है। द्रव्यलिंगीकै तो सर्वघातिकर्मनिका बन्ध बहुत स्थिति अनुभाग लिए होय अर असंयत सम्यग्दृष्टिकै मिथ्यात्व अनन्तानुबन्धी आदि कर्मका तो बन्ध है ही नाहीं, अवशेषनिका बन्ध हो है सो स्तोक स्थिति अनुभाग लिए हो है। बहुरि द्रव्यलिंगीकैं कदाचित् गुणश्रेणीनिर्जरा न होय, सम्यग्दृष्टिकै कदाचित् हो है अर देश सकल संयम भए निरन्तर हो है। याहीतैं यहु मोक्षमार्गी भया है। तातैं द्रव्य लिंगी मुनि असंयत देशसंयत सम्यग्दृष्टीतैं हीन शास्त्रविषैं कह्या है। सो समयसार

शास्त्रविषैं द्रव्यलिंगी मुनिका हीनपना गाथा वा टीकाकलशानिविषैं प्रगट किया है। बहुरि पंचास्तिकायकी टीकाविषैं जहां केवल व्यवहारा-वलम्बीका कथन किया है, तहां व्यवहार पंचाचार होतें भी ताका हीनपना ही प्रगट किया है। बहुरि प्रवचनसारविषैं संसार तत्त्व द्रव्य-लिंगीकों कह्या। बहुरि परमात्मप्रकाशादि अन्य शास्त्रनिविषैं भी इस व्याख्यानकों स्पष्ट किया है। बहुरि द्रव्यलिंगीकै जप तप शील संयमादि क्रिया पाइए हैं, तिनकों भी अकार्यकारी इन शास्त्रनिविषैं जहाँ तहाँ दिखाई हैं, सो तहां देखि लेना। यहां ग्रन्थ बधनेके भयतें नाहीं लिखिए हैं। ऐसें केवल व्यवहाराभासके अवलम्बी मिथ्यादृष्टी तिनका निरूपण किया।

अब निश्चय व्यवहार दोऊ नयनिके आभासकों अवलम्बै हैं, ऐसे मिथ्यादृष्टी तिनिका निरूपण कीजिए है—

निश्चय व्यवहारनयाभासावलंबी मिथ्यादृष्टियोंका निरूपण

जे जीव ऐसा मानैं हैं—जिनमतविषैं निश्चय व्यवहार दोय नय कहे हैं, तातैं हमको तिनि दोऊनिका अंगीकार करना। ऐसें विचारि जैसें केवल निश्चयाभासके अवलम्बीनिका कथन किया था, तैसें तो निश्चयका अंगीकार करैं हैं अर केवल व्यवहाराभासके अवलम्बीनिका कथन किया था, तैसें व्यवहारका अंगीकार करैं हैं। यद्यपि ऐसें अंगीकार करने विषैं दोऊ नयनिके परस्पर विरोध है तथापि करै कहा, सांचा तो दोऊ नयनिका स्वरूप भास्या नाहीं अर जिनमतविषैं काहूकों छोड़ी भी जाती नाहीं। तातैं भ्रम लिए दोऊनिकों साधै हैं, ते भी जीव मिथ्यादृष्टी जाननें।

अब इनकी प्रवृत्तिका विशेष दिखाईए है—अन्तरंगविषैं आप ते निर्द्धार करि यथावत् निश्चय व्यवहार मोक्षमार्ग पहिचान्या नाहीं जिनआज्ञा मानि निश्चय व्यवहाररूप मोक्षमार्ग दोय प्रकार मानै है सो मोक्षमार्ग दोय नाहीं, मोक्षमार्गका निरूपण दोय प्रकार है। जहां सांचा मोक्षमार्गकों मोक्षमार्ग निरूपिए सो निश्चय मोक्षमार्ग है अर

जहाँ जो मोक्षमार्ग तो है नाहीं परन्तु मोक्षमार्ग का निमित्त है वा सहचारी है, ताकों उपचारकरि मोक्षमार्ग कहिए सो व्यवहार मोक्षमार्ग है, जातें निश्चय व्यवहारका सर्वत्र ऐसा ही लक्षण है। सांचा निरूपण सो निश्चय, उपचार निरूपण सो व्यवहार, तातैं निरूपण अपेक्षा दोय प्रकार मोक्षमार्ग जानना। एक निश्चयमोक्षमार्ग है, एक व्यवहार मोक्षमार्ग है; ऐसें दोय मोक्षमार्ग मानना मिथ्या है। बहुरि निश्चय व्यवहार दोउनिकूं उपादेय मानै है, सो भी भ्रम है। जातें निश्चय-व्यवहारका स्वरूप तो परस्पर विरोध लिए है। जातें समयसार विषें ऐसा कह्या है—

"ववहारोऽभूयत्थो भूयत्थो देसिदो दु सुद्धणओ* ।"

गाथा ११

याका अर्थ—व्यवहार अभूतार्थ है। सत्य स्वरूपकों न निरूपै है। किसी अपेक्षा उपचारकरि अन्यथा निरूपै है। बहुरि शुद्धनय जो निश्चय है सो भूतार्थ है। जैसा वस्तुका स्वरूप है तैसा निरूपै है। ऐसें इन दोऊनिका स्वरूप तो विरुद्धता लिए है।

बहुरि तू ऐसें मानैं है, जो सिद्धसमान शुद्ध आत्माका अनुभव सो निश्चय अर व्रत शील संयमादिरूप प्रवृत्ति सो व्यवहार, सो ऐसा तेरे मानना ठीक नाहीं। जातें कोई द्रव्यभावका नाम निश्चय, कोईका नाम व्यवहार ऐसें है नाहीं। एक ही द्रव्यके भावकों तिस स्वरूप ही निरूपण करना, सो निश्चयनय है। उपचारकरि तिस द्रव्यके भावकों अन्य द्रव्यके भावस्वरूप निरूपण करना, सो व्यवहार है। जैसें माटीके घड़ेकों माटीका घड़ा निरूपिए सो निश्चय अर घृत संयोगका उपचार करि वाकों ही घृतका घड़ा कहिए सो व्यवहार। ऐसें ही अन्यत्र जानना। तातैं तू किसीकों निश्चय मानैं, किसीकों व्यवहार मानैं सो

* ववहारोऽभूयत्थो भूयत्थो देसिदो दु सुद्धणओ।
भूयत्थमस्सिदो खलु सम्माइट्ठी हवइ जीवो ॥ गाथा ११ ॥

भ्रम है। बहुरि तेरे माननें विषै भी निश्चय व्यवहारकै परस्पर विरोध आया। जो तू आपकों सिद्धसमान शुद्ध मानें है, तो व्रतादिक काहेकों करे है। जो व्रतादिका साधनकरि सिद्ध भया चाहै है, तो वर्तमानविषै शुद्ध आत्माका अनुभवन मिथ्या भया। ऐसें दोऊ नयनिके परस्पर विरोध है। तातें दोऊ नयनिका उपादेयपना बनै नाहीं।

यहां प्रश्न—जो समयसारादिविषें शुद्ध आत्माका अनुभवकों निश्चय कह्या है, व्रत तप संयमादिककों व्यवहार कह्या है तैसें ही हम मानें हैं।

ताका समाधान—शुद्ध आत्माका अनुभव सांचा मोक्षमार्ग है तातें वाकों निश्चय कह्या। यहां स्वभावतें अभिन्न, परभावतें भिन्न ऐसा शुद्ध शब्दका अर्थ जानना। संसारीकों सिद्ध मानना ऐसा भ्रमरूप अर्थ शुद्ध शब्दका न जानना। बहुरि व्रत तप आदि मोक्षमार्ग हैं नाहीं, निमित्तादिककी अपेक्षा उपचारतें इनको मोक्षमार्ग कहिए है तातें इनकों व्यवहार कह्या। ऐसें भूतार्थ अभूतार्थ मोक्षमार्गपनाकरि इनकों निश्चय व्यवहार कहे हैं। सो ऐसें ही मानना। बहुरि ये दोऊ ही सांचे मोक्षमार्ग हैं, इन दोऊनिकों उपादेय मानना सो तो मिथ्याबुद्धि ही है। तहां वह कहै है—श्रद्धान तो निश्चयका राखै हैं अर प्रवृत्ति व्यवहार रूप राखै हैं, ऐसें हम दोऊनिकों अंगीकार करें हैं। सो ऐसें भी बनें नाहीं, जातें निश्चयका निश्चयरूप अर व्यवहारका व्यवहार रूप श्रद्धान करना युक्त है। एक ही नयका श्रद्धान भए एकान्तमिथ्यात्व हो है। बहुरि प्रवृत्तिविषें नयका प्रयोजन ही नाहीं। प्रवृत्ति तो द्रव्यकी परिणति है। तहां जिस द्रव्यकी परणति होय, ताकों तिसहीकी प्ररूपिए सो निश्चयनय अर तिसहीकों अन्य द्रव्यकी प्ररूपिए सो व्यवहारनय, ऐसें अभिप्राय अनुसार प्ररूपणतें तिस प्रवृत्तिविषें दोऊ नय बनें हैं। किछू प्रवृत्ति ही तो नयरूप है नाहीं। तातें या प्रकार भी दोऊ नयका ग्रहण मानना मिथ्या है। तो कहा करिए, सो

कहिए हैं—निश्चयनकरि जो निरूपण किया होय, ताकौं तो सत्यार्थ मानि ताका श्रद्धान अंगीकार करना अर व्यवहारनयकरि जो निरूपण किया होय, ताकौं असत्यार्थ मानि ताका श्रद्धान छोड़ना। सो ही समयसार विषैं कह्या है—

सर्वत्राध्यवसानमेवमखिलं त्याज्यंयदुक्तं जिनै-
स्तन्मन्ये व्यहार एव निखिलोऽप्यन्याश्रयस्त्याजितः।
सम्यग्निश्चयमेकमेव तदयो निष्कम्पमाक्रम्य किं
शुद्धज्ञानघने महिम्नि न निजे बध्नन्ति सन्तो धृतिम् ॥१॥
समयसार कलश बन्धाधिकार १७३

याका अर्थ—जातैं सर्व ही हिंसादि वा अहिंसादिविषैं अध्यवसाय हैं सोसमस्त ही छोड़ना, ऐसा जिनदेवनिकरि कह्या है। तातैं मैं ऐसें मानूं हूं, जो पराश्रित व्यवहार है सो सर्व ही छुड़ाया है। सन्त पुरुष एक परम निश्चयहीकों भले प्रकार निष्कम्प अंगीकारकरि शुद्ध ज्ञानघनरूप निजमहिमाविषैं स्थिति क्यों न करैं हैं।

भावार्थ—यहाँ व्यवहारका तो त्याग कराया, तातैं निश्चयकौं अंगीकारकरि निजमहिमारूप प्रवर्त्तना युक्त है। बहुरि षट्पाहुड़विषैं कह्या है—

जो सुत्तो ववहारे जोई जागदे सकज्जम्मि।
जो जागदि ववहारे सो सुत्तो अप्पणे कज्जे ॥१॥

याका अर्थ—जो व्यवहारविषैं सूता है सो जोगी अपने कार्यविषैं जाग है। बहुरि जो व्यवहारविषैं जागै है सो अपने कार्यविषैं सूता है। तातैं व्यवहारनयका श्रद्धान छोड़ि निश्चयका श्रद्धान करना योग्य है। व्यवहारनय स्वद्रव्य परद्रव्यकों वा तिनके भावनिकों वा कारण कार्यादिककों काहूकों काहूविषैं मिलाय निरूपण करै है। सो ऐसे ही श्रद्धानतैं मिथ्यात्व है तातैं याका त्याग करना। बहुरि निश्चयनय तिनहीकों यथावत् निरूप है, काहूकों काहूविषैं न मिलावै है। सो ऐसे

ही श्रद्धानतैं सम्यक्त्व हो है तातैं याका श्रद्धान करना।

यहाँ प्रश्न—जो ऐसैं है तो जिनमार्गविषैं दोऊ नयनिका ग्रहण करना कह्या है सो कैसैं ?

ताका समाधान—जिनमार्गविषैं कहीं तो निश्चयनयकी मुख्यता लिए व्याख्यान है ताकौं तो 'सत्यार्थ ऐसैं ही है' ऐसा जानना। बहुरि कहीं व्यवहारनयकी मुख्यता लिए व्याख्यान है ताकौं 'ऐसैं है नाहीं, निमित्तादि अपेक्षा उपचार किया है' ऐसा जानना। इस प्रकार जाननें का नाम ही दोऊ नयनिका ग्रहण है। बहुरि दोऊ नयनिके व्याख्यानकौं समान सत्यार्थ जानि ऐसैं भी है, ऐसैं भी है—ऐसा भ्रमरूप प्रवर्त्तनेकरि तो दोऊ नयनिका ग्रहण करना कह्या है नाहीं।

बहुरि प्रश्न—जो व्यवहारनय असत्यार्थ है तो ताका उपदेश जिनमार्गविषैं काहेकौं दिया ? एक निश्चयनयहीका निरूपण करना था।

ताका समाधान—ऐसा ही तर्क समयसारविषैं किया है। तहाँ यह उत्तर दिया है—

जह ण वि सक्कमणज्जो अणज्जभासं विणा उ गाहेउं।
तह ववहारेण विणा परमत्थुवएसणमसक्कं ॥गाथा ८॥

याका अर्थ—जैसें अनार्य जो म्लेक्ष सो ताहिकौं म्लेक्षभाषा बिना अर्थ ग्रहण करावनेकौं समर्थ न हूजे। तैसें व्यवहार बिना परमार्थका उपदेश अशक्य है। तातैं व्यवहारका उपदेश है। बहुरि इसही सूत्रकी व्याख्याविषैं ऐसा कह्या है—'व्यवहारनयो नानुसर्त्तव्यः'। याका अर्थ—यहु निश्चयके अंगीकार करावनेकौ व्यवहार करि उपदेश दीजिए है। बहुरि व्यवहारनय है सो अंगीकार करने योग्य नाहीं।

यहाँ प्रश्न—व्यवहारविना निश्चय का उपदेश कैसैं न होय। बहुरि व्यवहारनय कैसैं अंगीकार न करना, सो कहो ?

ताका समाधान–निश्चयनयकरि तो आत्मा परद्रव्यनितैं भिन्न स्वभावनितैं अभिन्न स्वयंसिद्ध वस्तु है। ताकों जे न पहिचानैं, तिनकों ऐसैं ही कह्या करिए तो वह समझै नाहीं तब उनकों व्यवहारनयकरि शरीरादिक परद्रव्यनिकी सापेक्षकरि नर नारकी पृथ्वीकायादिरूप जीवके विशेष किए। तब मनुष्यजीव हैं, नारकी जीव हैं, इत्यादि प्रकार लिए वाकै जीवकी पहिचान भई। अथवा अभेदवस्तुविषैं भेद उपजाय ज्ञान दर्शनादि गुणपर्यायरूप जीवके विशेष किए, तब जानने-वाला जीव है, देखनेवाला जीव है, इत्यादि प्रकार लिए वाकै जीवकी पहिचान भई। बहुरि निश्चयकरि वीतराग मोक्षमार्ग है। ताकों जे न पहिचानैं, तिनिको ऐसैं ही कह्या करिए, तो वे समझैं नाहीं। तब उनकों व्यवहारनयकरि तत्त्वश्रद्धानज्ञानपूर्वक पर द्रव्यका निमित्त मेटनेंका सापेक्षकरि व्रत शील संयमादिकरूप वीतराग भावके विशेष दिखाए, तब वाकै वीतरागभावकी पहिचान भई। याही प्रकार अन्यत्र भी व्यवहारविना निश्चय उपदेशका न होना जानना। बहुरि यहाँ व्यवहारकरि नर नरकादि पर्यायहीकों जीव कह्या, सो पर्यायहीको जीव न मान लेना। पर्याय तो जीव पुद्गलका संयोगरूप है। तहाँ निश्चयकरि जीवद्रव्य जुदा है, ताहीकों जीव मानना। जीवका संयो-गतैं शरीरादिककों भी उपचारकरि जीव कह्या, सो कहनें मात्र ही है। परमार्थतैं शरीरादिक जीव होते नाहीं, ऐसा ही श्रद्धान करना। बहुरि अभेद आत्माविषैं ज्ञानदर्शनादि भेद किए, सो तिनकों भेदरूप ही न मानि लेनें। भेद तो समझावने के अर्थ किए हैं। निश्चयकरि आत्मा अभेद ही है, तिसहीकों जीव वस्तु मानना। संज्ञा संख्यादिककरि भेद कहे, सो कहनें मात्र ही हैं, परमार्थतैं जुदे जुदे हैं नाहीं। ऐसा ही श्रद्धान करना। बहुरि परद्रव्यका निमित्त मिटने की अपेक्षा व्रतशील-संयमादिककों मोक्षमार्ग कह्या, सो इनहींकों मोक्षमार्ग न मानि लेना। जातैं परद्रव्यका ग्रहण त्याग आत्माके होय, तो आत्मा परद्रव्यका कर्त्ता हर्त्ता होय। सो कोई द्रव्यके आधीन है नाहीं। तातैं आत्मा

अपने विभाव रागादिक है, तिनकों छोड़ि वीतरागी हो है। सो निश्चय-करि वीतराग भाव ही मोक्षमार्ग है। वीतराग भावनिकै अर व्रतादि-कनिकै कदाचित् कार्य कारणपनो है। तातैं व्रतादिककों मोक्षमार्ग कहे, सो कहनेमात्र ही हैं। परमार्थतैं बाह्य क्रिया मोक्षमार्ग नाहीं, ऐसा ही श्रद्धान करना। ऐसें ही अन्यत्र भी व्यवहारनयका अंगीकार न करना जानि लेना।

यहां प्रश्न—जो व्यवहारनय परकों उपदेशविषैं ही कार्यकारी है कि अपना भी प्रयोजन साधै है?

ताका समाधान—आप भी यथावत् निश्चयनयकरि प्ररूपित वस्तुकों न पहिचानैं, तावत् व्यवहार मार्गकरि वस्तुका निश्चय करै। तातैं नीचली दशाविषैं आपकों भी व्यवहारनय कार्यकारी है। परन्तु व्यवहारकों उपचार मात्र मानि वाके द्वारे वस्तुका ठीक (निश्चय) करै, तो कार्यकारी होय। बहुरि जो निश्चयवत् व्यवहार को भी सत्यभूत मानि वस्तु ऐसें ही है, ऐसा श्रद्धान करै तो उलटा अकार्य-कारी होय जाय। सो ही पुरुषार्थसिद्ध्युपाय विषैं कह्या है—

अबुधस्य बोधनार्थं मुनीश्वरा देशयन्त्यभूतार्थम्।
व्यवहारमेव केवलमवैति यस्तस्य देशना नास्ति ॥६॥
माणवक एव सिंहो यतो भवत्यनवगीतसिंहस्य।
व्यवहार एव हि तथा निश्चयतां यात्यनिश्चयज्ञस्य ॥७॥

इनका अर्थ—मुनिराज अज्ञानीके समझावनेकों असत्यार्थ जो व्यवहारनय ताकों उपदेशै हैं। जो केवल व्यवहारहीकों जानै है, ताकों उपदेश ही देना योग्य नाहीं है। बहुरि जैसें जो सांचा सिंहकों न जानै, ताकै व्यवहार ही निश्चयपनाकों प्राप्त हो है।

इहां कोई निर्विचार पुरुष ऐसें कहै—तुम व्यवहारको असत्यार्थ हेय कहो हो तो हम व्रत शील संयमादि व्यवहार कार्य काहेकों करैं—सर्व कों छोड़ि देवेंगे। ताकों कहिए है—किछू व्रत शील संयमादिक

का नाम व्यवहार नाहीं है। इनकों मोक्षमार्ग मानना व्यवहार है सो छोड़ि दे। बहुरि ऐसा श्रद्धानकरि जो इनकों तो बाह्य सहकारी जानि उपचारतें मोक्षमार्ग कह्या है। ए तो परद्रव्याश्रित हैं। बहुरि सांचा मोक्षमार्ग वीतरागभाव है सो स्वद्रव्याश्रित है। ऐसें व्यवहारकों असत्यार्थ हेय जानना। व्रतादिककों छोड़नेतें तो व्यवहारका हेयपना होता है नाहीं। बहुरि हम पूछें हैं—व्रतादिककों छोड़ि कहा करैगा ? जो हिंसादिरूप प्रवर्त्तेगा तो तहाँ तो मोक्षमार्ग का उपचार भी संभवै नाहीं। तहां प्रवर्त्तनेतें कहा भला होयगा, नरकादिक पावोगे। तातैं ऐसें करना तो निर्विचारपना है। बहुरि व्रतादिकरूप परिणति मेटि केवल वीतराग उदासीन भावरूप होना बनै तो भले ही है। सो नीचली दशाविषें होय सकै नाहीं। तातैं व्रतादिसाधन छोड़ि स्वच्छन्द होना योग्य नाहीं। या प्रकार श्रद्धानविषें निश्चयकों, प्रवृत्तिविषें व्यवहारकों उपादेय मानना सो भी मिथ्यात्वभाव ही है।

बहुरि यहु जीव दोऊ नयनिका अंगीकार करनेके अर्थि कदाचित् आपकों शुद्ध सिद्धमान रागादिरहित केवलज्ञानादिसहित आत्मा अनुभवै है, ध्यानमुद्रा धारि ऐसे विचारविषें लागै है। सो ऐसा आप नाहीं परन्तु भ्रमतें निश्चय करि मैं ऐसा ही हूँ, ऐसा मानि सन्तुष्ट हो है। कदाचित् वचनद्वारि निरूपण ऐसें ही करै है। सो निश्चय तो यथावत् वस्तुको प्ररूपै, प्रत्यक्ष आप जैसा नाहीं तैसा आपको मानना, सो निश्चय नाम कैसें पावै। जैसा केवल निश्चयाभासवाला जीवकै पूर्वें अयथार्थपना कह्या था, तैसें ही याकै जानना।

अथवा यह ऐसें मानै है, जो इस नयकरि आत्मा है, इस नय-करि ऐसा है। सो आत्मा तो जैसा है तैसा ही है, तिसविषें नयकरि निरूपण करनेका जो अभिप्राय है, ताकों न पहिचानै है। जैसे आत्मा निश्चयकरि तो सिद्धसमान केवलज्ञानादिसहित द्रव्यकर्म-नोकर्म-भाव-कर्मरहित है, व्यवहारनय करि संसारी मतिज्ञानादिसहित वा द्रव्य-कर्म-नोकर्म-भावकर्मसहित है—ऐसा मानै है। सो एक आत्माके ऐसे

दोष रूप तो होय नाहीं। जिस भावहीका सहितपना तिस भावहीका रहितपना एकवस्तुविषैं कैसें सम्भवै ? तातैं ऐसा मानना भ्रम है। तो कैसें है—जैसें राजा रंक मनुष्यपनेकी अपेक्षा समान हैं तैसें सिद्ध संसारी जीवत्वपनेकी अपेक्षा समान कहे हैं, केवलज्ञानादि अपेक्षा समानता मानिए सो है नाहीं। संसारीकै निश्चयकरि मतिज्ञानादिक ही हैं, सिद्धकै केवलज्ञान है। इतना विशेष है—संसारीकै मतिज्ञानादिक कर्म का निमित्ततैं हैं तातैं स्वभावअपेक्षा संसारीकै केवलज्ञानकी शक्ति कहिए तो दोष नाहीं। जैसें रंक मनुष्यकै राजा होनेकी शक्ति पाइए, तैसें यहु शक्ति जाननी। बहुरि नोकर्म द्रव्यकर्म पुद्गलकरि निपजे हैं, तातैं निश्चयकरि संसारीकै भी इनका भिन्नपना है। परन्तु सिद्धवत् इनका कारण कार्य अपेक्षा सम्बन्ध भी न मानैं तो भ्रम ही है। बहुरि भाव-कर्म आत्माका भाव है, सो निश्चयकरि आत्माहीका है। कर्मके निमित्ततैं हो है, तातैं व्यवहारकरि कर्मका कहिए है। बहुरि सिद्धवत् संसारीकै भी रागादिक न मानना - यहु भ्रम है। याही प्रकारकरि नयकरि एक ही वस्तुकों एक भावअपेक्षा वैसा भी मानना, वैसा भी मानना, सो तो मिथ्याबुद्धि है। बहुरि जुदे जुदे भावनिकी अपेक्षा नयनिकी प्ररूपणा है, ऐसें मानि यथासम्भव वस्तुकों मानना सो सांचा श्रद्धान है। तातैं मिथ्यादृष्टी अनेकान्तरूप वस्तुकों मानै परन्तु यथार्थ भावकों पहिचानि मानि सकै नाहीं, ऐसा जानना।

बहुरि इस जीवकै व्रत शील संयमादिकका अंगीकार पाइए है, सो व्यवहारकरि 'ए भी मोक्ष के कारण हैं' ऐसा मानि तिनकों उपादेय मानै है। सो जैसें केवल व्यवहारावलम्बी जीवकै पूर्वें अयथार्थपना कह्या था, तैसें ही याकै भी अयथार्थपना जानना। बहुरि यहु ऐसें भी मानै है—जो यथा योग्य व्रतादि क्रिया तो करनी योग्य है परन्तु इनविषैं ममत्व न करना। सो जाका आप कर्ता होय, तिसविषैं ममत्व कैसें न करिए। आप कर्ता न है, तो मुझको करनी योग्य है ऐसा भाव कैसें किया। अर जो कर्ता है, तो वह अपना कर्म भया, तब कर्ताकर्म

सम्बन्ध स्वयमेव हो भया। सो ऐसी मान्यता तो भ्रम है। तो कैसें है—बाह्य व्रतादिक हैं सो तो शरीरादि परद्रव्यके आश्रय हैं। परद्रव्यका आप कर्त्ता है नाहीं, तातैं तिसविषैं कर्तृत्वबुद्धि भी न करनी अर तहां ममत्व भी न करना। बहुरि व्रतादिकविषैं ग्रहण त्यागरूप अपना शुभोपयोग होय सो अपने आश्रय है। ताका आप कर्त्ता है, तातैं तिसविषैं कर्तृत्वबुद्धि भी माननी अर तहाँ ममत्व भी करना। बहुरि इस शुभोपयोगकों बंधकाही कारण जानना, मोक्षका कारण न जानना, जातैं बंध अर मोक्षकै तो प्रतिपक्षीपना है। जातैं एक ही भाव पुण्यबंध को भी कारण होय अर मोक्षकों भी कारण होय, ऐसा मानना भ्रम है। तातैं व्रत अव्रत दोऊ विकल्परहित जहाँ परद्रव्य के ग्रहण त्यागका किछू प्रयोजन नाहीं, ऐसा उदासीन वीतराग शुद्धोपयोग सोई मोक्षमार्ग है। बहुरि नीचलो दशाविषैं केई जीवनिकै शुभोपयोग अर शुद्धोपयोगका युक्तपना पाइए है। तातैं उपचारकरि व्रतादिक शुभोपयोगकों मोक्षमार्ग कह्या है। वस्तुविचारतां शुभोपयोग मोक्षका घातक ही है, जातैं बंधकों कारण सोई मोक्षका घातक है, ऐसा श्रद्धान करना। बहुरि शुद्धोपयोगहीकों उपादेय मानि ताका उपाय करना, शुभोपयोग अशुभोपयोग को हेय जानि तिनके त्यागका उपाय करना। जहां शुद्धोपयोग न होय सकं, तहां अशुभोपयोगकों छोड़ि शुभही विषैं प्रवर्त्तना। जातैं शुभोपयोगतैं अशुभोपयोगविषैं अशुद्धता की अधिकता है। बहुरि शुद्धोपयोग होय, तब तो परद्रव्यका साक्षीभूत ही रहै है। तहां तो किछू परद्रव्य का प्रयोजन ही नाहीं। बहुरि शुभोपयोग होय, तहाँ बाह्य व्रतादिककी प्रवृत्ति होय अर अशुभोपयोग होय, तहाँ बाह्य अव्रतादिककी प्रवृत्ति होय। जातैं अशुद्धोपयोगकै अर परद्रव्यको प्रवृत्तिकै निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध पाइए है। बहुरि पहलैं अशुभोपयोग छूटि शुभोपयोग होइ, पीछैं शुभोपयोग छूटि शुद्धोपयोग होइ। ऐसी क्रमपरिपाटी है।

बहुरि कोई ऐसें मानें कि शुभोपयोग है सो शुद्धोपयोगको

कारण है। सो जैसें अशुभोपयोग छूटि शुभोपयोग हो है, तैसें शुभोपयोग छूटि शुद्धोपयोग हो है—ऐसें ही कार्यकारणपना होय तो शुभोपयोगका कारण अशुभोपयोग ठहरै। अथवा द्रव्यलिंगीकै शुभोपयोग तो उत्कृष्ट हो है, शुद्धोपयोग होता ही नाहीं। तातैं परमार्थतैं इन कै कारण कार्यपना है नाहीं। जैसें रोगीके बहुत रोग था, पीछे स्तोक रोग भया, तो वह स्तोक रोग तो निरोग होनेका कारण है नाहीं। इतना है, स्तोक रोग रहैं निरोग होने का उपाय करै तो होइ जाय। बहुरि जो स्तोक रोगहीकों भला जानि ताका राखने का यत्न करै तो निरोग कैसें होय। तैसें कषायोकै तीव्रकषायरूप अशुभोपयोग था, पीछें मन्दकषायरूप शुभोपयोग भया, तो वह शुभोपयोग तो निःकषाय शुद्धोपयोग होनेको कारण है नाहीं। इतना है—शुभोपयोग भए शुद्धोपयोग का यत्न करै तो होय जाय। बहुरि जो शुभोपयोगहीकों भला जानि ताका साधन किया करै तो शुद्धोपयोग कैसें होय। तातैं मिथ्यादृष्टी का शुभोपयोग तो शुद्धोपयोगकों कारण है नाहीं। सम्यग्दृष्टीकै शुभोपयोग भए निकट शुद्धोपयोग प्राप्त होय, ऐसा मुख्यपनाकरि कहीं शुभोपयोगकों शुद्धोपयोगका कारण भी कहिए है, ऐसा जानना।

बहुरि यह जीव आपकों निश्चय व्यवहाररूप मोक्षमार्गका साधक मानै है। तहाँ पूर्वोक्त प्रकार आत्माकों शुद्ध मान्या सो तो सम्यग्दर्शन भया। तैसेंही जान्या सो सम्यग्ज्ञान भया। तैसेंही विचार विषें प्रवर्त्या सो सम्यक्चारित्र भया। ऐसें तो आपकै निश्चल रत्नत्रय भया मानै। सो मैं प्रत्यक्ष अशुद्ध सो शुद्ध कैसें मानूं; जानूं; विचारू हूं इत्यादि विवेकरहित भ्रमतें सन्तुष्ट हो है। बहुरि अरहंतादि बिना अन्य देवादिककों न मानै है वा जैन शास्त्र अनुसार जीवादिके भेद सीखि लिए हैं तिनहीकों मानै है औरकों न मानै सो तो सम्यग्दर्शन भया। बहुरि जैन शास्त्रनिका अभ्यास विषें बहुत प्रवर्त्तै है सो सम्यग्ज्ञान भया। बहुरि व्रतादिरूप क्रियनिविषें प्रवर्त्तै है सो सम्यक्चारित्र भया। ऐसें आपकै व्यवहार रत्नत्रय भया मानै। सो व्यवहार

तो उपचारका नाम है। सो उपचार भी तो तब बनै जब सत्यभूत निश्चय रत्नत्रयका कारणादिक होय। जैसें निश्चय रत्नत्रय सधै तैसें इनको साधै तो व्यवहारपनो भी सम्भवै। सो याकै तो सत्यभूत निश्चय रत्नत्रयका कारणादिक होय। जैसें निश्चय रत्नत्रय सधै तैसें इनको साधै तो व्यवहारपनो भी सम्भवै। सो याकै तो सत्यभूत निश्चय रत्नत्रयकी पहिचान ही भई नाहीं। यहु ऐसें कैसें साधि सकै। आज्ञा अनुसारी हुवा देख्यादेखी साधन करै है। तातैं याकै निश्चय व्यवहार मोक्षमार्ग न भया। आगें निश्चय व्यवहार मोक्षमार्गका निरूपण करेंगे, ताका साधन भए ही मोक्षमार्ग होगा।

ऐसें यहु जीव निश्चयभावको मानै जानै है परन्तु व्यवहार साधनको भी भला जानै है; तातैं स्वच्छन्द होय अशुभरूप न प्रवर्त्तै है। व्रतादिक शुभोपयोगरूप प्रवर्त्तै है, तातैं अन्तिम ग्रैवेयक पर्यन्त पदको पावै है। बहुरि जो निश्चयाभासकी प्रगल्भतातैं अशुभरूप प्रवृत्ति होय जाय तो कुगतिविषैं भी गमन होय; परिणामनिके अनुसारि फल पावै है परन्तु संसारका ही भोक्ता रहै है। सांचा मोक्षमार्ग पाए बिना सिद्धपदको न पावै है। ऐसें निश्चयाभास व्यवहाराभास दोऊ-निके अवलम्बी मिथ्यादृष्टि तिनिका निरूपण किया।

अब सम्यक्त्वके सन्मुख जे मिथ्यादृष्टी तिनका निरूपण कीजिए है—

सम्यक्त्वके सम्मुख मिथ्यादृष्टि का निरूपण

कोई मंदकषायादिकका कारण पाय ज्ञानावरणादि कर्मनिका क्षयोपशम भया, तातैं तत्त्वविचार करनेकी शक्ति भई अर मोह मंद भया, तातैं तत्त्वविचारविषैं उद्यम भया। बहुरि बाह्य निमित्त देव, गुरु, शास्त्रादिकका भया तिनकरि सांचा उपदेशका लाभ भया। तहां अपने प्रयोजनभूत मोक्षमार्गका वा देवगुरुधर्मादिकका वा जीवादि तत्त्वनिका वा आपा परका वा आपकों अहितकारी हितकारी भाव-निका इत्यादिकका उपदेशतैं सावधान होय ऐसा विचार किया—अहो

मुझकों तो इन बातनिकी खबरि ही नाहीं, मैं भ्रमतें भूलि पाया पर्याय ही विषें तन्मय भया। सो इस पर्यायकी तो थोरे ही कालकी स्थिति है। बहुरि यहां मोकों सर्व निमित्त मिले है तातैं मोकों इन बातनिका ठीक करना। जातैं इनविषैं तो मेरा ही प्रयोजन भासैं है। ऐसें विचारि जो उपदेश सुन्या ताका निर्द्धार करनेका उद्यम किया। तहां उद्देश, लक्षणानिर्देश, परीक्षा द्वारकरि तिनका निर्द्धार होय। तातैं पहले तो तिनके नाम सीखं सो उद्देश भया। बहुरि तिनके लक्षण जानै। बहुरि ऐसें सम्भवे है कि नाहीं, ऐसा विचारलिए परीक्षा करने लगै। तहां नाम सीखि लेना अर लक्षण जानि लेना ये दोऊ तो उपदेशके अनुसार हो हैं। जैसें उपदेश दिया तैसें याद करि लेना। बहुरि परीक्षा करनेविषें अपना विवेक चाहिए है। सो विवेककरि एकान्त अपनें उपयोगविषें विचारैं जैसें उपदेश दिया तैसें ही है कि अन्यथा है। तहां अनुमानादि प्रमाणकरि ठीक करै वा उपदेश तो ऐसें है अर ऐसें न मानिए तो ऐसें होय। सो इनविषें प्रबल युक्ति कौन है अर निर्बल युक्ति कौन है। जो प्रबल भासै, ताकों सांच जानैं। बहुरि जो उपदेशतें अन्यथा सांच भासै वा सन्देह रहै, निर्द्धार न होय, तो बहुरि विशेष ज्ञानी होय तिनकों पूछै। बहुरि वह उत्तर दे, ताकों विचारै। ऐसे ही यावत् निर्द्धार न होय, तावत् प्रश्न उत्तर करै। अथवा समान बुद्धिके धारक होय, तिनकों अपना विचार जैसा भया होय तैसा कहै। प्रश्न उत्तरकरि परस्पर चर्चा करै। बहुरि जो प्रश्नोत्तरविषें निरूपण भया होय, ताकों एकान्तविषें विचारै। याही प्रकार अपने अन्तरंगविषें जैसें उपदेश दिया था, तैसें ही निर्णय होय भाव न भासै; तावत् ऐसें ही उद्यम किया करै। बहुरि अन्यमतीनिकरि कल्पित तत्वनिका उपदेश दिया है, ताकरि जैन उपदेश अन्यथा भासै वा सन्देह होय तो भी पूर्वोक्त प्रकारकरि उद्यम करै। ऐसें उद्यम किए जैसें जिनदेवका उपदेश है तैसें ही सांच है, मुझकों भी ऐसें ही भासै है, ऐसा निर्णय होय। जातैं जिनदेव अन्यथावादी हैं नाहीं।

यहाँ कोऊ कहै—जिनदेव जो अन्यथावादी नाहीं हैं तो जैसैं उनका उपदेश है तैसें श्रद्धान करि लीजिए, परीक्षा काहेकों कीजिए ?

ताका समाधान—परीक्षा किए बिना यहु तो मानना होय, जो जिनदेव ऐसें कह्या है सो सत्य है परन्तु उनका भाव आपकों भासै नाहीं। बहुरि भासे बिना निर्मल श्रद्धान न होय। जाकी काहू का वचन करि प्रतीति करिए, ताकी अन्यथा वचनकरि अन्यथा भी प्रतीति होय जाय, तातैं शक्तिअपेक्षा वचनकरि कीन्हीं प्रतीति अप्रतीतिवत् है। बहुरि जाका भाव भास्या होय, ताकों अनेक प्रकारकरि भी अन्यथा न मानैं। तातैं भाव भासें प्रतीति होय सोई सांची प्रतीति है। बहुरि जो कहोगे, पुरुषप्रमाणतें वचनप्रमाण कीजिए है, तो पुरुषकी भी प्रमाणता स्वयमेव तो न होय। वाके केई वचननिकी परीक्षा पहलें करि लीजिए, तब पुरुषकी प्रमाणता होय।

यहां प्रश्न— उपदेश तो अनेक प्रकार, किस-किसकी परीक्षा करिए ?

ताका समाधान—उपदेशविषें केई उपादेय केई हेय केई ज्ञेय तत्त्व निरूपित्त हैं। तहां उपादेय हेय तत्त्वनिकी तो परीक्षा करि लेना। जातें इन विषैं अन्यथापनो भए अपना बुरा हो है। उपादेयकों हेय मानि लै तो बुरा होय, हेयकों उपादेय मानि लै तो बुरा होय।

बहुरि जो कहैगा—आप परीक्षा न करी अर जिनवचनहीतैं उपादेयकों उपादेय जानैं, हेयकों हेय जानैं तो यामें कैसे बुरा होय ?

ताका समाधान—अर्थका भाव भासे बिना वचनका अभिप्राय न पहिचानैं। यहु तो मानि ले, जो मैं जिन वचन अनुसारि मानूं हूं परन्तु भाव भासे बिना अन्यथापनो होय जाय। लोकविषैं भी किंकरकों किसी कार्यकों भेजिए सो वह उस कार्यका भाव जानैं तो कार्यकों सुधारै, जो भाव न भासै तो कहीं चूकि ही जाय। तातैं भाव भासने के अर्थि हेय उपादेय तत्त्वनिकी परीक्षा अवश्य करनी।

बहुरि वह कहै है— जो परीक्षा अन्यथा होय जाय तो कहा करिए ?

ताका समाधान—जिन वचन अर अपनी परीक्षा इनकी समानता होय, तब तो जानिए सत्य परीक्षा भई। यावत् ऐसें न होय तावत् जैसें कोई लेखा करै है, ताकी विधि न मिलै तावत् अपनी चूककौं ढूंढ़ै। तैसें यह अपनी परीक्षा विषैं विचार किया करै। बहुरि जो ज्ञेयतत्त्व है तिनकी परीक्षा होय सकै तो परीक्षा करै। नाहीं यह अनुमान करै, जो हेय उपादेय तत्त्व ही अन्यथा न कहै तो ज्ञेयतत्त्व अन्यथा किस अर्थि कहै। जैसें कोऊ प्रयोजनरूप कार्यनिविषैं झूठ न बोलै सो अप्रयोजन झूठ काहेकों बोलै। तातैं ज्ञेयतत्वनिका परीक्षाकरि भी वा आज्ञाकरि स्वरूप जानै है। तिनका यथार्थ भाव न भासै तो भी दोष नाहीं याहीतैं जैनशास्त्रनिविषैं तत्वादिकका निरूपण किया, तहांतो हेतु युक्ति आदिकरि जैसें याकै अनुमानादिकरि प्रतीति आवै, तैसें कथन किया। बहुरि त्रिलोक, गुणस्थान, मार्गणा, पुराणादिकका कथन आज्ञा अनुसारि किया। तातैं हेयोपादेय तत्वनिकी परीक्षा करनी योग्य है। तहां जीवादिक द्रव्य वा तत्त्व तिनकों पहचानना। बहुरि तहाँ आपा पर को पहचानना। बहुरि त्यागने योग्य मिथ्यात्व रागादिक अर ग्रहणें योग्य सम्यग्दर्शनादिक तिनका स्वरूप पहिचानना। बहुरि निमित्त नैमित्तिकादिक जैसें हैं, तैसें पहिचानना। इत्यादि मोक्षमार्गविषैं जिनके जानें प्रवृत्ति होय, तिनकों अवश्य जाननें। सो इनकीतो परीक्षा करनी। सामान्यपने किसी हेतु युक्ति करि इनकों जाननें वा प्रमाण नयकरि जाननें वा निर्देश स्वामित्वादि करि वा सत् संख्यादि करि इनका विशेष जानना। जैसी बुद्धि होय जैसा निमित्त बनें तैसें इनको सामान्य विशेषरूप पहचाननें। बहुरि इस जाननेंका उपकारी गुणस्थान, मार्गणादिक वा पुराणादिक वा व्रतादिक क्रियादिकका भी जानना योग्य है। यहाँ परीक्षा होय सकै तिनकी परीक्षा करनी, न होय सकै ताका आज्ञा अनुसारि जानपना करना।

ऐसें इस जानने के अर्थ कबहूं आपही विचार करै है, कबहूं शास्त्र बांचै है, कबहूं सुनै है, कबहूं अभ्यास करै है, कबहूं प्रश्नोत्तर

करे है इत्यादि रूप प्रवर्त्तें है। अपना कार्य करनेका याकै हर्ष बहुत है, तातैं अन्तरंग प्रीतितैं ताका साधन करै। या प्रकार साधन करता यावत् सांचा तत्वश्रद्धान न होय, 'यहु ऐसें ही हैं' ऐसी प्रतीति लिए जीवादिक तत्वनिका स्वरूप आपकों न भासैं, जैसें पर्यायविषैं अहंबुद्धि है तैसें केवल आत्माविषैं अहंबुद्धि न आवै, हित अहितरूप अपने भावनिकों न पहिचानैं, तावत् सम्यक्त्वके सम्मुख मिथ्यादृष्टी है। यह जीव थोरे ही काळमें सम्यक्तकों प्राप्त होगा। इस ही भवमें वा अन्य पर्यायविषैं सम्यक्तकों पावेगा। इस भव में अभ्यासकरि परलोकविषैं तिर्यंचादि गतिविषैं भी जाय तो तहां संस्कारके बलतैं देव गुरु शास्त्र का निमित्त बिना भी सम्यक्त होय जाय। जातैं ऐसे अभ्यासके बलतैं मिथ्यात्वकर्म का अनुभाग हीन हो है। जहाँ वाका उदय न होय, तहां ही सम्यक्त होय जाय। मूलकारण यहु ही है। देवादिकका तो बाह्य निमित्त है सो मुख्यताकरि तो इनके निमित्तहीतैं सम्यक्त हो है। तारतम्यतैं पूर्व अभ्यास संस्कारतैं वर्तमान इनका निमित्त न होय तो भी सम्यक्त होय सकै है। सिद्धान्तविषैं ऐसा सूत्र है—"तन्निसर्गादधिगमाद्वा"

(तत्वा० सू० १,३)

याका अर्थ यहु—सो सम्यग्दर्शन निसर्ग वा अधिगमतैं हो हैं। तहां देवादिक बाह्यनिमित्त बिना होय, सो निसर्गतैं भया कहिए। देवादिकका निमित्ततैं होय सो अधिगमतैं भया कहिए। देखो तत्वविचारकी महिमा, तत्वविचाररहित देवादिककी प्रतीति करै, बहुत शास्त्र अभ्यासै, व्रतादिक पालै, तपश्चरणादि करै, ताकै तो सम्यक्त होनेका अधिकार नाहीं। अर तत्वविचारवाला इन बिना भी सम्यक्त का अधिकारी हो है। बहुरि कोई जीवकै तत्वविचारके होने पहलैं किसी कारण पाय देवादिककी प्रतीति होय वा व्रत तपका अंगीकार होय, पीछैं तत्वविचार करै। परन्तु सम्यक्तका अधिकारी तत्वविचार भए ही हो है।

बहुरि काहूकै तत्वविचार भए पीछें तत्त्वप्रतीति न होनेतें सम्यक्त तो न भया अर व्यवहार धर्मकी प्रतीति रुचि होय गई, तातें देवादिक की प्रतीति करै है वा व्रत तपकों अंगीकार करै है। काहूकै देवादिककी प्रतीति अर सम्यक्त युगपत होय अर व्रत तप सम्यक्तकी साथ भी होय अर पहले पीछें भी होय, देवादिककी प्रतीतिका तो नियम है। इस बिना सम्यक्त न होय। व्रतादिकका नियम है नाहीं। घनें जीव तो पहलें सम्यक्त होय पीछें ही व्रतादिककों धारैं हैं। काहूकै युगपत् भी होय जाय है। ऐसें यहु तत्वविचारवाला जीव सम्यक्तका अधिकारी है परन्तु याकैं सम्यक्त होय ही होय, ऐसा नियम नाहीं। जातैं शास्त्रविषैं सम्यक्त होनेतें पहलें पंच लब्धिका होना कह्या है—

पंच लब्धियोंका स्वरूप

क्षयोपशम, विशुद्धि, देशना, प्रायोग्य, करण। तहां जिसको होते संते तत्वविचार होय सकै, ऐसा ज्ञानावरणादि कर्मनिका क्षयोपशम होय। उदयकालकों प्राप्त सर्वघाती स्पर्द्धकनिके निषेकनिका उदयका अभाव सो क्षय अर अनागतकालविषैं उदय आवने योग्य तिनही का सत्तारूढ़ रहना सो उपशम, ऐसी देशघाती स्पर्द्धकनिका उदय सहित कर्मनिकी अवस्था ताका नाम क्षयोपशम है। ताकी प्राप्ति सो क्षयोपशमलब्धि है। बहुरि मोहका मन्द उदय आवनेतें मन्दकषायरूप भाव होय जहां तत्व विचार होय सकै सो विशुद्धलब्धि है। बहुरि जिनदेवका उपदेश्या तत्वका धारण होय, विचार होय सो देशनालब्धि है। जहां नरकादिविषैं उपदेशका निमित्त न होय, तहां पूर्वसंस्कारतें होय। बहुरि कर्मनिकी पूर्व सत्ता (घटकरि) अतः कोटाकोटी सागरप्रमाण रहि जाय अर नवीन बंध अन्तः कोटाकोटी प्रमाण ताके संख्यातवें भाग मात्र होय सो भी तिस लब्धिकालतें लगाय क्रमतें घटता होय, केतीक पापप्रकृतिनिका बंध क्रमतें मिटता जाय, इत्यादि योग्य अवस्थाका होना सो प्रायोग्यलब्धि है। सो ए च्यारौं लब्धि भव्य या अभव्यकै होय हैं। इन च्यार लब्धि भए पीछें सम्यक्त

होय तो होय, न होय तो नाहीं भी होय। ऐसें 'लब्धिसार' विषै कह्या है।* तातैं तिस तत्त्वविचारवालाकै सम्यक्त्व होनेका नियम नाहीं। जैसे काहूकों हितकी शिक्षा दई, ताको वह जानि विचार करै, यह सीख दई सो कैसें है? पीछें विचारतां वाकै ऐसें ही है, ऐसी उस सीखि की प्रतीति होय जाय। अथवा अन्यथा विचार होय वा अन्य विचारविषैं लागि तिस सीखका निर्द्धार न करै, तो प्रतीति नाहीं भी होय। तैसें श्रीगुरु तत्त्वोपदेश दिया, ताकों जानि विचार करै, यहु उपदेश दिया सो कैसें है। पीछें विचार करनेतें वाकै ऐसें ही हैं ऐसी प्रतीति होय जाय। अथवा अन्यथा विचार होय वा अन्य विचारविषैं लागि तिस उपदेशका निर्द्धार न करै तो प्रतीति नाहीं भी होय सो मूल कारण मिथ्यात्व कर्म है, याका उदय मिटे तो प्रतीति होइ जाय, न मिटै तो नाहीं होय, ऐसा नियम है। याका उद्यम तो तत्त्वविचार करने मात्र ही है।

बहुरि पांचवीं करणलब्धि भए सम्यक्त होय ही होय, ऐसा नियम है। सो जाकै पूर्वै कही थीं च्यारि लब्धि ते तो भई होंय अर अन्तर्मुहूर्त्त पीछें जाकै सम्यक्त होना होय, तिसही जीवकै करणलब्धि हो है। सो इस 'करणलब्धिवालाकै बुद्धिपूर्वक तो इतना ही उद्यम हो है—तिस तत्त्वविचारविषैं उपयोगकों तद्रूप होय लगावै, ताकरि समय समय परिणाम निर्मल होते जांय हैं। जैसे काहूकै सीखका विचार ऐसा निर्मल होने लग्या, जाकरि याकै शीघ्र ही ताकी प्रतीति होय जासी। तैसें तत्त्वउपदेश का विचार ऐसा निर्मल होनें लग्या, जाकरि याकै शीघ्र ही ताका श्रद्धान होसी। बहुरि इन परिणामनिका तारतम्य केवलज्ञानकरि देख्या, ताका निरूपण करणानुयोगविषैं किया है। सो इस करणलब्धिके तीन भेद हैं—अधःकरण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण। इनका विशेष व्याख्यान लब्धिसार शास्त्रविषैं किया है, तिसतें जानना। यहां संक्षेपसों कहिए है—

---

* लब्धि० ३

त्रिकालवर्ती सर्व करणलब्धिवाले जीव तिनके परिणामनिकी अपेक्षा ए तीन नाम हैं। तहां करण नाम तो परिणामका है। बहुरि जहां पहले पिछले समयनिके परिणाम समान होंय सो अधःकरण है।* जैसें कोई जीवका परिणाम तिस करणके पहिले समय स्तोक विशुद्धता लिए भया, पीछें समय समय अनतगुणी विशुद्धताकरि बधते भए। बहुरि वाकै जैसें द्वितीय तृतीयादि समयनिविषें परिणाम होंय, तैसें केई अन्य जीवनिकै प्रथम समयविषैं ही होंय। ताकैं तिसतैं समय समय अनन्तगुणी विशुद्धताकरि बधते होंय। ऐसें अधःप्रवृत्तिकरण जानना।

बहुरि जिसविषैं पहले पिछले समयनिके परिणाम समान न होंय, अपूर्व ही होंय, सो अपूर्वकरण है। जैसें तिस करणके परिणाम जैसे पहले समय होंय तैसें कोई ही जीवकै द्वितीयादि समयनिविषैं न होंय, बधते ही होंय। बहुरि इहां अधःकरणवत् जिन जीवनिके करण का पहला समय ही होय, तिनि अनेक जीवनिकै परस्पर परिणाम समान भी होंय अर अधिक हीन विशुद्धता लिए भी होंय। परन्तु यहां इतना विशेष भया, जो इसकी उत्कृष्टतातैं भी द्वितीयादि समयवाले का जघन्य परिणाम भी अनन्तगुणी विशुद्धता लिए ही होंय। ऐसें ही जिनकोंकरण मांडे द्वितीयादि समय भया होय, तिनकै तिस समयवालों के तो परस्पर परिणाम समान वा असमान होंय परन्तु ऊपरले समयवालोंके तिस समय समान सर्वथा न होंय, अपूर्व ही होंय। ऐसें अपूर्वकरण[1] जानना।

बहुरि जिस विषैं समान समयवर्ती जीवनिकै परिणाम समान ही होंय, निवृत्ति कहिए परस्पर भेद ताकरि रहित होंय। जैसें तिस

---

* लब्धि ३५

1. समए समए भिण्णा भावा तम्हा अपुव्वकरणो हु।
   जम्हा उवरिमभावा हेट्ठिमभावेहिं णत्थि सरिसत्तं॥ लब्धि ३६॥
   तम्हा बिदियं करणं अपुव्वकरणेत्ति णिद्दिट्ठं॥ लब्धि० ५१॥
   करणं परिणामो अपुव्वाणि च ताणि करणाणि च अपुव्वकरणाणि,
   असमाणपरिणामा त्ति जं उत्तं होदि। धवला, १-९-८-४.

करणका पहला समयविषें सर्व जीवनिका परिणाम परस्पर समानही होय, ऐसैंही द्वितीयादि समयनिविषें समानता परस्पर जाननी। बहुरि प्रथमादि समयवालोंतें द्वितीयादि समयवालोंके अनन्तगुणी विशुद्धता लिए होंय। ऐसैं अनिवृत्तिकरण[1] जानना।

ऐसैं ये तीन करण जाननें। तहां पहलें अंतर्मुहूर्त्त कालपर्यंन्त अधःकरण होय। तहां च्यारि आवश्यक हो हैं। समय समय अनन्तगुणी विशुद्धता होय, बहुरि एक अंतर्मुहूर्त करि नवीन बंधकी स्थिति घटती होय सो स्थितिबंधापसरण होय, बहुरि समय समय प्रशस्त प्रकृतिनिका अनन्तगुणा अनुभाग बंधै, बहुरि समय समय अप्रशस्त प्रकृतिनिका अनुभागबंध अनन्तवें भाग होय; ऐसैं च्यारि आवश्यक होंय—तहाँ पीछें अपूर्वकरण होय। ताका काल अधःकरणके कालके संख्यातवें भाग है। ताविषैं ये आवश्यक और होंय। एक एक अन्तर्मुहूर्तकरि सत्ताभूत पूर्वकर्मकी स्थिति थी, ताकों घटावै सो स्थितिकाण्डकघात होय। बहुरि तिसतें स्तोक एक एक अन्तर्मुहूर्तकरि पूर्वकर्मका अनुभागकों घटावै सो अनुभाग कांडक घात होय। बहुरि गुणश्रेणिका कालविषैं क्रमतें असंख्यातगुणा प्रमाण लिए कर्म निर्जरने योग्य करिए सो गुणश्रेणीनिर्जरा होय। बहुरि गुणसंक्रमण यहाँ नाहीं हो है। अन्यत्र अपूर्वकरण हो है, तहाँ हो है। ऐसैं अपूर्वकरण भए पीछें अनिवृत्तिकरण होय। ताका काल अपूर्वकरणके भी संख्यातवें भाग है। तिसविषैं पूर्वोक्त आवश्यकसहित केता काल गए पीछें अन्तरकरण[2] करै है। अनिवृत्तिकरणके काल पीछें उदय आवने योग्य ऐसैं मिथ्यात्वकर्म

---

१. एगसमए वट्टंताणं जीवाणं परिणामेहि ण विज्जदे णियट्टी णिव्वित्ती जत्थ ते अणियट्टीपरिणामा। धवला १-९-८-४। एक्कम्हि कालसमये संठाणादीहिं जह णिवट्टंति। ण णिवट्टंति तहा विय परिणामेहिं मिहो जेहिं॥ गो० जी० ५६॥

२. किमन्तरकरणं णाम ? विवक्खियकम्माणं हेट्ठिमोवरिमट्ठिदीओ मोत्तूण मज्झे अन्तोमुहुत्तमेत्ताणं ट्ठिदीणं परिणामविसेसेण णिसेगाणमभावीकरण मन्तरकरणमिदि भण्णदे॥ जय ध० अ० प० ९५३

के मुहूर्तमात्र निषेक तिनिका अभाव करै है, तिन परमाणुनिकों अन्य स्थितिरूप परिणमावै है। बहुरि अन्तरकरण किये पीछें उपशमकरण करै है। अन्तरकरणकरि अभावरूप किए निषेकनिके ऊपरि जो मिथ्यात्वके निषेक तिनकों उदय आवनेकों अयोग्य करै है। इत्यादिक क्रियाकरि अनिवृत्तिकरणका अन्तसमयके अनन्तर जिन निषेकनिका अभाव किया था, तिनका उदयकाल आया तब निषेकनि बिना उदय कौनका आवै। तातैं मिथ्यात्वका उदय न होनेतें प्रथमोपशम सम्यक्त की प्राप्ति हो है। अनादि मिथ्यादृष्टीकै सम्यक्तमोहनीय, मिश्रमोहनीय की सत्ता नाहीं है। तातैं एक मिथ्यात्वकर्महीकों उपशमाय उपशम-सम्यग्दृष्टी होय है। बहुरि कोई जीव सम्यक्त पाय पीछें भ्रष्ट हो है, ताकी भी दशा अनादिमिथ्यादृष्टी की सी होय जाय है।

यहाँ प्रश्न—जो परीक्षाकरि तत्त्वश्रद्धान किया था, ताका अभाव कैसे होय?

ताका समाधान—जैसें किसी पुरुषकों शिक्षा दई, ताकी परीक्षा करि वाकै ऐसें ही है ऐसी प्रतीति भी आई थी, पीछें अन्यथा कोई प्रकारकरि विचार भया, तातैं उस शिक्षाविषें सन्देह भया। ऐसें है कि ऐसें है, अथवा 'न जानौं कैसे हैं', अथवा तिस शिक्षाकों झूठ जानि तिसतें विपरीत भई, तब वाकै प्रतीति न भई तब वाकै तिस शिक्षाकी प्रतीतिका अभाव होय। अथवा पूर्वें तो अन्यथा प्रतीति थी ही, बीचिमें शिक्षाका विचारतें यथार्थ प्रतीति भई थी बहुरि तिस शिक्षाका विचार किए बहुत काल होय गया तब ताकों भूलि जैसें पूर्वें अन्यथा प्रतीति थी तैसें ही स्वयमेव होय गई तब तिस शिक्षा की प्रतीतिका अभाव होय जाय। अथवा यथार्थ प्रतीति पहलें तो कीन्हीं, पीछें न तो किछू अन्यथा विचार किया, न बहुत काल भया परन्तु तैसा कर्म उदयतें

अर्थ—अन्तरकरण का क्या स्वरूप है? उत्तर—विवक्षित कर्मों की अधस्तन और उपरिम स्थितियों को छोड़कर मध्यवर्ती अन्तर्मुहूर्तमात्र स्थितियों के निषेकोंका परिणाम विशेष के द्वारा अभाव करने को अन्तरकरण कहते हैं।

होनहारके अनुसारि स्वयमेव ही तिस प्रतीति का अभाव होय अन्यथा-पना भया। ऐसें अनेक प्रकार तिस शिक्षाकी यथार्थ प्रतीतिका अभाव हो है। तैसें जीवके जिनदेव का तत्वादिरूप उपदेश भया, ताकी परीक्षाकरि वाकै 'ऐसें ही है' ऐसा श्रद्धान भया, पीछें पूर्वे जैसैं कहे तैसें अनेक प्रकार तिस पदार्थश्रद्धान का अभाव हो है। सो यहु कथन स्थूलपने दिखाया है। तारतम्यकरि केवलज्ञानविषें भासै है—इस समय श्रद्धान है कि इस समय नाहीं है। जातैं यहाँ मूल कारण मिथ्यात्वकर्म है। ताका उदय होय, तब तो अन्य विचारादि कारण मिलो वा मति मिलो, स्वयमेव सम्यक्श्रद्धानका अभाव हो है। बहुरि ताका उदय न होय, तब अन्य कारण मिलो वा मति मिलो, स्वयमेव सम्यक् श्रद्धान होय जाय है। सो ऐसी अन्तरंग समय समय सम्बन्धी सूक्ष्मदशाका जानना छद्मस्थकै होता नाहीं। तातैं अपनी मिथ्या सम्यक्श्रद्धानरूप अवस्थाका तारतम्य याकों निश्चय हो सकै नाहीं, केवलज्ञानविषै भासै है तिस अपेक्षा गुणस्थाननिकी पलटनि शास्त्र-विषें कही है। या प्रकार जो सम्यक्ततें भ्रष्ट होय सो सादि मिथ्या-दृष्टी कहिए। ताकै भी बहुरि सम्यक्तकी प्राप्ति विषें पूर्वोक्त पाँच लब्धि हो हैं। विशेष इतना यहाँ कोई जीवकै दर्शन मोहकी तीन प्रकृतिनिकी सत्ता हो है सो तीनोकों उपशमाय प्रथमोपशमसम्यक्ती हो है। अथवा काहूकै सम्यक्तमोहनीयका उदय आवै है, दोय प्रकृति-निका उदय न हो है, सो क्षयोपशमसम्यक्ती हो है। याकै गुणश्रेणी आदि क्रिया न हो है वा अनिवृत्तिकरण न हो है। बहुरि काहू कै मिश्रमोहनीयका उदय आवै है, दोय प्रकृतिनिका उदय न हो है, सो मिश्रगुणस्थानकों प्राप्त हो है। याकै करण न हो है। ऐसें सादि मिथ्या-दृष्टोकै मिथ्यात्व छूटें दशा हो है। क्षायिकसम्यक्तकों वेदकसम्यग्-दृष्टीही पावै है तातैं ताका कथन यहाँ न किया है। ऐसें सादि मिथ्या-दृष्टीका जघन्य तो मध्यम अन्तर्मुहूर्त्तमात्र उत्कृष्ट किंचितऊन अर्द्ध-पुद्गलपरिवर्त्तन मात्र काल जानना। देखो परिणामनिकी विचित्रता,

कोई जीव तो ग्यारहवें गुणस्थान यथाख्यातचारित्र पाय बहुरि मिथ्यादृष्टी होय किंचित ऊन अर्द्धपुद्गल परिवर्त्तन कालपर्यंत संसारमें रुलै अर कोई नित्यनिगोद में सों निकसि मनुष्य होय मिथ्यात्व छूटे पीछें अन्तर्मुहूर्त्त में केवलज्ञान पावै। ऐसें जानि अपने परिणाम बिगरनेका भय राखना अर तिनके सुधारनेका उपाय करना।

बहुरि इस सादिमिथ्यादृष्टीकै थोरे काल मिथ्यात्वका उदय रहै तो बाह्य जैनीपना नाहीं नष्ट हो है वा तत्वनिका अश्रद्धान व्यक्त न हो है वा बिना विचार किए ही वा स्तोक विचारहीतें बहुरि सम्यक्तकी प्राप्ति होय जाय है। बहुरि बहुत काल मिथ्यात्वका उदय रहै तो जैसी अनादि मिथ्यादृष्टीकी दशा तैसी याकी भी दशा हो है। गृहीत मिथ्यात्वकों भी ग्रहै है। निगोदादिविषै भी रुलै है। याकी किछू प्रमाण नाहीं।

बहुरि कोई जीव सम्यक्ततैं भ्रष्ट होय सासादन हो है। सो तहां जघन्य एक समय उत्कृष्ट छह् आवली प्रमाण काल रहै है, सो याका परिणामकी दशा वचनकरि कहनेमें आवती नाहीं। सूक्ष्मकालमात्र कोई जातिके केवलज्ञानगम्य परिणाम हो हैं। तहां अनन्तानुबंधीका तो उदय हो है। मिथ्यात्वका उदय न हो है। सो आगम प्रमाणतैं याका स्वरूप जानना।

बहुरि कोई जीव सम्यक्ततैं भ्रष्ट होय, मिश्रगुणस्थानकों प्राप्त हो है। तहां मिश्रमोहनीयका उदय हो है। याका काल मध्य अन्तर्मुहूर्तमात्र है। सो याकै भी काल थोरा है, सो याकै भी परिणाम केवलज्ञानगम्य हैं। यहां इतना भासै है—जैसें काहूकों सीख दई तिसकों वह किछू सत्य किछ असत्य एकै काल मानैं तैसें तत्वनिका श्रद्धान अश्रद्धान एकैं काल होय सो मिश्रदशा है। केई कहै हैं—हमकों तो जिनदेव वा अन्य देव सर्व ही वन्दने योग्य हैं इत्यादि मिश्र श्रद्धान कों मिश्रगुणस्थान कहै हैं, सो नाहीं। यहु तो प्रत्यक्ष मिथ्यात्वदशा है। व्यवहाररूप देवादिका श्रद्धान भए भी मिथ्यात्व रहै है, तो याकै तो

देव कुदेव का किछू ठीक ही नाहीं। याकै तो यहु विनयमिथ्यात्व प्रगट है, ऐसैं जानना।

ऐसें सम्यक्तके सन्मुख मिथ्यादृष्टीनिका कथन किया। प्रसंग पाय अन्य अन्य भी कथन किया है। या प्रकार जैनमतवाले मिथ्यादृष्टीनिका स्वरूप निरूपण किया। यहाँ नाना प्रकार मिथ्यादृष्टीनिका कथन है ताका प्रयोजन यहु जानना—जो इन प्रकारनिकों पहिचानि आपविषैं ऐसा दोष होय तो ताकों दूरिकरि सम्यक्श्रद्धानी होना। औरनिहीके ऐसे दोष देखि देखि कषायी न होना। जातैं अपना भला बुरा तो अपने परिणामनितैं है। औरनिकों तो रुचिवान देखिए, तो किछू उपदेश देय वाका भी भला कीजिए। तातैं अपने परिणाम सुधारनेका उपाय करना योग्य है। जातैं संसारका मूल मिथ्यात्व है। मिथ्यात्व समान अन्य पाप नाहीं है। एक मिथ्यात्व अर ताके साथ अनन्तानुबन्धीका अभाव भए इकतालीस प्रकृतिका तो बन्ध ही मिटि जाय। स्थिति अन्तः कोटाकोटी सागरकी रहि जाय। अनुभाग थोरा ही रहि जाय। शीघ्र ही मोक्षपदकों पावै। बहुरि मिथ्यात्वका सद्भाव रहें अन्य अनेक उपाय किए भी मोक्षमार्ग न होय। तातैं जिस तिस उपायकरि सर्व प्रकार मिथ्यात्वका नाश करना योग्य है।

इतिश्री मोक्षमार्गप्रकाशकनाम शास्त्रविषैं जैनमतवाले मिथ्यादृष्टीनिका निरूपण जामें भया ऐसा सातवाँ अधिकार सम्पूर्ण भया ॥७॥

ॐ नमः

आठवां अधिकार

उपदेश का स्वरूप

अब मिथ्यादृष्टी जीवनिकों मोक्षमार्गका उपदेश देय तिनका उपकार करना यह ही उत्तम उपकार है। तीर्थंकर गणधरादिक भी ऐसा ही उपकार करें हैं। तातें इस शास्त्रविषें भी तिनहीका उपदेशके अनुसारि उपदेश दीजिए है। तहाँ उपदेशका स्वरूप जाननेके अर्थि किछू व्याख्यान कीजिए है। जातें उपदेशकों यथावत् न पहिचानें तो अन्यथा मानि विपरीत प्रवर्तें, तातें उपदेश स्वरूप कहिए है—

जिनमतविषें उपदेश च्यार अनुयोगका दिया है। सो प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग ए च्यार अनुयोग हैं। तहां तीर्थंकर, चक्रवर्ती आदि महान् पुरुषनिके चरित्र जिसविषें निरूपण किया होय, सो प्रथमानुयोग है[1]। बहुरि गुणस्थान मार्गणादिकरूप जीवका वा कर्मनिका वा त्रिलोकादिकका जाविषें निरूपण होय, सो करणानुयोग है[2]। बहुरि गृहस्थ मुनिके धर्म आचरण करनेका जाविषें निरूपण होय, सो चरणानुयोग है[3]। बहुरि षट् द्रव्य सप्ततत्त्वादिकका वा स्वपरभेद विज्ञानादिकका जाविषें निरूपण होय, सो द्रव्यानुयोग है[4]। अब इनका प्रयोजन कहिए है—

प्रथमानुयोगका प्रयोजन

प्रथमानुयोगविषें तो संसारकी विचित्रता पुण्य पापका फल, महंत पुरुषनिकी प्रवृत्ति इत्यादि निरूपणकरि जीवनिकों धर्मविषें लगाए हैं। जे जीव तुच्छबुद्धि होंय, ते भी तिसकरि धर्म सन्मुख हो हैं,

१. रत्नक० २,२। २. रत्नक० २,३। ३. रत्नक० २,४। ४. रत्नक० २,५।

जातैं वे जीव सूक्ष्मनिरूपणकों पहिचानें नाहीं। लौकिक वार्तानिकों जानें। तहां तिनका उपयोग लागै। बहुरि प्रथमानुयोग विषैं लौकिक प्रवृत्तिरूप ही निरूपण होय ताकों ते नीके समझि जांय। बहुरि लोकविषैं तो राजादिककी कथानिविषैं पापका पोषण हो है। तहां महन्त पुरुष राजादिक तिनकी कथा तो हैंपरन्तु प्रयोजन जहाँ तहाँ पापकों छुड़ाय धर्मविषैं लगावनेका प्रगट करै है। तातैं ते जीव कथानिके लालचकरि तो तिसकों बाचैं सुनैं, पीछैं पापकों बुरा धर्मकों भला जानि धर्मविषैं रुचिवन्त हो हैं। ऐसैं तुच्छ बुद्धीनिके समझावनेकों यहु अनुयोग है। 'प्रथम' कहिए 'अव्युत्पन्न मिथ्यादृष्टी' जिनके अर्थि जो अनुयोग सो प्रथमानुयोग है। ऐसा अर्थ गोमट्टसारकी टीकाविषैं[1] किया है। बहुरि जिन जीवनिके तत्वज्ञान भया होय, पीछैं इस प्रथमानुयोगकों बांचैं सुनैं, तो तिनकों यहु तिसका उदाहरणरूप भासै है। जैसें जीव अनादिनिधन है, शरीरादिक संयोगी पदार्थ हैं, ऐसें यहु जानें था। बहुरि पुराणनिविषैं जीवनिके भवांतर निरूपण किए, ते तिस जाननेके उदाहरण भए। बहुरि शुभ अशुभ शुद्धोपयोगकों जानैं था वा तिनके फलकों जानैं था। बहुरि पुराणविषैं तिन उपयोगनिकी प्रवृत्ति अर तिनका फल जीवनिकै भया, सो निरूपण किया। सो ही तिस जाननेका उदाहरण भया। ऐसैं ही अन्य जानना। यहाँ उदाहरणका अर्थ यहु जो जैसें जानैं था तैसैं ही तहाँ कोई जीवकै अवस्था भई तातैं यह तिस जाननेकी साखि भई। बहुरि जैसें कोई सुभट है, सो सुभटनिकी प्रशंसा अर कायरनिकी निन्दा जाविषै होय; ऐसी कोई पुराणपुरुषनिकी कथा सुननेंकरि सुभटपनाविषैं अति उत्साहवान् हो है। तैसैं धर्मात्मा है, सो धर्मात्मानिकी प्रशंसा अर पापीनिकी निन्दा जाविषैं होय, ऐसे कोई पुराणपुरुषनिकी कथा सुननेकरि धर्मविषैं अति उत्साहवान् हो है। ऐसैं यहु प्रथमानुयोगका प्रयोजन जानना।

---

१. प्रथमं मिथ्यादृष्टिमव्रतिकमव्युत्पन्नं वा प्रतिपाद्यमाश्रित्य प्रवृत्तोऽनुयोगो-ऽधिकारः प्रथमानुयोगः, जी० प्र० टी० गा० ३६१-२।

करणानुयोगका प्रयोजन

बहुरि करणानुयोगविषैं जीवनिकी वा कर्मनिका विशेष वा त्रिलोकादिककी रचना निरूपणकरि जीवनिकों धर्मविषैं लगाए हैं। जे जीव धर्मविषैं उपयोग लगाया चाहैं, ते जीवनिका गुणस्थान मार्गणा आदि विशेष अर कर्मनिका कारण अवस्था फल कौन कौनकै कैसें कैसें पाइए, इत्यादि विशेष अर त्रिलोकविषै नरक स्वर्गादिकके ठिकानें पहिचानि पापतें विमुख होय धर्मविषैं लागै हैं। बहुरि ऐसे विचार-विषैं उपयोग रमि जाय, तब पाप प्रवृत्ति छूटि स्वयमेव तत्काल धर्म उपजै है। तिस अभ्यासकरि तत्वज्ञानकी प्राप्ति शीघ्र हो है। बहुरि ऐसा सूक्ष्म यथार्थ कथन जिनमतविषैं हो है, अन्यत्र नाहीं, ऐसें महिमा जानि जिनमतका श्रद्धानी हो है। बहुरि जे जीव तत्वज्ञानी होय इस करणानुयोगकों अभ्यासै हैं, तिनकों यहु तिसका विशेषरूप भासै है। जो जीवादिक तत्व आप जानें है; तिनहीका विशेष करणानुयोगविषैं किए हैं। तहां केई विशेषण तो यथावत् निश्चयरूप है, केई उपचार लिए व्यवहाररूप है। केई द्रव्य क्षेत्र काल भावादिकका स्वरूप प्रमाणादिकरूप हैं, केई निमित्त आश्रयादि अपेक्षा लिए है। इत्यादि अनेक प्रकारके विशेषण निरूपण किए हैं, तिनकों जैसाका तैसा मानता तिस करणानुयोगकों अभ्यासै है। इस अभ्यासतें तत्वज्ञान निर्मल हो है। जैसें कोऊ यहु तो जानें था यहु रत्न है परन्तु उस रत्नके घनें विशेष जानें निर्मल रत्नका पारखी होय, तैसें तत्वनिकों जानें था ए जीवादिक हैं परन्तु तिन तत्त्वनिके घनें विशेष जानें तो निर्मल तत्वज्ञान होय। तत्वज्ञान निर्मल भए आप ही विशेष धर्मात्मा हो है। बहुरि अन्य ठिकाने उपयोगकों लगाइए तो रागादिककी वृद्धि होय अर छद्मस्थका एकाग्र निरन्तर उपयोग रहै नाहीं। तातैं ज्ञानी इस करणानुयोगका अभ्यासविषैं उपयोगकों लगावैं है। तिसकरि केवलज्ञानकरि देखे पदार्थनिका जानपना याकै हो है। प्रत्यक्ष अप्रत्यक्षहीका भेद है, भासनेंविषैं विरुद्ध है नाहीं। ऐसें यहु करणानुयोगका प्रयोजन जानना।

'करण' कहिए गणित कार्यकों कारण सूत्र तिनका जाविषैं 'अनुयोग' अधिकार होय, सो करणानुयोग है। इस विषैं गणित वर्णनकी मुख्यता है, ऐसा जानना।

चरणानुयोगका प्रयोजन

अब चरणानुयोगका प्रयोजन कहिए है। चरणानुयोगविषैं नाना प्रकार धर्मके साधन निरूपणकरि जीवनिकों धर्मविषैं लगाइए है। जे जीव हित अहितकों जानै नाहीं, हिंसादिक पाप कार्यनिविषैं तत्पर होय रहे हैं, तिनकों जैसैं पापकार्यनिकों छोड़ि धर्मकार्यनिविषैं लागै तैसैं उपदेश दिया, ताकों जानि धर्म आचरण करनेकों सन्मुख भए, ते जीव गृहस्थधर्म वा मुनिधर्म का विधान सुनि आपतैं जैसा सधै तैसा धर्म-साधनविषैं लागै हैं। ऐसैं साधनतैं कषाय मंद हो है। ताके फलतैं इतना तो हो है, जो कुगति विषैं दुख न पावै अर सुगतिविषैं सुख पावैं। बहुरि ऐसे साधनतैं जिनमतका निमित्त बन्या रहै, तहाँ तत्त्व ज्ञानकी प्राप्ति होनी होय तो होय जावै। बहुरि जे जीव तत्त्वज्ञानी होयकरि चरणानुयोगकों अभ्यासै हैं, तिनकों ए सर्व आचरण अपनें वीतरागभावके अनुसारी भासै हैं। एकदेश वा सर्वदेश वीतरागता भए ऐसी श्रावकदशा ऐसी मुनिदशा हो है। जातैं इनकै निमित्त नैमित्तिकपनों पाइए है। ऐसैं जानि श्रावक मुनिधर्मके विशेष पहिचानि जैसा अपना वीतरागभाव भया होय, तैसा अपने योग्य धर्मकों साधै हैं। तहाँ जेता अंशा वीतरागता हो है, ताकों कार्यकारी जानै हैं, जेता अंश राग रहै है, ताकों हेय जानै हैं। सम्पूर्ण वीतरागकों परम धर्म मानै हैं। ऐसैं चरणानुयोगका प्रयोजन है।

द्रव्यानुयोगका प्रयोजन

अब द्रव्यानुयोगका प्रयोजन कहिए है। द्रव्यानुयोगविषैं द्रव्यनिका वा तत्वनिका निरूपण करि जीवनिकों धर्मविषैं लगाइए है। जे जीव जीवादिक द्रव्यनिकों वा तत्वनिकों पहिचानैं नाहीं, आपा परकों

भिन्न जानै नाहीं, तिनकों हेतु दृष्टान्त युक्तितैंकरि वा प्रमाण-नयादि-ककरि तिनका स्वरूप ऐसें दिखाया जैसें याकै प्रतीति होय जाय। ताके अभ्यासतें अनादी अज्ञानता दूरि होय, अन्यमत कल्पित तत्वादिक झूठ भासें, तब जिनमतकी प्रतीति होय। अब उनके भावकों पहिचाननेका अभ्यास राखें तो शीघ्र ही तत्वज्ञानकी प्राप्ति होय जाय। बहुरि जिनके तत्व ज्ञान भया होय, ते जीव द्रव्यानुयोगकों अभ्यासें। तिनकों अपने श्रद्धान के अनुसारि सो सर्व कथन प्रतिभासै है। जैसें काहूने किसी विद्याकों सीखि लई परन्तु जो ताका अभ्यास किया करै तो वह यादि रहै, न करै तो भूलि जाय। तैसें याकै तत्वज्ञान भया परन्तु जो ताका प्रतिपादक द्रव्यानुयोगका अभ्यास किया करै तो वह तत्वज्ञान रहै, न करै तो भूलि जाय। अथवा संक्षेपपनें तत्वज्ञान भया था, सो नाना युक्ति हेतु दृष्टांतादिककरि स्पष्ट होय जाय तो तिसविषै शिथिलता न होय सकं। बहुरि इस अभ्यासतें रागादि घटनेतें शीघ्र मोक्ष सधै। ऐसें द्रव्यानुयोग का प्रयोजन जानना।

अब इन अनुयोगनिविषें किस प्रकार व्याख्यान है, सो कहिए है—

प्रथमानुयोग में व्याख्यान का विधान

प्रथमानुयोगनिविषें जे मूलकथा है, ते तो जैसी हैं तैसी ही निरूपिए है। तिनविषें प्रसंग पाय व्याख्यान हो है सोई तो जैसाका तैसा हो है, कोई ग्रन्थकर्त्ताका विचारके अनुसारि हो है परन्तु प्रयोजन अन्यथा न हो है।

ताका उदाहरण—जैसें तीर्थंकर देवनिके कल्याणकनिविषें इन्द्र आया, यहु कथा तो सत्य है। बहुरि इन्द्र स्तुति करी, ताका व्याख्यान किया, सो इन्द्र तो और ही प्रकार स्तुति कीनी लिखी परन्तु स्तुतिरूप प्रयोजन अन्यथा न भया। बहुरि परस्पर किनिहूकै वचनालाप भया। तहां उनके तो और प्रकार अक्षर निकसे थे, यहां ग्रंथकर्ता अन्य प्रकार कहे परन्तु प्रयोजन एक ही दिखावै हैं। बहुरि नगर वन ग्रामादिक-

का नामादिक तो यथावत् ही लिखें अर वर्णन हीनाधिक भी प्रयोजन-कों पोषता निरूपें हैं। इत्यादि ऐसें ही जानना। बहुरि प्रसंगरूप कथा भी ग्रन्थकर्त्ता अपना विचार अनुसारि कहै। जैसें धर्मपरीक्षाविषें मूर्खनिकी कथा लिखी, सो ए ही कथा मनोवेग कही थी ऐसा नियम नाहीं। परन्तु मूर्खपनाकों पोषती कोई वार्त्ता कहीं ऐसा अभिप्राय पोषै है। ऐसें ही अन्यत्र जानना।

यहाँ कोऊ कहै—अयथार्थ कहना तो जैन शास्त्रनिविषें संभवै नाहीं ?

ताका उत्तर—अन्यथा तो वाका नाम है, जो प्रयोजन औरका और प्रगट करै। जैसें काहूकों कह्या—तू ऐसें कहियो, वानै वे ही अक्षर तो न कहे परन्तु तिसही प्रयोजन लिए कह्या तो वाकों मिथ्या-वादी न कहिए, तैसें जानना। जो जैसाका तैसा लिखनेंकी सम्प्रदाय होय तो काहूने बहुत प्रकार वैराग्य चितवन किया था, ताका वर्णन सब लिखें ग्रन्थ बधि जाय, किछू न लिखें तो वाका भाव भासै नाहीं। तातैं वैराग्यके ठिकानें थोरा बहुत अपना विचारके अनुसारि वैराग्य पोषता ही कथन करै, सराग पोषता न करै। तहाँ प्रयोजन अन्यथा न भया तातैं याकों अयथार्थ न कहिए, ऐसें ही अन्यत्र जानना।

बहुरि प्रथमानुयोगविषें जाकी मुख्यता होय, ताकों ही पोषें हैं। जैसें काहूनें उपवास किया, ताका तो फल स्तोक था बहुरि वाकै अन्यधर्म परिणतिकी विशेषता भई, तातैं विशेष उच्चपदकी प्राप्ति भई। तहाँ तिसकों उपवासहीका फल निरूपण करैं, ऐसैं ही अन्य जानें। बहुरि जैसें काहूनें शीलादिककी प्रतिज्ञा दृढ़ राखी वा नमस्कार मन्त्र स्मरण किया वा अन्य धर्म साधन किया, ताकै कष्ट दूरि भए, अतिशय प्रगट भए, तहाँ तिनहीका तैसा फल न भया अर अन्य कोई कर्म के उदयतें वैसे कार्य भए तो भी तिनकों तिन शीला-दिकका ही फल निरूपण करैं। ऐसें ही कोई पापकार्य किया, ताकै तिसहीका तो तैसा फल न भया अर अन्य कर्मउदयतें नीचगतिकों

प्राप्त भया था कष्टादिक भए, ताकों तिसही पाप कार्य का फल निरूपण करैं। इत्यादि ऐसें ही जानना।

यहां कोऊ कहै—ऐसा झूठा फल दिखावना तो योग्य नाहीं, ऐसे कथनकों प्रमाण कैसें कीजिए ?

ताका समाधान—जे अज्ञानी जीव बहुत फल दिखाए बिना धर्म विषै न लागैं वा पापतैं न डरैं, तिनका भला करनेके अर्थि ऐसा वर्णन करिए है। बहुरि झूठ तो तब होय, जब धर्मका फलकों पापका फल बतावैं, पापका फलकों धर्मका फल बतावै। सो तो है नाहीं। जैसें दश पुरुष मिलि कोई कार्य करैं, तहाँ उपचारकरि एक पुरुषका भी किया कहिए तो दोष नाहीं अथवा जाके पितादिकने कोई कार्य किया होय, ताकों एक जाति अपेक्षा उपचारकरि पुत्रादिकका किया कहिए तो दोष नाहीं। तैसें बहुत शुभ वा अशुभ कार्यनिका एक फल भया, ताकों उपचारकरि एक शुभ वा अशुभकार्यनिका एक कहिए तो दोष नाहीं अथवा और शुभ वा अशुभकार्यका फल जो भया होय, ताकों एक जाति अपेक्षा उपचारकरि कोई और ही शुभ वा अशुभकार्यका फल कहिए तो दोष नाहीं। उपदेशविषैं कहीं व्यवहार वर्णन है, कहीं निश्चय वर्णन है। यहाँ उपचाररूप व्यवहार वर्णन किया है, ऐसें याकों प्रमाण कीजिए है। याकों तारतम्य न मानि लेना। तारतम्य करणानुयोगविषैं निरूपण किया है, सो जानना।

बहुरि प्रथमानुयोग विषै उपचाररूप कोई धर्मका अंग भए सम्पूर्ण धर्म भया कहिए है। जैसें जिन जीवनिकै शंका कांक्षादिक न भए, तिनकै सम्यक्त भया कहिए। सो एक कोई कार्यविषैं शंका कांक्षा न किए ही तो सम्यक्त न होय, सम्यक्त तो तत्वश्रद्धान भए हो है। परन्तु निश्चय सम्यक्तका तो व्यवहार सम्यक्तविषैं उपचार किया, बहुरि व्यवहार सम्यक्तके कोई एक अङ्गविषैं सम्पूर्ण व्यवहार सम्यक्त का उपचार किया, ऐसे उपचारकरि सम्यक्त भया कहिए है। बहुरि कोई जैनशास्त्रका एक अंग जानें सम्यग्ज्ञान भया कहिए है, सो संश-

यादिरहित तत्वज्ञान भए सम्यग्ज्ञान होय परन्तु पूर्ववत् उपचारकरि कहिए। बहुरि कोई भला आचरण भए सम्यक्चारित्र भया कहिए है। तहाँ जाने जैनधर्म अङ्गीकार किया होय वा कोई छोटी मोटी प्रतिज्ञा ग्रही होय, ताकों श्रावक कहिए सो श्रावक तो पंचमगुणस्थानवर्ती भए हो है परन्तु पूर्ववत् उपचार करि याकों श्रावक कह्या है। उत्तरपुराण-विषें श्रेणिककों श्रावकोत्तम कह्या सो वह तो असंयत था परन्तु जैनी था तातें कह्या। ऐसें ही अन्यत्र जानना। बहुरि जो सम्यक्तरहित मुनिलिंग धारै वा कोई द्रव्यों भी अतिचार लगावता होय, ताकों मुनि कहिए। सो मुनि तो षष्टादि गुणस्थानवर्ती भए ही हो है परन्तु पूर्ववत् उपचारकरि मुनि कह्या है। समवसरणसभाविषें मुनिनिकी सख्या कही, तहाँ सर्व ही शुद्ध भावलिंगी मुनि न थे परन्तु मुनिलिंग धारनेतें सबनिकों मुनि कहे। ऐसेंही अन्यत्र जानना।

बहुरि प्रथमानुयोगविषें कोई धर्मबुद्धितें अनुचित कार्य करै ताकी भी प्रशंसा करिए है। जैसें विष्णुकुमार मुनिनका उपसर्ग दूरि किया सो धर्मानुरागतें किया परन्तु मुनिपद छोड़ि यहु कार्य करना योग्य न था। जातें ऐसा कार्य तो गृहस्थधर्मविषें सम्भवै अर गृहस्थ धर्मतें मुनिधर्म ऊंचा है। सो ऊंचा धर्म छोड़ि नीचाधर्म अङ्गीकार किया सो अयोग्य है परन्तु वात्सल्य अंगकी प्रधानताकरि विष्णुकुमार जीकी प्रशंसा करी। इस छलकरि औरनिकों ऊँचा धर्मछोड़ि नीचाधर्म अङ्गोकार करना योग्य नाहीं। बहुरि जैसें गुवालिया मुनिको अग्नि करि तपाया सो करुणातें यहु कार्य किया। परन्तु आया उपसर्गकों तो दूरि करै, सहज अवस्थाविषें जो शीतादिककी परीषह हो है, ताकों दूर किए रति माननेका कारण होय, उनकों रति करनी नाहीं, तब उलटा उपसर्ग होय। याहीतें विवेकी उनके शीतादिकका उपचार करते नाहीं। गुवालिया अविवेकी था, करुणाकरि यहु कार्य किया, तातें याकी प्रशंसा करी। इस छलकरि औरनिकों धर्मपद्धतिविषें जो विरुद्ध होय सो कार्य करना योग्य नाहीं। बहुरि जैसें वज्रकरण राजा

सिंहोदर राजाकों नम्या नाहीं, मुद्रिकाविषैं प्रतिमा राखी। सो बड़े बड़े सम्यग्दृष्टी राजादिककों नमैं, याका दोष नाहीं अर मुद्रिका विषैं प्रतिमा राखने मैं अविनय होय, तथावत् विधितैं ऐसी प्रतिमा न होय, तातैं इस कार्यविषैं दोष है। परन्तु वाके ऐसा ज्ञान न था, धर्मानुरागतैं मैं औरकों नमूं नाहीं, ऐसी बुद्धि भई, तातैं वाकी प्रशंसा करी। इस छलकरि औरनिकों ऐसे कार्य करने युक्त नाहीं। बहुरि केई पुरुषों ने पुत्रादिककी प्राप्तिके अर्थि वा रोग कष्टादि दूरि करनेके अर्थि चैत्यालय पूजनादि कार्य किए, स्तोत्रादि किए, नमस्कार मन्त्र स्मरण किया सो ऐसें किए तो निःकांक्षित गुण का अभाव होय, निदानबंधनामा आर्त्तध्यान होय। पापहीका प्रयोजन अन्तरंगविषैं है, तातैं पापहीका बंध होई। परन्तु मोहित होयकरि भी बहुत पापबंधका कारण कुदेवादिकका तो पूजनादि न किया, इतना वाका गुण ग्रहणकरि वाकी प्रशंसा करिए है। इस छलकरि औरनिकों लौकिक कार्यनिके अर्थि धर्मसाधन करना युक्त नाहीं। ऐसें ही अन्यत्र जानने। ऐसें ही प्रथमानुयोगविषैं अन्य कथन भी होंय, ताको यथासम्भव जानि भ्रमरूप न होना।

अब करणानुयोगविषैं किस प्रकार व्याख्यान है, सो कहिए है—

करणानुयोग में व्याख्यान का विधान

जैसें केवलज्ञानकरि जान्या तैसें करणानुयोगविषैं व्याख्यान है। बहुरि केवलज्ञानकरि तो बहुत जान्या परन्तु जीवकों कार्यकारी जीव कर्मादिकका वा त्रिलोकादिकका ही निरूपण या विषैं हो है। बहुरि तिनका भी स्वरूप सर्व निरूपण न होय सकै, तातैं जैसें संकोचन करि निरूपण करिए है। यहाँ उदाहरण—जीवके भावनिकी अपेक्षा गुणस्थानक कहे, ते भाव अनन्तस्वरूप लियें वचनगोचर नाहीं। तहाँ बहुत भावनिकी एक जातिकरि चौदह गुणस्थान कहे। बहुरि जीव जाननेके अनेक प्रकार हैं। तहां मुख्य चौदह मार्गणाका निरूपण किया। बहुरि कर्मपरमाणू अनन्तप्रकार शक्तियुक्त हैं, तिनविषैं बहुतनिकी एक

जाति करि आठ वा एकसौ अड़तालीस प्रकृति कही। बहुरि त्रिलोक-विषैं अनेक रचना हैं, तहां मुख्य केतीक रचना निरूपण करिए है। बहुरि प्रमाण के अनन्त भेद तहां संख्यातादि तीन भेद वा इनके इकईस भेद निरूपण किए, ऐसें ही अन्यत्र जानना।

बहुरि करणानुयोगविषें यद्यपि वस्तु के क्षेत्र, काल, भावादिक अखंडित हैं, तथापि छद्मस्थकों हीनाधिक ज्ञान होनेके अर्थि प्रदेश समय अविभागप्रतिच्छेदादिककी कल्पनाकरि तिनका प्रमाण निरूपिए है। बहुरि एक वस्तुविषें जुदे जुदे गुणनिका वा पर्यायनिका भेदकरि निरूपण कीजिए है। बहुरि जीव पुद्गलादिक यद्यपि भिन्न भिन्न हैं, तथापि सम्बन्धादिककरि अनेक द्रव्यकरि निपज्या गति जाति आदि भेद तिनकों एक जीवके निरूपैं हैं, इत्यादि व्यवहार नयकी प्रधानता लिएं व्याख्यान जानना। जातैं व्यवहार बिना विशेष जानि सकै नाहीं। बहुरि कहीं निश्चयवर्णन भी पाइए है। जैसें जीवादिक द्रव्यनिका प्रमाण निरूपण किया, सो जुदे जुदे इतनें ही द्रव्य हैं। सो यथासम्भव जानि लेना।

बहुरि करणानुयोगविषें जे कथन हैं ते केई तो छद्मस्थके प्रत्यक्ष अनुमानादिगोचर होंय, बहुरि जे न होंय तिनकों आज्ञा प्रमाणकरि माननें। जैसें जीव पुद्गलके स्थूल बहुत कालस्थायी मनुष्यादि पर्याय वा घटादि पर्याय निरूपण किए, तिनका तो प्रत्यक्ष अनुमानादि होय सकै, बहुरि समय समय प्रति सूक्ष्म परिणमन अपेक्षा ज्ञानादिकके वा स्निग्ध रूक्षादिकके अंश निरूपण किए ते आज्ञाहीतें प्रमाण हो हैं। ऐसें ही अन्यत्र जानना।

बहुरि करणानुयोगविषें छद्मस्थनिकी प्रवृत्ति के अनुसार वर्णन किया नाहीं, केवल ज्ञानगम्य पदार्थनिका निरूपण है। जैसें केई जीव तो द्रव्यादिक का विचार करैं हैं वा व्रतादिक पालैं हैं परन्तु तिनकै अन्तरंग सम्यक्त चारित्रशक्ति नाहीं, तातैं उनकों मिथ्यादृष्टि अव्रती कहिए है। बहुरि केई जीव द्रव्यादिकका वा व्रतादिकका विचार रहित

हैं, अन्य कार्यनिविषें प्रवर्त्त हैं वा निद्रादिकरि निर्विचार होय रहे हैं परन्तु उनके सम्यक्तादि शक्तिका सद्भाव है, तातैं उनकों सम्यक्त्वी वा व्रती कहिए है। बहुरि कोई जीवकै कषायनिकी प्रवृत्ति तो घनी है अर वाकै अन्तरंग कषाय शक्ति थोरी है, तो वाकों मदकषायी कहिए है। अर कोई जीवकै कषायनिकी प्रवृत्ति तो थोरी है अर वाकै अन्तरंग कषायशक्ति घनी है, तो वाकों तीव्रकषायी कहिए है। जैसें व्यन्तरादिक देव कषायनितें नगर नाशादि कार्य करैं, तो भी तिनकै थोरी कषायशक्तितें पीतलेश्या कही। बहुरि एकेन्द्रियादिक जीव कषायकार्य करते दीखैं नाहीं, तिनकै बहुत कषायशक्तितें कृष्णादि लेश्या कही। बहुरि सर्वार्थसिद्धि के देव कषायरूप थोरे प्रवर्त्तैं, तिनकै बहुत कषायशक्तितें असंयम कह्या अर पंचमगुणस्थानी व्यापार अब्रह्मादि कषायकार्यरूप बहुत प्रवर्तैं, तिनकै मन्दकषाय शक्तितें देशसंयम कह्या। ऐसें ही अनयत्र जानना।

बहुरि कोई जीवकै मन वचन कायको चेष्टा थोरी होती दीसै, तो भी कर्माकर्षण शक्ति को अपेक्षा बहुत योग कह्या। काहूकै चेष्टा बहुत दीसै तो भी शक्तिकी हीनतातैं स्तोक योग कह्या। जैसें केवली गमनादिक्रियारहित भया, तहां भी ताकैं योग बहुत कह्या। बेंद्रियादिक जीव गमनादि करैं हैं, तो भी तिनकै योग स्तोक कहे। ऐसें ही अनयत्र जानना।

बहुरि कहीं जाकी व्यक्तता किछू न भासै, तो भी सूक्ष्मशक्ति के सद्भावतैं ताका तहाँ अस्तित्व कह्या। जैसें मुनिकै अब्रह्मकार्य किछू नाहीं, तो भी नवम गुणस्थानपर्यन्त मैथुनासंज्ञा कही। अहमिन्द्रनिकै दुःखका कारण व्यक्त नाहीं, तो भी कदाचित असाताका उदय कह्या। नारकीनिकै सुखका कारण व्यक्त नाहीं, तो भी कदाचित् साताका उदय कह्या। ऐसें ही अन्यत्र जानना।

बहुरि करणानुयोग सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रादिक धर्मका निरूपण कर्मप्रकृतिनिका उपशमादिककी अपेक्षा लिए सूक्ष्मशक्ति जैसें

पाइए तैसें गुणस्थानादिविषैं निरूपण करै है वा सम्यग्दर्शनादिकके विषयभूत जीवादिक तिनका भी निरूपण सूक्ष्मभेदादि लिये करै है। यहाँ कोई करणानुयोगके अनुसारि आप उद्यम करै तो होय सकै नाहीं। करणानुयोगविषै तो यथार्थ पदार्थ जनावनेंका मुख्यप्रयोजन है, आचरण करावनेंकी मुख्यता नाहीं। तातैं यहु तो चरणानुयोगादिक के अनुसार प्रवर्ते, तिसतैं जो कार्य होना है सो स्वयमेव ही होय है। जैसें आप कर्मनिका उपशमादि किया चाहै तो कैसैं होय? आप तो तत्वादिकका निश्चय करनेका उद्यम करै, तातैं स्वयमेव ही उपशमादि सम्यक्त होय। ऐसें ही अन्यत्र जानना। एक अंतर्मुहूर्त विषैं ग्यारहवाँ गुणस्थानसों पड़ि क्रमतें मिथ्यादृष्टि होय बहुरि चढ़िकरि केवलज्ञान उपजावै। सो ऐसैं सम्यक्तादिकके सूक्ष्मभाव बुद्धिगोचर आवते नाहीं, तातैं करणानुयोगके अनुसारि जैसाका तैसा जानि तो ले अर प्रवृत्ति बुद्धिगोचर जैसें भला होय तैसें करै।

बहुरि करणानुयोगविषैं भी कहीं उपदेशकी मुख्यता लिए व्याख्यान हो है, ताकों सर्वथा तैसें ही न मानना। जैसें हिंसादिकका उपायकों कुमतिज्ञान कह्या, अन्यमतादिकके शास्त्राभ्यास कों कुश्रुतज्ञान कह्या बुरा दीसैं भला न दीसै ताकों विभंगज्ञान कह्या, सो इनकों छोड़नेके अर्थि उपदेशकरि ऐसें कह्या। तारतम्यतें मिथ्यादृष्टीके सर्व ही ज्ञान कुज्ञान हैं, सम्यग्दृष्टीकै सर्व ही ज्ञान सुज्ञान है। ऐसें ही अन्यत्र जानना।

बहुरि कहीं स्थूल कथन किया होय, ताकों तारतम्यरूप न जानना। जैसें व्यासतें तिगुणी परिधि कहिए, सूक्ष्मपनें किछु अधिक तिगुणी हो है। ऐसें ही अन्यत्र जानना। बहुरि कहीं मुख्यताकी अपेक्षा व्याख्यान होय, ताकों सर्व प्रकार न जानना। जैसें मिथ्यादृष्टी सासादन गुणस्थानवालेकों पापजीव कहे, असंयतादि गुणस्थानवालेकों पुण्यजीव कहे सो मुख्यपनें ऐसें कहे, तारतम्यतें दोऊनिकै पाप पुण्य यथासम्भव पाइए है। ऐसें ही अन्यत्र जानना। ऐसें ही और भी नाना प्रकार

पाइये है, ते यथासम्भव जानने। ऐसें करणानुयोगविषें व्याख्यानका विधान दिखाया।

अब चरणानुयोगविषैं किस प्रकारका व्याख्यान है, सो दिखाइए है—

चरणानुयोग में व्याख्यान का विधान

चरणानुयोगविषें जैसैं जीवनिकै अपनी बुद्धिगोचर धर्मका आचरण होय सो उपदेश दिया है। तहाँ धर्म तो निश्चयरूप मोक्षमार्ग है सोई है। ताके साधनादिक उपचारतें धर्म है सो व्यवहारनयकी प्रधानता करि नाना प्रकार उपचार धर्मके भेदादिक याविषें निरूपण करिए है। जातें निश्चय धर्मविषें तो किछू ग्रहण त्यागका विकल्प नाहीं अर याकैं नीचली अवस्थाविषें विकल्प छूटती नाहीं, तातैं इस जीवकों धर्मविरोधी कार्यनिकों छुड़वानेका अर धर्मसाधनादि कार्यनिके ग्रहण करावनेका उपदेश या विषैं है। सो उपदेश दोय प्रकार दीजिए है। एक तो व्यवहारहीका उपदेश दीजिए है, एक निश्चयसहित व्यवहारका उपदेश दीजिए है। तहाँ जिन जीवनिकै निश्चयका ज्ञान नाहीं है वा उपदेश दिए भी न होता दीसै ऐसे मिथ्यादृष्टि जीव किछू धर्मकों सन्मुख भए तिनकों व्यवहारहीका उपदेश दीजिए है। बहुरि जिन जीवनिकै निश्चय व्यवहारका ज्ञान है वा उपदेश दिए तिनका ज्ञान होता दीसै है, ऐसे सम्यग्दृष्टी जीव वा सम्यक्तकों सन्मुख मिथ्यादृष्टी जीव तिनकों निश्चयसहित व्यवहारका उपदेश दीजिए है। जातैं श्रीगुरु सर्व जीवनिके उपकारी हैं। सो असंज्ञी जीव तो उपदेश ग्रहणें योग्य नाहीं, तिनका तो उपकार इतना ही किया—और जीवनिकों तिनकी दयाका उपदेश दिया। बहुरि जे जीव कर्मप्रबलतातें निश्चयमोक्षमार्गकों प्राप्त होय सकें नाहीं, तिनका इतना ही उपकार किया—जो उनकों व्यवहार धर्मका उपदेश देय कुगति के दुःखनिका कारण पापकार्य छुड़ाय सुगति के इन्द्रियसुखनिका कारण पुण्यकार्यनिविषें लगाया। जेता दुःख मिटया, तितना ही

उपकार भया। बहुरि पापीकै तो पापवासना ही रहै अर कुगतिविषैं जाय तहां धर्मका निमित्त नाहीं। तातैं परम्पराय दुःखहीकों पाया करै। अर पुण्यवानकै धर्मवासना रहै अर सुगति विषें जाय, तहाँ धर्म के निमित्त पाईए, तातैं परम्पराय सुखकों पावै। अथवा कर्मशक्ति हीन होय जाय तो मोक्षमार्गकों भी प्राप्त होय जाय। तातैं व्यवहार उपदेशकरि पापतें छुड़ाय पुण्यकार्यनिविषें लगाईए है। बहुरि जे जीव मोक्षमार्गकों प्राप्त भये वा प्राप्त होने योग्य हैं, तिनका ऐसा उपकार किया जो उनकों निश्चयसहित व्यवहारका उपदेश देय मोक्षमार्गविषें प्रवर्ताए। श्रीगुरु तो सर्वका ऐसा ही उपकार करैं। परन्तु जिन जीवनिका ऐसा उपकार न बनें तो श्रीगुरु कहा करें। जैसा बन्या तैसा ही उपकार किया। तातैं दोय प्रकार उपदेश दीजिये है। तहां व्यवहार उपदेशविषैं तो बाह्य क्रियानिहीकी प्रधानता है। तिनका उपदेशतें जीव पापक्रिया छोड़ि पुण्यक्रियानिविषें प्रवर्तै। तहाँ क्रिया के अनुसार परिणाम भी तीव्रकषाय छोड़ि किछू मंदकषायी होय जाय। सो मुख्यपनें तो ऐसैं है। बहुरि काहूके न होय तो मति होहु। श्रीगुरु तो परिणाम सुधारनेके अर्थि बाह्यक्रियानिकों उपदेशैं हैं। बहुरि निश्चयसहित व्यवहार का उपदेशविषैं परिणामनिहीकी प्रधानता है। ताका उपदेशतें तत्वज्ञानका अभ्यासकरि वा वैराग्य भावनाकरि परिणाम सुधारै, तहां परिणाम के अनुसारि बाह्यक्रिया भी सुधरि जाय। परिणाम सुधरे बाह्यक्रिया सुधरै ही सुधरै। तातैं श्रीगुरु परिणाम सुधारनेको मुख्य उपदेशैं हैं। ऐसैं दोय प्रकार उपदेशविषैं जहां व्यवहारही का उपदेश होय तहां सम्यग्दर्शनके अर्थि अरहंत देव, निर्ग्रन्थ गुरु, दया धर्मको ही मानना, औरकों न मानना। बहुरि जीवादिक तत्वनिका व्यवहारस्वरूप कह्या है ताका श्रद्धान करना, शंकादि पच्चीस दोष न लगवाने, निशंकितादिक अंग वा संवेगादिक गुण पालने, इत्यादि उपदेश दीजिये है। बहुरि सम्यग्ज्ञानके अर्थि जिनमत के शास्त्रनिका अभ्यास करना, अर्थ व्यंजनादि अंगनिका साधन

करना इत्यादि उपदेश दीजिये है। बहुरि सम्यक्चारित्रके अर्थि एकोदेश वा सर्वदेशहिंसादि पापनिका त्याग करना, व्रतादि अंगनिकों पालने, इत्यादि उपदेश दीजिये है। बहुरि कोई जीवकों विशेष धर्मका साधन न होता जानि एक आखड़ी आदिकका ही उपदेश दीजिए है। जैसें भीलकों कागलाका मांस छुड़ाया, गुवालियाकों नमस्कार मन्त्र जपने का उपदेश दिया, गृहस्थकों चैत्यालय पूजा प्रभावनादि कार्यका उपदेश दीजिए है, इत्यादि जैसा जीव होय ताकों तैसा उपदेश दीजिए है। बहुरि जहां निश्चयसहित व्यवहारका उपदेश होय, तहां सम्यग्दर्शनके अर्थि यथार्थ तत्वनिका श्रद्धान कराइये है। तिनका जो निश्चय स्वरूप है सो भूतार्थ है व्यवहार स्वरूप है सो उपचार है। ऐसा श्रद्धान लिए वा स्वपरका भेदविज्ञानकरि परद्रव्यविषें रागादि छोड़नेका प्रयोजन लिए तिन तत्वनिका श्रद्धान करनेका उपदेश दीजिए है। ऐसे श्रद्धानतें अरहंतादि बिना अन्य देवादिक झूंठ भासें तब स्वयमेव तिनका मानना छूटै है, ताका भी निरूपण करिए है। बहुरि सम्यग्ज्ञानके अर्थि संशयादिरहित तिनही तत्वनिका तैसें ही जाननेका उपदेश दीजिए है, तिस जाननेकों कारण जिनशास्त्रनिका अभ्यास है। तातें तिस प्रयोजनके अर्थि जिनशास्त्रनिका भी अभ्यास स्वयमेव हो है, ताका निरूपण करिए है। बहुरि सम्यक्चारित्र के अर्थि रागादि दूरि करनेका उपदेश दीजिए है। तहां एकदेश वा सर्वदेश तीव्ररागादिकका अभाव भए तिनके निमित्ततें होती थी जे एकदेश सर्वदेश पापक्रिया, ते छूटै हैं। बहुरि मंदरागतें श्रावकमुनिके व्रतनिकी प्रवृत्ति हो है। बहुरि मंदरागादिकनिका भी अभाव भए शुद्धोपयोगकी प्रवृत्ति हो है, ताका निरूपण करिए है। बहुरि यथार्थ श्रद्धान लिए सम्यग्दृष्टीनिके जैसें यथार्थ कोई आखड़ी हो है वा भक्ति हो है वा पूजा प्रभावनादि कार्य हो है वा ध्यानादिक हो है, तिनका उपदेश दीजिये हैं। जैसा जिनमतविषें सांचा परम्पराय मार्ग है, तैसा उपदेश दीजिए है। ऐसें दोय प्रकार उपदेश चरणानुयोगविषें जानना।

बहुरि चरणानुयोगविषें तीव्रकषायनिका कार्य छुड़ाय मंदकषाय रूप कार्य करनेका उपदेश दीजिए है। यद्यपि कषाय करना बुरा ही है, तथापि सर्वकषाय न छूटते जानि जेते कषाय घटै तितना ही भला होगा, ऐसा प्रयोजन तहां जानना। जैसें जिन जीवनिकै आरम्भादि करनेकी वा मंदिरादि बनवाने को वा विषय सेवनेकी वा क्रोधादि करनेकी इच्छा सर्वथा दूरि न होती जानै, तिनकों पूजा प्रभावनादिक करने का वा चैत्यालय आदि बनवानेका वा जिनदेवादिकके आगें शोभादिक नृत्य गानादिकरनें का वा धर्मात्मा पुरुषनिकी सहायादि करनेका उपदेश दीजिए है। जातें इनिविषें परम्परा कषायका पोषण न हो है। पापकार्यनिविषें परम्परा कषायपोषण हो है, तातें पाप-नितें छुड़ाय इन कार्यनिविषें लगाइए है। बहुरि थोरा बहुत जेता छूटता जानें, तितना पापकार्य छुड़ाय सम्यक्त वा अणुव्रतादि पालने का तिनको उपदेश दीजिए है। बहुरि जिन जीवनिकै सर्वथा आरं-भादिककी इच्छा दूरि भई, तिनकों पूर्वोक्त पूजादिक कार्य वा सर्व पापकार्य छुड़ाय महाव्रतादि क्रियानिका उपदेश दीजिए है। बहुरि किंचित् रागादिक छूटता न जानि, तिनको दया धर्मोपदेश प्रतिक्रमणादि कार्य करने को उपदेश दीजिये है। जहाँ सर्वराग दूरि होय, तहां किछू करने का कार्य हो रह्या नाहीं। तातें तिनकों किछू उपदेश ही नाहीं। ऐसें क्रम जानना।

बहुरि चरणानुयोगविषें कषायी जीवनिकों कषाय उपजायकरि भी पापकों छुड़ाइये है अर धर्मविषें लगाइये है। जैसें पापका फल नरकादिकके दुःख दिखाय तिनकों भय कषाय उपजाय पापकार्य छुड़ाइये है। बहुरि पुण्यका फल स्वर्गादिकके सुख दिखाय तिनकों लोभ कषाय उपजाय धर्मकार्यनिविषें लगाईये है। बहुरि यहु जीव इन्द्रियविषय शरीर पुत्र धनादिकके अनुरागतें पाप करै है, धर्म पराङ्मुख रहै है, तातें इन्द्रियविषयनिकों मरण कलेशादिकके कारण दिखा-वनेकरि तिनविषें अरतिकषाय कराइये है। शरीरादिककों अशुचि

दिखावनेंकरि तहां जुगुप्साकषाय कराइये है, पुत्रादिककों धनादिकके ग्राहक दिखाय तहां द्वेष कराइये है, बहुरि धनादिककों मरण क्लेशादिकका कारण दिखाय तहां अनिष्टबुद्धि कराइये है। इत्यादि उपायतें विषयादिविषैं तीव्रराग दूरि होनेकरि तिनकै पापक्रिया छूटि धर्मविषैं प्रवृत्ति हो है। बहुरि नाम-स्मरण स्तुति-करण पूजा दान शीलादिकतें इस लोकविषैं दारिद्र कष्ट दुःख दूरि हो है, पुत्रधनादिककी प्राप्ति हो है, ऐसैं निरूपणकरि तिनकै लोभ उपजाय तिनधर्म कार्यनिविषैं लगाइये है। ऐसें ही अन्य उदाहरण जाननें।

यहां प्रश्न—जो कोई कषाय छुड़ाय कोई कषाय करावनेका प्रयोजन कहा ?

ताका समाधान— जैसैं रोग तो शीतांग भी है अर ज्वर भी है परन्तु कोईकै शीतांगतें मरण होता जानें, तहां वैद्य है सो वाकै ज्वर होनेका उपाय करै, ज्वर भये पीछें वाकै जीवनेकी आशा होय, तब पीछें ज्वर के भी मेटने का उपाय करै। तैसें कषाय तो सर्व ही हेय हैं परन्तु केई जीवनिकैं कषायनितें पापकार्य होता जानें, तहां श्रीगुरु है सो उनकै पुण्यकार्यकों कारणभूत कषाय होनेका उपाय करैं, पीछें वाके सांचो धर्मबुद्धि भई जानें, तब पीछें तिस कषाय मेटनेका उपाय करं; ऐसा प्रयोजन जानना।

बहुरि चरणानुयोगविषैं जैसे जीव पाप छोड़ि धर्मविषैं लागें, तैसें अनेक युक्तिकरि वर्णन करिये है। तहां लौकिक दृष्टांत युक्ति उदाहरण न्यायप्रवृत्तिके द्वारि समझाइए है वा कहीं अन्यमतके भी उदाहरणादि कहिए है। जैसें सूक्तमुक्तावली विषैं लक्ष्मीकों कमलावासिनी कही वा समुद्रविषैं विष और लक्ष्मी उपजै, तिस अपेक्षा विष की भगिनी कही। ऐसैं ही अन्यत्र कहिए है। तहां केई उदाहरणादि झूठ भी है परन्तु साँचा प्रयोजनकों पोषैं हैं। तातैं दोष नाहीं।

यहां काऊ कहै कि झूंठका तो दोष लागै। ताका उत्तर—जो झूंठ भी है अर सांचा प्रयोजनकों पोषैं तो वाकी झूंठ न कहिए। बहुरि

सांच भी है अर झूंठा प्रयोजनकों पोषें तो वह झूंठा ही है अलंकारयुक्ति नामादिकविषें वचन अपेक्षा झूंठ सांच नाहीं, प्रयोजन अपेक्षा झूंठ सांच है। जैसें तुच्छशोभासहित नगरीकों इन्द्रपुरीके समान कहिए है सो झूठ है परन्तु शोभाका प्रयोजनकों पोषें है तातें झूंठ नाहीं। बहुरि "इस नगरीविषें छत्रहीकै दंड है, अन्यत्र नाहीं" ऐसा कह्या, सो झूंठ है। अन्यत्र भी दंड देना पाइये है परन्तु तहां अन्यायवान् थोरे हैं, न्यायवानकों दण्ड न दीजिये है, ऐसा प्रयोजनकों पोषें है, तातैंझूठ नाहीं। बहुरि बृहस्पतिका नाम 'सुरगुरु' लिखें वा मंगलका नाम 'कुज' लिखें, सो ऐसे नाम अन्यमत अपेक्षा हैं। इनका अक्षरार्थ है सो झूंठा है। परन्तु वह नाम तिस पदार्थ का अर्थ प्रगट करै है, तातें झूंठ नाहीं। ऐसें अन्य मतादिके उदाहरणादि दीजिए है सो झूंठे हैं परन्तु उदाहरणादिकका तो श्रद्धान करावना है नाहीं, श्रद्धान करावना है। सो प्रयोजन सांचा है, तातै दोष नाहीं है।

बहुरि चरणानुयोगविषै छद्मस्थकी बुद्धिगोचर स्थूलपनकी अपेक्षा लोकप्रवृत्तिकी मुख्यता लिए उपदेश दीजिए है। बहुरि केवल ज्ञानगोचर सूक्ष्मपनाकी अपेक्षा न दीजिए है, जातें तिसका आचरण न होय सकै। यहां आचरण करावनेका प्रयोजन है। जैसें अणुव्रतीकै त्रसहिंसाका त्याग कह्या अर वाकै स्त्रीसेवनादि क्रियानिविषें त्रस हिंसा हो है। यहु भी जानै है—जिनवानी विषें यहां त्रस कहे हैं परन्तु याकै त्रस मारनेका अभिप्राय नाहीं अर लोकविषें जाका नाम त्रसघात है, ताकों करै नाहीं। तातै तिस अपेक्षा वाकै त्रसहिंसाका त्याग है। बहुरि मुनिकै स्थावरहिंसाका भी त्याग कह्या, सो मुनि पृथ्वी जलादिविषै गमनादि करै है, तहां सर्वथा तिसका भी अभाव नाहीं। जातें त्रसजीवकी भी अवगाहना एसी छोटी हो है, जो दृष्टिगोचर न आवै अर तिनकी स्थिति पृथ्वी जलादि विषें ही है। सो मुनि जिनवानीतें जानै है वा कदाचित अवधि ज्ञानादिकरि भी जानै है परन्तु याकै प्रमादतें स्थावर त्रसहिंसाका अभिप्राय नाहीं। बहुरि लोकविषें भूमि

खोदना अप्रासुक जलतें क्रिया करना इत्यादि प्रवृत्तिका नाम स्थावर-हिंसा है अर स्थूल त्रसनिके पीड़ने का नाम त्रस हिंसा है: ताकों न करै तातैं मुनिके सर्वथा हिंसाका त्याग कहिए है। बहुरि ऐसैं ही अनृत, स्तेय, अब्रह्म, परिग्रहका त्याग कह्या। अर केवलज्ञानका जाननेकी अपेक्षा असत्यवचनयोग बारवां गुण स्थान पर्यन्त कह्या। अदत्तकर्म-परमाणु आदि परद्रव्य का ग्रहण तेरवां गुणस्थान पर्यन्त है। वेदका उदय नवमगुणस्थान पर्यन्त है। अंतरंगपरिग्रह दसवां गुणस्थानपर्यन्त है। बाह्य परिग्रह समवसरणादि केवलीकै भी हो है परन्तु प्रमादतैं पापरूप अभिप्राय नाहीं अर लोकप्रवृत्तिविषैं जिनक्रियानिकरि यहु झूठ बोलै है, चोरी करै है, कुशील सेवै है, परिग्रह राखै है ऐसा नाम पावं, वे क्रिया इनकै हैं नाहीं। तातैं अनृतादिका इनिकै त्याग कहिए है। बहुरि जसैं मुनिके मूलगुणनिविषैं पंचइन्द्रियनिके विषय का त्याग कह्या सो जानना तो इन्द्रियनिका मिटै नाहीं अरविषयनि विषैं रागद्वेष सर्वथा दूरि भये होय तो यथाख्यात चारित्र होय जाय सो भया नाहीं परन्तु स्थूलपने विषय इच्छाका अभाव भया अर बाह्य विषय सामग्री मिलावने की प्रवृत्ति दूरि भई तातैं याकै इन्द्रियविषयका त्याग कह्या। ऐसें ही अनयत्र जानना। बहुरि व्रती जीव त्याग वा आचरण करै है, सो चरणानुयोगकी पद्धति अनुसारि वा लोक प्रवृत्ति के अनुसारि त्याग करै है। जैसैं काहूने त्रसहिंसाका त्याग किया, तहाँ चरणानुयोगविषैं वा लोकविषैं जाको त्रस हिंसा कहिए है, ताका त्याग किया है। केवलज्ञानादिकरि जे त्रस देखिए है, तिनकी हिंसाका त्याग बनैं हीं नाहीं। तहाँ जिस त्रसहिंसाका त्याग किया, तिसरूप मनका विकल्प न करना सो मनकरि त्याग है, वचन न बोलना सो वचनकरि त्याग है, कायकरि न प्रवर्तना सो कायकरि त्याग है। ऐसैं अन्य त्याग वा ग्रहण हो है, सो ऐसी पद्धति लिए हो हो है, ऐसा जानना।

यहाँ प्रश्न—जो करणानुयोगविषैं तो केवलज्ञान अपेक्षा तारतम्य कथन है, तहाँ छठे गुणस्थाननिमें सर्वथा बारह अविरतिनिका

अभाव कह्या, सो कैसें कह्या ?

ताका उत्तर— अविरति भी योग कषायविषें गर्भित थे परन्तु तहाँ भी चरणानुयोग अपेक्षा त्यागका अभाव तिसहीका नाम अविरत कह्या है। तातें तहाँ तिनका अभाव है। मन अविरति का अभाव कह्या, सो मुनिकै मनके विकल्प हो हैं परन्तु स्वेच्छाचारी मनकी पापरूप प्रवत्तिके अभावतें मनअविरतिका अभाव कह्या है, ऐसा जानना।

बहुरि चरणानुयोगविषें व्यवहार लोकप्रवृत्ति अपेक्षा ही नामादिक कहिए है। जैसें सम्यक्त्वीकों पात्र कह्या, मिथ्यात्वीकों अपात्र कह्या। सो यहाँ जाकै जिनदेवादिकका श्रद्धान पाइये सो तो सम्यक्त्वी, जाकै तिनका श्रद्धान नाहीं सो मिथ्यात्वी जानना। जातें दान देना चरणानुयोगविषें कह्या, है, सो चरणानुयोगहीके सम्यक्त मिथ्यात्व ग्रहण करनें। करणानुयोग अपेक्षा सम्यक्त मिथ्यात्व ग्रहें वो ही जीव ग्यारहवें गुणस्थान था अर वो ही अन्तर्मुहूर्त्तमें पहिलें गुणस्थान आवै, तहाँ दातार पात्र अपात्रका कैसें निर्णय करि सकै ? बहुरि द्रव्यानुयोग अपेक्षा सम्यक्त मिथ्यात्व ग्रहें मुनि संघविषै द्रव्यलिंगी भी हैं, भावलिंगी भी हैं। सो प्रथम तो तिनका ठीक होना कठिन है, जातें बाह्य प्रवृत्ति समान है। अर जो कदाचित् सम्यक्तीकों कोई चिन्ह-करि ठीक पड़े अर वह वाकी भक्ति न करै, तब औरनिकैं संशय होय, याकी भक्ति क्यों न करी। ऐसें वाका मिथ्यादृष्टीपना प्रगट होय, तब संघविषै विरोध उपजै। तातें यहाँ व्यवहार सम्यक्त मिथ्यात्वकी अपेक्षा कथन जानना।

यहाँ कोई प्रश्न करै—सम्यक्ती तो द्रव्यलिंगीकों आपतें हीन-गुणयुक्तमानें है, ताकी भक्ति कैसें करै ?

ताका समाधान—व्यवहारधर्मका साधन द्रव्यलिंगीकै बहुत है अर भक्ति करनी सो भी व्यवहार ही है। तातें जैसें कोई धनवान होय परन्तु जो कुलविषें बड़ा होय ताकों कुल अपेक्षा बड़ा जानि ताका

सत्कार करै, तैसैं आप सम्यक्तगुणसहित है परन्तु जो व्यवहारधर्मविषैं प्रधान होय ताकों व्यवहारधर्म अपेक्षा गुणाधिक मानि ताकी भक्ति करै है, ऐसा जानना। बहुरि ऐसें ही जो जीव बहुत उपवासादि करै, ताकों तपस्वी कहिये है। यद्यपि कोई ध्यान अध्ययनादि विशेष करै है सो उत्कृष्ट तपस्वी है तथापि इहां चरणानुयोगविषैं बाह्यतपहीकी प्रधानता है। तातैं तिसहीकों तपस्वी कहिए है। याही प्रकार अन्य नामादिक जानने। ऐसैं ही अन्य अनेक प्रकार लिए चरणानुयोगविषैं व्याख्यानका विधान जानना।

अब द्रव्यानुयोगविषैं कहिए है—

द्रव्यानुयोग में व्याख्यान का विधान

जीवनिकै जीवादि द्रव्यनिका यथार्थ श्रद्धान जैसैं होय, तैसैं विशेष युक्ति हेतु दृष्टान्तादिकका निरूपण कीजिए है। जातैं या विषैं यथार्थ श्रद्धान करावने का प्रयोजन है। तहाँ यद्यपि जीवादि वस्तु अभेद है तथापि तिनविषैं भेदकल्पनाकरि व्यावहारतैं द्रव्य गुण पर्यायादिकका भेद निरूपण कीजिए है। बहुरि प्रतीति अनावने के अर्थ अनेक युक्तिकरि उपदेश दीजिए है अथवा प्रमाणनयकरि उपदेश दीजिये सो भी युक्ति है। बहुरि वस्तुका अनुमान प्रत्यभिज्ञानादिक करनेकों हेतु दृष्टान्तादिक दीजिए है। ऐसैं तहाँ वस्तुकी प्रतीति करावनेकों उपदेश दीजिये है। बहुरि यहाँ मोक्षमार्गका श्रद्धान करावनेके अर्थ जीवादि तत्वनिका विशेष युक्ति हेतु दृष्टांतादिकरि निरूपण कीजिए है। तहाँ स्वपरभेदविज्ञानादिक जैसैं होय तैसैं जीव अजीवका निर्णय कीजिए है। बहुरि वीतरागभाव जैसैं होय तैसैं आस्रवादिकका स्वरूप दिखाइये है। बहुरि तहाँ मुख्यपनैं ज्ञान वैराग्यकों कारण आत्मानुभवनादिक ताकी महिमा गाइए है। बहुरि द्रव्यानुयोग विषैं निश्चय अध्यात्म उपदेशकी प्रधानता होय, तहां व्यवहारधर्मका भी निषेध कीजिये है। जे जीव आत्मानुभवन के उपायकों न करैं हैं अर बाह्य क्रियाकांडविषैं मग्न हैं, तिनकों तहाँतैं उदासकरि आत्मानुभव-

नादिविषैं लगावनें कों व्रत शील संयमादिकका हीनपना प्रगट कीजिए है। तहाँ ऐसा न जानि लेना, जो इनकों छोड़िपापविषैं लगना। जातैं तिस उपदेशका प्रयोजन अशुभविषैं लगवाने का नाहीं है। शुद्धापयोग-विषं लगवानेकों शुभोपयोगका निषेध कीजिये है।

यहाँ कोऊ कहै कि अध्यात्म-शास्त्रनिविषैं पुण्य पाप समान कहे हैं, तातैं शुद्धोपयोग होय तो भला ही है, न होय तो पुण्यविषैं लगो वा पापविषैं लगो।

ताका उत्तर—जैसें शूद्रजातिअपेक्षा जाट चांडाल समान कहे परन्तु चांडालतें जाट किछू उत्तम है। वह अस्पृश्य है यह स्पृश्य है। तैसें बन्धकारण अपेक्षा पुण्य पाप समान हैं परन्तु पापतें पुण्य किछू भला है। वह तीव्रकषायरूप है. यह मंदकषायरूप है। तातैं पुण्य छोड़ि पापविषैं लगना युक्त नाहीं, ऐसा जानना।

बहुरि जे जीव जिनबिम्बभक्त्यादि कार्यनिविषैं ही मग्न हैं, तिनको आत्मश्रद्धानादि करावनेकों "देहविषैं देव है, देहुराविषैं नाहीं" इत्यादि उपदेश दीजिये है। तहाँ ऐसा न जानि लेना, जो भक्ति छुड़ाय भोजनादिकतें आपकों सुखी करना। जातैं तिस उपदेशका प्रयो-जन ऐसा नाहीं है। ऐसैं ही अन्य व्यवहार का निषेध तहाँ किया होय, ताकों जानि प्रमादी न होना। ऐसा जानना—जे केवल व्यवहार साधनविषैं ही मग्न हैं, तिनकों निश्चय रुचि करावने के अर्थि व्यव-हारकों हीन दिखाया है। बहुरि तिन ही शास्त्रनिविषैं सम्यग्दृष्टी के विषय भोगादिकों बंधका कारण न कह्या, निर्जरा का कारण कह्या। सो यहाँ भोगनिका उपादेयपना न जानि लेना। तहाँ सम्यग्दृष्टीकी महिमा दिखावनेकों जे तीव्रबंधके कारण भोगादिक प्रसिद्ध थे, तिन भोगादिकको होतेसंते भी श्रद्धानशक्तिके बदलतें मन्दबंध होने लगा, ताकों गिन्या नाहीं अर तिसही बलतें निर्जरा विशेष होने लगी, तातैं उपचारतें भोगनिको भी बंधका कारण न कह्या, निर्जरा का कारण कह्या। विचार किए भोग निर्जराके कारण होंय तो तिनकों

छोड़ि सम्यग्दृष्टी मुनिपदका ग्रहण काहेकों करै ? यहाँ इस कथन का इतना ही प्रयोजन है—देखो, सम्यक्तकी महिमा जाके बलतें भोग भी अपने गुणकों न करि सकै हैं। याही प्रकार और भी कथन होंय तो ताका यथार्थपना जानि लेना।

बहुरि द्रव्यानुयोगविषें भी चरणानुयोगवत ग्रहण त्याग करावनेका प्रयोजन है। तातैं छद्मस्थके बुद्धिगोचर परिणामनिकी अपेक्षा हो तहाँ कथन कीजिए है। इतना विशेष है, जो चरणानुयोगविषें तो बाह्यक्रियाकी मुख्यताकरि वर्णन करिये है, द्रव्यानुयोगविषें आत्मपरिणामनिकी मुख्यताकरि निरूपण कीजिये है। बहुरि करणानुयोगवत् सूक्ष्मवर्णन न कीजिए है। ताके उदाहरण कहिये हैं :—

उपयोगके शुभ अशुभ शुद्ध ऐसें तीन भेद कहे। तहाँ धर्मानुरागरूप परिणाम सो शुभोपयोग अर पापानुरागरूप वा द्वेषरूप परिणाम सो अशुभोपयोग अर रागद्वेषरहित परिणाम सो शुद्धोपयोग, ऐसें कह्या। सो इस छद्मस्थके बुद्धिगोचर परिणामनिकी अपेक्षा यहु कथन है। करणानुयोगविषें कषायशक्ति अपेक्षा गुणस्थानादिविषें शुद्धोपयोग करनेहो का मुख्य उपदेश है, तातैं यहाँ छद्मस्थ जिस कालविषें बुद्धिगोचर भक्ति आदि वा हिंसा आदि कार्यरूप परिणामनिकों छुड़ाय आत्मानुभवनादि कार्यनिविषें प्रवर्ते, तिस काल ताकों शुद्धोपयोगी कहिए। यद्यपि यहाँ केवलज्ञानगोचर सूक्ष्मरागादिक हैं तथापि ताको विवक्षा यहाँ न करी, अपनी बुद्धिगोचररागादिक छोडै तिस अपेक्षा याकों शुद्धोपयोगी कह्या। ऐसें ही स्वपर श्रद्धानादिक भए सम्यक्तादिक कहे, सो बुद्धिगोचर अपेक्षा निरूपण है। सूक्ष्म भावनिकी अपेक्षा गुणस्थानादिविषें सम्यक्तादिकका निरूपण करणानुयोगविषें पाइये है। ऐसें ही अन्यत्र जानने। तातैं द्रव्यानुयोगके कथन की करणानुयोगतें विधि मिलाया चाहैं सो कहीं तो मिलै, कहीं न मिलै। जैसें यथाख्यातचारित्र भए तो दोऊ अपेक्षा शुद्धोपयोग है, बहुरि नीचली दशाविषें द्रव्यानुयोग अपेक्षा तो कदाचित् शुद्धोपयोग होय अर करणा-

नुयोग अपेक्षा सदा काल कषायअंश के सद्भावतें शुद्धोपयोग नाहीं। ऐसें ही अन्य कथन जानि लेना।

बहुरि द्रव्यानुयोगविषें परमतविषें कहे तत्वादिक तिनकों असत्य दिखावने के अर्थि तिनका निषेध कीजिए हैं, तहाँ द्वेषबुद्धि न जाननी। तिनकों असत्य दिखाय सत्य श्रद्धान करावनेका प्रयोजन जानना। ऐसें ही और भी अनेक प्रकारकरि द्रव्यानुयोगविषें व्याख्यान का विधान है। या प्रकार च्यारों अनुयोगके व्याख्यानका विधान कह्या। सो कोई ग्रन्थविषें एक अनुयोगकी, कोई विषें दोयकी, कोई विषें तीनकी, कोई विषें च्यारोंकी प्रधानता लिए व्याख्यान हो है। सो जहां जैसा सम्भवै, तहां तैसा समझ लेना।

अब इन अनुयोगनिविषें कैसी पद्धतिकी मुख्यता पाइए है, सो कहिए है—

चारों अनुयोगोंमें व्याख्यान की पद्धति

प्रथमानुयोगविषें तो अलंकारशास्त्रनिकी वा काव्यादि शास्त्रनिकी पद्धति मुख्य है जातें अलंकारादिकतें मन रंजायमान होय, सूधी बात कहें ऐसा उपयोग लागै नाहीं जैसा अलंकारादि युक्ति सहित कथनतें उपयोग लागै। बहुरि परोक्ष बातकों किछू अधिकताकरि निरूपण करिए तो वाका स्वरूप नीके भासे। बहुरि करणानुयोगविषें गणित आदि शास्त्रनिकी पद्धति मुख्य है जातें तहाँ द्रव्य क्षेत्र काल भावका प्रमाणादिक निरूपण कीजिए है। सो गणित ग्रन्थनिकी आम्नायतें ताका सुगम जानपना हो है। बहुरि चरणानुयोगविषें सुभाषित नीतिशास्त्रनिकी पद्धति मुख्य है जातें यहां आचरण करावना है, सो लोकप्रवृत्तिके अनुसार नीतिमार्ग दिखाए वह आचरण करै। बहुरि द्रव्यानुयोगविषें न्यायशास्त्रनिकी पद्धति मुख्य है जातें यहाँ निर्णय करनेका प्रयोजन है अर न्यायशास्त्रनिविषें निर्णय करनेका मार्ग दिखाया है। ऐसें इन अनुयोगनिविषें पद्धति मुख्य हैं। और भी अनेक पद्धति लिए व्याख्यान इनविषें पाइए है।

यहां कोऊ कहै—अलंकार गणित नीति न्यायका तो ज्ञान पंडितनिकै होय, तुच्छ बुद्धि समझैं नाहीं तातैं सूधा कथन क्यों न किया ?

ताका उत्तर—शास्त्र हैं सो मुख्यपनैं पण्डित अर चतुरनिके अभ्यास करने योग्य हैं। सो अलंकारादि आम्नाय लिए कथन होय तो तिनका मन लागै। बहुरि जे तुच्छबुद्धि हैं, तिनकों पंडित समझाय दें अर जे न समझि सकैं, तो तिनकों मुखतैं सूधा ही कथन कहैं। परंतु ग्रन्थनिविषैं सूधा कथन लिखें विशेषबुद्धि तिनका अभ्यासविषैं विशेष न प्रवर्त्तै। तातैं अलंकारादि आम्नाय लिए कथन कीजिए है। ऐसैं इन च्यारि अनुयोगनिका निरूपण किया।

बहुरि जिनमतविषैं घने शास्त्र तो इन च्यारों अनुयोगनिविषैं गर्भित हैं। बहुरि व्याकरण न्याय छन्द कोषादिक शास्त्र वा वैद्यक ज्योतिष मन्त्रादि शास्त्र भी जिनमतविषैं पाइए हैं। तिनका कहा प्रयोजन है, सो सुनहु—

व्याकरण न्यायादिकका अभ्यास भए अनुयोगरूप शास्त्रनिका अभ्यास होय सकै है। तातैं व्याकरणादि शास्त्र कहे हैं।

कोऊ कहै—भाषारूप सूधा निरूपण करते तो व्याकरणादिकका कहा प्रयोजन था ?

ताका उत्तर—भाषा तो अपभ्रंशरूप अशुद्ध वाणी है। देश देश विषैं और और है। सो महंत पुरुष शास्त्रनिविषैं ऐसी रचना कैसैं करैं। बहुरि व्याकरण न्यायादिकरि जैसा यथार्थ सूक्ष्म अर्थ निरूपण हो है तैसा सूधी भाषाविषैं होय सकै नाहीं। तातैं व्याकरणादि आम्नाय-करि वर्णन किया है। सो अपनी बुद्धि अनुसारि थोरा बहुत इनिका अभ्यासकरि अनुयोगरूप प्रयोजनभूत शास्त्रनिका अभ्यास करना। बहुरि वैद्यकादि चमत्कारतैं जिनमतकी प्रभावना होय वा औषधादिकतैं उपकार भी बनैं। अथवा जे जीव लौकिक कार्यविषैं अनुरक्त हैं ते वैद्यकादिक चमत्कारतैं जैनी होय पीछैं सांचा धर्म पाय अपना कल्याण करैं। इत्यादि प्रयोजन लिए वैद्यकादि शास्त्र कहे हैं। यहां इतना है—

ये भी जिनशास्त्र हैं, ऐसा जानि इनका अभ्यासविषैं बहुत लगना नाहीं। जो बहुत बुद्धितैं इनिका सहज जानना होय अर इनिकों जाने आपकै रागादिक विकार वधते न जानैं, तो इनिका भी जानना होहु। अनुयोग शास्त्रवत् ये शास्त्र बहुत कार्यकारी नाहीं। तातैं इनिका अभ्यासका विशेष उद्यम करना युक्त नाहीं।

यहां प्रश्न—जो ऐसें हैं तो गणधरादिक इनकी रचना काहेकों करी?

ताका उत्तर—पूर्वोक्त किंचित् प्रयोजन जानि इनकी रचना करी। जैसें बहुत धनवान कदाचित् स्तोक कार्यकारी वस्तुका भी संचय करै। बहुरि थोरा धनवान् उन वस्तुनिका संचय करै तो धन तो तहां लगि जाय, बहुत कार्यकारी वस्तुका सग्रह काहेतें करें। तैसें बहुत बुद्धिमान् गणधरादिक कथंचित् स्तोककार्यकारी वैद्यकादि शास्त्रनिका भी संचय करै। थोरा बुद्धिमान् उनका अभ्यासविषं लगै तो बुद्धि तो तहां लगि जाय, उत्कृष्ट कार्यकारी शास्त्रनिका अभ्यास कैसें करै? बहुरि जैसें मंदरागी तो पुराणादिविषें शृङ्गारादि निरूपण करै तो भी विकारी न होय, तीव्ररागी तैसें शृङ्गारादि निरूपै तो पाप ही बांधै। तैसें मंदरागी गणधरादिक हैं ते वैद्यकादि शास्त्र निरूपैं तो भी विकारी न होंय, तीव्ररागी तिनका अभ्यासविषं लगि जाय तो रागादिक बधाय पापकर्म्मकों बांधे, ऐसें जानना। या प्रकार जैनमतके उपदेशका स्वरूप जानना।

अब इनविषैं दोषकल्पना कोई करै है, ताका निराकरण कीजिए है—

प्रथमानुयोग में दोष-कल्पनाका निराकरण

केई जीव कहै हैं—प्रथमानुयोगविषैं शृङ्गारादिकका वा संग्रामादिकका बहुत कथन करैं, तिनके निमित्ततैं रागादिक बधि जाय, तातैं ऐसा कथन न करना था वा ऐसा कथन सुनना नाहीं। ताकों कहिए है—कथा कहनी होय तब तो सर्व ही अवस्थाका कथन किया

चाहिए। बहुरि जो अलंकारादिकरि बधाय कथन करैं हैं सो पंडितनि के वचन युक्ति लिए ही निकसैं।

अब जो तू कहेगा, सम्बन्ध मिलावनेको सामान्य कथन किया होता, बधायकरि कथन काहेकों किया ?

ताका उत्तर यहु है—जो परोक्षकथनकों बधाय कहे बिना वाका स्वरूप भासै नाहीं। बहुरि पहलें तो भोग संग्रामादि ऐसें किए, पीछे सर्वका त्यागकरि मुनि भए, इत्यादि चमत्कार तबही भासै जब बधाय कथन कीजिए। बहुरि तू कहै है, ताके निमित्ततें रागादिक बधि जाय। सो जैसें कोऊ चैत्यालय बनावै, सो वाका तो प्रयोजन तहां धर्मकार्य करावनेका है अर काई पापी तहां पापकार्य करै तो चैत्यालय बनावने वालेका तो दोष नाहीं। तैसें श्रीगुरु पुराणादिविषैं शृङ्गारादि वर्णन किए, तहां उनका प्रयोजन रागादिक करावनेका तो है नाहीं, धर्मविषैं लगावने का प्रयोजन है। अर कोई पापी धर्म न करै अर रागादिक ही बधावै, तो श्रीगुरुका कहा दोष है ?

बहुरि जो तू कहै—जो रागादिकका निमित्त होय सो कथन ही न करना था।

ताका उत्तर यहु है—सरागी जीवनिका मन केवल वैराग्य कथनविषैं लागै नाहीं। तातैं जैसें बालककों पतासाके आश्रय औषधि दीजिए, तैसें सरागीकों भोगादि कथनके आश्रय धर्मविषैं रुचि कराइये है।

बहुरि तू कहेगा—ऐसें है तो विरागी पुरुषनिकों तो ऐसे ग्रंथनि का अभ्यास करना युक्त नाहीं।

ताका उत्तर यहु है—जिनके अन्तरंगविषै रागभाव नाहीं तिनके शृंगारादि कथन सुनें रागादि उपजै ही नाहीं। यहु जानें ऐसें ही यहां कथन करनेकी पद्धति है।

बहुरि तू कहेगा—जिनकै शृङ्गारादि कथन सुनें रागादि होय आवै, तिनकों तो वैसा कथन सुनना योग्य नाहीं।

ताका उत्तर यहु है—जहां धर्महीका तो प्रयोजन अर जहां तहां धर्मकों पोषैं ऐसे जैनपुराणादिक तिनविषैं प्रसंग पाय शृङ्गारादिकका कथन किया, ताकों सुने भी जो बहुत रागी भया तो वह अन्यत्र कहाँ विरागी होसी, पुराण सुनना छोड़ि और कार्य भी ऐसा ही करेगा जहां बहुत रागादि होय। तातैं वाकै भी पुराण सुने थोरी बहुत धर्म-बुद्धि होय तो होय। और कार्यनितैं यहु कार्य भला ही है।

बहुरि कोई कहै—प्रथमानुयोगविषैं अन्य जीवनिकी कहानी है, तातैं अपना कहा प्रयोजन सधै है ?

ताकों कहिए है—जैसें कामी पुरुषनिकी कथा सुनें आपकै भी कामका प्रेम बधै है. तैसें धर्मात्मा पुरुषनिकी कथा सुनें आपकै धर्मकी प्रीति विशेष हो है। तातैं प्रथमानुयोगका अभ्यास करना योग्य है।

करणानुयोग में दोष कल्पना का निराकरण

बहुरि केई जीव कहै हैं—करणानुयोगविषैं गुणस्थान मार्गणा-दिकका वा कर्मप्रकृतिनिका कथन किया वा त्रिलोकादिकका कथन किया, सो तिनकों जानि लिया 'यहु ऐसें है' 'यहु ऐसें है', यामैं अपना कार्य कहा सिद्ध भया ? कै तो भक्ति करिए, कै व्रत दानादि करिए, कै आत्मानुभवन करिए, इनतें अपना भला होय।

ताकों कहिए है—परमेश्वर तो वीतराग हैं। भक्ति किए प्रसन्न होयकरि किछू करते नाहीं। भक्ति करते मंदकषाय हो है, ताका स्वयमेव उत्तम फल हो है। सो करणानुयोगके अभ्यासविषैं तिसतैं भी अधिक मन्द कषाय होय सकै है, तातैं याका फल अति उत्तम हो है। बहुरि व्रतदानादिक तो कषाय घटावनेके बाह्य निमित्तका साधन हैं अर करणानुयोगका अभ्यास किए तहां उपयोग लगि जाय, तब रागादिक दूरि होंय, सो यहु अंतरंग निमित्तका साधन है। तातैं यहु विशेष कार्यकारी है। व्रतादिक धारि अध्ययनादि कीजिए है। बहुरि आत्मानुभव सर्वोत्तम कार्य है। परन्तु सामान्य अनुभवविषैं उपयोग थम्भै नाहीं अर न थम्भै तब अन्य विकल्प होय, तहाँ करणानुयोगका

अभ्यास होय तो तिस विचारविषैं उपयोगकों लगावै। यहु विचार वर्तमान भी रागादिक घटावै है अर आगामी रागादिक घटावनेका कारण है तातैं यहाँ उपयोग लगावना। जीव कर्मादिकके नाना प्रकार करि भेद जानैं, तिनविषैं रागादि मिटावनेकों कारण है।

यहाँ कोऊ कहै—कोई तो कथन ऐसा ही है परन्तु द्वीप समुद्रादिकके योजनादि निरूपे तिनमें कहा सिद्धि है?

ताका उत्तर—तिनकों जानैं किछू तिनविषैं इष्ट अनिष्ट बुद्धि न होय, तातैं पूर्वोक्त सिद्धि हो है।

बहुरि वह कहै है—ऐसैं है तो जिसतैं किछू प्रयोजन नाहीं ऐसा पाषाणादिककों भी जानैं तहाँ इष्ट अनिष्टपनों न मानिये है, सो भी कार्यकारी भया।

ताका उत्तर—सरागी जीव रागादि प्रयोजनबिना काहूकों जाननें का उद्यम न करै। जो स्वमेव उनका जानना होय तो अंतरंग रागादिका अभिप्राय के वशिकरि वहाँतैं उपयोगकों छुड़ाया ही चाहै है। यहाँ उद्यमकरि द्वीप समुद्रादिकों जानै है तहाँ उपयोग लगावै है। सो रागादि घटे ऐसा कार्य होय। बहुरि पाषाणादिकविषैं इस लोकका कोई प्रयोजन भासि जाय तो रागादिक होय आवै। अर द्वीपादिक विषैं इस लोक सम्बन्धी कार्य किछू नाहीं तातैं रागादिकका कारण नाहीं। जो स्वर्गादिककी रचना सुनि तहां राग होय तो परलोक सम्बन्धी होय। ताका कारण पुण्यकों जानैं तब पाप छोड़ि पुण्यविषै प्रवर्तै, इतना ही नफा होय। बहुरि द्वीपादिक के जानें यथावत् रचना भासै, तब अन्यमतादिकका कह्या झूंठ भासै, सत्य श्रद्धानी होय। बहुरि यथावत् रचना जानने करि भ्रम मिटैं उपयोगकी निर्मलता होय, तातैं यहु अभ्यास कार्यकारी है।

बहुरि केई कहै हैं—करणानुयोगविषैं कठिनता घनी, तातैं ताके अभ्यासविषैं खेद होय।

ताकों कहिए है—जो वस्तु शीघ्र जाननेमें आवै, तहाँ उपयोग

उलझै नाहीं अर जानी वस्तुकों बारम्बार जानने का उत्साह होय नाहीं, तब पापकार्यनिविषैं उपयोग लगि जाय। तातैं अपनी बुद्धि अनुसारि कठिनताकरि भी जाका अभ्यास होता जानैं ताका अभ्यास करना। अर जाका अभ्यास होय ही सके नाहीं, ताका कैसें करै? बहुरि तू कहै है—खेद होय सो प्रमादी रहनेमें तो धर्म है नाहीं। प्रमादतैं सुखिया रहिए, तहाँ तो पाप ही होय। तातैं धर्मके अर्थ उद्यम करना ही युक्त है। या विचारि करणानुयोग का अभ्यास करना।

चरणानुयोग में दोष कल्पना का निराकरण

बहुरि केई जीव ऐसैं कहै हैं—चरणानुयोगविषैं बाह्य व्रतादि साधनका उपदेश है, सो इनितैं किछु सिद्धि नाहीं। अपने परिणाम निर्मल चाहिएं, बाह्य चाहो जैसें प्रवर्तें। तातैं इस उपदेशतैं पराङ्मुख कहै हैं।

तिनकों कहिए हैं—आत्मपरिणामनिकै और बाह्य प्रवृत्तिकै निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध है। जातैं छद्मस्थकै क्रिया परिणामपूर्वक हो हैं। कदाचित् बिना परिणाम कोई क्रिया हो है, सो परवशतैं ही है। अपने वशतैं उद्यमकरि कार्य करिए अर कहिए परिणाम इस रूप नाहीं है, सो यहु भ्रम है। अथवा बाह्य पदार्थका आश्रय पाय परिणाम होय सकै है। तातैं परिणाम मेटनेके अर्थ बाह्यवस्तुका निषेध करना समयसारादिविषैं कह्या है। इसही वास्ते रागादिभाव घटैं बाह्य ऐसैं अनुक्रमतैं श्रावक मुनिधर्म होय। अथवा ऐसें श्रावक मुनिधर्म अंगीकार किए पंचम षष्ठम आदि गुणस्थानतिनविषैं रागादि घटनेरूप परिणामनिकी प्राप्ति होय। ऐसा निरूपण चरणानुयोगविषैं किया। बहुरि जो बाह्य संयमतैं किछू सिद्धि न होय, तो सर्वार्थसिद्धि के वासी देव सम्यग्दृष्टी बहुत ज्ञानी तिनकै तो चौथा गुणस्थान होय अर गृहस्थ श्रावक मनुष्यकै पंचम गुणस्थान होय, सो कारण कहा? बहुरि तीर्थंकरादिक गृहस्थपद छोड़ि काहेकों संयम ग्रहैं। तातैं यहु नियम है—बाह्य संयम साधन बिना परिणाम निर्मल न होय सकैं हैं।

तातैं बाह्य साधनका विधान जाननेंकौं चरणानुयोगका अभ्यास अवश्य किया चाहिए।

द्रव्यानुयोग में दोष कल्पना का निराकरण

बहुरि केई जीव कहैं हैं—जो द्रव्यानुयोगविषैं व्रत संयमादि व्यवहारधर्मका हीनपना प्रगट किया है। सम्यग्दृष्टीके विषय भोगादिककौं निर्जराका कारण कह्या है। इत्यादि कथन सुनि जीव हैं, सो स्वच्छन्द होय पुण्य छोड़ि पापविषैं प्रवर्त्तैं, तातैं इनिका बांचना सुनना युक्त नाहीं। ताकौं कहिए है—जैसैं गर्दभ मिश्री खाएं मरै, तौ मनुष्य तो मिश्री खाना न छोड़ै। तैसैं विपरीतबुद्धि अध्यात्मग्रन्थ सुनि स्वच्छन्द होय, तो विवेकी तो अध्यात्मग्रन्थनिका अभ्यास न छोड़ै। इतना करै—जाकौं स्वच्छन्द होता जानै, ताकौं जैसैं वह स्वच्छन्द न होय, तैसैं उपदेश दे। बहुरि अध्यात्मग्रन्थनिविषैं भी स्वच्छन्द होनेका जहाँ तहां निषेध कीजिए है, तातैं जो नीके तिनकौं सुनैं, सो तो स्वच्छन्द होता नाहीं। अर एक बात सुनि अपनें अभिप्रायतैं कोऊ स्वच्छन्द होसी, तो ग्रन्थका तो दोष है नाहीं, उस जीवहीका दोष है। बहुरि जो झूंठा दोषकी कल्पनाकरि अध्यात्मशास्त्रका बांचना सुनना निषेधिए तो मोक्षमार्गका मूल उपदेश तो तहां ही है। ताका निषेध किए मोक्षमार्गका निषेध होय। जैसैं मेघवर्षा भए बहुत जीवनिका कल्याण होय अर काहूकै उलटा टोटा पड़ै, तो तिसकी मुख्यताकरि मेघका तो निषेध न करना। तैसैं सभाविषैं अध्यात्म उपदेश भये बहुत जीवनिकौं मोक्षमार्गकी प्राप्ति होय अर काहूकै उलटा पाप प्रवर्त्तै, तो तिसकी मुख्यताकरि अध्यात्मशास्त्रनिका तो निषेध न करना। बहुरि अध्यात्मग्रन्थनितैं कोऊ स्वच्छन्द होय सो तो पहलैं भी मिथ्यादृष्टी था, अब भी मिथ्यादृष्टी ही रह्या। इतना ही टोटा पड़ै, जो सुगति न होय कुगति होय। अर अध्यात्म उपदेश न भये बहुत जीवनिकै मोक्षमार्गकी प्राप्तिका अभाव होय, सो यामें घनें जीवनिका घना बुरा होय। तातैं अध्यात्म उपदेशका निषेध न करना।

बहुरि केई जीव कहैं हैं—जो द्रव्यानुयोगरूप अध्यात्म उपदेश है, सो उत्कृष्ट है। सो ऊंची दशाकों प्राप्त होय, तिनकों कार्यकारी है। नीचली दशावालोंको तो व्रत संयमादिका ही उपदेश देना योग्य है।

ताकों कहिये है—जिनमतविषैं तो यहु परिपाटी है, जो पहलैं सम्यक्त होय पीछैं व्रत होय। सो सम्यक्त स्वपरका श्रद्धान भये होय अर सो श्रद्धान द्रव्यानुयोगका अभ्यास किए होय। तातैं पहलैं द्रव्यानुयोगके अनुसार श्रद्धानकरि सम्यग्दृष्टि होय, पीछैं चरणानुयोगके अनुसार व्रतादिक धारि वृती होय। ऐसैं मुख्यपनैं तो नीचली दशाविषैं ही द्रव्यानुयोग कार्यकारी है, गौणपनैं जाकों मोक्षमार्गकी प्राप्ति होती न जानिये, ताकों पहलैं कोई व्रतादिकका उपदेश दीजिए है। तातैं नीचली दशावालोंकों अध्यात्म अभ्यास योग्य है, ऐसा जानि नीचली दशावालोंकों तहांतैं पराङ्मुख होना योग्य नाहीं।

बहुरि जो कहोगे—ऊँचा उपदेशका स्वरूप नीचली दशावालों को भासै नाहीं।

ताका उत्तर यहु है—और तो अनेक प्रकार चतुराई जानैं अर यहां मूर्खपना प्रगट कीजिए, सो युक्त नाहीं। अभ्यास किए स्वरूप नीके भासै है। अपनी बुद्धि अनुसार थोरा बहुत भासै परन्तु सर्वथा निरुद्यमी होनेकों पोषिए, सो तो जिनमार्गका द्वेषी होना है।

बहुरि जो कहोगे, अबार काल निकृष्ट है, तातैं उत्कृष्ट अध्यात्म उपदेशकी मुख्यता न करनी।

ताकों कहिए है—अबार काल साक्षात् मोक्ष न होने की अपेक्षा निकृष्ट है, आत्मानुभवनादिककरि सम्यक्तादिक होना अबार मने नाहीं। तातैं आत्मानुभवनादिकके अर्थि द्रव्यानुयोगका अवश्य अभ्यास करना। सोई षट्पाहुड़विषैं (मोक्षपाहुड़में) कह्या है—

अज्जवि तिरयणसुद्धा अप्पाझाऊण जंति सुरलोए।
लोयंते देवत्तं तत्थ चुया णिव्वुदिं जंति ॥७७॥

याका अर्थ—अबहू निरूपणकरि शुद्ध जीव आत्माकौं ध्यायकरि सुखलोकविषैं प्राप्त हो हैं वा लौकान्तिकविषैं देवपणौं पावैं हैं। तहांतैं च्युत होय मोक्ष जाय हैं। बहुरि* तातैं इस कालविषैं भी द्रव्यानुयोगका उपदेश मुख्य कहिए।

बहुरि कोई कहै है—द्रव्यानुयोगविषैं अध्यात्मशास्त्र हैं, तहां स्वपरभेद विज्ञानादिकका उपदेश दिया सो तो कार्यकारी भी घना अर समझिमें भी शीघ्र आवै परन्तु द्रव्यगुणपर्यायादिकका वा प्रमाण नय आदिक का वा अन्यमतके कहे तत्वादिकके निराकरणका कथन किया, सो तिनिका अभ्यासतें विकल्प विशेष होय। बहुत प्रयास किए जानने में आवै। तातैं इनिका अभ्यास न करना। तिनिकौं कहिए है—

सामान्य जाननेतें विशेष जानना बलवान् है। ज्यों-ज्यों विशेष जानैं त्यों-त्यों वस्तुस्वभाव निर्मल भासै, श्रद्धान दृढ़ होय, रागादि घटै। तातैं तिस अभ्यासविषैं प्रवर्त्तना योग्य है। ऐसैं च्यारों अनुयोगनिविषैं दोषकल्पनाकरि अभ्यासतें पराङ्मुख होना योग्य नाहीं।

बहुरि व्याकरण न्यायादिक शास्त्र हैं, तिनका भी थोरा बहुत अभ्यास करना। जातैं इनिका ज्ञान बिना बड़े शास्त्रनिका अर्थ भासै नाहीं। बहुरि वस्तुका भी स्वरूप इनकी पद्धति जानैं जैसा भासै तैसा भाषादिककरि भासै नाहीं। तातैं परम्परा कार्यकारी जानि इन का भी अभ्यास करना परन्तु इनहीविषैं फंसि न जाना। किछू इनका अभ्यासकरि प्रयोजनभूत शास्त्रनिका अभ्यासविषैं प्रवर्तना। बहुरि वैद्यकादि शास्त्र हैं, तिनतें मोक्षमार्गविषैं किछू प्रयोजन ही नाहीं। तातैं कोई व्यवहारधर्मका अभिप्रायतें बिनाखेद इनका अभ्यास होय जाय तो उपकारादि करना, पापरूप न प्रवर्तना। अर इनका अभ्यास

* यहाँ 'बहुरि' के आगे ३-४ लाइन का स्थान खरड़ाप्रति में छोड़ा गया है जिससे ज्ञात होता है कि मल्लजी यहाँ कुछ और भी लिखना चाहते थे किन्तु लिख नहीं सके।

न होय तो मत होहु, किछ बिगार नाहीं। ऐसें जिनमत के शास्त्र निर्दोष जानि तिनका उपदेश मानना।

अपेक्षा ज्ञान के अभाव से आगम में दिखाई देने वाले परस्पर विरोध का निराकरण।

अब शास्त्रनिविषैं अपेक्षादिकों न जानें परस्पर विरोध भासै, ताका निराकरण कीजिए है। प्रथमादि अनुयोगनिकी आम्नायके अनुसारि जहां जैसे कथन किया होय, तहां तैसें जानि लेना। और अनुयोग का कथनकों और अनुयोगका कथनतें अन्यथा जानि सन्देह न करना जैसें कहीं तो निर्मल सम्यग्दृष्टीहीकै शंका कांक्षा विचिकित्साका अभाव कह्या, कहीं भय का आठवां गुणस्थान पर्यन्त, लोभ का दशमा पर्यन्त, जुगुप्साका का आठवां पर्यन्त उदय कह्या, तहां विरुद्ध न जानना। श्रद्धानपूर्वक तीव्र शंकादिकका सम्यग्दृष्टीकै अभाव भया अथवा मुख्यपनें सम्यग्दृष्टी शंकादि न करै, तिस अपेक्षा चरणानुयोगविषैं शंकादिकका सम्यग्दृष्टीकै अभाव कह्या। बहुरि सूक्ष्मशक्ति अपेक्षा भयादिकका उदय अष्टमादि गुणस्थान पर्यन्त पाइये है। तातैं करणानुयोगविषैं तहां पर्यन्त तिनका सद्भाव कह्या, ऐसा ही अन्यत्र जानना। पूर्व अनुयोगनिका उपदेशविधानविषैं कई उदाहरण कहे हैं, ते जाननें अथवा अपनी बुद्धितें समझ लेनें।

बहुरि एक ही अनुयोगविषै विवक्षाके वशतें अनेकरूप कथन करिए हैं। जैसें करणानुयोगविषैं प्रमादनिका सप्तम गुणस्थानविषैं अभाव कह्या, तहां कषायादिक प्रमाद के भेद कहे। बहुरि तहां ही कषायादिकका सद्भाव दशमादि गुणस्थान पर्यन्त कह्या, तहां विरुद्ध न जानना। जातैं यहां प्रमादनिविषैं तो जे शुभ अशुभ भावनि का अभिप्राय लिए कषायादिक होय तिनका ग्रहण है। सो सप्तम गुणस्थानविषैं ऐसा अभिप्राय दूर भया, तातैं तिनका तहां अभाव कह्या। बहुरि सूक्ष्मादिभावनिकी अपेक्षा तिनहीका दशमादि गुणस्थान पर्यन्त सद्भाव कह्या है।

बहुरि चरणानुयोगनिविषैं चोरी परस्त्री आदि सप्त व्यसनका त्याग प्रथम प्रतिमाविषैं कह्या, बहुरि तहां ही तिनका त्याग द्वितीयप्रतिमा विषैं कह्या, तहां विरुद्ध न जानना। जातैं सप्तव्यसनविषैं तो चोरी आदि कार्य ऐसे ग्रहे हैं, जिनकरि दंडादिक पावै, लोकविषैं अतिनिन्दा होय। बहुरि व्रतनिविषैं चोरी आदि का त्याग करनेयोग्य ऐसे कहे हैं, जे गृहस्थ धर्मविषै विरुद्ध होय वा किंचित् लोकनिंद्य होय, ऐसा अर्थ जानना। ऐसैं ही अन्यत्र जानना।

बहुरि नाना भावनिकी सापेक्षतैं एकही भावकों अन्य अन्य प्रकार निरूपण कीजिए है। जैसैं कहीं तो महाव्रतादिक चारित्र-के भेद कहे, कहीं महाव्रतादि होतें भी द्रव्यलिंगी को असंयमी कह्या, तहां विरुद्ध न जानना। जातैं सम्यग्ज्ञानसहित महाव्रतादिक तो चारित्र हैं अर अज्ञानपूर्वक व्रतादिक भए भी असंयमी ही है।

बहुरि जैसैं पंच मिथ्यात्वनिविषैं भी विनय कह्या अर बारह प्रकार तपनिविषैं भी विनय कह्या, तहां विरुद्ध न जानना। जातैं विनय करनें योग्य नाहीं तिनका भी विनय करि धर्म मानना सो तो विनय मिथ्यात्व है अर धर्म पद्धतिकरि जे विनय करते योग्य है, तिनका यथायोग्य विनय करना, सो विनय तप है। बहुरि जैसैं कहीं तो अभिमान की निन्दा करी, कहीं प्रशंसा करी, तहां विरुद्ध न जानना। जातैं मानकषायतैं आपकों ऊंचा मना-वने के अर्थि विनयादि न करै, सो अभिमान तो निंद्य ही है अर निर्लोभपनातैं दीनता आदि न करै, सो अभिमान प्रशंसा योग्य है।

बहुरि जैसैं कहीं चतुराई की निन्दा करी, कहीं प्रशंसा करी, तहां विरुद्ध नजानना। जातैं मायाकषायतैं काहूका ठिगनेके अर्थ चतुराई कीजिए, सो तो निंद्य ही है अर विवेक लिये यथासम्भव कार्य करनेविषैं जो चतुराई होय सो श्लाघ्य ही है, ऐसैं ही अन्यत्र जानना।

बहुरि एक ही भाव की कहीं तो तिसतें उत्कृष्ट भावकी अपेक्षा करि निन्दा करी होय अर कहीं तिसतें हीनभाव की अपेक्षाकरि प्रशंसा करी होय, तहां विरुद्ध न जानना। जैसें किसी शुभक्रियाकी जहां निन्दा करी होय, तहां तो तिसतें ऊंची शुभक्रिया वा शुद्धभाव तिनकी अपेक्षा जाननी अर जहां प्रशंसा करी होय, तहां तिसतें नीची क्रिया वा अशुभक्रिया तिनकी अपेक्षा जानना, ऐसें ही अन्यत्र जानना। बहुरि ऐसें ही काहू जीवकी ऊंचे जीवकी अपेक्षा निन्दा करी होय, तहां सर्वथा निन्दा न जाननी। काहूकी नीचे जीवकी अपेक्षा प्रशंसा करी होय, तो सर्वथा प्रशंसा न जाननी। यथासम्भव वाका गुण दोष जानि लेना, ऐसें ही अन्य व्याख्यान जिस अपेक्षा लिए किया होय, तिस अपेक्षा वाका अर्थ समझना।

बहुरि शास्त्रविषें एक ही शब्द का कहीं तो कोई अर्थ हो है, कहीं कोई अर्थ हो है, तहां प्रकरण पहचानि वाका सम्भवता अर्थ जानना। जैसें मोक्षमार्गविषें सम्यग्दर्शन कह्या तहां दर्शन शब्दका अर्थ श्रद्धान है अर उपयोग वर्णनविषें दर्शन शब्दका अर्थ वस्तु का सामान्य स्वरूप ग्रहण मात्र है अर इन्द्रिय वर्णनविषें दर्शन शब्दका अर्थ नेत्रकरि देखनें मात्र है। बहुरि जैसें सूक्ष्म बादर का अर्थ वस्तुनिका प्रमाणादिक कथनविषें छोटा प्रमाण लिए होय, ताका नाम सूक्ष्म अर बड़ा प्रमाण लिए होय ताका नाम बादर, ऐसा अर्थ होय। अर पुद्गल स्कंधादिका कथनविषें इन्द्रियगम्य न होय सो सूक्ष्म, इन्द्रियगम्य होय सो बादर, ऐसा अर्थ है। जीवादिकका कथनविषें ऋद्धि आदि का निमित्त बिना स्वयमेव रुकै ताका नाम बादर, ऐसा अर्थ है। वस्त्रादिकका कथनविषें महीन का नाम सूक्ष्म, मोटा का नाम बादर, ऐसा अर्थ है। करणानुयोगके कथनविषें पुद्गलस्कंध के निमित्ततें रुकै नाहीं ताका नाम सूक्ष्म है अर रुक जाय ताका नाम बादर है। बहुरि प्रत्यक्ष शब्द का अर्थ लोकव्यवहारविषें तो इन्द्रियकरि जाननेका नाम प्रत्यक्ष है, आत्मानुभवनादिविषें आपविषें अवस्था होय ताका नाम

प्रत्यक्ष है। बहुरि जैसें मिथ्यादृष्टीकै अज्ञान कह्या तहाँ सर्वथा ज्ञान का अभावतैं न जानना, सम्यग्ज्ञान के अभावतैं अज्ञान कह्या है। बहुरि जैसें उदीरणा शब्दका अर्थ जहां देवादिककै उदीरणा न कही, तहाँ तो अन्य निमित्ततैं मरण होय ताका नाम उदीरणा है अर दश करणनिका कथनविषैं उदीरणा करण देवायुकै भी कह्या, तहाँ ऊपरिके निषेकनिका द्रव्य उदयावलीविषैं दीजिए ताका नाम उदीरणा है। ऐसें ही अन्यत्र यथासम्भव अर्थ जानना। बहुरि एक ही शब्दका पूर्व शब्द जोड़ें अनेक प्रकार अर्थ हो है वा उस ही शब्द के अनेक अर्थ हैं। तहाँ जैसा सम्भवै तैसा अर्थ जानना। जैसें 'जीतै' ताका नाम 'जिन' है परन्तु धर्मपद्धतिविषैं कर्मशत्रुकों जीतै, ताका नाम 'जिन' जानना। यहां कर्मशत्रु शब्दकों पूर्वै जोड़े जो अर्थ होय सो ग्रहण किया, अन्य न किया। बहुरि जैसें 'प्राण धारै' ताका नाम 'जीव' है। जहां जीवनमरणका व्यवहार अपेक्षा कथन होय, तहां तो इन्द्रियादि प्राणधारै सो जीव है। बहुरि द्रव्यादिकका निश्चय अपेक्षा निरूपण होय तहां चैतन्यप्राणकों धारै सो जीव है। बहुरि जैसें समय शब्दके अनेक अर्थ हैं तहां आत्माका नाम समय है, सर्व पदार्थ का नाम समय है, काल का नाम समय है, समयमात्र काल का नाम समय है, शास्त्र का नाम समग है, मत का नाम समय है। ऐसें अनेक अर्थनिविषैं जैसा जहां सम्भवै तैसा तहां अर्थ जानि लेना। बहुरि कहीं तो अर्थ अपेक्षा नामादिक कहिए है, कहीं रूढ़ि अपेक्षा नामादिक कहिए है। जहां रूढ़ि अपेक्षा नामादिक लिख्या होय, तहाँ वाका शब्दार्थ न ग्रहण करना। वाका रूढ़िवाद अर्थ होय सो ही ग्रहण करना। जैसें सम्यक्तादिककों धर्म कह्या तहां तो यहु जीवको उत्तम-स्थानविषै धारै है, तातैं याका नाम सार्थक है। बहुरि धर्मद्रव्यका नाम धर्म कह्या तहां रूढ़ि नाम है, याका अक्षरार्थ न ग्रहण करना। इस नाम धारक एक वस्तु है, ऐसा अर्थ ग्रहण करना। ऐसै ही अन्यत्र जानना। बहुरि कहीं जो शब्दका अर्थ होता होई सो तो न ग्रहण

करना अर तहां जो प्रयोजनभूत अर्थ होय सो ग्रहण करना। जैसें कहीं किसीका अभाव कह्या होय अर तहां किंचित् सद्भाव पाइए, तो तहां सर्वथा अभाव ग्रहण न करना। किंचित सद्भावकों न गिणि अभाव कह्या है, ऐसा अर्थ जानना। सम्यग्दृष्टीके रागादिकका अभाव कह्या, तहां ऐसें अर्थ जानना। बहुरि नो कषायका अर्थ तो यहु—'कषायका निषेध' सो तो अर्थ न ग्रहण करना अर यहां क्रोधादि सारिखे ए कषाय नाहीं, किंचित् कषाय हैं तातें नोकषाय हैं, ऐसा अर्थ ग्रहण करना। एसें ही अन्यत्र जानना।

बहुरि जैसें कही कोई युक्तिकरि किया होय, तहां प्रयोजन ग्रहण करना। समयसार का कलशाविषें[1] यहु कहा—"धोबीका दृष्टान्तवत् परभावका त्यागकी दृष्टि यावत् प्रवृत्तिकों न प्राप्त भई तावत् यहु अनुभूति प्रगट भई"। सो यहां यहु प्रयोजन है—परभावका त्याग होतें ही अनुभूति प्रगट हो है। लोकविषें काहूके आवतें ही कोई कार्य भया होय, तहां ऐसे कहिए—"जो यहु आया ही नाहीं अर यहु कार्य होय गया।" ऐसा ही यहां प्रयोजन ग्रहण करना। ऐसें ही अन्यत्र जानना। बहुरि जैसें कहीं प्रमाणादिक किछू कह्या होय, सोई तहां न मानि लेना, तहां प्रयोजन होय सो जानना। ज्ञानार्णवविषें ऐसा कह्या है—"अबार दोय तीन सत्पुरुष हैं[2]।" सो नियमतें इतने ही

---

१. अवतरति न यावद्वृत्ति मत्यन्तवेगादनवमपरभावत्यागदृष्टान्तदृष्टिः।
झटिति सकलभावैरन्यदीयैर्विमुक्ता, स्वयमियमनुभूतिस्तावदाविर्बभूव॥
(जीवाजीव अ० कलश २९)

२. दुःप्रज्ञाबललुप्तवस्तुनिचया विज्ञानशून्याशयाः।
विद्यन्ते प्रतिमन्दिरं निजनिजस्वार्थोद्यता देहिनः॥
आनन्दामृतसिन्धुशीकरचयैर्निर्वाप्य जन्मज्वरं।
ये मुक्तेर्वदनेन्दुवीक्षण परास्ते सन्ति द्वित्रा यदि॥२४॥
—ज्ञानार्णव, पृष्ठ ८८

नाहीं। वहां 'थोरे हैं' ऐसा प्रयोजन जानना। ऐसैं ही अन्यत्र जानना। इसही रीति लिए और भी अनेक प्रकार शब्दनिके अर्थ हो हैं, तिनको यथासम्भव जानने। विपरीत अर्थ न जानना।

बहुरि जो उपदेश होय, ताकों यथार्थ पहचानि जो अपने योग्य उपदेश होय ताका अंगीकार करना। जैसें वैद्यकशास्त्रनिविषैं अनेक औषधि कही हैं, तिनकों जानैं अर ग्रहण तिसहीका करै, जाकरि अपना रोग दूरि होय। आपकै शीतका रोग होय तो ऊष्ण औषधिका ही ग्रहण करै, शीतल औषधिका ग्रहण न करै, यहु औषधि औरनिकों कार्यकारी है, ऐसा जानैं। तैसें जैनशास्त्रनिविषैं अनेक उपदेश हैं, तिनकों जानैं अर ग्रहण तिसहीका करै, जाकरि अपना विकार दूरि होय। आपकै जो विकार होय ताका निषेध करनहारा उपदेशकों ग्रहै, जिसका पोषक उपदेशकों न ग्रहै। यहु उपदेश औरनिकों कार्यकारी है, ऐसा जानैं। यहाँ उदाहरण कहिए है—जैसे शास्त्रविषैं कहीं निश्चयपोषक उपदेश है, कहीं व्यवहार पोषक उपदेश है। तहां आपकै व्यवहार का आधिक्य होय तो निश्चय पोषक उपदेशका ग्रहण करि यथावत् प्रवर्त्तै अर आपकै निश्चयका आधिक्य होय तो व्यवहारपोषक उपदेशका ग्रहणकरि यथावत् प्रवर्त्तै। बहुरि पूर्वैं तो व्यवहार श्रद्धानतैं आत्मज्ञानतैं भ्रष्ट होय रह्या था, पीछें व्यवहार उपदेशहीकी मुख्यताकरि आत्मज्ञानका उद्यम न करै अथवा पूर्वैं तो निश्चयश्रद्धानतैं वैराग्यतैं भ्रष्ट होय स्वच्छन्द होय रह्या था, पीछें निश्चय उपदेशही की मुख्यताकरि विषयकषाय पोषै। ऐसैं विपरीत उपदेश ग्रहे बुरा ही होय। बहुरि जैसैं आत्मानुशासनविषैं ऐसा कह्या—"जो तू गुणवान् होय दोष क्यों लगावै है। दोषवान् होना था तो दोषमय ही क्यों न भया[1]।" सो जो जीव आप तो गुणवान् होय अर कोई दोष लगता

---

१. हे चन्द्रमः किमितिलाञ्छनवानभूस्त्वं,
तद्वान् भवेः किमित तन्मय एव नाभूः।
किं ज्योत्स्नयामलमलं तव घोषयन्त्या,
स्वर्भानुवन्ननु तथा सति नाऽसि लक्ष्यः ॥१४१॥

होय तहां तिस दोष दूर करनेके अर्थि तिस उपदेशकों अंगीकार करना। बहुरि आप तो दोषवान् हैं अर इस उपदेशका ग्रहणकरि गुणवान् पुरुषनिकों नीचा दिखावै तो बुरा ही होय। सर्वदोषमय होनेतें तौ किंचित् दोषरूप होना बुरा नाहीं है तातैं तुमतें तो वह भला है। बहुरि यहां यहु कह्या। "तू दोषमय ही क्यों न भया" सो यहु तर्क करी है। किछू सर्व दोषमय होनेके अर्थि यहु उपदेश नाहीं है। बहुरि जो गुणवान्कै किंचित दोष भये भी निन्दा है तो सर्वदोषरहित तो सिद्ध हैं, नीचली दशाविषैं तो कोई गुण कोई दोष होय ही होय।

यहां कोऊ कहै—ऐसैं है, तो "मुनिलिंग धारि किंचित परिग्रह राखै तो भी निगोद जाय*" ऐसा षट्पाहुड़ विषैं कैसे कह्या है?

ताका उत्तर—ऊंचो पदवी धारि तिस पदविषैं न सम्भवता नीचा कार्य करै तो प्रतिज्ञा भंगादि होनेतें महादोष लागै हैं अर नीची पदवीविषैं तहां सम्भवता गुणदोष होय तो होय, तहां वाका दोष ग्रहण करना योग्य नाहीं ऐसा जानना।

बहुरि उपदेशसिद्धान्तरत्नमालाविषैं कह्या—"आज्ञा अनुसार उपदेश देनेवालेका क्रोध भी क्षमाका भंडार है❀।" सो यहु उपदेश वक्ताका ग्रहवा योग्य नाहीं। इस उपदेशतें वक्ता क्रोध किया करै तो वाका बुरा ही होय। यहु उपदेश श्रोतानिका ग्रहवा योग्य है। कदाचित् वक्ता क्रोधकरिकै भी सांचा उपदेश दे तो श्रोता गुण ही मानैं। ऐसैं ही अन्यत्र जानना।

बहुरि जैसैं काहूकै अतिशीतांग रोग होय, ताकै अर्थ अति उष्ण रसादिक औषधि कही हैं तिस औषधि को जाकै दाह होय वा तुच्छ

---

* जह जायरूवसरिसो तिलतुसमित्तं ण गहदि हत्तेसु।
जइ लेइ अप्पबहुयं तत्तो पुण जाइ णिग्गोयं ॥१८॥

(सूत्रपाहुड़)

❀ रोसोवि खमाकोसो सुत्तं भासंत जस्सणधणस्य।
उस्सुत्तेण खमावि य दोस महामोहआवासो ॥१४॥

शीत होय सो ग्रहण करै तो दुःख ही पावै। तैसें काहूकै कोई कार्यकी अतिमुख्यता होय, ताके अर्थ तिसके निषेधका अति खींचकर उपदेश दिया होय, ताकों जाकै तिस कार्यकी मुख्यता न होय वा थोरी मुख्यता होय सो ग्रहण करै तो बुरा ही होय। यहां उदाहरण—जैसें काहूकै शास्त्राभ्यासकी अतिमुख्यता अर आत्मानुभवका उद्यम ही नाहीं, ताके अर्थि बहुत शास्त्राभ्यास निषेध किया। बहुरि जाकै शास्त्राभ्यास नाहीं वा थोरा शास्त्राभ्यास है सो जीव तिस उपदेशतें शास्त्राभ्यास छोड़ै अर आत्मानुभवविषैं उपयोग रहै नाहीं, तब वाका तो बुरा ही होय। बहुरि जैसें काहूकै यज्ञ स्नानादिककरि हिंसातें धर्म माननेंकी मुख्यता है, ताके अर्थ "जो पृथ्वी उलटै तो भी हिंसा किए पुण्यफल न होय", ऐसा उपदेश दिया। बहुरि जो जीव पूजनादि कार्यनिकरि किंचित् हिंसा लगावैं अर बहुत पुण्य उपजावै, सो जीव इस उपदेशतें पूजनादि कार्य छोड़ै अर हिंसारहित सामायिकादि धर्मविषैं उपयोग लागै नाहीं, तब वाका तो बुरा ही होय। ऐसें ही अन्यत्र जानना।

बहुरि जैसें कोई औषधि गुणकारी है परन्तु आपकै यावत् तिस औषधितें हित होय, तावत् तिसका ग्रहण करै। जो शीत मिटैं भी उष्ण औषधिका सेवन किया ही करै तो उल्टारोग होय। तैसें कोई धर्म कार्य है परन्तु आपकै यावत् तिस धर्मकार्यतें हित होय तावत् तिसका ग्रहण करै। जो ऊंची दशा होतें नीची दशा सम्बन्धी धर्मका सेवनविषैं लागै तो उल्टा विकार ही होय। यहां उदाहरण—जैसें पाप मेटनेके अर्थि प्रतिक्रमणादि धर्मकार्य कहे, बहुरि आत्मानुभव होतें प्रतिक्रमणादि धर्मकार्य कहे, बहुरि आत्मानुभव होतें प्रतिक्रमणादिक का विकल्प करै तो उल्टा विकार बधै, याहीतें समयसार विषैं प्रतिक्रमणादिककों विष कह्या है। बहुरि जैसें अव्रती के करने योग्य प्रभावनादि धर्मकार्य कहे, तिनकों व्रती होयकरि करै तो पाप ही बांधै। व्यापारादि आरम्भ छोड़ि चैत्यालयादि कार्यनिका अधिकारी

होय सो कैसें बनै ? ऐसें ही अन्यत्र जानना ।

बहुरि जैसें पाकादिक औषधि पुष्टकारी हैं परन्तु ज्वरवान् ग्रहण करै तो महादोष उपजै । तैसें ऊंचा धर्म बहुत भला है परन्तु अपने विकारभाव दूरि न होय अर ऊंचा धर्म ग्रहै तो महादोष उपजै यहां उदाहरण—जैसें अपना अशुभविकार भी न छूटया अर निर्विकल्प दशाकों अंगीकार करै तो उल्टा विकार बधै । बहुरि जैसें भोजनादि विषयनिविषें आसक्त होय अर आरम्भ त्यागादि धर्मकों अंगीकार करै तो दोष ही उपजै । बहुरि जैसें व्यापारादि करनेका विकार तो न छूटै अर त्यागका भेषरूप धर्म अंगीकार करै तो महादोष उपजै । ऐसें ही अन्यत्र जानना ।

याही प्रकार और भी सांचा विचारतें उपदेशकों यथार्थ जानि अंगीकार करना । बहुत विस्तार कहां ताईं कहिए । अपने सम्यग्ज्ञान भए आपहीकों यथार्थ भासै । उपदेश तो वचनात्मक है । बहुरि वचनकरि अनेक अर्थ युगपत कहे जाते नाहीं । तातैं उपदेश तो एक ही अर्थ की मुख्यता लिए हो है । बहुरि जिस अर्थका जहां वर्णन है, तहां तिसहीकी मुख्यता है। दूसरे अर्थकी तहां ही मुख्यता करै तो दोऊ उपदेश दृढ़ न होंय। तातैं उपदेशविषैं एक अर्थकों दृढ़ करै । परन्तु सर्व जिनमत का चिन्ह स्याद्वाद है सो 'स्यात्' पद का अर्थ 'किंचित है। तातैं जो उपदेश होय ताकों सर्वथा न जानि लेना । उपदेश का अर्थकों जानि तहां इतना विचार करना, यहु उपदेश किस प्रकार है, किस प्रयोजन लिए है, किस जीवकों कार्यकारी है ? इत्यादि विचारकरि तिसका यथार्थ अर्थ ग्रहण करै, पीछें अपनी दशा देखैं, जो उपदेश जैसें आपकों कार्यकारी होय तिसकों तैसें आप अंगीकार करै अर जो उपदेश जाननें योग्य ही होय तो ताकों यथार्थ जानि लैं । ऐसें उपदेश के फलकों पावैं ।

यहां कोई कहै—जो तुच्छ बुद्धि इतना विचार न करि सकै सो कहा करै ?

ताका उत्तर—जैसें व्यापारी अपनी बुद्धिके अनुसारि जिसमें समझै सो थोरा वा बहुत व्यापार करै परन्तु नफा टोटाका ज्ञान तौ अवश्य चाहिए। तैसें विवेकी अपनी बुद्धिके अनुसारि जिसमें समझै सो थोरा वा बहुत उपदेशकों ग्रहै परन्तु मुझकों यहु कार्यकारी है, यहु कार्यकारी नाहीं—इतना तो ज्ञान अवश्य चाहिए। सो कार्य तो इतना है—यथार्थ श्रद्धानज्ञानकरि रागादि घटावना। सो यहु कार्य अपनं सधै, सोई उपदेशका प्रयोजन ग्रहै। विशेष ज्ञान न होय तो प्रयोजनकों तो भूलै नाहीं, यहु तो सावधानी अवश्य चाहिए। जिसमें अपना हितकी हानि होय, तैसें उपदेशका अर्थ समझना योग्य नाहीं। या प्रकार स्याद्वाददृष्टि लिए जैनशास्त्रनिका अभ्यास किए अपना कल्याण हो है।

यहां कोई प्रश्न करै—जहाँ अन्य-अन्य प्रकार सम्भवै, तहाँ तो स्याद्वाद सम्भवै। बहुरि एक ही प्रकारकरि शास्त्रनिविषें परस्पर विरुद्ध भासै तहाँ कहा करिये? जैसें प्रथमानुयोगविषें एक तीर्थंकरकी साथि हजारों मुक्ति गए बताए। करणानुयोगविषें छह महीना आठ समयविषें छहसै आठ जीव मुक्ति जाँय—ऐसा नियम किया। प्रथमानुयोगविषें ऐसा कथन किया—देव देवांगना उपजि पीछें मरि साथ ही मनुष्यादि पर्यायविषें उपजै। करणानुयोगविषें देवका सागरों प्रमाण देवांगनाका पल्यों प्रमाण आयु कह्या। इत्यादि विधि कैसें मिलै?

ताका उत्तर—करणानुयोगविषें कथन है, सो तो तारतम्य लिएं है। अन्य अनुयोगविषेंकथन प्रयोजन अनुसार है। तातैं करणानुयोगका कथन तो जैसें किया तैसें ही है। औरनिका कथनकी जैसें विधि मिलै, तैसें मिलाय लेनी। हजारों तीर्थंकरकी साथि मुक्ति गए बताए, तहां यहु जानना—एक ही काल इतने मुक्ति गए नाहीं। जहां तीर्थंकर गमनादि क्रिया मेटि स्थिर भये, तहाँ तिनकी साथ इतनें मुनि तिष्ठे, बहुरि मुक्ति आगे पीछें गये। ऐसें प्रथमानुयोग करणानुयोगका

विरोध दूरि हो है। बहुरि देव देवांगना साथि उपजें, पीछें देवांगना चयकरि बीचमें अन्य पर्याय धरें, तिनका प्रयोजन न जानि कह्या न किया। पीछें वह साथि मनुष्य पर्यायविषें उपजें, ऐसें विधि मिलाए विरोध दूरि हो है॥ ऐसें ही अन्यत्र विधि मिलाय लेनी।

बहुरि प्रश्न—जो ऐसें कथनविषें भी कोई प्रकार विधि मिलै परन्तु कहीं नेमिनाथ स्वामीका सौरीपुरविषें कहीं द्वारावतीविषें जन्म कह्या, रामचन्द्रादिकको कथा अन्य अन्य प्रकार लिखो इत्यादि। एकेन्द्रियादिक कों कहीं सासादन गुणस्थान लिख्या, कहीं न लिख्या इत्यादि इन कथननिकी विधि कैसें मिलै ?

ताका उत्तर—ऐसें विरोध लिए कथन कालदोषतें भए हैं। इस कालविषें प्रत्यक्ष ज्ञानी वा बहुश्रुतनिका तो अभाव भया अर स्तोकबुद्धि ग्रन्थ करनेके अधिकारी भए। तिनके भ्रमतें कोई अर्थ अन्यथा भासें ताकों तैसें लिखै अथवा इस कालविषें केई जैनमतविषें भी कषायी भए हैं सो तिननें कोई कारण पाय अन्यथा कथन लिख्या है। ऐसें अन्यथा कथन भया, तातै जैनशास्त्रनिविषें विरोध भासने लागा। जहाँ विरोध भासै तहाँ इतना करना कि इस कथन करनेवाले बहुत प्रमाणीक हैं कि इस कथन करने वाले बहुत प्रमाणीक हैं। ऐसा विचारकरि बड़े आचार्यादिकनिका कह्या कथन प्रमाण करना। बहुरि जिनमतके बहुत शास्त्र हैं तिनकी आम्नाय मिलावनी। जो परम्परा-आम्नायतें मिलै, सो कथन प्रमाण करना। ऐसें विचार किए भी सत्य असत्यका निर्णय न होय सकै, तो जैसें केवलीकों भास्या है तैसें प्रमाण है, ऐसें मानि लेना। जातें देवादिकका वा तत्त्वनिका निर्द्धार भए बिना तो मोक्षमार्ग होय नाहीं। तिनका तो निर्द्धार भी होय सकै है, सो कोई इनका स्वरूप विरुद्ध कहै तो आपहीकों भासि जाय। बहुरि अन्य कथनका निर्द्धार न होय वा संशयादि रहै वा अन्यथा भी जानपना होय जाय अर केवलीका कह्या प्रमाण है ऐसा श्रद्धान रहै तो मोक्षमार्गविषें विघ्न नाहीं, ऐसा जानना।

यहाँ कोई तर्क करै—जैसैं नाना प्रकार कथन जिनमतविषैं कह्या, तैसैं अन्यमतविषैं भी कथन पाइए है। सो तुम्हारे मतके कथन का तो तुम जिस तिस प्रकार स्थापन किया, अन्यमतविषैं ऐसे कथनकौं तुम दोष लगावो हो, सो यहु तुम्हारे रागद्वेष है।

ताका समाधान—कथन तो नाना प्रकार होय अर प्रयोजन एकहीकौं पोषै तो कोई दोष है नाहीं। अर कहीं कोई प्रयोजन पोषैं, कहीं कोई प्रयोजन पोषै तो दोष ही है। सो जिनमत विषैं तो एक प्रयोजन रागादि मेटने का है, सो कहीं बहुत रागादि छुड़ाय थोड़ा रागादि करावनेंका प्रयोजन पोष्या है, कहीं सर्व रागादि मिटावनें का प्रयोजन पोष्या है परन्तु रागादि बधावने का प्रयोजन कहींभी नाहीं तातैं जिनमत का कथन सर्व निर्दोष है। अर अन्यमतविषैं कहीं रागादि मिटावने का प्रयोजन लिये कथन करैं, कहीं रागादि बधावनेका प्रयोजन लिए कथन करैं, ऐसैंही और भी प्रयोजनकी विरुद्धता लिए कथन करैं हैं तातैं अन्यमतका कथन सदोष है। लोक विषैं भी एक प्रयोजन को पोषते नाना वचन कहै, ताकौं प्रमाणीक कहिए है अर प्रयोजन और और पोषती बातैं करै, ताकौं बावला कहिए है। बहुरि जिनमतविषैं नाना प्रकार कथन है सो जुदी जुदी अपेक्षा लिए है, तहाँ दोष नाहीं। अन्यमतविषैं एक ही अपेक्षा लिए अन्य अन्य कथन करै तहाँ दोष है। जैसें जिनदेवके वीतरागभाव है अर समवसरणादि विभूति भी पाइए है, तहां विरोध नाहीं। समवसरणादि विभूति की रचना इन्द्रादिक करैं हैं, इनके तिनविषैं रागादिक नाहीं, तातैं दोऊ बात सम्भवै हैं। अर अन्यमतविषैं ईश्वरकौं साक्षीभूत वीतराग भी कहैं अर तिसहीकरि किए काम क्रोधादि भाव निरूपण करैं, सो एक आत्मा ही कैं वीतरागपनौं अर काम क्रोधादि भाव कैसें सम्भवै ? ऐसैं ही अन्यत्र जानना।

बहुरि कालदोषतैं जिनमतविषैं एकही प्रकारकरि कोई कथन विरुद्ध लिख्या है, सो यहु तुच्छ बुद्धीनिकी भूलि है, किछू मतविषैं दोष नाहीं। सो भी जिनमतका अतिशय इतना है कि प्रमाण विरुद्ध कथन कोई कर सकै नाहीं। कहीं सौरीपुरविषैं कहीं द्वारावतीविषैं नेमिनाथ-

स्वाभाविक जन्म लिख्या है, सो काहें हो होहु परन्तु नगरविषें जन्म होना प्रमाणविरुद्ध नाहीं। अब भी होता दीसै है।

बहुरि अन्यमतविषें सर्वज्ञादिक यथार्थ ज्ञानीके किए ग्रन्थ बतावै बहुरि तिनविषें परस्पर विरुद्ध भासै। कहीं तो बालब्रह्मचारीकी प्रशंसा करें, कहीं कहैं "पुत्र बिना गति ही होय नाहीं" सो दोऊ सांचा कैसै होय। ऐसे कथन तहां बहुत पाइये है। बहुरि प्रमाणविरुद्ध कथन तिनविषें पाइए हैं। जैसें वीर्य मुखविषें पड़नेतें मछली कै पुत्र हुवो, सो ऐसें अबार आहूकै होता दीसै नाहीं, अनुमानतें मिलै नाहीं। सो ऐसे भी कथन बहुत पाइये हैं। सो यहां सर्वज्ञादिकको भूलि मानिये सो तो वे कैसें भूलें अर विरुद्ध कथन माननेमें आवै नाहीं, तातैं तिनके मतविषें दोष ठहराइये है। ऐसा जानि एक जिनमत ही का उपदेश ग्रहन करने योग्य है।

तहां प्रथमानुयोगादिकका अभ्यास करना। तहां पहिले याका अभ्यास करना, पीछें याका करना, ऐसा नियम नाहीं। अपनें परिणामनिकी अवस्था देखि जिसके अभ्यासतें अपनें धर्मविषें प्रवृत्ति होय तिसहीका अभ्यास करना। अथवा कदाचित् किसी शास्त्र का अभ्यास करें, कदाचित् किसी शास्त्रका अभ्यास करै। बहुरि जैसें रोजनामांविषें तो अनेक रकम जहां तहां लिखी हैं, तिनिकों खाते में ठीक खतावै तो लेना देनाका निश्चय होय तैसें शास्त्रनिविषें तो अनेक प्रकार उपदेश जहां तहां दिया है, ताकों सम्यग्ज्ञानविषें यथार्थ प्रयोजन लिए पहिचानै तो हित अहितका निश्चय होय। तातैं स्यात्पदकी सापेक्ष लिए सम्यग्ज्ञानकरि जे जीव जिनवचननिविषें रमैं हैं, ते जीव शीघ्र ही शुद्ध आत्मस्वरूपकों प्राप्त हो हैं। मोक्षमार्गविषें पहिला उपाय आगमज्ञान कह्या है। आगमज्ञान बिना और धर्मका साधन होय सकै नाहीं। तातें तुमकों भी यथार्थ बुद्धिकरि आगम अभ्यास करना। तुम्हारा कल्याण होगा।

इति श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक नाम शास्त्रविषें उपदेशस्वरूप-प्रतिपादक नामा आठवां अधिकार सम्पूर्ण भया।

ॐ नमः

नवमां अधिकार

मोक्षमार्गका स्वरूप

दोहा

शिव उपाय करतें प्रथम, कारन मंगलरूप।
विघनविनाशक सुखकरत, नमौं शुद्ध शिवभूप ॥१॥

अथ मोक्षमार्गका स्वरूप कहिए है—पहिलें मोक्षमार्गके प्रतिपक्षी मिथ्यादर्शनादिक तिनिका स्वरूप दिखाया। तिनिकौं तो दुःखरूप दुख का कारन जानि हेय मानि तिनिका त्याग करना। बहुरि बीच में उपदेश का स्वरूप दिखाया। ताकौं जानि उपदेशकौं यथार्थ समझना। अब मोक्षके मार्ग सम्यग्दर्शनादिक तिनिका स्वरूप दिखाइए है। इनिकौं सुखरूप सुखका कारण जानि उपादेय मानि अंगीकार करना। जातैं आत्माका हित मोक्ष ही है। तिसहीका उपाय आत्माको कर्तव्य है। तातैं इसहीका उपदेश यहां दीजिए है। तहाँ आत्माका हित मोक्ष ही है, और नाहीं—ऐसा निश्चय कैसें होय सो कहिए है—

आत्माका हित एक मोक्ष ही है

आत्माकै नाना प्रकार गुणपर्यायरूप अवस्था पाइए है। तिनविषै और तो कोई अवस्था होहु, किछू आत्माका बिगाड़ सुधार नाहीं। एक दुःखसुख अवस्थातैं बिगाड़ सुधार है। सो इहाँ किछू हेतु दृष्टांत चाहिए नाहीं। प्रत्यक्ष ऐसें ही प्रतिभासै है। लोकविषैं जेते आत्मा है, तिनिकै एक उपाय यहु पाइए है—दुःख न होय, सुख ही होय। बहुरि अन्य उपाय जेते करैं हैं, तेते एक इस ही प्रयोजन लिए करैं हैं, दूसरा प्रयोजन नाहीं। जिनके 'निमित्तकैं' दुःख होता जानैं

तिनिको दूर करनेका उपाय करैं हैं अर जिनके निमित्ततें सुख होता जानैं, तिनिके होने का उपाय करैं हैं। बहुरि संकोच विस्तार आदि अवस्था भी आत्माहीकै हो है वा अनेक परद्रव्यनिका भी संयोग मिलै है परन्तु जिनकरि सुख दुःख होता न जानैं, तिनके दूर करनेका वा होने का कुछ भी उपाय कोऊ करै नाहीं। सो इहां आत्म-द्रव्यका ऐसा ही स्वभाव जानना। और तो सर्व अवस्थाकों सहि सकै, एक दुःखकों सह सकता नाहीं। परवश दुःख होय तो यह कहा करै, ताकों भोगवै परन्तु स्ववशपने तो किंचित् भी दुःखकों न सहै। अर संकोच विस्तारादि अवस्था जैसी होय तैसी होहु, तिनिकों स्ववशपनें भी भोगवै, सो स्वभावविषैं तर्क नाहीं। आत्माका ऐसा ही स्वभाव जानना। देखो, दुःखी होय तब सूता चाहै, सो सोवने में ज्ञानादिक मन्द हो जाय है परन्तु जड़ सारिखा भी होय दुःखकों दूरि किया चाहै है वा मूवा चाहै। सो मरने में अपना नाश मानै है परन्तु अपना अस्तित्व भी खोय दुःख दूर किया चाहै है। तातैं एक दुःखरूप पर्याय-का अभाव करना ही याका कर्तव्य है। बहुरि दुःख न होय सो ही सुख है। जातैं आकुलतालक्षण लिए दुःख तिसका अभाव सोई निरा-कुल लक्षण सुख है। सो यहु भी प्रत्यक्ष भासै है। बाह्य कोई सामग्री का संयोग मिलो, जाकैं अन्तरंगविषैं आकुलता है सो दुःखी ही है, जाकै आकुलता नाहीं सो सुखी है। बहुरि आकुलता हो है, सो रागा-दिक कषायभाव भये हो है। जातैं रागादिभावनिकरि यहु तो द्रव्य-निकों और भाँति परिणमाया चाहै अर वे द्रव्य और भाँति परिणमैं, तब याकै आकुलता होय। तहां कै तो आपकै रागादिक दूरि होंय, कै आप चाहै तैसैं ही सर्वद्रव्य परिणमैं तो आकुलता मिटै। सो सर्वद्रव्य तो याके अधीन नाहीं। कदाचित् कोई द्रव्य जैसी याकी इच्छा होय तैसैं ही परिणमैं, तो भी याकी सर्वथा आकुलता दूरि न होय। सर्व कार्य याका चाह्या ही होय, अन्यथा न होय, यहु निराकुल रहै। सो यहु तो होय ही सकै नाहीं। जातैं कोई द्रव्यका परिणमन कोई द्रव्यके

आधीन नाहीं। तातैं अपने रागादि भाव दूरि भए निराकुलता होय सो यहु कार्य बनि सकै है। जातैं रागादिक भाव आत्माका स्वभाव भाव तो है नाहीं, उपाधिकभाव हैं, परनिमित्ततें भए हैं, सो निमित्त मोहकर्मका उदय है। ताका अभाव भए सर्व रागादिक विलय होय जाँय, तब आकुलता नाश भए दुःख दूरि होय सुख की प्राप्ति होय। तातें मोहकर्मका नाश हितकारी है।

बहुरि तिस आकुलताकों सहकारी कारण ज्ञानावर्णादिकका उदय है। ज्ञानावर्ण दर्शनवर्णके उदयतें ज्ञानदर्शन सम्पूर्ण न प्रगटै, तातें याकै देखनें जाननेंकी आकुलता होय अथवा यथार्थ सम्पूर्ण वस्तु का स्वभाव न जानैं, तब रागादिरूप होय प्रवर्त्ते, तहां आकुलता होय।

बहुरि अंतरायके उदयतें इच्छानुसार दानादि कार्य न बनैं, तब आकुलता होय। इनिका उदय है, सो मोहका उदय होतें आकुलताकों सहकारी कारण है। मोहके उदयका नाश भए इनिका बल नाहीं। अन्तर्मुहूर्त्तकालकरि आपै आप नाशकों प्राप्त होय। परन्तु सहकारी कारण भी दूरि होय जाय, तब प्रगट रूप निराकुल दशा भासै। तहाँ केवलज्ञानी भगवान् अनन्तसुखरूप दशाकों प्राप्त कहिए।

बहुरि अघाति कर्मनिका उदयके निमित्ततें शरीरादिकका संयोग हो है, सो मोहकर्मका उदय होतें शरीरादिकका संयोग आकुलताकों बाह्य सहकारी कारण है। अंतरंग मोहका उदयतें रागादिक होय अर बाह्य अघाति कर्मनिके उदयतें रागादिककों कारण शरीरादिकका संयोग होय, तब आकुलता उपजै है। बहुरि मोहका उदय नाश भए भी अघातिकर्मका उदय रहै है, सो किछू भी आकुलता उपजाय सकै नाहीं। परन्तु पूर्वैं आकुलताका सहकारी कारण था, तातें अघाति कर्मनिका भी नाश आत्माकों इष्ट ही है। सो केवलीकै इनिके होतें किछू दुःख नाहीं तातें इनिके नाशका उद्यम भी नाहीं। परन्तु मोहका नाश भए ए कर्म आपै आप थोरे ही काल में सर्व नाशकों

प्राप्त होय जाय है। ऐसें सर्व कर्मका नाश होना आत्माका हित है। बहुरि सर्व कर्मके नाशहीका नाम मोक्ष है। तातैं आत्माका हित एक मोक्ष ही है—और किछू नाहीं, ऐसा निश्चय करना।

इहां कोऊ कहै—संसारदशाविषैं पुण्यकर्मका उदय होतें भी जीव सुखी हो है, तातैं केवल मोक्ष ही हित है, ऐसा काहेकों कहिए ?

सांसारिक सुख दुःख ही है

ताका समाधान—संसारादिविषैं सुख तो सर्वथा है ही नाहीं, दुःख ही है। परन्तु काहूकै कबहूं बहुत दुःख हो है, काहूकै कबहूं थोरा दुःख हो है। सो पूर्वै बहुत दुःख था वा अन्य जीवनिकै बहुत दुःख पाइए है, तिस अपेक्षातैं थोरे दुःखवालेको सुखी कहिए। बहुरि तिस ही अभिप्रायतै थोरे दुःखवाला आपकों सुखी मानै है। परमार्थतैं सुख है नाहीं। बहुरि जो थोरा भी दुःख सदाकाल रहै है, तो वाका भी हित ठहराइए, सो भी नाहीं। थोरे काल ही पुण्यका उदय रहै, तहां थोरा दुःख होय, पीछें बहुत दुःख होइ जाय। तातैं संसार अवस्था हितरूप नाहीं। जैसें काहूकै विषम ज्वर है, ताकै कबहूं असाता बहुत हो है, कबहूं थोरी हो है। थोरी असाता होय, तब वह आपकों नीका मानैं। लोक भी कहैं—नीका है। परन्तु परमार्थतैं यावत् ज्वरका सद्भाव है, तावत् नीका नाहीं है। तैसें संसारीकै मोहका उदय है। ताकै कबहू आकुलता बहुत हो है, कबहू थोरी हो है। थोरी आकुलता होय, तब वह आपकों सुखी मानै। लोक भी कहैं—सुखी है। परन्तु परमार्थतैं यावत् मोहका सद्भाव है, तावत् सुख नाहीं। बहुरि सुनि, संसार दशाविषैं भी आकुलता घटैं सुख नाम पावै है। आकुलता बधें दुःख नाम पावै है। किछू बाह्य सामग्रीतै सुख दुःख नाहीं। जैसें काहू दरिद्रीकै किंचित् धन की प्राप्ति भई, तहां किछू आकुलता घटने तें वाकों सुखी कहिए अर वह भी आपकों सुखी मानै है। ऐसेंही सर्वत्र जानना।

बहुरि आकुलता घटना बधना भी बाह्य सामग्री के अनुसार नाहीं। कषाय भावनिके घटने बधनेके अनुसार है। जैसें काहूके थोरा धन है अर वाकै संतोष है, तो वाकै आकुलता थोरी है। बहुरि काहूकै बहुत धन है अर वाकै तृष्णा है: तो वाकै आकुलता घनी है। बहुरि काहूकों काहूनें बहुत बुरा कह्या अर वाकै क्रोध न भया, तो वाकै आकुलता न हो है अर थोरी बातें कहे ही क्रोध होय आवै, तो वाकै आकुलता घनी हो है। बहुरि जैसें गऊकै बछड़ेतें किछू भी प्रयोजन नाहीं परन्तु मोह बहुत, तातें वाकी रक्षा करनेकी बहुत आकुलता हो है। बहुरि सुभटके शरीरादिकतें घने कार्य सधें हैं परन्तु रणविषें मानादिककरि शरीरादिकते मोह घटि जाय, तब मरनेकी भी थोरी आकुलता हो है। तातें ऐसा जानना—संसार अवस्थाविषें भी आकुलता घटने बधनेहीतें सुख दुःख मानिए हैं। बहुरि आकुलताका घटना बधना रागादिक कषाय घटने बधनेंके अनुसार है। बहुरि परद्रव्यरूप बाह्य सामग्रोके अनुसारि सुख दुःख नाहीं। कषायतें याकै इच्छा उपजै अर वाकी इच्छानुसारि बाह्य सामग्रो मिलै, तब याका किछू कषाय उपशमनेतें आकुलता घटै, तब सुख मानें अर इच्छानुसारि सामग्री न मिलै, तब कषाय बधनेतें अकुलता बधै, तब दुःख मानै। सो है तो ऐसें अर यह जानें—मोकूं परद्रव्यके निमित्ततें सुख दुःख हो है। सो ऐसा जानना भ्रम हो है। तातें इहां ऐसा विचार करना, जो संसार अवस्थाविषें किंचित् कषाय घटें सुख मानिए, ताकों हित जानिए, तो जहां सर्वथा कषाय दूर भए वा कषायके कारण दूरि भए परम निराकुलता होनेकरि अनन्त सुख पाइए ऐसी मोक्षअवस्थाकों कैसें हित न मानिए? बहुरि संसार अवस्थाविषें उच्च पदकों पावें, तौ भी कै तो विषयसामग्रीमिलावनेको आकुलता होय, कै विषय सेवनकी आकुलता होय, कै अपने और कोई क्रोधादि कषायतें इच्छा उपजै, ताको पूरण करनेंकी आकुलता होय, कदाचित् सर्वथा निराकुल होय सकै नाहीं, अभिप्रायविषें तो अनेक प्रकार आकुलता बनी ही रहै।

अर बाह्य कोई आकुलता मेटनेंके उपाय करै, सो प्रथम तो कार्य सिद्ध होय नाहीं अर जो भवितव्य योगतें वह कार्य सिद्ध होय जाय, तो तत्काल और आकुलता मेटनेंका उपायविषें लागै। ऐसें आकुलता मेटनेंकी आकुलता निरन्तर रह्या करै। जो ऐसी आकुलता न रहै तो नये नये विषय सेवनादि कार्यनिविषें काहेकों प्रवर्त्तै है ? तातें संसार अवस्थाविषें पुण्य उदयतें इन्द्र अहमिन्द्रादि पद पावै तो भी निराकुलता न होय, दुःखी ही रहै। तातें संसार अवस्था हितकारी नाहीं।

बहुरि मोक्षअवस्थाविषें कोई ही प्रकारकी आकुलता रही नाहीं तातें आकुलता मेटनेंका उपाय करनेंका भी प्रयोजन नाहीं। सदा काल शांतरसकरि सुखी रहै। तातें मोक्ष अवस्थाही हितकारी है। पूर्वे भी संसार अवस्थाका दुःखका अर मोक्ष अवस्थाका सुखका विशेष वर्णन किया है, सो इसही प्रयोजनके अर्थि किया है। ताकों भी विचारि मोक्षको हितरूप जानि मोक्षका उपाय करना, सर्व उपदेशका तात्पर्य इतना है।

इहां प्रश्न—जो मोक्षका उपाय काललब्धि आए भवितव्यानुसारि बनें है कि मोहादिका उपशमादि भए बनें है कि अपनें पुरुषार्थतें उद्यम किए बनें है, सो कहो। जो पहिले दोय कारण मिले बनें है तो हमको उपदेश काहेकों दीजिए है अर पुरुषार्थतें बनें है, तो उपदेश सर्व सुनें, तिनविषें कोई उपाय कर सकै, कोई न करि सकै, सो कारण कहा ?

मोक्ष साधन में पुरुषार्थ की मुख्यता

ताका समाधान—एक कार्य होनेंविषें अनेक कारण मिलें हैं। सो मोक्षका उपाय बनें है तहां तो पूर्वोक्त तीनों ही कारण मिलें हैं अर न बनें है, तहां तीनों हो कारण न मिलें हैं। पूर्वोक्त तीन कारण कहे, तिनविषें काललब्धि वा होनहार तो किछू वस्तु नाहीं। जिस कालविषें कार्य बनें सोई काललब्धि और जो कार्य भया सोई होनहार। बहुरि जो कर्मका उपशमादिक है, सो पुद्गलकी शक्ति है, ताका

आत्मा कर्त्ता हर्त्ता नाहीं। बहुरि पुरुषार्थतें उद्यम करिये है, सो यहु आत्माका कार्य है। तातें आत्माको पुरुषार्थकरि उद्यम करनेका उपदेश दीजिए है। तहाँ यहु आत्मा जिस कारणतें कार्य सिद्धि अवश्य होय, तिस कारणरूप उद्यम करै, तहां तो अन्य कारण मिलें ही मिलें अर कार्यकी भी सिद्धि होय। बहुरि जिस कारणतें कार्य की सिद्धि होय अथवा नाहीं भी होय, तिस कारणरूप उद्यम करै, तहाँ अन्य कारण मिलें तो कार्यसिद्धिहोय, न मिलें तो न सिद्धि होय। सो जिनमतविषें जो मोक्षका उपाय कह्या है, सो इसतें मोक्ष होय ही होय। तातैं जो जीव पुरुषार्थकरि जिनेश्वरका उपदेश अनुसार मोक्ष का उपाय करें हैं, ताकै काललब्धि वा होनहार भी भया अर कर्मका उपशमादि भया है तो यहु ऐसा उपाय करै है। तातें जो पुरुषार्थकरि मोक्षका उपाय करै है, ताकं है, ताकै सर्वकारण मिलें हैं, ऐसा निश्चय करना अर वाकै अवश्य मोक्षकी प्राप्ति हो है। बहुरि जो जीव पुरुषार्थकरि मोक्षका उपाय न करै, ताकै काललब्धि वा होनहार भी नाहीं अर कर्मका उपशमादि न भया है तो यहु उपाय न करें है। तातें जो पुरुषार्थकरि मोक्षका उपाय न करै है, ताकै कोई कारण मिलें नाहीं, ऐसा निश्चय करना अर वाकै मोक्षकी प्राप्ति न हो है। बहुरि तू कहै है—उपदेश तो सर्व सुनै हैं, कोई मोक्षका उपाय करि सकै, कोई न करि सकै, सो कारण कहा? सो कारण यहु ही है—जो उपदेश सुनि पुरुषार्थ करै है, सो मोक्षका उपाय करि सकै है। उपदेश तो शिक्षा मात्र है, फल जैसा पुरुषार्थ करै तैसा लागै।

द्रव्यलिंगीके मोक्षोपयोगी पुरुषार्थका अभाव

बहुरि प्रश्न—जो द्रव्यलिंगी मुनि मोक्षके अर्थि गृहस्थपनों छोड़ि तपश्चरणादि करै हैं, तहाँ पुरुषार्थ तो किया, कार्य सिद्ध न भया तातें पुरुषार्थ किए तो किछू सिद्धि नाहीं।

ताका समाधान—अन्यथा पुरुषार्थकरि फल चाहै, तो कैसें

सिद्धि होय ? तपश्चरणादि व्यवहार साधनविषैं अनुरागी होय प्रवर्तै, ताका फल शास्त्रविषैं तो शुभबन्ध कह्या अर यहु तिसतैं मोक्ष चाहै है, तो कैसैं होय। यहु तो भ्रम है।

बहुरि प्रश्न—जो भ्रमका भी तो कारण कर्म ही है, पुरुषार्थ कहा करै।

ताका उत्तर—साँचा उपदेशतैं निर्णय किये भ्रम दूरि हो है। सो ऐसा पुरुषार्थ न करै है, तिसहीतैं भ्रम रहै है। निर्णय करनेका पुरुषार्थ करैं, तो भ्रमका कारण मोहकर्म ताका भी उपशमादि होय, तब भ्रम दूरि होय जाय। जातैं निर्णय करतां परिणामनिकी विशुद्धता होय, तिसतैं मोहका स्थिति अनुभाग घटै है।

बहुरि प्रश्न—जो निर्णय करनेविषै उपयोग न लगावै है, ताका भी तो कारण कर्म है।

ताका समाधान—एकेन्द्रियादिककै विचार करनेकी शक्ति नाहीं, तिनकै तो कर्महीका कारण है। याकै तो ज्ञानावरणादिकका क्षयोपशमतैं निर्णय करनेकी शक्ति भई। जहां उपयोग लगावै, तिसहीका निर्णय होय सकै। परन्तु यह अन्य निर्णय करनेविषैं उपयोग लगावै, यहाँ उपयोग न लगावै। सो यह तो याहीका दोष है, कर्मका तो किछू प्रयोजन नाहीं।

बहुरि प्रश्न—जो सम्यक्त्व चारित्रका तो घातक मोह है, ताका अभाव भए बिना मोक्षका उपाय कैसैं बनै ?

ताका उत्तर—तत्वनिर्णय करनेविषैं उपयोग न लगावै, सो तो याहीका दोष है। बहुरि पुरुषार्थकरि तत्वनिर्णयविषैं उपयोग लगावै, तब स्वयमेव ही मोहका अभाव भए सम्यक्त्वादिरूप मोक्षके उपायका पुरुषार्थ बनै है। सो मुख्यपने तो तत्वनिर्णयविषैं उपयोग लगावनेका पुरुषार्थ करना, बहुरि उपदेश भी दीजिए है सो इस ही पुरुषार्थ करावनेके अर्थि दीजिए है। बहुरि इस पुरुषार्थतैं मोक्षके उपायका पुरुषार्थ आपहीतैं सिद्ध होयगा। अर तत्व निर्णय न करनेविषैं कोई

कर्मका दोष है नाहीं, तेरा ही दोष है। अर तू आप तो महन्त रह्या चाहै अर अपना दोष कर्मादिकके लगावै, सो जिन आज्ञा मानें तो ऐसी अनीति सम्भवै नाहीं। तोकों विषय कषायरूपही रहना है, तातैं झूंठ बोलै है। मोक्षकी सांची अभिलाषा होय, तो ऐसी युक्ति काहेकों बनावै। संसारीक कार्यनिविषैं अपना पुरुषार्थतें सिद्धि न होती जानै तौ भी पुषार्थकरि उद्यम किया करै, यहां पुरुषार्थ खोय बैठै। सो जानिए है, मोक्षकों देखादेखी उत्कृष्ट कहै है। वाका स्वरूप पहिचानि ताकों हितरूप न जानै है। हित जानि जाका उद्यम बनैं सो न करै, यह असम्भव है।

इहां प्रश्न—जो तुम कह्या सो सत्य; परन्तु द्रव्यकर्मके उदयतैं भावकर्म होय, भावकर्मतैं द्रव्यकर्मका बन्ध होय, बहुरि ताके उदयतैं भावकर्म होय, ऐसैं ही अनादितैं परम्परा है, तब मोक्षका उपाय कैसैं होय सकै?

ताका समाधान—कर्मका बन्ध वा उदय सदाकाल समान ही हुवा करै तौ ऐसैं ही है; परन्तु परिणामनिके निमित्ततैं पूर्वबद्ध कर्मका भी उत्कर्षण अपकर्षण संक्रमणादि होतें तिनकी शक्ति हीन अधिक होय है तातैं तिनका उदय भी मन्द तीव्र हो है। तिनके निमित्ततैं नवीन बन्ध भी तीव्र हो हैं। तातैं संसारी जीवनिकैं कर्मउदयके निमित्तकरि कबहूं ज्ञानादिक घनें प्रगट हो हैं, कबहूं थोरे प्रगट हो हैं। कबहूं रागादिक मन्द हो हैं, कबहूं तीव्र हो हैं। ऐसैं पलटनि हुवा करै है। तहाँ कदाचित् संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त पर्याय पाया, तब मनकरि विचार करनेकी शक्ति भई। बहुरि याकैं कबहूं तीव्र रागादिक होय, कबहूं मन्द होय। तहाँ रागागादिकका तीव्र उदय होतें तो विषय-कषायादिकके कार्यनिविषैं ही प्रवृत्ति होय। बहुरि रागादिकका मन्द उदय होतें बाह्य उपदेशादिकका निमित्त बनै अर आप पुरुषार्थकरि तिन उपदेशादिक विषैं उपयोगकों लगावै, तो धर्मकार्यनिविषैं प्रवृत्ति होय। अर निमित्त न बनें वा आप पुरुषार्थ न करै, तो अन्य कार्यनि-

विषैं ही प्रवर्तें परन्तु मन्द रागादिक लिए प्रवर्तें, ऐसे अवसरविषैं उपदेश कार्यकारी है। विचारशक्तिरहित एकेन्द्रियादिक [हैं,] तिनिकै तो उपदेश समझनेका ज्ञान ही नाहीं। अर तीव्ररागादिक सहित जीवनिका उपदेशविषै उपयोग लागै नाहीं। तातैं जो जीव विचारशक्तिसहित होंय अर जिनकै रागादिक मन्द होंय, तिनिकौं उपदेशका निमित्ततैं धर्मकी प्राप्ति होय जाय, तो ताका भला होय। बहुरि इस ही अवसरविषैं पुरुषार्थ कार्यकारी है। एकेन्द्रियादिक तो धर्मकार्य करनेकौं समर्थ ही नाहीं, कैसें पुरुषार्थ करैं अर तीव्रकषायी पुरुषार्थ करै सो पापहीका करै, धर्मकार्यका पुरुषार्थ होय सकै नाहीं। तातैं विचारशक्तिसहित होय अर जिसके रागादिक मन्द होय, सो जीव पुरुषार्थकरि उपदेशादिकके निमित्ततैं तत्त्वनिर्णयादिविषैं उपयोग लगावै, तो याका उपयोग तहाँ लगै, तब याका भला होय। बहुरि इस अवसरविषैं भी तत्त्वनिर्णय करनेका पुरुषार्थ न करै, प्रमादतैं काल गमावै। कै तो मन्द रागादि लिए विषयकषायनिके कार्यनिही-विषैं प्रवर्तै, कै व्यवहार धर्मकार्यनिविषैं प्रवर्त्तै, तब अवसर तो जाता रहै, संसारहीविषैं भ्रमण होय।

बहुरि इस अवसरविषैं जे जीव पुरुषार्थकरि तत्त्वनिर्णय करने-विषैं उपयोग लगावनेका अभ्यास राखैं, तिनिकै विशुद्धता बधै, ताकरि कर्मनिकी शक्ति हीन होय। कितुक कालविषैं आपै आप दर्शनमोहका उपशम होय तब याकै तत्त्वनिकी यथावत् प्रतीति आवै। सो याका तो कर्त्तव्य तत्त्वनिर्णयका अभ्यास ही है। इसहोतैं दर्शनमोहका उपशम तो स्वयमेव होय। यामें जीवका कर्त्तव्य किछू नाहीं। बहुरि ताकौं होते जीवके स्वयमेव सम्यग्दर्शन होय। बहुरि सम्यग्दर्शन होतैं श्रद्धान तो यहु भया—मैं आत्मा हूं, मुझको रागादिक न करनें परन्तु चारित्र-मोहके उदयतैं रागादिक हो हैं। तहाँ तीव्र उदय होय, तब तो विष-यादिविषैं प्रवर्त्तै है अर मन्द उदय होय, तब अपनें पुरुषार्थ धर्मकार्य-निविषैं वा वैराग्यादिभावनाविषैं उपयोगकौं लगावै है। ताके निमित्ततैं

चारित्रमोह मन्द होता जाय, ऐसें होतें देशचारित्र वा सकलचारित्र अंगीकार करनेंका पुरुषार्थ प्रगट होय। बहुरि चारित्रकों धारि अपना पुरुषार्थकरि धर्मविषें परिणतिकों बधावै, तहां विशुद्धता करि कर्मकी हीन शक्ति होय, तातैं विशुद्धता बधै, ताकरि अधिक कर्मकी शक्ति हीन होय। ऐसें क्रमतें मोहका नाश करै तब सर्वथा परिणाम विशुद्ध होंय तिनकरि ज्ञानवर्णादिकका नाश होय तब केवलज्ञान प्रगट होय। तहां पीछें बिना उपाय अघाति कर्मका नाशकरि शुद्धसिद्धपदकों पावै। ऐसें उपदेशका तो निमित्त बनें अर अपना पुरुषार्थ करै, तो कर्मका नाश होय।

बहुरि जब कर्मका उदय होय, तब पुरुषार्थ न होय सकै है। ऊपरले गुणस्थाननितें भी गिर जाय है। तहां तो जैसा होनहार होय तैसा ही होय। परन्तु जहां मन्द उदय होय अर पुरुषार्थ होय सकै, तहां तो प्रमादी न होना—सावधान होय अपना कार्य करना। जैसें कोऊ पुरुष नदीका प्रवाहविषें पड़्या बहे है, तहां पानीका जोर होय तब तो वाका पुरुषार्थ किछू नाहीं, उपदेश भी कार्यकारी नाहीं। और पानीका जोर थोरा होय, तब जो पुरुषार्थकरि निकसै तो निकसि आवै, तिसहीकों निकसनेकी शिक्षा दीजिए है। अर न निकसै तो होलें २ बहै, पीछें पानीका जोर भए बह्या चल्या जाय। तैसें जीव संसारविषें भ्रमै है तहां कर्मनिका तीव्र उदय होय तब तो वाका पुरुषार्थ किछू नाहीं, उपदेश भी कार्यकारी नाहीं। अर कर्मका मन्द उदय होय, तब पुरुषार्थकरि मोक्षमार्गविषें प्रवर्त्तै तो मोक्षपावै; तिसहीकों मोक्षमार्गका उपदेश दीजिए है। अर मोक्षमार्गविषें न प्रवर्त्तै तो किंचित् विशुद्धता पाय पीछें तीव्र उदय आए निगोदादि पर्यायकों पावै। तातैं अवसर चूकना योग्य नाहीं। अब सर्व प्रकार अवसर आया है, ऐसा अवसर पावना कठिन है। तातैं श्रीगुरु दयाल होय मोक्षमार्गकों उपदेशें, तिसविषें भव्य जीवनिकों प्रवृत्ति करनी। अब मोक्षमार्गका स्वरूप कहिए है।

मोक्षमार्गका स्वरूप

जिनके निमित्ततें आत्मा अशुद्ध दशाकों धारि दुःखी भया, ऐसे जो मोहादिक कर्म तिनिका सर्वथा नाश होतें केवल आत्माकी जो सर्व प्रकार शुद्ध अवस्थाका होना, सो मोक्ष है। ताका जो उपाय—कारण, सो मोक्षमार्ग जानना। सो कारण तो अनेक प्रकार हो हैं। कोई कारण तो ऐसे हो हैं, जाके भए बिना तो कार्य न होय अर जाके भए कार्य होय वा न भी होय। जैसें मुनि लिंग धारे बिना तो मोक्ष न होय अर मुनिलिंग धारे मोक्ष होय भी अर नाहीं भी होय। बहुरि केई कारण तो ऐसे हैं, जो मुख्यपनें तो जाके भए कार्य होय अर काहूके बिना भए भी कार्य सिद्धि होय। जैसें अनशनादि बाह्य तपका साधन किए मुख्यपनें मोक्ष पाइये है, भरतादिकके बाह्य तप किये बिना ही मोक्षकी प्राप्ति भई। बहुरि केई कारण ऐसे हैं, जाके भये कार्य सिद्धि ही होय और जाके न भये सर्वथा कार्य सिद्धि न होय। जैसें सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रकी एकता भए तो मोक्ष होय ही होय अर ताकों न भये सर्वथा मोक्ष न होय। ऐसे ये कारण कहे, तिनविषैं अतिशयकरि नियमतें मोक्षका साधक जो सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रका एकीभाव, सो मोक्षमार्ग जानना। इन सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्रनिविषैं एक भी न होय तो मोक्षमार्ग न होय। सोई तत्त्वार्थसूत्रविषैं कह्या है—

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः ॥१॥

इस सूत्रकी टीकाविषैं कह्या है—जो यहां "मोक्षमार्गः" ऐसा एक वचन कह्या ताका अर्थ यहु है—जो तीनों मिले एक मोक्षमार्ग है। जुदे जुदे तीन मार्ग नाहीं हैं।

यहाँ प्रश्न—जो असंयतसम्यग्दृष्टीकै तो चारित्र नाहीं, वाकै मोक्ष मार्ग भया है कि न भया है।

ताका समाधान—मोक्षमार्ग याकै होसी, यहु तो नियम भया।

तातें उपचारतें याकै मोक्षमार्ग भया भी कहिये। परमार्थतें सम्यक्चारित्र भए ही मोक्षमार्ग हो है। जैसें कोई पुरुषकै किसी नगर चालनेंका निश्चय भया तातें वाकों व्यवहारतें ऐसा भी कहिये "यहु तिस नगरकों चल्या है", परमार्थतें मार्गविषैं गमन किये ही चलना होसी। तैसें असंयतसम्यग्दृष्टीकैं वीतरागभावरूप मोक्षमार्गका श्रद्धान भया, तातें वाकों उपचारतें मोक्षमार्गी कहिए, परमार्थतें वीतरागभावरूप परिणमे श्री मोक्षमार्ग होसी। बहुरि "प्रवचनसार" विषैं भी तीनोंकी एकाग्रता भए ही मोक्षमार्ग कह्या है तातें यह जानना—तत्व श्रद्धान ज्ञान बिना तो रागादि घटाये मोक्षमार्ग नाहीं अर रागादि घटाए बिना तत्वश्रद्धानज्ञानतें भी मोक्षमार्ग नाहीं। तीनों मिलें साक्षात् मोक्षमार्ग हो है।

लक्षण और उसके दोष

अब इनका निर्देश कर लक्षण निर्देश अर परीक्षाद्वारकरि निरूपण कीजिये हैं। तहाँ 'सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र मोक्षका मार्ग है', ऐसा नाम मात्र कथन सो तो 'निर्देश' जानना। बहुरि अतिव्याप्ति अव्याप्ति असम्भवपनाकरि रहित होय अर जाकरि इनकों पहिचानिये, सो 'लक्षण' जानना। ताका जो निर्देश कहिये, निरूपण सो 'लक्षण निर्देश' जानना। तहां जाकों पहिचानना होय, ताका नाम लक्ष्य है। उस बिना औरका नाम अलक्ष्य है। सो लक्ष्य वा अलक्ष्य दोऊविषैं पाइये, ऐसा लक्षण जहां कहिये तहाँ अतिव्याप्तिपनों जानना। जैसें आत्माका लक्षण 'अमूर्त्तत्व' कहा। सो 'अमूर्त्तत्व' लक्षण है, सो लक्ष्य जो है आत्मा तिसविषैं भी पाइये अर अलक्ष्य जो आकाशादिक हैं तिनविषैं भी पाइये है। तातें यह 'अतिव्याप्त' लक्षण है। याकरि आत्मा पहिचाने आकाशादिक भी आत्मा होय जांय, यहु दोष लागै।

बहुरि जो कोई लक्ष्यविषैं तो होय अर कोई विषैं न होय, ऐसा लक्ष्यका एकदेशविषैं पाइये, ऐसा लक्षण जहां कहिये, तहां अव्याप्ति-

पनों जानना। जैसें आत्माका लक्षण केवलज्ञानादिक कहिये, सो केवल ज्ञान कोई आत्माविषें तो पाइये, कोईविषें न पाइये, तातैं यहु 'अव्याप्त' लक्षण है। याकरि, आत्मा पहिचानें स्तोकज्ञानी आत्मा न होय, वहु दोष लागै।

बहुरि जो लक्ष्यविषें पाइये ही नाहीं, ऐसा लक्षण जहां कहिये तहां असम्भवपना जानना। जैसें आत्माका लक्षण जड़पना कहिये सो प्रत्यक्षादि प्रमाणकरि यहु विरुद्ध है जातें यहु 'असम्भव' लक्षण है। याकरि आत्मा मानें पुद्‌गलादिक भी आत्मा होय जांय। अर आत्मा है सो अनात्मा हो जाय यहु दोष लागै।

ऐसें अतिव्याप्त अव्याप्त असम्भव लक्षण होय सो लक्षणाभास है। बहुरि लक्ष्यविषें तो सर्वत्र पाइये अर अलक्ष्यविषें कहीं न पाइये सो सांचा लक्षण है। जैसें आत्माका स्वरूप चैतन्य है सो यहु लक्षण सर्व ही आत्माविषें तो पाइये है, अनात्माविषें कहीं न पाइये। तातें यहु सांचा लक्षण है। याकरि आत्मा अनात्माका यथार्थ ज्ञान होय, किछू दोष लागै नाहीं। ऐसें लक्षणका स्वरूप उदाहरण मात्र कह्या। अब सम्यग्दर्शनादिकका सांचा लक्षण कहिये है—

सम्यग्दर्शनका सच्चा लक्षण

विपरीताभिनिवेश रहित जीवादिक तत्वार्थश्रद्धान सो सम्यग्दर्शनका लक्षण है। जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष ये सात तत्वार्थ हैं। इनका जो श्रद्धान ऐसे ही है, अन्यथा नाहीं; ऐसा प्रतीति भाव सो तत्वार्थ श्रद्धान हैं। बहुरि विपरीताभिनिवेश जो अन्यथा अभिप्राय ताकरि रहित सो सम्यग्दर्शन है। यहाँ विपरीताभिनिवेशका निराकरणके अर्थि 'सम्यक्' पद कह्या है, जातें 'सम्यक्' ऐसा शब्द प्रशंसा वाचक है। सो श्रद्धानविषें विपरीताभिनिवेशका अभाव भए ही प्रशंसा सम्भवै है, ऐसा जानना।

यहां प्रश्न—जो 'तत्व' अर 'अर्थ' ए दोय पद कहे, तिनिका प्रयोजन कहा ?

ताका समाधान—'तत्' शब्द है सो 'यत्' शब्दकी अपेक्षा लिये है। तातैं जाका प्रकरण होय सो तत् कहिए अर जाका जो भाव कहिये स्वरूप सो तत्व जानना। जातैं 'तस्य भावस्तत्वं' ऐसा तत्व शब्दका समास होय है। बहुरि जो जाननेमें आवै ऐसा 'द्रव्य' वा 'गुण पर्याय' ताका नाम अर्थ है। बहुरि 'तत्वेन अर्थस्तत्वार्थः' तत्व कहिये अपना स्वरूप, ताकरि सहित पदार्थ तिनिका श्रद्धान सो सम्यग्दर्शन है। यहा जो 'तत्वश्रद्धान' ही कहते तो जाका यह भाव (तत्व) है, ताका श्रद्धान बिना केवल भावहीका श्रद्धान कार्यकारी नाहीं। बहुरि जो 'अर्थश्रद्धान ही कहते तो भाव का श्रद्धान बिना पदार्थका श्रद्धान भी कार्यकारी नाही। जैसें कोईकै ज्ञान-दर्शनादिक वा वर्णादिकका तो श्रद्धान होय–यह जानपना है, यह श्वेतवर्ण है, इत्यादि प्रतीति हो है परन्तु ज्ञान दर्शन आत्माका स्वभाव है सो मैं आत्मा हूं बहुरि वर्णादि पुद्गलका स्वभाव है, पुद्गल मोतें भिन्न जुदा पदार्थ है—ऐसा पदार्थ का श्रद्धान न होय तो भावका श्रद्धान कार्यकारी नाहीं। बहुरि जैसें 'मैं आत्मा हू' ऐसे श्रद्धान किया परन्तु आत्मा का स्वरूप जैसा है तैसा श्रद्धान न किया तो भावका श्रद्धान बिना पदार्थका भी श्रद्धान कार्यकारी नाहीं। तातै तत्वकरि अर्थ का श्रद्धान हो हैं सो कार्यकारी है। अथवा जीवादिककों तत्व सज्ञा भी है अर अर्थ सज्ञा भी है तातैं 'तत्वमेवार्थस्तत्वार्थः' जो तत्व सो ही अर्थ, तिनका श्रद्धान सो सम्यग्दर्शन है। इस अर्थकरि कही तत्वश्रद्धानकों सम्यग्दर्शन कहैं वा कहीं पदार्थ श्रद्धानको सम्यग्दर्शन कहैं, तहाँ विरोध न जानना। ऐसें 'तत्व' और 'अर्थ' दोय पद कहने का प्रयोजन है।

बहुरि प्रश्न—जो तत्वार्थ तो अनन्ते हैं। ते सामान्य अपेक्षाकरि जीव अजीवविषैं सर्व गर्भित भए, तातैं दोय ही कहने थे, कै अनंते कहने थे। आस्रवादिक तो जीव अजीवहीके विशेष हैं, इनकों जुदा कहनेका प्रयोजन कहा?

ताका समाधान—जो यहाँ पदार्थ श्रद्धान करने का ही प्रयोजन

होता तो सामान्यकरि वा विशेषकरि जैसें सर्व पदार्थनिका जानना होय तैसें ही कथन करते। सो तो यहाँ प्रयोजन है नाहीं। यहाँ तो मोक्षका प्रयोजन है। सो जिन सामान्य वा विशेष भावनिका श्रद्धान किए मोक्ष होय अर जिनका श्रद्धान किए विना मोक्ष न होय, तिनही का यहाँ निरूपण किया। जो जीव अजीव ये दोय तो बहुत द्रव्यनि की एक जाति अपेक्षा सामान्यरूप तत्व कहे। सो ये दोय जाति जानें जीवके आपापरका श्रद्धान होय। तब परतें भिन्न आपाकों जानें, अपना हितके अर्थि मोक्षका उपाय करै अर आपतें भिन्न परकों जानें, तब परद्रव्यतें उदासीन होय रागादिक त्यागि मोक्षमार्गविषै प्रवर्त्ते। तातें ये दोय जातिका श्रद्धान भए ही मोक्ष होय अर दोय जाति जाने बिना आपा परका श्रद्धान न होय, तब पर्यायबुद्धितें संसारीक प्रयोयजन हीका उपाय करै। परद्रव्यविषै रागद्वेषरूप होय प्रवर्त्ते, तब मोक्षमार्ग-विषैं कैसें प्रवर्त्ते। तातें इन दोय जातिनिका श्रद्धान न भए मोक्ष न होय। ऐसें ये दोय तो सामान्य तत्व अवश्य श्रद्धान करने योग्य कहे। बहुरि आस्रवादिक पाँच कहे, ते जीव पुद्गलकी पर्याय हैं। तातै ये विशेषरूप तत्व हैं। सो इन पाँच पर्यायनिको जानै मोक्ष का उपाय करनेका श्रद्धान होय। तहाँ मोक्षकों पहिचानें, तो ताकों हित मानि ताका उपाय करें। तातें मोक्षका श्रद्धान करना। बहुरि मोक्षका उपाय संवर निर्जरा है तो इनको पहिचानै तो जैसें संवर निर्जरा होय तैसे प्रवर्त्ते। तातै संवर निर्जराका श्रद्धान करना। बहुरि संवर निर्जरा तो अभाव लक्षण लिए हैं; सो जिनका अभाव किया चाहिए, तिनकों पहिचानने चाहिए। जैसें क्रोधका अभाव भए क्षमा होय सो क्रोधकों पहिचानै तो ताका अभाव करि क्षमारूप प्रवर्त्ते। तैसें ही आस्रवका अभाव भए संवर होय अर बंधका एक देश अभाव भए निर्जरा होय सो आस्रव बंधकों पहिचानै तो तिनिका नाशकरि संवर निर्जरारूप प्रवर्त्ते। तातें आस्रव बंधका श्रद्धान करना। ऐसें इन पाँच पर्यायनिका श्रद्धान भए ही मोक्षमार्ग होय। इनकों न पहिचानै तो

मोक्षकी पहिचान बिना ताका उपाय काहेकों करै। संवर निर्जरा की पहिचान बिना तिनविषैं कैसें प्रवर्त्तै। आस्रव बंधकी पहिचान बिना तिनिका नाश कैसें करै? ऐसें इन पांच पर्यायनिका श्रद्धान न भए मोक्षमार्ग न होय। या प्रकार यद्यपि तत्त्वार्थ अनन्ते हैं, तिनिका सामान्य विशेषकरि अनेक प्रकार प्ररूपण होय। परन्तु यहाँ एक मोक्ष का प्रयोजन है तातैं दोय तो जाति अपेक्षा सामान्य तत्व अर पांच पर्यायरूप विशेष तत्व मिलाय सात ही तत्व कहे। इनका यथार्थ श्रद्धानके आधीन मोक्षमार्ग है। इनि बिना औरनिका श्रद्धान होहु वा मति होहु वा अन्यथा श्रद्धान होहु, किसीके आधीन मोक्षमार्ग नाहीं, ऐसा जानना। बहुरि कहीं पुण्य पाप सहित नव पदार्थ कहे हैं सो पुण्य पाप आस्रवादिकके ही विशेष हैं, तातैं सात तत्वनिविषैं गर्भित भए। अथवा पुण्य पापका श्रद्धान भए पुण्यकों मोक्षमार्ग न मानै वा स्वच्छद होय पापरूप न प्रवर्त्तै, तातैं मोक्षमार्गविषैं इनका श्रद्धान भी उपकारी जानि दोय तत्व विशेषको मिलाय नव पदार्थ कहे वा समय-सारादिविषैं इनकों नव तत्व भी कहे हैं।

बहुरि प्रश्न—इनिका श्रद्धान सम्यग्दर्शन कह्या, सो दर्शन तो सामान्य अवलोकनमात्र अर श्रद्धान प्रतीतिमात्र, इनिकै एकार्थपना कैसें सम्भवै ?

ताका उत्तर—प्रकरणके वशतैं धातुका अर्थ अन्यथा होय है। सो यहाँ प्रकरण मोक्षमार्गका है, तिसविषैं 'दर्शन' शब्दका अर्थ सामान्य अवलोकनमात्र न ग्रहण करना। जातैं चक्षु अचक्षु दर्शनकरि सामान्य अवलोकन तो सम्यग्दृष्टि मिथ्यादृष्टिकै समान होय है, किछु याकरि मोक्षमार्गकी प्रवृत्ति अप्रवृत्ति होती नाहीं। बहुरि श्रद्धान हो है सो सम्यग्दृष्टीहीकै हो है, याकरि मोक्षमार्गकी प्रवृत्ति हो है। तातैं 'दर्शन' शब्दका अर्थ भी यहाँ श्रद्धानमात्र ही ग्रहण करना।

बहुरि प्रश्न—यहाँ विपरीताभिनिवेशरहित श्रद्धान करना कह्या, सो प्रयोजन कहा ?

ताका समाधान—अभिनिवेशनाम अभिप्रायका है। सो जैसा तत्वार्थश्रद्धानका अभिप्राय हैं तैसा न होय, अन्यथा अभिप्राय होय, ताका नाम विपरीताभिनिवेश है। सो तत्वार्थश्रद्धान करनेका अभिप्राय केवल तिनिका निश्चय करना मात्र ही नाहीं है। तहाँ अभिप्राय ऐसा है—जीव अजीवकों पहचानि आपकों वा परकों जैसाका तैसा मानैं। बहुरि आस्रवकों पहचानि ताकों हेय मानैं। बहुरि बंधकों पहचानि ताकों अहित मानैं। बहुरि संवरकों पहचानि ताकों हितका कारण मानैं। बहुरि मोक्षकों पहचानि ताकों अपना परम हित मानैं। ऐसैं तत्वार्थ श्रद्धानका अभिप्राय है। तिसतैं उलटा अभिप्रायका नाम विपरीताभिनिवेश है। सो सांचा तत्वार्थश्रद्धान भए याका अभाव होय। तातैं तत्वर्थश्रद्धान है सो विपरीताभिनिवेशरहित है, ऐसा यहां कहा है।

अथवा काहूकै अभ्यास मात्र तत्वार्थश्रद्धान होय है परन्तु अभिप्रायविषैं विपरीतपनों नाहीं छूटै है। कोई प्रकारकरि पूर्वोक्त अभिप्रायतैं अन्यथा अभिप्राय अन्तरंगविषैं पाइए है तो वाकै सम्यग्दर्शन न होय। जैसैं द्रव्यलिंगी मुनि जिनवचननितैं तत्वनिकी प्रतीति करै परन्तु शरीराश्रित क्रियानिविषैं अहंकार वा पुण्यास्रवविषैं उपादेयपनों इत्यादि विपरीत अभिप्रायतैं मिथ्यादृष्टी ही रहै है। तातैं जो तत्वार्थश्रद्धान विपरीताभिनिवेश रहित है सोई सम्यग्दर्शन है। ऐसैं विपरीताभिनिवेश रहित जीवादि तत्वार्थनिका श्रद्धानपना सो सम्यग्दर्शनका लक्षण है। सम्यग्दर्शन लक्ष्य है। सोइ तत्वार्थसूत्रविषैं कह्या है—"तत्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् ॥१-२॥" तत्वार्थनिका श्रद्धान सोई सम्यग्दर्शन है। बहुरि सर्वार्थसिद्धि नाम सूत्रनिकी टीका है, तिसविषैं तत्वादिक पदनिका अर्थ प्रगट लिख्या है वा सात ही तत्व कैसैं कहे सो प्रयोजन लिख्या है, ताका अनुसरतैं यहां किछू कथन किया है ऐसा जानना।

बहुरि पुरुषार्थसिद्ध्युपाय विषैं भी ऐसैं ही कह्या है—

जीवाजीवादीनां तत्वार्थानां सदैव कर्त्तव्यम् ।
श्रद्धानं विपरीताभिनिवेशविविक्तमात्मरूपं तत् ॥२२॥

याका अर्थ—विपरीताभिनिवेशकरि रहित जीव अजीव आदि तत्वार्थनिका श्रद्धान सदाकाल करना योग्य है। सो यहु श्रद्धान आत्माका स्वरूप है। दर्शनमोह उपाधि दूर भए प्रगट हो है, तातैं आत्माका स्वभाव है। चतुर्थादि गुणस्थानविषैं प्रगट हो है। पीछैं सिद्ध अवस्थाविषैं भी सदाकाल याका सद्भाव रहै है, ऐसा जानना।

तत्वार्थ श्रद्धान लक्षण में अव्याप्ति-अतिव्याप्ति-असंभव दोष का परिहार

यहांप्रश्न उपजै है—जो तिर्यंचादि तुच्छज्ञानी केई जीव सात तत्वनिका नाम भी न जानि सकें, तिनिकै भी सम्यग्दर्शन की प्राप्ति शास्त्रविषैं कही है। तातैं तत्वार्थश्रद्धानपना तुम सम्यक्त्वका लक्षण कह्या, तिसविषैं अव्याप्ति दूषण लागै है।

ताका समाधान—जीव अजीवादिका नामादिक जानों व मति जानों वा अन्यथा जानों, उनका स्वरूप यथार्थ पहिचानि श्रद्धान किए सम्यक्त्व हो है। तहां कोई सामान्यपने स्वरूप पहिचानि श्रद्धान करै, कोई विशेषपनें स्वरूप पहिचानि श्रद्धान करै। तातैं तुच्छज्ञानी तिर्यंचादिक सम्यग्दृष्टी हैं सो जीवादिकका नाम न जानैं हैं, तथापि उनका सामान्यपनें स्वरूप पहिचानि श्रद्धान करैं हैं। तातैं उनकै सम्यक्त्वकी प्राप्ति हो है। जैसें कोई तिर्यंच अपना वा औरनिका नामादिक तो नाहीं जानैं परन्तु आपही विषैं आपो मानैं हैं, औरनिकों पर मानैं है। तैसें तुच्छज्ञानी जीव अजीवका नाम न जानैं परन्तु जो ज्ञानादिस्वरूप आत्मा है तिसविषैं तो आपो मानैं है अर जो शरीरादि है तिनकों पर मानैं है—ऐसा श्रद्धान वाकै हो है, सो ही जीव अजीवका श्रद्धान है। बहुरि जैसें सोई तिर्यंच सुखादिकका नामादिक न जानैं है, तथापि सुख अवस्थाकों पहिचानि ताके अर्थि आगामी दुःख

का कारणकों पहिचानि ताका त्यागकों किया चाहै है। बहुरि जो दुःख का कारण बनि रह्या है, ताके अभावका उपाय करै है। तैसें तुच्छ-ज्ञानी मोक्षादिकका नाम न जानें, तथापि सर्वथा सुखरूप मोक्षअवस्थाकों श्रद्धान करता ताके अर्थि आगामी बन्धका कारण रागादिक आस्रव ताका त्यागरूप संवरको किया चाहै है। बहुरि जो संसार दुःखका कारण है, ताकी शुद्धभावकरि निर्जरा किया चाहै है। ऐसें आस्रवादिकका वाकै श्रद्धान है। या प्रकार वाकै भी सप्ततत्त्वका श्रद्धान पाइए है। जो ऐसा श्रद्धान न होय, तो रागादि त्यागि शुद्ध भाव करनेकी चाह न होय। सोइ कहिए है :—

जो जीव अजीवकी जाति न जानि आपापरकों न पहिचानें तो परविषें रागादिक कैसें न करै? रागादिककों न पहिचानें तो तिनिका त्याग कैसें किया चाहै। सो रागादिक ही आस्रव हैं। रागादिकका फल बुरा न जानै तो काहे कों रागादिक छोड़्या चाहैं। सो रागादिकका फल सोई बन्ध है। बहुरि रागादिक रहित परिणामकों पहिचानै है तो तिसरूप हुवा चाहै है। सो रागदिरहित परिणामका ही नाम संवर है। बहुरि पूर्व संसार अवस्थाका कारण की हानिकों पहिचानें है तो ताके अर्थि तपश्चरणादिकरि शुद्धभाव किया चाहै है। सो पूर्व संसार अवस्थाका कारण कर्म है, ताकी हानि सोई निर्जरा है। बहुरि ससार अवस्था का अभावकों न पहिचानें तो संवर निर्जरारूप काहेकों प्रवर्त्तै। सो संसार अवस्थाका अभाव सो ही मोक्ष है। तातें सातों तत्वनिका श्रद्धान भए ही रागादिक छोड़ि शुद्ध भाव होनेको इच्छा उपजै है। जो इनविषें एक भी तत्वका श्रद्धान न होय तो ऐसी चाह न उपजै। बहुरि ऐसी तुच्छज्ञानी तिर्यंचादि सम्यग्दृष्टीकै होय ही है। तातें वाकै सप्त तत्वनिका श्रद्धान पाइए है, ऐसा निश्चय करना। ज्ञानावरण क्षयोपशम थोरा होतें विशेषपनें तत्वनिका ज्ञान न होवै, तथापि दर्शनमोहका उपशमादिकतें समान्यपनें तत्वश्रद्धान-की शक्ति प्रगट हो है। ऐसें इस लक्षणविषें अव्याप्ति दूषण नाहीं है।

बहुरि प्रश्न—जिसकालविषैं सम्यग्दृष्टी विषयकषायनिके कार्यविषैं प्रवर्त्तै हैं तिसकालविषैं सप्त तत्वनिका विचार ही नाहीं, तहाँ श्रद्धान कैसें सम्भवै ? अर सम्यक्त्व रहै ही है, तातैं तिस लक्षणविषैं अव्याप्ति दूषण आवै है।

ताका समाधान—विचार है, सो तो उपयोग के आधीन है। जहां उपयोग लागै, तिसहीका विचार हो है। बहुरि श्रद्धान है, सो प्रतीतिरूप है। तातैं अन्य ज्ञेयका विचार होतें वा सोवना आदि क्रिया होतें तत्वनिका विचार नाहीं, तथापि तिनकी प्रतीति बनी रहै है, नष्ट न हो है। तातैं वाकै सम्यक्त्वका सद्भाव है। जैसें कोई रोगी मनुष्यकै ऐसी प्रतीति है—मैं मनुष्य हूं, तिर्यंचादि नाहीं हूं। मेरे इस कारणतें रोग भया है सो अब कारण मेटि रोगकों घटाय निरोग होना। बहुरि वो ही मनुष्य अन्य विचारादिरूप प्रवर्त्तै हैं, तब वाकै ऐसा विचार न हो है परन्तु श्रद्धान ऐसा रह्या करै है। तैसें इस आत्माकै ऐसी प्रतीति है—मैं आत्मा हूं, पुद्गलादि नाहीं हूं, मेरै आस्रवते बंध भया है, सो अब संवरकरि निर्जराकरि मोक्षरूप होना। बहुरि सोई आत्मा अन्यविचारादिरूप प्रवर्त्तै है, तब वाकै ऐसा विचार न हो है परन्तु श्रद्धान ऐसा ही रह्या करै है।

बहुरि प्रश्न—जो ऐसा श्रद्धान रहै है, तो बंध होनेके कारणनिविषैं कैसें प्रवर्त्तै हैं ?

ताका उत्तर—जैसें सोई मनुष्य कोई कारणके वशतें रोग बधनेंके कारणनिविषैं भी प्रवर्त्तै है, व्यापारादिक कार्य वा क्रोधादिक कार्य करै है, तथापि तिस श्रद्धानका वाकै नाश न हो। तैसें सोई आत्मा कर्म उदय निमित्तके वशतें बन्ध होनेके कारणनिविषैं भी प्रवर्त्तै है, विषयसेवनादि कार्य वा क्रोधादि कार्य करै है, तथापि तिस श्रद्धानका वाकै नाश न हो है। इसका विशेष निर्णय आगें करेंगे। ऐसें सप्ततत्व का विचार न होतें भी श्रद्धानका सद्भाव पाइये है तातैं तहां अव्याप्तिपना नाहीं है।

बहुरि प्रश्न—ऊंची दशाविषैं जहां निर्विकल्प आत्मानुभव हो है, तहां तो सप्त तत्वादिकका विकल्प भी निषेध किया है। सो सम्यक्त्व के लक्षणका निषेध करना कैसें सम्भवै ? अर तहां निषेध सम्भवै है तो अव्याप्ति दूषण आया।

ताका उत्तर—नीचली दशाविषैं सप्त तत्वनिके विकल्पनिविषैं उपयोग लगाया, ताकरि प्रतीतिको दृढ़ कीन्हीं अर विषयादिकतें उपयोग छुड़ाय रागादि घटाया। बहुरि कार्य सिद्ध भए कारणनिका भी निषेध कीजिए है। तातें जहां प्रतीति भी दृढ़ भई अर रागादिक दूर भए तहां उपयोग भ्रमावनेका खेद काहेकों करिए। तातें तहां तिन विकल्पनिका निषेध किया है। बहुरि सम्यक्त्वका लक्षण तो प्रतीति ही है। सो प्रतीतिका तो निषेध न किया। जो प्रतीति छुड़ाई होय, तो इस लक्षणका निषेध किया कहिए। सो तो है नाहीं। सातों तत्वनिकी प्रतीति तहां भी बनी रहै है। तातें यहां अव्याप्तिपना नाहीं है।

बहुरि प्रश्न—जो छद्मस्थकै तो प्रतीति अप्रतीति कहना सम्भवै, तातें तहां सप्ततत्वनिकी प्रतीति सम्यक्त्वका लक्षण कह्या सो हम मान्या परन्तु केवली सिद्ध भगवानकै तो सर्वका जानपना समानरूप है, तहां सप्ततत्वनिकी प्रतीति कहना सम्भवै नाही अर तिनकै सम्यक्त्व गुण पाइये ही है, तातें तहां तिस लक्षणविषैं अव्याप्तिपना आया।

ताका समाधान—जैसें छद्मस्थकै श्रुतज्ञानके अनुसार प्रतीति पाइए है, तैसें केवली सिद्धभगवान्‌कै केवलज्ञानके अनुसार प्रतीति पाइए है। जो सप्त तत्वनिका स्वरूप पहलें ठीक किया था, सो ही केवलज्ञानकरि जान्या। तहां प्रतीति को परम अवगाढ़पनो भयो। याहीतें परम अवगाढ़ सम्यक्त्व कह्या। जो पूर्वै श्रद्धान किया था ताको झूठ जान्या होता तो तहां अप्रतीति होती। सो तो जैसा सप्त तत्वनिका श्रद्धान छद्मस्थकै भया था, तैसाही केवली सिद्धभगवान्‌कै पाइए है तातें ज्ञानादिककी हीनता अधिकता होतें भी तिर्यंचादिक वा केवली सिद्ध भगवान् तिनकै सम्यक्त्व गुण समान ही कह्या। बहुरि पूर्व

अवस्थाविषैं यहु मानैं थे—संवर निर्जराकरि मोक्षका उपाय करना। पीछें मुक्त अवस्था भए ऐसें मानने लगे, जो संवर निर्जराकरि हमारै मोक्ष भई। बहुरि पूर्वे ज्ञानकी हीनताकरि जीवादिकके थोड़े विशेष जानैं था, पीछें केवलज्ञान भए तिनके सर्वविशेष जानैं परन्तु मूलभूत जीवादिकके स्वरूपका श्रद्धान जैसा छद्मस्थकै पाइए है तैसा ही केवली कै पाइए है। बहुरि यद्यपि केवली सिद्ध भगवान् अन्यपदार्थनिकौं भी प्रतीति लिए जानै हैं तथापि ते पदार्थ प्रयोजनभूत नाहीं। तातैं सम्यक्त्वगुणविषैं सप्त तत्वनिहीका श्रद्धान ग्रहण किया है। केवली सिद्ध भगवान् रागादिरूप न परिणमैं हैं, संसार अवस्थाकों न चाहैं हैं। सो यह इस श्रद्धानका बल जानना।

बहुरि प्रश्न—जो सम्यग्दर्शन को तो मोक्षमार्ग कह्या था, मोक्ष विषैं याका सद्भाव कैसें कहिए है?

ताका उत्तर—कोई कारण ऐसा भी हो है, जो कार्य सिद्ध भए भी नष्ट न होय। जैसे काहू वृक्षकै कोई एक शाखाकरि अनेक शाखायुक्त अवस्था भई, तिसको होते वह शाखा नष्ट न हो है तैसें काहू आत्माकै सम्यक्त्व गुणकरि अनेकगुणयुक्त मुक्त अवस्था भई, ताकों होते सम्यक्त्व गुण नष्ट न हो है। ऐसे केवली सिद्धभगवानकै भी तत्वार्थश्रद्धान लक्षणही पाइए है तातैं यहां अव्याप्तिपनों नाहीं है।

बहुरि प्रश्न—मिथ्यादृष्टीकैभी तत्वश्रद्धान हो है, ऐसा शास्त्रविषैं निरूपण है। प्रवचनसारविषैं आत्मज्ञानशून्य तत्वार्थश्रद्धान अकार्यकारी कह्या है। तातैं सम्यक्त्वका लक्षण तत्वार्थश्रद्धान कह्या है, तिस विषैं अतिव्याप्ति दूषण लागै है।

ताका समाधान—मिथ्यादृष्टीकै जो तत्वश्रद्धान कह्या है, सो नामनिक्षेपकरि कह्या है। जामें तत्वश्रद्धानका गुण नाहीं अर व्यवहारविषैं जाका नाम तत्वश्रद्धान कहिए सो मिथ्यादृष्टीकै हो है अथवा आगमद्रव्य निक्षेपकरि हो है। तत्वार्थश्रद्धानके प्रतिपादक शास्त्रनिको अभ्यासै है, तिनिका स्वरूप निश्चय करनेविषैं उपयोग

नाहीं लगावै है, ऐसा जानना। बहुरि यहाँ सम्यक्त्वका लक्षण तत्वार्थ श्रद्धान कह्या है सो भाव निक्षेपकरि कह्या है। सो गुणसहित सांचा तत्वार्थश्रद्धान मिथ्यादृष्टीकै कदाचित् न होय। बहुरि आत्मज्ञानशून्य तत्वार्थश्रद्धान कह्या है, तहां भी सोई अर्थ जानना। सांचा जीव अजीवादिकका जाकै श्रद्धान होय, ताकै आत्मज्ञान कैसें न होय ? होय ही होय। ऐसें कोई ही मिथ्यादृष्टीकै सांचा तत्वार्थश्रद्धा। सर्वथा न पाइए है, तातें तिस लक्षणविषै अतिव्याप्ति दूषण न लागै है।

बहुरि जो यहु तत्वार्थश्रद्धान लक्षण कह्या, सो असम्भवी भी नाही है। जातें सम्यक्त्वका प्रतिपक्षी मिथ्यात्व—यहु नाहीं है, वाका लक्षण इसते विपरीतता लिए है।

ऐसें अव्याप्ति अतिव्याप्ति असम्भवपनाकरि रहित सर्व सम्यग्दृष्टीनिविषै तो पाइए अर कोई मिथ्यादष्टिविषें न पाइए ऐसा सम्यग्दर्शनका सांचा लक्षण तत्वार्थश्रद्धान है।

बहुरि प्रश्न उपजै है—जो यहाँ सातों तत्वनिके श्रद्धानका नियम कहो हो सो बनें नाहीं, जातें कहीं परतें भिन्न आपका श्रद्धान हीकों सम्यक्त्व कहैं हैं। समयसारविषैं* 'एकत्वे नियतस्य' इत्यादि कलश (लिखा) है, तिसविषैं ऐसा कह्या है—जो इस आत्मा का परद्रव्यतें भिन्न अवलोकन सो ही नियमतें सम्यग्दर्शन है। तातैं नव तत्वकी संतति को छोड़ि हमारै यहु एक आत्माही होहु। बहुरि कहीं एक आत्माके निश्चयहीको सम्यक्त्व कहै हैं। पुरुषार्थसिद्ध्युपायविषैं[१]

---

* एकत्वे नियतस्य शुद्धनयतो व्याप्तुर्यदस्यात्मनः।
पूर्णज्ञानघनस्यदर्शनमिह द्रव्यान्तरेभ्यः पृथक्॥
सम्यग्दर्शनमेतदेव नियमादात्मा च तावानयम्।
तन्मुक्त्वा नवतत्वसन्ततिमिमामात्मायमेकोऽस्तु नः॥ जीवाजीव०
अ० कलश ६॥

१. दर्शनमात्मविनिश्चतिरात्मपरिज्ञानमिष्यते बोधः।
स्थितिरात्मनि चारित्रं कुत एतेभ्यो भवति बन्धः॥ पु० सि० २१६॥

'दर्शनमात्मविनिश्चितिः' ऐसा पद है। सो याका यहु ही अर्थ है। तातैं जीव अजीव हीका वा केवल जीवहीका श्रद्धान भए सम्यक्त्व हो है। सातोंका श्रद्धानका नियम होता तो ऐसा काहेकों लिखते।

ताका समाधान—परतैं भिन्न आपका श्रद्धान हो है, सो आस्रवादिकका श्रद्धान करि रहित हो है कि सहित हो है। जो रहित हो है, तो मोक्षका श्रद्धान बिना किस प्रयोजनके अर्थि ऐसा उपाय करै है। संवर निर्जराका श्रद्धान बिना रागादिकरहित होय स्वरूपविषैं उपयोग लगावनेका काहेकों उद्यम राखै है। आस्रव बंधका श्रद्धान बिना पूर्व अवस्थाको काहेकों छांडै है। तातैं आस्रवादिकका श्रद्धानरहित आपापरका श्रद्धान करना सम्भवै नाहीं। बहुरि जो आस्रवादिकका श्रद्धान सहित हो है, तो स्वयमेवही सातों तत्वनिके श्रद्धानका नियम भया। बहुरि केवल आत्मा का निश्चय है, सो परका पररूप श्रद्धान भए बिना आत्माका श्रद्धान न होय, तातैं अजीवका श्रद्धान भए हीं जीवका श्रद्धान होय। बहुरि ताकै पूर्ववत् आस्रवादिकका भी श्रद्धान होय ही होय। तातैं यहाँ भी सातों तत्वनिके ही श्रद्धानका नियम जानना। बहुरि आस्रवादिकका श्रद्धान बिना आपापरका श्रद्धान वा केवल आत्माका श्रद्धान सांचा होता नाहीं। जातैं आत्मा द्रव्य है, सो तो शुद्ध अशुद्ध पर्याय लिए है। जैसैं तन्तु अवलोकन बिना पटका अवलोकन न होय, तैसैं शुद्ध अशुद्ध पर्याय पहिचानें बिना आत्मद्रव्यका श्रद्धान न होय। सो शुद्ध अशुद्ध अवस्थाकी पहिचानि आस्रवादिक की पहिचानतैं हो है। बहुरि आस्रवादिकका श्रद्धान बिना आपापरका श्रद्धान वा केवल आत्माका श्रद्धान कार्यकारी भी नाहीं। जातैं श्रद्धान करो वा मति करो, आप है सो आप है ही, पर है सो पर है। बहुरि आस्रवादिकका श्रद्धान होय, तो आस्रवबन्धका अभावकरिसंवर निर्जरारूप उपाय मोक्षपदकों पावै। बहुरि जो आपापरका भी श्रद्धान कराइए है, सो तिस ही प्रयोजनके अर्थि कराइए है। तातैं आस्रवादिकका श्रद्धानसहित आपापरका जानना कार्यकारी है।

यहाँ प्रश्न—जो ऐसें है, तो शास्त्रनिविषैं आपापरका श्रद्धान वा केवल आत्माका श्रद्धानहीकों सम्यक्त्व कह्या वा कार्यकारी कह्या। बहुरि नव तत्वकी सन्तति छोड़ि हमारे एक आत्मा ही होहु, ऐसा कह्या। सो कैसें कह्या ?

ताका समाधान —जाकै सांचा आपापरका श्रद्धान वा आत्माका श्रद्धान होय, ताकै सातों तत्वनिका श्रद्धान होय ही होय। बहुरि जाकै सांचा सात तत्वनिका श्रद्धान होय, ताकै आपापरका वा आत्मा का श्रद्धान होय ही होय। ऐसा परस्पर अविनाभावीपना जानि आपापरका श्रद्धानकों या आत्मश्रद्धान ही कों सम्यक्त्व कह्या। बहुरि इस छलकरि कोई सामान्यपनें आपापरको जानि वा आत्माकों जानि कृतकृत्यपनों मानै, तो वाकै भ्रम है। जातैं ऐसा कह्या है—'निर्विशेषं हि सामान्यं भवेत्खरविषाणवत्'। याका अर्थ यहु—जो विशेषरहित सामान्य है सो गधेके सींग समान है। तातैं प्रयोजनभूत आस्रवादिक विशेषनिसहित आपापरका वा आत्माका श्रद्धान करना योग्य है। अथवा सातों तत्वार्थनिका श्रद्धानकरि रागादिक मेटनेके अर्थि परद्रव्यनिकों भिन्न भावै है वा अपने आत्माहीकों भावै है, ताकै प्रयोजन की सिद्धि हो है। तातैं मुख्यताकरि भेदविज्ञानकों वा आत्मज्ञानकों कार्यकारी कह्या है। बहुरि तत्वार्थश्रद्धान किए बिना सर्व जानना कार्यकारी नाहीं। जातैं प्रयोजनतो रागादिक मेटनेका है, सो आस्रवादिकका श्रद्धानबिना यहु प्रयोजन भासै नाहीं। तब केवल जाननेहीतें मानकों बधावै, रागादिक छांड़ै नाहीं, तब वाका कार्य कैसें सिद्ध होय। बहुरि नव तत्वसंततिका छोड़ना कह्या है। सो पूर्वै नवतत्वके विचारकरि सम्यग्दर्शन भया, पीछें निर्विकल्पदशा होने के अर्थि नवतत्वनिका भी विकल्प छोड़नेकी चाह करी। बहुरि जाकै पहिलें ही नवतत्वनिका विचार नाहीं, ताकै तिस विकल्प छोड़नेका कहा प्रयोजन है। अन्य अनेक विकल्प आपकै पाइए है, तिनहीका त्याग करो। जैसें आपापरका श्रद्धानविषैं वा आत्मश्रद्धानविषैं सप्त-

तत्वका श्रद्धानकी सापेक्ष पाइए है, तातें तत्वार्थश्रद्धान सम्यक्त्वका लक्षण है ।

बहुरि प्रश्न—जो कहीं शास्त्रनिविषैं अरहन्तदेव निर्ग्रन्थ गुरु हिंसारहित धर्मका श्रद्धानको सम्यक्त्व कह्या है, सो कैसें है ?

ताका समाधान—अरहन्त देवादिकका श्रद्धानतें कुदेवादिकका श्रद्धान दूरि होनेकरि गृहीत मिथ्यात्वका अभाव हो है । तिस अपेक्षा याकों सम्यक्त्व कह्या है । सर्वथा सम्यक्त्वका लक्षण यहु नाहीं । जातें द्रव्यलिंगी मुनि आदि व्यवहार धर्मके धारक मिथ्यादृष्टी तिनिकै भी ऐसा श्रद्धान हो है । अथवा जैसें अणुव्रत महाव्रत होतें तो देशचारित्र सकलचारित्र होय वा न होय परन्तु अणुव्रत महाव्रत भए बिना देशचारित्र सकलचारित्र कदाचित् न होय । तातें इनि व्रतनिकों अन्वयरूप कारण जानि कारणविषैं कार्यका उपचारकरि इनकों चारित्र कह्या । तैसें अरहन्त देवादिकका श्रद्धान होतें तो सम्यक्त्व होय वा न होय परन्तु अरहन्तादिकका श्रद्धान भए बिना तत्वार्थश्रद्धानरूप सम्यक्त्व कदाचित् न होय । तातें अरहन्तादिकके श्रद्धानकों अन्वयरूप कारण जानि कारणविषैं कार्यका उपचारकरि इस श्रद्धानकों सम्यक्त्व कह्या है । याहीतें याका नाम व्यवहार सम्यक्त्व है । अथवा जाकै तत्वार्थश्रद्धान होय, ताकै सांचा अरहन्तादिकके स्वरूपका श्रद्धान होय ही होय । तत्वार्थश्रद्धान बिना पक्षकरि अरहन्तादिकका श्रद्धान करै परन्तु यथावत् स्वरूपकी पहिचानलिए श्रद्धान होय नाहीं । बहुरि जाकै सांचा अरहन्तादिकके स्वरूपका श्रद्धान होय ताकै तत्वश्रद्धान होय ही होय । जातें अरहन्तादिकका स्वरूप पहिचानें जीव अजीव आस्रवादिककी पहिचान हो है । ऐसें इनकों परस्पर अविनाभावी जानि कहीं अरहन्तादिकके श्रद्धानकों सम्यक्त्व कह्या है ।

यहां प्रश्न—जो नारकादिक जीवनिकै देवकुदेवादिकका व्यवहार नाहीं अर तिनिकै सम्यक्त्व पाइए है, तातें सम्यक्त्व होतें अरहंतादिकका श्रद्धान होय ही होय, ऐसा नियम सम्भवै नाहीं ?

ताका समाधान—सप्त तत्वनिका श्रद्धानविषैं अरहंतादिकका श्रद्धान गर्भित है। जातैं तत्वश्रद्धानविषैं मोक्षतत्वकों सर्वोत्कृष्ट मानैं है। सो मोक्षतत्व तो अरहंत सिद्धका लक्षण है जो लक्षणकौं उत्कृष्ट मानै, सो ताके लक्ष्यको उत्कृष्ट मानै ही मानै। तातैं उनको भी सर्वोत्कृष्ट मान्या, औरकों न मान्या, सो ही देवका श्रद्धान भया। बहुरि मोक्षके कारण संवर निर्जरा हैं, तातैं इनकों भी उत्कृष्ट मानैं है। सो संवर निर्जराके धारक मुख्यपनें मुनि हैं। तातैं मुनिकों उत्तम मान्या, औरकों न मान्या, सो ही गुरुका श्रद्धान भया। बहुरि रागादिकरहित भावका नाम अहिंसा है, ताहीकों उपादेय मानै है, औरकों न मानै है, सोई धर्मका श्रद्धान भया। ऐसें तत्वश्रद्धानविषैं गर्भित अरहंतदेवादिकका भी श्रद्धान हो है। अथवा जिस निमित्ततें याकै तत्वार्थ श्रद्धान हो है, तिस निमित्ततें अरहंतदेवादिकका भी श्रद्धान हो है। तातैं सम्यक्त्वविषैं देवादिकके श्रद्धानका नियम है।

बहुरि प्रश्न—जो कोई जीव अरहंतादिकका श्रद्धान करैं हैं, तिनिके गुण पहिचानैं हैं अर उनकै तत्वश्रद्धानरूप सम्यक्त्व न हो है। तातैं जाकै सांचा अरहंतादिकका श्रद्धान होय, ताकै तत्वश्रद्धान होय ही होय, ऐसा नियम सम्भवै नाहीं?

ताका समाधान—तत्वश्रद्धान बिना अरहंतादिकके छियालीस आदि गुण जानैं हैं, सो पर्यायाश्रित गुण जानैं हैं, परन्तु जुदा जुदा जीव पुद्गलविषैं जैसें सम्भवै तैसें यथार्थ नाहीं पहिचानैं है। तातैं सांचा श्रद्धान भी न होय। जातैं जीव अजीवकी जाति पहिचाने बिना अरहंतादिकके आत्माश्रित गुणनिकों वा शरीराश्रित गुणनिकों भिन्न-भिन्न न जानैं। जो जानैं तो अपनं आत्माकों परद्रव्यतैं भिन्न कैसें न मानैं? तातैं प्रवचनसारविषैं ऐसा कह्या है:—

जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं।
सो जाणदि अप्पाणं मोहो खलु जादि तस्स लयं॥८०॥

याका अर्थ यहु—जो अरहंतकों द्रव्यत्व गुणत्व पर्यायत्वकरि

जानैं है, सो आत्माकों जानैं है। ताका मोह विलयकों प्राप्त हो है। तातैं जाकै जीवादिक तत्त्वनिका श्रद्धान नाहीं, ताकै अरहंतादिकका भी सांचा श्रद्धान नाहीं। बहुरि मोक्षादिक तत्त्वका श्रद्धान विना अरहंतादिकका माहात्म्य यथार्थ न जानैं। लौकिक अतिशयादिककरि अरहंत का, तपश्चरणादिककरि गुरुका अर परजीवनिकी अहिंसादिककरि धर्मकी महिमा जानैं, सो ये पराश्रित भाव हैं। बहुरि आत्माश्रित भावनिकरि अरहंतादिकका स्वरूप तत्त्वश्रद्धान भए ही जानिए है। तातैं जाकै सांचा अरहंतादिकका श्रद्धान होय, ताकै तत्त्वश्रद्धान होय ही होय, ऐसा नियम जानना। या प्रकार सम्यक्त्वका लक्षणनिर्देश किया।

यहां प्रश्न—जो सांचा तत्त्वार्थश्रद्धान वा आपापरका श्रद्धान वा आत्म श्रद्धान वा देवगुरुधर्मका श्रद्धान सम्यक्त्वका लक्षण कह्या। बहुरि इन सर्व लक्षणनिकी परस्पर एकता भी दिखाई सो जानी। परन्तु अन्य अन्य प्रकार लक्षण कहनेका प्रयोजन कहा ?

ताका उत्तर—ये चारि लक्षण कहे, तिनिविषैं सांची दृष्टिकरि एक लक्षण ग्रहण किए चारयों लक्षणका ग्रहण हो है। तथापि मुख्य प्रयोजन जुदा जुदा विचारि अन्य अन्य प्रकार लक्षण कहे हैं। जहाँ तत्त्वार्थश्रद्धान लक्षण कह्या है, तहाँ तो यहु प्रयोजन है जो इन तत्त्वनिकों पहिचानें तो यथार्थ वस्तुके स्वरूपका वा अपने हित अहितका श्रद्धान करै तब मोक्षमार्गविषैं प्रवर्त्तै। बहुरि जहाँ आपापरका भिन्न श्रद्धान लक्षण कह्या है, तहाँ तत्त्वार्थ श्रद्धानका प्रयोजन जाकरि सिद्ध होय, तिस श्रद्धानकों मुख्य लक्षण कह्या है। जीव अजीवके श्रद्धानका प्रयोजन आपापरका भिन्न श्रद्धान करना है। बहुरि आस्रवादिकके श्रद्धानका प्रयोजन रागादिक छोड़ना है सो आपापरका भिन्न श्रद्धान भए परद्रव्यविषैं रागादि न करनेका श्रद्धान हो है। ऐसैं तत्त्वार्थ श्रद्धानका प्रयोजन आपापरका भिन्न श्रद्धानतैं सिद्ध होता जानि इस लक्षणकों कह्या है। बहुरि जहाँ आत्मश्रद्धान लक्षण कह्या है, तहाँ आपापरका भिन्न श्रद्धानका प्रयोजन इतना ही है—आपको आप

बलवता। आपकों आप जाने परका भी विकल्प कार्यकारी नाहीं। ऐसा मूलभूत प्रयोजनकी प्रधानता जानि आत्मश्रद्धानकों मुख्य लक्षण कह्या है। बहुरि जहां देवगुरुधर्मका श्रद्धान लक्षण कह्या है, तहाँ बाह्य साधनकी प्रधानता करी है। जातें अरहन्तदेवादिकका श्रद्धान सांचा तत्त्वार्थश्रद्धानकों कारण है अर कुदेवादिकका श्रद्धान कल्पित तत्त्व-श्रद्धानकों कारण है। सो बाह्य कारणकी प्रधानताकरि कुदेवादिकका श्रद्धान छुड़ाय सुदेवादिकका श्रद्धान करावनेके अर्थि देवगुरुधर्मका श्रद्धानकों मुख्यलक्षण कह्या है। ऐसें जुदे-जुदे प्रयोजननिकी मुख्यता करि जुदे-जुदे लक्षण कहे है।

इहाँ प्रश्न—जो ये च्यारि लक्षण कहे, तिनविषें यहु जीव किस लक्षणकों अंगीकार करै?

ताका समाधान—मिथ्यात्वकर्मका उपशमादि होतें विपरीता-भिनिवेशका अभाव हो है। तहाँ च्यारों लक्षण युगपत् पाइए हैं। बहुरि विचार अपेक्षा मुख्यपने तत्त्वार्थनिकों विचारै है। कै आपापरका भेद विज्ञान करै है। कै आत्मस्वरूपहीकों सम्भारै है। कै देवादिकका स्वरूप विचारै है। ऐसे ज्ञानविषें तो नाना प्रकार विचार होय परन्तु श्रद्धानविषें सर्वत्र परस्पर सापेक्षपनों पाइए है। तत्त्वविचार करै है तो भेदविज्ञानादिकका अभिप्राय लिए करै है अर भेदविज्ञान करै है तो तत्त्वविचार आदिकका अभिप्राय लिए करै है। ऐसें ही अन्यत्र भी परस्पर सापेक्षपणों है। तातें सम्यग्दृष्टीके श्रद्धानविषें च्यारों ही लक्षणनिका अंगीकार है। बहुरि जाकै मिथ्यात्व का उदय है ताकै विपरीताभिनिवेश पाइए है। ताकै ये लक्षण आभास मात्र होंय, सांचे न होंय। जिनमतके जीवादिकतत्त्वनिकों मानें, और को न मानें, तिनके नाम भेदादिककों सीखै है, ऐसें तत्त्वार्थश्रद्धान होय परन्तु तिनिका यथार्थ भावका श्रद्धान न होय। बहुरि आपापरका भिन्नपनाकी बातें करै अर वस्त्रादिकविषें परबुद्धिकों चितवन करै परन्तु जैसें पर्याय-विषें अहंबुद्धि है अर वस्त्रादिकविषें परबुद्धि है, तैसें आत्माविषें अहं-

[बुद्धि अर शरीरादिविषैं परबुद्धि न हो है। बहुरि आत्माकौं जिन-
वचनानुसार चितवै परन्तु प्रतीतिरूप आपकौं आप श्रद्धान न करै है।
बहुरि अरहंतदेवादिक बिना और कुदेवादिककौं न मानैं परन्तु तिनके
स्वरूपकौं यथार्थ पहचानि श्रद्धान न करै, ऐसें ये लक्षणाभास मिथ्या-
दृष्टीके हो हैं। इनविषैं कोई होय, कोई न होय। तहाँ इनकै भिन्नपनौं
भी सम्भवै है। बहुरि इन लक्षणाभासनिविषैं इतना विशेष है जो
पहिलें तो देवादिकका श्रद्धान होय, पीछें तत्त्वनिका विचार होय,
पीछें आपापरका चितवन करै, पीछें केवल आत्माकौं चितवै। इस अनु-
क्रमतें साधन करै तो परम्परा सांचा मोक्षमार्गकौं पाय कोई जीव
सिद्धपदकौं भी पावै। बहुरि इस अनुक्रमका उलंघनकरि जाकै देवादिक
माननेंका तो किछू ठीक नाहीं अर बुद्धिकी तीव्रतातें तत्त्वविचारादिक-
विषैं प्रवर्तै है तातैं आपकौं ज्ञानी जानैं हैं। अथवा तत्त्वविचारविषैं भी
उपयोग न लगावे है, आपापरका भेदविज्ञानी हुआ रहै है। अथवा
आपापरका भी ठीक न करै है अर आपकौं आत्मज्ञानी मानै है। सो ये
सर्व चतुराईकी बातें हैं। मानादिक कषायके साधन हैं। किछू भी
कार्यकारी नाहीं। तातैं जो जीव अपना भला किया चाहै, तिसकौं
यावत् सांचा सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति न होय, तावत् इनिकौं भी अनुक्रम
हीतें अंगीकार करना। सोई कहिए है :—

पहलें तो आज्ञादिककरि वा कोई परीक्षाकरि कुदेवादिकका मानना
छोड़ि अरहंतदेवादिकका श्रद्धान करना। जातैं इस श्रद्धान भए गृहीत-
मिथ्यात्वका तो अभाव हो है। बहुरि मोक्षमार्गके विघ्न करनहारे
कुदेवादिकका निमित्त दूरि हो है। मोक्षमार्गका सहाई अरहंतदेवादि-
कका निमित्त मिलै है। सो पहिलें देवादिकका श्रद्धान करना। बहुरि
पीछें जिनमतविषैं कहे जीवादिक तत्त्वनिका विचार करना। नाम
लक्षणादि सीखनें। जातैं इस अभ्यासतें तत्त्वार्थ श्रद्धानकी प्राप्ति होय।
बहुरि पीछें आपापरका भिन्नपना जैसें भासै तैसें विचार किया करै।
जातैं इस अभ्यासतें भेदविज्ञान होय। बहुरि पीछें आपविषैं आपो

मार्गणोंके भी स्वरूपका विचार किया करै। यातैं इस अभ्यासतैं आत्मानुभवकी प्राप्ति हो है। बहुरि ऐसे अनुक्रमतैं इनकों अंगीकार करि पीछें इनहीविषैं कबहू देवादिकका विचारविषैं, कबहू तत्त्वविचार विषैं, कबहू आपापरका विचारविषैं, कबहू आत्मविचारविषै, उपयोग लगावै। ऐसैं अभ्यासतैं दर्शनमोह मन्द होता जाय तब कदाचित् सांचा सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति होय; बहुरि ऐसा नियम तो है नाहीं। कोई जीवकै कोई विपरीत कारण प्रबल बीचमें होय जाय, तो सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति नाहीं भी होय परन्तु मुख्यपने घनें जीवनिकै तो इस अनुक्रमतैं कार्यसिद्धि हो है। तातैं इनकों ऐसैं अंगीकार करनें। जैसे पुत्रका अर्थी विवाहादि कारणनिकों मिलावै, पीछें घनें पुरुषनिकं तो पुत्रकी प्राप्ति होय ही है। काहूकै न होय तो न होय। याकों तो उपाय करना। तैसें सम्यक्त्वका अर्थी इनि कारणनिकों मिलावै, पीछें घनें जीवनिकै तो सम्यक्त्वकी प्राप्ति होय ही है। काहूकै न होय तो नाहीं भी होय। परन्तु याकों तो आपतैं बनै सो उपाय करना। ऐसैं सम्यक्त्वका लक्षण निर्देश किया।

यहाँ प्रश्न—जो सम्यक्त्वके लक्षण तो अनेक प्रकार कहे, तिन विषैं तुम तत्त्वार्थश्रद्धान लक्षणकों मुख्य किया, सो कारण कहा ?

ताका समाधान—तुच्छबुद्धीनिकों अन्य लक्षणविषैं प्रयोजन प्रगट भासै नाहीं वा भ्रम उपजै। अर इस तत्त्वार्थश्रद्धान लक्षणविषैं प्रगट प्रयोजन भासै, किछू भ्रम उपजै नाहीं। तातैं इस लक्षणकों मुख्य किया है। सोई दिखाइए है :—

देवगुरुधर्मका श्रद्धानविषैं तुच्छबुद्धीनिकों यहु भासै—अरहंत-देवादिकों मानना, औरकों न मानना, इतना ही सम्यक्त्व है। तहां जीव अजीवका वा बन्धमोक्षके कारणकार्यका स्वरूप न भासै, तब मोक्ष के प्रयोजनकी सिद्धि न होय वा जीवादिकका श्रद्धान भए बिना इस ही श्रद्धानविषैं सन्तुष्ट होय आपकों सम्यक्त्वी मानै। एक कुदेवा-दिकतैं द्वेष तो राखै, अन्य रागादि छोड़ने का उद्यम न करै, ऐसा भ्रम

उपजै। बहुरि आपापरका श्रद्धानविषैं तुच्छबुद्धीनिकौं यहु भासै कि आपापरका ही जानना कार्यकारी है। इसतें ही सम्यक्त्व हो है। तहां आस्रवादिकका स्वरूप न भासै। तब मोक्षमार्ग प्रयोजनकी सिद्धि न होय वा आस्रवादिकका श्रद्धान भए बिना इतना ही जाननेंविषैं सन्तुष्ट होय आपकों सम्यक्त्वी मान स्वच्छन्द होय रागादि छोड़नेका उद्यम न करै, ऐसा भ्रम उपजै। बहुरि आत्मश्रद्धानविषैं तुच्छबुद्धीनिकों यहु भासै कि आत्माहीका विचार कार्यकारी है। इसहीतें सम्यक्त्व हो है। तहां जीव अजीवादिकका विशेष वा आस्रवादिकका स्वरूप न भासै, तब मोक्षमार्ग प्रयोजनकी सिद्धि न होय वा जीवादिकका विशेष वा आस्रवादिकका स्वरूपका श्रद्धान भए बिना इतना ही विचारतें आपकों सम्यक्त्वी माने स्वच्छन्द होय रागादि छोड़नेका उद्यम न करै। याकैं भी ऐसा भ्रम उपजै है। ऐसा जानि इन लक्षणनिकों मुख्य न किए। बहुरि तत्वार्थश्रद्धान लक्षणविषैं जीव अजीवादिकका वा आस्रवादिकका श्रद्धान होय। तहां सर्वका स्वरूप नीके भासै, तब मोक्षमार्ग के प्रयोजनकी सिद्धि होय। बहुरि इस श्रद्धान भए सम्यक्त्व होय परन्तु यहु सन्तुष्ट न हो है। आस्रवादिकका श्रद्धान होनेसे रागादि छोड़ि मोक्षका उद्यम राखै है। याकै भ्रम न उपजै है। तातैं तत्वार्थ श्रद्धान लक्षणकों मुख्य किया है। अथवा तत्वार्थश्रद्धान लक्षणविषैं तो देवादिकका श्रद्धान वा आपापरका श्रद्धान वा आत्मश्रद्धान गर्भित हो है सो तो तुच्छबुद्धीनिकों भी भासै। बहुरि अन्य लक्षणविषैं तत्वार्थश्रद्धानका गर्भितपनों विशेष बुद्धिमान होय, तिनहीकों भासै; तुच्छबुद्धीनिकों न भासैं तातैं तत्वार्थश्रद्धान लक्षणकों मुख्य किया है। अथवा मिथ्यादृष्टीकै आभास मात्र ए होंय। तहां तत्वार्थनिका विचार तो शीघ्रपने विपरीताभिनिवेश दूर करनेकों कारण हो है, अन्य लक्षण शीघ्र कारण नाहीं होय वा विपरीताभिनिवेशका भी कारण जाय। तातैं यहां सर्वप्रकार प्रसिद्ध जानि विपरीताभिनिवेश रहित जीवादि तत्वार्थ-

लिहा श्रद्धान सोही सम्यक्त्वका लक्षण है, ऐसा निर्देश किया। ऐसे लक्षण निर्देशका निरूपण किया। ऐसा लक्षण जिस आत्माका स्वभावविषें पाइए है, सो ही सम्यक्त्वी जानना।

सम्यक्त्वके भेद और उनका स्वरूप

अब इस सम्यक्त्वके भेद दिखाइए है, तहां प्रथम निश्चय व्यवहार का भेद दिखाइए है—विपरीताभिनिवेशरहित श्रद्धानरूप आत्मा का परिणाम सो तो निश्चय सम्यक्त्व है, जातें यहु सत्यार्थ सम्यक्त्वका स्वरूप है। सत्यार्थहीका नाम निश्चय है। बहुरि विपरीताभिनिवेश रहित श्रद्धानकों कारणभूत श्रद्धान सो व्यवहार सम्यक्त्व है, जातें कारणविषें कार्यका उपचार किया है। सो उपचारही का नाम व्यवहार है। तहाँ सम्यग्दृष्टी जीवकै देवगुरुधर्मादिकका सांचा श्रद्धान है तिसही निमित्ततें याकै श्रद्धानविषें विपरीताभिनिवेशका अभाव है। सो यहाँ विपरीताभिनिवेश रहित श्रद्धान सो तो निश्चय सम्यक्त्व है अर देवगुरुधर्मादिकका श्रद्धान है सो यहु व्यवहार सम्यक्त्व है। ऐसें एक ही कालविषें दोऊ सम्यक्त्व पाइए है। बहुरि मिथ्यादृष्टी जीवकै देवगुरुधर्मादिकका श्रद्धान आभास मात्र हो है। अर याकें श्रद्धानविषें विपरीताभिनिवेशका अभाव न हो है। तातैं यहाँ निश्चयसम्यक्त्व तो है नाहीं अर व्यवहार सम्यक्त्व भी आभासमान है। जातें याकै देवगुरुधर्मादिकका श्रद्धान है सो विपरीताभिनिवेशके अभावकों साक्षात् कारण भया नाहीं। कारण भए बिना उपचार सम्भवै नाहीं। तातैं साक्षात् कारण अपेक्षा व्यवहार सम्यक्त्व भी याकैं न सम्भवै है। अथवा याकै देवगुरुधर्मादिकका श्रद्धान नियमितरूप हो है सो विपरीताभिनिवेशरहित श्रद्धानकों परम्परा कारणभूत है। यद्यपि नियमरूप कारण नाहीं, तथापि मुख्यपने कारण है। बहुरि कारणविषें कार्यका उपचार सम्भवै है। तातैं मुख्यरूप परम्परा कारण अपेक्षा मिथ्यादृष्टीकै भी सम्यक्त्व कहिए है।

यहाँ प्रश्न—जो केई शास्त्रनिविषैं देवगुरुधर्मका श्रद्धानकों वा तत्वश्रद्धानकों तो व्यवहार सम्यक्त्व कह्या है अर आपापरका श्रद्धान कों वा केवल आत्माके श्रद्धानकों निश्चय सम्यक्त्व कह्या है, सो कैसें है ?

ताका समाधान—देवगुरुधर्मका श्रद्धानविषैं तो प्रवृत्तिकी मुख्यता है। जो प्रवृत्तिविषैं अरहंतादिककों देवादिक मानैं, औरकों न मानें, सो देवादिकका श्रद्धानी कहिए है अर तत्वश्रद्धानविषै तिनके विचारकी मुख्यता है। जो ज्ञानविषैं जीवादिक तत्वनिको विचारै, ताकों तत्वश्रद्धानी कहिए है। ऐसें मुख्यता पाइए है। सो ए दोऊ काहू जीवकै सम्यक्त्वको कारण तो होंय परन्तु इनिका सद्भाव मिथ्या-दृष्टीकै भी सम्भवै है। तातें इनिकों व्यवहार सम्यक्त्व कह्या है। बहुरि आपापरका श्रद्धानविषैं वा आत्मश्रद्धानविषैं विपरीताभि-निवेश रहितपना की मुख्यता है। जो आपापरका भेदविज्ञान करै वा अपनें आत्माकों अनुभवै, ताकै मुख्यपनें विपरीताभिनिवेश न होवे। तातें भेदविज्ञानकों वा आत्मज्ञानीकों सम्यग्दृष्टी कहिए है। ऐसें मुख्यताकरि आपापरका श्रद्धान वा आत्मश्रद्धान सम्यग्दृष्टीहीकै पाइए है। तातें इनिकौं निश्चय सम्यक्त्व कह्या, सो ऐसा कथन मुख्यता की अपेक्षा है। तारतम्यपनें ए च्यारों आभासमात्र मिथ्या-दृष्टीकै होंय, साँचे सम्यग्दृष्टीकै होंय। तहां आभासमात्र हैं सो तो नियम बिना परम्परा कारण हैं अर साँचे हैं सो नियम रूप साक्षात् कारण हैं। तातें इनिकों व्यवहाररूप कहिए। इनिके निमित्ततें जो विपरीताभिनिवेश रहित श्रद्धान भया सो निश्चय सम्यक्त्व है, ऐसा जानना।

बहुरि प्रश्न—केई शास्त्रनिविषैं लिखै हैं—आत्मा है सो ही निश्चय सम्यक्त्व है, और सर्व व्यवहार है सो कैसें ?

ताका समाधान—विपरीताभिनिवेशरहित श्रद्धान भया सो

आत्माहीका स्वरूप है, तहाँ अभेदबुद्धि करि आत्मा अर सम्यक्त्वविषैं भिन्नता नाहीं, तातैं निश्चयकरि आत्माहीकों सम्यक्त्व कह्या। और सर्व सम्यक्त्वकों निमित्तमात्र हैं वा भेदकल्पना किए आत्मा अर सम्यक्त्वकै भिन्नता कहिए है तातैं और सर्व कह्या है, ऐसें जानना। या प्रकार निश्चयसम्यक्त्व अर व्यवहार सम्यक्त्वकरि सम्यक्त्वके दोय भेद हो हैं अर अन्य निमित्तादि अपेक्षा आज्ञासम्यक्त्वादि सम्यक्त्वके दश भेद कहे हैं सो आत्मानुशासनविषैं कहा हैं :—

आज्ञामार्गसमुद्भवमुपदेशात्सूत्रबीजसंक्षेपात्।
विस्तारार्थाभ्यांभव मवगाढपरमावगाढं च ॥११॥

याका अर्थ—जिनआज्ञातैं तत्वश्रद्धान भया होय सो आज्ञा सम्यक्त्व है। यहां इतना जानना—'मोकों जिनआज्ञा प्रमाण है", इतना ही श्रद्धान सम्यक्त्व नाहीं है। आज्ञा मानना तो कारणभूत है। याहीतैं यहाँ आज्ञातैं उपज्या कह्या है। तातैं पूर्व जिनआज्ञा माननेतैं पीछें जो तत्वश्रद्धान भया सो आज्ञासम्यक्त्व है। ऐसें ही निर्ग्रन्थ-मार्गके अवलोकनेतैं तत्वश्रद्धान भया सो मार्गसम्यक्त्व[1] है।

बहुरि उत्कृष्ट पुरुष तीर्थंकरादिक तिनके पुराणनिका उपदेशतैं जो उपज्या सम्यग्ज्ञान ताकरि उत्पन्न आगमसमुद्रविषैं प्रवीणपुरुषनि-करि उपदेश आदितैं भई जो उपदेशदृष्टि सो उपदेशसम्यक्त्व है। मुनिके आचरणका विधानकों प्रतिपादन करता जो आचारसूत्र ताहि सुनकरि श्रद्धान करना होय सो सूत्रदृष्टि भलेप्रकार कही है। यह सूत्रसम्यक्त्व है। बहुरि बीज जे गणितज्ञानकों कारण तिनकरि दर्शन-मोहका अनुपम उपशमके बलतैं, दुष्कर है जाननेकी गति जाकी ऐसा पदार्थनिका समूह, ताकी भई है उपलब्धि अर्थात् श्रद्धानरूप परणति

१. मार्ग सम्यक्त्वके बाद मल्लजीकी स्वहस्त लिखित प्रति में ३ लाइनका स्थान अन्य सम्यक्त्वोंके लक्षण लिखनेके लिए छोड़ा गया है और ये लक्षण मुद्रित तथा हस्तलिखित अन्य प्रतियों के अनुसार दिये गए हैं।

जाकै, ऐसा करणानुयोगका ज्ञानी भया, ताकै बीजदृष्टि हो है। यहु बीजसम्यक्त्व जानना। बहुरि पदार्थनिकों संक्षेपपनेतें जानकरि जो श्रद्धान भया सो भली संक्षेपदृष्टि है। यह संक्षेपसम्यक्त्व जानना। जो द्वादशांगवानीकों सुन कीन्हीं जो रुचि श्रद्धान, ताहि विस्तारदृष्टि हे भव्य तू जानि। यह विस्तारसम्यक्त्व है। बहुरि जैनशास्त्रके वचन-विना कोई अर्थका निमित्ततें भई सो अर्थदृष्टि है। यह अर्थसम्यक्त्व जानना। ऐसें आठ भेद तो कारण अपेक्षा किए। बहुरि अंग अर अंग-बाह्यसहित जैनशास्त्र ताकों अवगाह करि जो निपजी सो अवगाढ़-दृष्टि है। यह अवगाढ़सम्यक्त्व जानना। बहुरि श्रुतकेवलीकै जो तत्वश्रद्धान है ताकों अवगाढ़सम्यक्त्व कहिए। केवलज्ञानीकै जो तत्वश्रद्धान है, ताकों परमावगाढ़सम्यक्त्व कहिए। ऐसें दोय भेद ज्ञानका सहकारीपनाकी अपेक्षा किए। या प्रकार दशभेद सम्यक्त्व के किए। तहाँ सर्वत्र सम्यक्त्वका स्वरूप तत्वार्थ श्रद्धान ही जानना।

बहुरि सम्यक्त्वके तीन भेद किए हैं। १. औपशमिक २. क्षायो-पशमिक, ३. क्षायिक। सो ए तीन भेद दर्शनमोहकी अपेक्षा किए हैं। तहां औपशमिकसम्यक्त्वके दोय भेद हैं। प्रथमोपशम सम्यक्त्व, द्वितीयोपशम सम्यक्त्व। तहां मिथ्यात्वगुणस्थानविषै करणकरि दर्शन-मोहकों उपशमाय सम्यक्त्व उपजै, ताकों प्रथमोपशमसम्यक्त्व कहिए है। तहाँ इतना विशेष है—अनादि मिथ्यादृष्टिकै तो एक मिथ्यात्व-प्रकृतिहीका उपशम होय है, जातैं याकै मिश्रमोहनी अर सम्यक्त्व-मोहनीकी सत्ता है नाहीं। जब जीव उपशमसम्यक्त्वकों प्राप्त होय, तहाँ तिस सम्यक्त्वके कालविषै मिथ्यात्वके परमाणूनिकों मिश्रमोहनी रूप वा सम्यक्त्वमोहनीरूप परिणमावै है, तब तीन प्रकृतीनिका सत्ता हो है। तातैं अनादि मिथ्यादृष्टीकै एक मिथ्यात्वप्रकृतिकी ही सत्ता है तिसहीका उपशम हो है। बहुरि सादिमिथ्यादृष्टिकै काहूकै तीन प्रकृतीनिकी सत्ता है, काहूकै एकही की सत्ता है। जाकै सम्यक्त्वकाल-

जिनैं तीनकी सत्ता भई थी, सो सत्ता पाइए, ताकै तीनकी सत्ता है अर जाकै मिश्रमोहनी सम्यक्त्वमोहनी की उद्वलना होय गई होय, उनके परमाणु मिथ्यात्वरूप परिणमि गए होंय, ताकै एक मिथ्यात्वकी सत्ता है। तातैं सादि मिथ्यादृष्टीकै तीन प्रकृतीनिका वा एक प्रकृतिका उपशम हो है।

उपशम कहा ? सो कहिए है :—

अनिवृत्तिकरणविषैं किया अंतरकरणविधानतैं जे सम्यक्त्वका-कालविषैं उदय आवनें योग्य निषेक थे, तिनिका तो अभाव किया, तिनिके परमाणु अन्यकालविषैं उदय आवने योग्य निषेकरूप किये। बहुरि अनिवृत्तिकरणविषैं ही किया उपशमनविधानतैं जे तिसकाल के पीछें उदय आवनें योग्य निषेक थे ते उदीरणारूप होय इस कालविषैं उदय न आय सकैं, ऐसे किए। ऐसैं जहाँ सत्ता तो पाइए अर उदय न पाइए, ताका नाम उपशम है। सो यहु मिथ्यात्वतैं भया प्रथमोपशम सम्यक्त्व, सो चतुर्थादि सप्तमगुणस्थानपर्यन्त पाइए है। बहुरि उपशमश्रेणीकों सन्मुख होतैं सप्तम गुणस्थानविषैं क्षयोपशमसम्यक्त्वतैं जो उपशम सम्यक्त्व होय, ताका नाम द्वितीयोपशमसम्यक्त्व है। यहाँ करणकरि तीन ही प्रकृतीनिका उपशम हो है, जातैं याकै तीनहीकी सत्ता पाइए। यहां भी अंतरकरणविधानतैं वा उपशमविधानतैं तिनिके उदयका अभाव करै है सोही उपशम है। सो यहु द्वितीयोपशम सम्यक्त्व सप्तमादि ग्यारहवां गुणस्थानपर्यन्त हो है। पडतां कोईकै छठे पांचवें "चौथे गुणस्थान"* भी रहै है, ऐसा जानना। ऐसैं उपशम सम्यक्त्व दोय प्रकार है। सो यहु सम्यक्त्व वर्तमानकालविषैं क्षायिकवत् निर्मल है। याका प्रतिपक्षी कर्मकी सत्ता पाइए है, तातैं अन्तर्मुहूर्त कालमात्र यहु सम्यक्त्व रहै है। पीछें दर्शनमोहका उदय आवै है, ऐसा जानना। ऐसैं उपशम सम्यक्त्वका स्वरूप कह्या।

* "चौथे गुणस्थान" यह अन्य प्रतियों में अधिक है।

बहुरि जहां दर्शन मोहकी तीन प्रकृतीनिविषें सम्यक्त्वमोहनी का उदय होय (पाइए है, ऐसी दशा जहां होय सो क्षयोपशम है। तातें समलतत्वार्थ श्रद्धान होय, सो क्षयोपशम सम्यक्त्व है।) अन्य दोयका उदय न होय, तहां क्षयोपशम सम्यक्त्व हो है। सो उपशम सम्यक्त्व का काल पूर्ण भए यहु सम्यक्त्व हो है वा सादि मिथ्यादृष्टीके मिथ्यात्वगुणस्थानतें वा मिश्रगुणस्थानतें भी याकी प्राप्ति हो है।

क्षयोपशम कहा ? सो कहिए है :—

दर्शनमोहकी तीन प्रकृतीनिविषें जो मिथ्यात्वका अनुभाग है ताके अनन्तवें भाग मिश्रमोहनीका है। ताके अनन्तवें भाग सम्यक्त्व-मोहनीका है। सो इनिविषें सम्यक्त्वमोहनी प्रकृति देशघाती है। याका उदय होतें भी सम्यक्त्वका घात न होय। किंचित् मलीनता करै, मूलघात न करि सकै; ताहीका नाम देशघाति है। सो जहां मिथ्यात्व वा मिश्रमिथ्यात्वका वर्तमानकालविषें उदय आवनेंयोग्य निषेक तिनका उदय हुए विना ही निर्जरा हो है सो तो क्षय जानना और इनिहीका आगामीकालविषें उदय आवनें योग्य निषेकनिकी सत्ता पाइए सो ही उपशम है और सम्यक्त्वमोहनीका उदय पाइए है, ऐसी दशा जहां होय सो क्षयोपशम है, तातें समलतत्वार्थ श्रद्धान होय सो क्षयोपशमसम्यक्त्व है। यहां मल लागै है, ताका तारतम्य स्वरूप तो केवली जानें हैं, उदाहरण दिखावनेंके अर्थि चलमलिन अगाढ़पना कह्या है। तहां व्यवहार मात्र देवादिककी प्रतीति तो होय परन्तु अरहन्तदेवादिविषें यहु मेरा है, यहु अन्यका है, इत्यादि भाव सो चल-पना है। शंकादि मल लागै सो मलिनपना है। यहु शांतिनाथ शांतिका कर्ता है इत्यादि भाव सो अगाढ़पना है। सो ऐसे उदाहरण व्यवहार-मात्र दिखाए परन्तु नियमरूप नाहीं। क्षयोपशम सम्यक्त्व विषें जो नियमरूप कोई मल लागै है सो केवली जानें है। इतना जानना—याकै तत्वार्थश्रद्धानविषें कोई प्रकार करि समलपनों हो है तातें यहु

सम्यक्त्व निर्मल नाहीं है। इस क्षयोपशम सम्यक्त्वका एक ही प्रकार है। याविषैं किछू भेद नाहीं है। इतना विशेष है—जो क्षायिक सम्यक्त्वकों सन्मुख होतें अन्तर्मुहूर्तकाल मात्र जहाँ मिथ्यात्वको प्रकृतिका क्षय करै है, तहाँ दोय ही प्रकृतीनिकी सत्ता रहै है। बहुरि पीछें मिश्रमोहनीका भी क्षय करै है। तहां सम्यक्त्वमोहनीकी ही सत्ता रहै है। पीछे सम्यक्त्वमोहनीकी कांडकघातादि क्रिया न करै है। तहाँ कृतकृत्य वेदकसम्यग्दृष्टी नाम पावै है, ऐसा जानना। बहुरि इस क्षयोपशमसम्यक्त्वहीका नाम वेदकसम्यक्त्व है। जहां मिथ्यात्वमिश्रमोहनी की मुख्यता करि कहिए, तहां वेदक नाम पावै है। सो कहने मात्र दोय नाम है, स्वरूपविषैं भेद है नाहीं। बहुरि यहु क्षयोपशम सम्यक्त्व चतुर्थादि सप्तमगुणस्थान पर्यन्त पाइए है, ऐसें क्षयोपशम सम्यक्त्वका स्वरूप कह्या।

बहुरि तीनों प्रकृतीनिके सर्वथा सर्व निषेकनिका नाश भए अत्यन्त निर्मल तत्वार्थश्रद्धान होय सो क्षायिक सम्यक्त्व है। सो चतुर्थादि चारगुणस्थाननिविषै कहीं क्षयोपशम सम्यग्दृष्टिकै याकी प्राप्ति हो है। कैसे हो है? सो कहिए हैं—प्रथम तीन करणकरि तहाँ मिथ्यात्वके परमाणूनिकों मिश्रमोहनी वा सम्यक्त्व मोहनीरूप परिणमावै वा निर्जरा करै, ऐसें मिथ्यात्वकी सत्ता नाश करै। बहुरि मिश्रमोहनी के परमाणूनिकों सम्यक्त्वमोहनीरूप परिणमावै वा निर्जरा करै, ऐसें मिश्रमोहनीका नाश करै। बहुरि सम्यक्त्वमोहनीके निषेक उदय आय खिरैं, वाकी बहुत स्थिति आदि होय तो ताकों स्थितिकांडादिकरि घटावै। जहां अन्तर्मुहूर्तस्थिति रहै, तब कृतकृत्य वेदकसम्यग्दृष्टी होय। बहुरि अनुक्रमतें इन निषेकनिका नाश करि क्षायिक सम्यग्दृष्टी हो है। सो यहु प्रतिपक्षी कर्मके अभावतें निर्मल है वा मिथ्यात्वरूप रंजनाके अभावतें वीतराग है। याका नाश न होय। जहाँतैं उपजै तहाँतैं सिद्ध अवस्था पर्यन्त याका सद्भाव है। ऐसें क्षायिक सम्यक्त्वका स्वरूप कह्या। ऐसें तीन भेद सम्यक्त्वके हैं।

बहुरि अनन्तानुबंधी कषायकी सम्यक्त्व होतें दोय अवस्था हो हैं। कै तो अप्रशस्त उपशम हो है, कै विसंयोजन हो है। तहाँ जो करणकरि उपशम विधानतें उपशम होय ताका नाम प्रशस्त उपशम है। उदयका अभाव ताका नाम अप्रशस्त उपशम है। सो अनन्तानुबंधीका उपशम तो होय ही नाहीं, अन्य मोहकी प्रकृतीनिका हो है। बहुरि इसका अप्रशस्त उपशम हो है। बहुरि जो तीन करणकरि अनन्तानुबंधीनिके परमाणनिकों अन्य चारित्रमोहकी प्रकृतिरूप परिणमाय तिसकी सत्ता नाश करिए, ताका नाम विसंयोजन है। सो इनविषें प्रथमोपशम सम्यक्त्वविषें तो अनन्तानुबंधी अप्रशस्त उपशम ही है। बहुरि द्वितीयोपशम सम्यक्त्वकी प्राप्ति पहिलै अनन्तानुबंधीका विसंयोजन भए ही होय; ऐसा नियम कोई आचार्य लिखें हैं, कोई नियम नाही लिखें हैं। बहुरि क्षयोपशम सम्यक्त्वविषें कोई जीवकै अप्रशस्त उपशम हो है वा कोईकै विसंयोजन हो है। बहुरि क्षायिक सम्यक्त्व है सो पहलें अनन्तानुबंधीका विसंयोजन भए ही हो है, ऐसा जानना। यहां यह विशेष है—जो उपशम क्षयोपशम सम्यक्त्वीकै अनन्तानुबंधीका विसंयोजनतें सत्ता नाश भया था, बहुरि वह मिथ्यात्वविषें आवै तो अनन्तानुबंधी बंध करै, तहां बहुरि वाकी सत्ताका सद्भाव हो है। अर क्षायिकसम्यग्दृष्टी मिथ्यात्वविषें आवै नाही, तातैं वाकै अनंतानुबंधीकी सत्ता कदाचित् न होय।

यहाँ प्रश्न—जो अनंतानुबंधी तो चारित्रमोहकी प्रकृति है सो चारित्रकों घातै, याकरि सम्यक्त्वका घात कैसें सम्भवै ?

ताका समाधान—अनन्तानुबंधीके उदयतें क्रोधादिरूप परिणाम हो हैं, किछु अतत्त्व श्रद्धान होता नाहीं। तातैं अनन्तानुबंधी चारित्रहीकों घातै है, सम्यक्त्वकों नाहीं घातें हैं। सो परमार्थतें है तो ऐसें ही परन्तु अनन्तानुबंधीके उदयतें जैसें क्रोधादिक हो हैं, तैसें क्रोधादिक सम्यक्त्व होते न होंय। ऐसा निमित्त नैमित्तिकपना पाइए है। जैसें त्रसपनाकी घातक तो स्थावरप्रकृतिही है परन्तु त्रसपना होतें एकेन्द्रिय

जाति प्रकृतिका भी उदय न होय, तातैं उपचारकरि एकेन्द्रिय प्रकृतिकों भी त्रसपनाका घातकपना कहिए तो दोष नाहीं। तैसैं सम्यक्त्वका घातक तो दर्शनमोह है परन्तु सम्यक्त्व होतें अनन्तानुबंधी कषायनिका घातकपना कहिए तो दोष नाहीं।

बहुरि यहाँ प्रश्न—जो अनन्तानुबंधी चारित्रहीकों घातै है तो याके गए किछू चारित्र भया कह्यो। असंयत गुणस्थानविषैं असंयम काहेकों कह्यो हो ?

ताका समाधान—अनन्तानुबंधी आदि भेद हैं, ते तीव्र मंदकषायकी अपेक्षा नाही हैं। जातैं मिथ्यादृष्टीकै तीव्र कषाय होतें वा मंदकषाय होतें अनन्तानुबंधी आदि च्यारोंका उदय युगपत् हो है। तहाँ च्यारोंके उत्कृष्ट स्पर्द्धक समान कहे हैं। इतना विशेष है—जो अनन्तानुबंधीके साथ जैसा तीव्र उदय अप्रत्याख्यानादिकका होय, तैसा ताकों गए न होय। ऐसें ही अप्रत्यख्यानकी साथि जैसा प्रत्याख्यान संज्वलन का उदय होय, तैसा ताकों गए न होय। बहुरि जैसा प्रत्याख्यानकी साथि संज्वलनका उदय होय, तैसा केवल संज्वलनका उदय न होय। तातैं अनन्तानुबंधीके गए किछू कषायनिकी मंदता तो हो है परन्तु ऐसी मन्दता न हो है, जाकरि कोई चारित्र नाम पावै। जातैं कषायनिके असंख्यात लोकप्रमाण स्थान हैं। तिनविषैं सर्वत्र पूर्वस्थानतैं उत्तरस्थानविषैं मंदता पाइए है परन्तु व्यवहारकरि तिन स्थानविषैं तीन मर्यादा करी। आदिके बहुत स्थान तो असंयमरूप कहे, पीछैं केतेक देशसंयमरूप कहे, पीछैं केतेक सकलसंयमरूप कहे। तिनविषैं प्रथम गुणस्थानतैं लगाय चतुर्थ गुणस्थान पर्यन्त जे कषायके स्थान हो हैं ते सर्व असंयमहीके हो हैं। तातैं कषायनिकी मंदता होतें भी चारित्र नाम न पावै है। यद्यपि परमार्थतैं कषायका घटना चारित्रका अंश है, तथापि व्यवहारतैं जहां ऐसा कषायनिका घटना होय, जाकरि श्रावकधर्म वा मुनिधर्मका अंगीकार होय, तहां ही चारित्र नाम पावै है। सो असंयमविषैं ऐसे कषाय घटैं नाहीं, तातैं यहां असंयम कहा है।

कषायनिका अधिक हीनपना होतें भी जैसें प्रमत्तादिगुणस्थाननिविषैं सर्वत्र सकलसंयम ही नाम पावै, तैसें मिथ्यात्वादि असंयतपर्यंत गुणस्थाननिविषैं असंयम नाम पावै है। सर्वत्र असंयमकी समानता न जाननी।

बहुरि यहां प्रश्न—जो अनन्तानुबन्धी सम्यक्त्वकों न घातै है तो याके उदय होतें सम्यक्त्वतें भ्रष्ट होय सासादन गुणस्थानकों कैसें पावै है ?

ताका समाधान—जैसे कोई मनुष्यपर्याय नाशका कारण तीव्र-रोग प्रगट भया होय, ताकों मनुष्यपर्यायका छोड़नहारा कहिए। बहुरि मनुष्यपना दूर भए देवादिपर्याय होय, सो तो रोग अवस्थाविषैं न भया। इहां मनुष्यहीको आयु है। तैसें सम्यक्त्वके नाशका कारण अनन्तानुबंधीका उदय प्रगट भया, ताकों सम्यक्त्वका विरोधक सासादन कह्या। बहुरि सम्यक्त्वका अभाव भए मिथ्यात्व होय सो तो सासादनविषैं न भया। यहां उपशमसम्यक्त्वही का काल है, ऐसा जानना। ऐसें अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी सम्यक्त्व होतें अवस्था हो है, तातैं सात प्रकृतीनिके उपशमादिकतें भी सम्यक्त्वकी प्राप्ति कहिए ही है।

बहुरि प्रश्न—सम्यक्त्वमार्गणाके छह भेद किए हैं, सो कैसें हैं ?

ताका समाधान—सम्यक्त्वके तो भेद तीन ही हैं। बहुरि सम्यक्त्व का अभावरूप मिथ्यात्व है। दोऊनिका मिश्रभाव सो मिश्र है। सम्यक्त्वका घातकभाव सो सासादन है। ऐसें सम्यक्त्व मार्गणाकरि जीवका विचार किए छह भेद कहे हैं। यहां कोई कहै कि सम्यक्त्वतें भ्रष्ट होय मिथ्यात्वविषैं आया होय, ताकों मिथ्यात्वसम्यक्त्व कहिए। सो यहु असत्य है, जातैं अभव्यकै भी तिसका सद्भाव पाइए है। बहुरि मिथ्यात्वसम्यक्त्व कहना ही अशुद्ध है। जैसें संयममार्गणाविषैं असंयम कह्या, भव्यमार्गणाविषैं अभव्य कह्या, तैसें ही सम्यक्त्वमार्गणाविषैं मिथ्यात्व कह्या है। मिथ्यात्वकों सम्यक्त्वका भेद न जानना। सम्यक्त्व

अपेक्षा विचार करते केई जीवनिकै सम्यक्त्वका अभाव भासै तहां मिथ्यात्व पाइए है, ऐसा अर्थ प्रगट करनेंके अर्थि सम्यक्त्वमार्गणाविषैं मिथ्यात्व कह्या है। ऐसें ही सासादन मिश्र भी सम्यक्त्वके भेद नाहीं हैं। सम्यक्त्वके भेद तीन ही हैं ऐसा जानना यहां कर्मके उपशमादिकतैं उपशमादिक सम्यक्त्व कहे, सो कर्मका उपशमादिक बाका किया होता नाहीं। यहु तो तत्वश्रद्धान करनेका उद्यम करै, तिसके निमित्ततैं स्वमेव कर्मका उपशमादिक हो है। तब याकै तत्वश्रद्धान की प्राप्ति हो है, ऐसा जानना। या प्रकार सम्यक्त्वके भेद जाननें। ऐसें सम्यग्दर्शनका स्वरूप कह्या।

सम्यक्‌दर्शन के आठ अंग

बहुरि सम्यग्दर्शनके आठ अंग कहे हैं। निःशांकितत्व, निःकांक्षितत्व, निर्विचिकित्सत्व, अमूढदृष्टित्व, उपवृहण, स्थितिकरण, प्रभावना, वात्सल्य। तहां भयका अभाव अथवा तत्वनिविषें संशयका अभाव, सो निःशांकितत्व है। बहुरि परद्रव्यादिविषैं रागरूप वांछाका अभाव, सो निःकांक्षितत्व है। बहुरि परद्रव्यादिविषें द्वेषरूप ग्लानिका अभाव, सो निर्विचिकित्सव है। बहुरि तत्वनिविषें वा देवादिकविषैं अन्यथा प्रतीतिरूप मोहका अभाव, सो अमूढदृष्टित्व है। बहुरि आत्मधर्मका वा जिनधर्मका बधावना, ताका नाम उपवृंहण है। इसही अंगका नाम उपगूहन भी कहिए है। तहां धर्मात्मा जीवनिका दोष ढांकना ऐसा ताका अर्थ जानना। बहुरि अपनें स्वभावविषैं जिनधर्मविषैं आपकों वा परकों स्थापन करना, सो स्थितिकरण है। बहुरि अपनें स्वरूपकी वा जिनधर्मकी महिमा प्रगट करना, सो प्रभावना है। बहुरि स्वरूपविषैं वा जिनधर्मविषैं वा धर्मात्मा जीवनिविषें अतिप्रीति भाव, सो वात्सल्य है। ऐसें ए आठ अंग जाननें। जैसें मनुष्य शरीरके हस्तपादादिक अंग हैं, तैसें ए सम्यक्त्वके अंग हैं।

यहां प्रश्न—जो केई सम्यक्त्वी जीवनिकैं भी भय इच्छा ग्लानि

आदि पाइए है अर केई मिथ्यादृष्टीकै न पाइए है, तातैं निःशंकितादिक अंग सम्यक्त्वके कैसें कहो हो ?

ताका समाधान—जैसें मनुष्य शरीरके हस्तपादादि अंग कहिए है, तहां कोई मनुष्य ऐसा भी होय, जाकै हस्तपादादिविषैं कोई अंग न होय। तहां वाकै मनुष्यशरीर तो कहिए परन्तु तिनि अंगनि बिना वह शोभायमान सकल कार्यकारी न होय। तैसें सम्यक्त्वके निःशंकितादि अंग कहिए है, तहां कोई सम्यक्ती ऐसा भी होय, जाकै निःशंकितत्वादिविषैं कोई अंग न होय। तहां वाकै सम्यक्त्व तो कहिए परन्तु तिनि अंगनिबिना वह निर्मल सकल कार्यकारी न होय। बहुरि जैसें बांदरेकै भी हस्तपादादि अंग हो हैं परन्तु जैसें मनुष्यके होंय, तैसें न हो हैं। तैसें मिथ्यादृष्टीनिकै भी व्यवहाररूप निःशंकितादिक अंग हो हैं परन्तु जैसें निश्चयकी सापेक्ष लिए सम्यक्त्वीकै होंय तैसें न हो हैं। बहुरि सम्यक्त्वविषैं पच्चीस मल कहे हैं—आठ शंकादिक, आठ मद, तीन मूढ़ता, षट् अनायतन, सो ए सम्यक्त्वीकै न होंय। कदाचित् काहूकै कोई लागै सम्यक्त्वका सर्वथा नाश न हो है, तहां सम्यक्त्व मलिन ही हो है, ऐसा जानना। बहु ....